ऋषि दयानन्द सरस्वती
के
पत्र और विज्ञापन
(द्वितीय भाग)

AS
१५.१
६१०:२:२

सम्पादक—
श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए०

ल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय (विज्ञान विभाग)

AS
विषय संख्या १५.१
पुस्तक संख्या ६६२१२
आ[illegible] पंजिका संख्या
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 7:036

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

71336

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

AS
१५.१
वर्ग संख्या ~~८८ २.२~~ आ.सं. 71336

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

26 JUL 1982
10 SEP 1985
27 JUL 1984
10 SEP 1985
21 FEB 1987
15 FEB 1988
3 AUG 1988

71336

7-336

ऋषि दयानन्द सरस्वती
के
पत्र और विज्ञापन

(परिष्कृत तथा परिवर्धिन संस्करण)

(द्वितीय भाग)

COMPILED

सम्पादक—
वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास आदि अनेक ग्रन्थों
के रचयिता, शतशः लुप्त संस्कृत ग्रन्थों के उद्धारक, दयानन्द
महाविद्यालय लाहौर के भूतपूर्व अनुसन्धानाध्यक्ष
तथा महिला विद्यापीठ के संस्थापक

श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०

पत्रों के प्रमुख अन्वेषक—
श्री महाशय मामराज जी आर्य (खतौली)

परिष्कर्ता एवं परिवर्धक—
युधिष्ठिर मीमांसक

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-८५

71336

प्रकाशक—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़
(सोनीपत-हरयाणा)

AS
१५.१
६६.२१२

तृतीय संस्करण
सं० २०३८ भाद्र पूर्णिमा
सितम्बर सन् १९८१

विशेष—१. इस संस्करण में अनेक नये पत्र-पत्रांश, विज्ञापन-विज्ञापनांश, पत्र-पारसल-सूचना, तार-सारांश आदि प्रथम बार छपे हैं।

२. इसके दो भागों में ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन हैं।

३. तीसरे भाग में ऋषि दयानन्द को भेजे गये विविध व्यक्तियों के पत्र-पत्रांश पत्र-सूचना आदि छपेंगे।

प्रथम भाग—३५-००
द्वितीय भाग—३०-००
तृतीय भाग—३५-००

मुद्रक—
सुरेन्द्र कुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़, (सोनीपत)

71336

ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन के मुद्रण में सहायक

दान-दाताओं की सूची

वर्तमान में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़नेवाली भयङ्कर मंहगाई के समय में 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' के इस परिवर्धित और परिष्कृत संस्करण की छपाई के लिये जिन वैदिक-धर्मप्रेमी ऋषि-भक्त उदार-चेता महानुभावों ने (प्रथम भाग के मुद्रण के पश्चात्) अपना यथाशक्ति सहयोग दिया है, उन सब के नाम धन्यवादपूर्वक नीचे दे रहे हैं-

१००१-००	युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़ (सोनीपत)
१०००-००	श्री बा० मोहनलाल जी बागड़िया, कलकत्ता
५००-००	रा० सा० श्री चौ० प्रतापसिंह जी, करनाल
४००-००	श्री लीलावती पृथिवीचन्द जी, प्रागपुर (कांगड़ा)
२०२-००	श्री बा० धर्मेन्द्रकुमार जी कपूर, बम्बई
१०१-००	श्री गुरुदत्त जी गौतम, नई दिल्ली
१०१-००	श्रीमती कृष्णाजी भाटिया, नई दिल्ली
१०१-००	श्रीमती ईश्वर देवी जी भाटिया, नई दिल्ली
१०१-००	श्री एस० पी० अग्रवाल, दिल्ली
१०१-००	श्री बा० वीरेन्द्रकुमार जी कपूर, नासिक
१०१-००	सौ० कुसुमलता जी व्रजेन्द्र कुमार श्री वास्तव मैनपुरी
१०१-००	श्री बा० रामचन्द्र खैराती राम सर्राफ, अमृतसर
१०१-००	श्री पं० सत्यवीर जी आचार्य, झिम्झौली आश्रम दिल्ली
१०१-००	श्री पं० धर्मपाल जी शास्त्री, नलवी खुर्द (करनाल)
१००-००	श्री चौ० चन्द्रभानजी, नई दिल्ली
१००-००	श्री डा० आर० एस० लाल, छतरपुर
१००-००	श्री अम्बालाल नरसिंह भाई पटेल, जेतपुर
१००-००	श्री बा० विश्वम्भर दाबाली, ऊना
१००-००	श्री बा० कृष्णलाल जी आर्य, नई दिल्ली
१००-००	श्री मोतीभाई बेचरभाई पटेल, भड़ौंच
१००-००	श्री सुरेशचन्द्र जी आर्य, बयाना (भरतपुर)
१००-००	श्रीमती वै० सीतारत्नम् जी, जि० गुण्टूर
१००-००	श्री अखिलेश कुमार जी, लखनऊ
४६१२-००	

15.1,67.2:2
71336

४९१२-००	पिछला योग
६०-००	श्री पं० मेधावी जी शास्त्री, लखनऊ
६०-००	श्री बा० जागीरीलाल जी मेहरा, अमृतसर
५१-००	श्री लल्लूसिंहजी, लखनऊ
५१-००	श्री नारायण जी, काठमाण्डू (नैपाल)
४०-००	श्री राजकुमारजी जायस्वाल, कलकत्ता
३०-००	श्री मन्त्री जी० आ० स० गान्धी कालोनी, मुजफ्फरनगर
१०-००	इन्दुलाल मोतीलाल पटेल, सुरेन्द्रनगर
५२१४-००	योग द्वितीय भाग के मुद्रण काल में प्राप्त
१३५२४-००	पिछला योग प्रथम भाग के मुद्रण काल में प्राप्त
१८७३८-००	पूर्ण योग जो आज तक प्राप्त हुआ

इस संस्करण की विशेषता

१—इस संस्करण में द्वितीय संस्करण की अपेक्षा ३०-३२ नये पत्र विज्ञापन और तार आदि का संकलन हुआ है।

२—आर्य सन्मार्ग-सन्दर्शिनी सभा कलकत्ता की ओर से (द्र० पूर्ण संख्या ४४८ पृष्ठ ४९३) ऋषि दयानन्द के ऊपर जो आक्षेप किये थे उनका अत्यन्त सारगर्भित उत्तर भी प्रथम परिशिष्ट (पृष्ठ ८६३-८९९) में संगृहीत कर दिया है। इससे पूर्व-मीमांसा के कई सूत्रों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

३—पत्र-विज्ञापन भाग १ पृष्ठ ५८ पं० ३ में निर्दिष्ट मुंबई आर्य समाज के आदिम २८ नियमों पर ऋषि दयानन्द ने जो व्याख्या लिखी थी, उसे तृतीय परिशिष्ट (पृष्ठ ९०९-९१८) में संकलित कर दिया है। यह अत्यन्त उपयोगी एवं दुर्लभ वस्तु है।

४—आर्यसमाज-स्थापना की वास्तविक तिथि के विषय में ऐतिहासिक सामग्री का संकलन चतुर्थ परिशिष्ट में किया है।

५—पत्र और विज्ञापन के इस संग्रह में अन्य ग्रन्थों के जो वचन, व्यक्ति विशेष के नाम और ग्रन्थों के नाम निर्दिष्ट हैं उनकी सूची नवम दशम एकादश परिशिष्टों में दी है।

६—इस संग्रह में संगृहीत पत्र विज्ञापन आदि कहां से प्राप्त किये गये और संग्रह काल में मूल पत्र आदि कहां किस के पास सुरक्षित थे इसका निर्देश प्रत्येक पत्र और विज्ञापन के नीचे कर दिया है तथापि उन व्यक्तियों संस्थाओं और ग्रन्थों की सूची पूर्ण संख्या निर्देश पूर्वक बारहवें परिशिष्ट में दी है।

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन का सूचीपत्र

प्रथम भाग

विषय	पृष्ठ
दानदाताओं की सूची	क ख
आवश्यक सूचनायें	घ ङ
प्रकाशकीय वक्तव्य	१-४
द्वितीय संस्करण की विशेषता	५-६
परिवर्धित परिष्कृत तृतीय संस्करण	९-२२
भूमिका (आद्य संपादक श्री पं० भगवद्दत्त जी)	२३-७५
पत्र संग्रह का आरम्भ	२३
चार भागों में आद्य प्रकाशन और उनकी भूमिकायें	२४
पत्र संग्रह की प्रगति	३४
स्वामी जी के कुछ नये पत्र (डा० धीरेन्द्र वर्मा से प्राप्त)	३५
परोपकारिणी सभा अजमेर का संग्रह	३६
सम्पूर्ण उपलब्ध पत्रों के नवीन संग्रह का आयोजन	३७
तिथि क्रमानुसार सम्पादन का प्रथम लाभ	३७
,, ,, ,, द्वितीय लाभ	३८
,, ,, ,, तृतीय लाभ	४०
,, ,, ,, चतुर्थ लाभ	४०
,, ,, ,, पञ्चम लाभ	४१
कृत्रिम-पत्र	४१
ऋषि दयानन्द सरस्वती का सर्व प्रथम लेख	४३
पत्र और विज्ञापनों में ऋषि के उज्ज्वल विचार	४७
१—भारत की भाषा संस्कृत	४७
२—वेद-महत्त्व और वेदभाष्य	६१
३—आर्ष ग्रन्थ और आर्य-संस्कृति	६५
४—अंग्रेजी शिक्षा की शालायें खोलने के विरोधी ऋषि दयानन्द सरस्वती	७०
५—ऋषि दयानन्द और देशी रियासतें	७२
६—ऋषि दयानन्द सरस्वती और राज्यव्यवस्था	७३

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन

संवत् १९२६ तथा १९२७ के विज्ञापन और पत्र [१–३] १
संवत् १९३० के विज्ञापन और पत्र आदि [४–९] ९
संवत् १९३१-३२ के पत्र और विज्ञापन ,, [१०–३०] ३२
संवत् १९३३ ,, ,, ,, ,, [३१–४१] ६३
संवत् १९३४ ,, ,, ,, ,, [४२–९३] ८५
संवत् १९३५ ,, ,, ,, ,, [९४–१९२] १४५
संवत् १९३६ ,, ,, ,, ,, [१९३-२८१] २५०
संवत् १९३७ ,, ,, ,, ,, [२८२–४४७] ३२८

द्वितीय भाग

दानदाताओं की सूची क ख
ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन का सूचीपत्र ग घ ङ
,, ,, कतिपय सहायक ग्रन्थों का विवरण ङ च
सम्पादकीय १
ऋषि दयानन्द के स्वरचित ग्रन्थों के विषय में विवरण-संग्रह १३
ऋ० द० के ग्रन्थों के लेखकों के विषय में उन की सम्मति १८
कतिपय आवश्यक विषयों पर ऋषि दयानन्द का लेख १९
नाम-सूची-उन महानुभावों को जिन्हें पत्र-तार आदि भेजे गये २२

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन

संवत् १९३८ के पत्र और विज्ञापन आदि [४४८-५०९] ४९३
संवत् १९३९ ,, ,, ,, [५१०-६४७] ५४३
संवत् १९४० ,, ,, ,, [६४८-८०८] ६७६

प्रथम परिशिष्ट

१—पूर्व मुद्रित पत्र-विज्ञापनों के अनन्तर उपलब्ध पत्र-विज्ञापन आदि [८०९-८७३] ८१२
२—पूर्ण संख्या ६९ (पृष्ठ १२४) पत्र पत्र-सूचना रूप में निर्दिष्ट पत्र की उपलब्धि ८५३
३—पूर्व मुद्रित (पूर्ण संख्या १,२,२१) संस्कृत वा मराठी में छपे पत्र-विज्ञापनों का भाषानुवाद ८५६
पूर्ण संख्या २११ के पत्र का प्रतिलिप्यन्तर से शुद्धपाठ ८६०
४—भूल से अस्थान में छपे पत्रों के उचित स्थान का निर्देश ८६२

५—'आर्य सन्मार्ग-दर्शिनी सभा' कलकत्ता और स्वामी दयानन्द [उक्त सभा द्वारा किये गये आक्षेपों का विस्तृत उत्तर] ८६३
द्वितीय परिशिष्ट—मूल पाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियां ८६६
तृतीय परिशिष्ट—ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में निर्दिष्ट आवश्यक सामग्री का संकलन ६०८
बम्बई आर्यसमाज के २८ नियम और उनकी ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या ६०८
विविध विषयक पत्र विज्ञापन आदि का संकलन ६१८
ब्र० रामानन्द का ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य की हस्तलिखित प्रतियों का स्थिति-निदर्शक महत्त्वपूर्ण पत्र ६४०
चतुर्थ परिशिष्ट—आर्यसमाज-स्थापना की वास्तविक तिथि ६४३
पञ्चम परिशिष्ट—आर्यभाषा (हिन्दी) के राजकार्यों में प्रचलित करने के लिये ऋ० द० की प्रेरणा से भेजे गये मेमोरियलों के २ नमूने ६६०
षष्ठ परिशिष्ट—ऋषि दयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन
सप्तम परिशिष्ट—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय ६८२
अष्टम परिशिष्ट—अम्बहटा निवासी मुंशी चण्डीप्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्द के उत्तर ६६५
नवम परिशिष्ट—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत वचनों की सूची १००१
दशम परिशिष्ट—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम १००५
एकादश परिशिष्ट- ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत ग्रन्थों के नाम १०२१
द्वादश परिशिष्ट—ऋ० द० के मूल पत्र वा विज्ञापन जहां सुरक्षित थे अथवा जहां से लिये गये १०२६
संशोधन-पत्र— १०३०

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के सम्पादन में

कतिपय सहायक ग्रन्थों का विवरण

१—**ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार** (भाग १)—सम्पादक महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) वि० सं० १९६६ ।

२–**ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (भाग २)**–सं० पं० चमूपति। वि० सं० १९९२।

३–**ऋषि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र**–लेखक पं० लेखराम। उर्दू।

४–**ऋषि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र**–ले० पं० लेखराम हिन्दी संस्करण। प्रकाशक—आर्यसमाज, नया बांस, देहली। वि० सं० २०२८ (प्रथम वार)।

५–**ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र**–श्री पं० देवेन्द्रनाथ सं० पं० घासीराम। प्रकाशक—आर्यसाहित्य मण्डल, अजमेर। प्रथम द्वितीय भाग वि० सं० १९९० (प्रथमावृत्ति)। दोनों भागों की पृष्ठ संख्या क्रमिक होने से अनेक स्थानों पर भाग का निर्देश नहीं किया है।

६–**आर्य धर्मेन्द्र जीवन**––ले० बा० रामविलास शारदा, अजमेर। तृतीयावृत्ति।

७–**कल्याणमार्ग का पथिक**––ले० स्वा० श्रद्धानन्द। प्रकाशक–ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी। वि० सं० १९८१।

८–**दानापुर में ऋषि दयानन्द का पदार्पण और प्रभाव**—ले० पं० विशुमित्र शास्त्री, दानापुर। सन् १९७८।

९–**पूना-प्रवचन**––सं० युधिष्ठिर मीमांसक। प्रकाशक–ऋषि देवी रूपलाल कपूर पब्लिक ट्रस्ट, बहालगढ़। प्रथम संस्करण, वि० सं० २०२६।

१०–**फर्रुखाबाद का इतिहास**––ले० गोपाल राव हरि। प्रकाशक––आर्यसमाज फर्रुखाबाद।

११–**मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास**—लेखक–दामोदर सुन्दरदास बम्बई। वि० सं० १९८९।

१२–**श्री आर्यसमाजना नियमो**—सं० १९३२ में छपी।

१३–**मुम्बई आर्यसमाजनी कार्यवाही**—सं० १९५४ में छपी।

१४–**मुम्बई आर्यसमाजनी कार्यवाही**—सं० १९४५ में छपी।

१५–**सत्यार्थप्रकाश**—ले० स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकाशक–राजा जयकृष्णदास। प्रथम संस्करण, सन् १८७५, काशी।

१६–**सत्यार्थप्रकाश**–ले० स्वामी दयानन्द सरस्वती। प्रकाशक—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़। द्वितीय संस्करण, वि० सं० २०३२।

सम्पादकीय

‘ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन’ के वर्तमान परिवर्धित तथा परिष्कृत तृतीय संस्करण का प्रथम भाग गत वर्ष प्रकाशित हो चुका हैं। अब यह द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। इस द्वितीय भाग के साथ ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों का यह संग्रह १२ बारह परिशिष्टों के सहित पूर्ण हो रहा है। इस के तृतीय भाग, में ऋषि दयानन्द के प्रति लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह होगा। यह भाग भी अगले वर्ष यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित होगा। तृतीय भाग की पाण्डुलिपि तैयार है, उसे शोध कर प्रेस कापी बनाने का कार्य शेष है।

प्रथम भाग में संवत् १९२६ से संवत् १९३७ तक के पत्र एवं विज्ञापन छपे थे। इस भाग में सं० १९३८, १९३९, १९४० के पत्रों और विज्ञापनों को संगृहीत किया गया है। इस के अन्त में १२ विशिष्ट परिशिष्ट, जिन का ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा विज्ञापनों से साक्षात् सम्बन्ध हैं, दिये गये हैं। इनमें कुछ परिशिष्ट द्वितीय संस्करण के समान ही हैं[1], तथापि—

प्रथम परिशिष्ट में पत्रों और विज्ञापनों के छप जाने के पश्चात् जो पत्र पत्रांश पत्र-सूचना तथा विज्ञापन विज्ञापनांश विज्ञापन-सूचना, तार-पारसल-सूचना और प्रश्नोतर संगृहीत हुए, उन का संग्रह किया गया है। पूर्व संस्करण के प्रथम परिशिष्ट के अंश यथा स्थान जोड़ दिये गये, परन्तु कुछ अंश भूल से रह गये। उन्हें भी हमने इसी परिशिष्ट में दे दिया है। श्री पं० लेखराम जी कृत जीवनचरित में सहारनपुर के प्रसङ्ग में, एक पौराणिक विद्वान् द्वारा किये गये प्रश्नों के जो उत्तर ऋषि दयानन्द ने दिये थे, वे प्रश्नोत्तर रूप में छपे हैं। यह अंश प्रथम परिशिष्ट के छप जाने

---

१. पूर्व प्रकाशित द्वितीय संस्करण में पत्र और विज्ञापनों के संग्रह के साथ मुद्रित प्रथम परिशिष्ट, जिसमें पत्र और विज्ञापनों के मुद्रण के पश्चात् उपलब्ध पत्र विज्ञापन तथा उनके सारांश वा सूचना आदि का संग्रह किया गया था, छपा था। अन्य परिशिष्ट २-८ तक पृथक् परिशिष्ट रूप में छापे गये थे।

के पश्चात् हमारी दृष्टि में आया। अतः इसे हमने अष्टम परिशिष्ट में 'प्रथम परिशिष्ट के अवशेष' के रूप में दे दिया है।

द्वितीय परिशिष्ट में ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों के छप जाने पर जो विशिष्ट टिप्पणियाँ देनी आवश्यक समझीं उन का संग्रह है। यह परिशिष्ट यद्यपि पूर्व संस्करण के समान ही है तथापि पूर्व संस्करण के इस परिशिष्ट में दी गई टिप्पणियां इस संस्करण में यथास्थान जोड़ दी गईं। ये टिप्पणियां उन से भिन्न तथा नवीन हैं।

तृतीय परिशिष्ट का कुछ भाग पूर्व संस्करण वाला ही है, परन्तु इस में पर्याप्त नई सामग्री संकलित की गई है, जो पूर्व संस्करण में संकलित नहीं थी।

अपूर्व उपलब्धि—तृतीय परिशिष्ट के आरम्भ में आर्यसमाज बम्बई के आरम्भ में बनाये गये २८ नियमों को **ऋषि दयानन्द विरचित व्याख्या के साथ छापा है**। ऋषि दयानन्द ने पूर्ण संख्या २३, पृष्ठ ५८ पं० २–३ में लिखा है—**आर्यसमाज के नियम और उनकी व्याख्या पुस्तक छपता है**। यह व्याख्या पुस्तक की अचानक उपलब्धि हो गई। ये नियम और उन की व्याख्या श्री दामोदरदास सुन्दरदास विरचित सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' में पृष्ठ १०–२१ तक छपे हैं (विशेष पृष्ठ ९०८,९०९ पर छपी टिप्पणी में देखें)।

उक्त व्याख्या के ऋषि दयानन्द कृत होने में अन्तरङ्ग साक्षी—बम्बई आर्य समाज के २८ नियमों की व्याख्या ऋषि दयानन्द कृत हैं, इसे वह व्यक्ति भली प्रकार जान सकता है जो ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक भाषा-शैली से परिचित है। परन्तु हम यहां दो ऐसे अन्तरङ्ग प्रमाण उपस्थित करते हैं जिन से इस व्याख्या के ऋषि दयानन्द कृत होने को पुष्टि होती है। **प्रथम**—१७वें नियम के व्याख्यान के आरम्भ में महाभाष्य की **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** परिभाषा को उद्धृत तथा उस की व्याख्या करके उक्त नियम का तात्पर्य समझाया गया है। इस महाभाष्यस्थ परिभाषा का निर्देश ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त और कोई नियम-व्याख्याता नहीं कर सकता। **द्वितीय**—नियम १५ की व्याख्या में पुंसवन संस्कार का प्रयोजन 'वीर्यरक्षोपाय' लिखा हैं। पुंसवन को यह प्रयोजन दयानन्द ने ही अपने ग्रन्थों में लिखा है।[1] अन्य सभी आचार्य पुंसवन संस्कार का प्रयोजन पुमान् पुत्र की उत्पत्ति

---

[1] द्वितीय तृतीय वा चतुर्थ मास में पुंसवन करना। पुरुषत्व का अर्थात् वीर्य

मानते हैं। अर्थात् उन के मत में यह संस्कार 'पुत्र ही उत्पन्न होवे पुत्री उत्पन्न न होवे' इस के लिये किया जाता है। ऋषि दयानन्द संभवतः स्वायम्भुव मनु[1] के पश्चात् प्रथम व्यक्ति हैं जो पुत्र और पुत्री में भेद स्वीकार नहीं करते।

चतुर्थ परिशिष्ट—यह परिशिष्ट इस संस्करण में नया जोड़ा गया है। ऋषि दयानन्द ने पण्डित गोपालराव हरि देशमुख को चैत्र शुक्ला ५ शनिवार को जो पत्र लिखा था, उस में मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन आर्यसमाज के आरम्भ होने का उल्लेख किया है (द्र० प्रथम भाग पृष्ठ ५५)। यही स्थापना तिथि मुम्बई आर्यसमाज की प्रारम्भिक ११ मास की कार्यवाही. जो सं० १९३२ माहा (माघ) बद को प्रकाशित हुई थी, उसके आरम्भ में उल्लिखित है। ऋ० द० के सभी प्रमुख चरित-लेखकों ने भी इसी तिथि का निर्देश किया है। सन् १९३९ तक यही स्थापना तिथि मानी जाती रही। तत्पश्चात् मुम्बई आर्यसमाज में लगे एक शिलालेख के कारण इस विषय में विवाद उत्पन्न हुआ और सार्वदेशिक सभा ने शिलालेख के अनुसार चैत्र शुदि १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि के रूप में मान्यता दे दी। इस परिशिष्ट म इस सम्बन्ध में विचार किया है।

पञ्चम परिशिष्ट—यह परिशिष्ट पूर्व संस्करण के परिशिष्ट में चतुर्थ स्थान पर था। यह पूर्ववत् ही है।

षष्ठ परिशिष्ट—यह परिशिष्ट पूर्व संस्करण में पञ्चम स्थान पर था। यह इस संस्करण में भी पूर्ववत् छपा है।

सप्तम परिशिष्ट—यह परिशिष्ट पूर्व संस्करण में अष्टम स्थान पर था। इसमें नाममात्र का संशोधन हुआ।

का लाभ जिससे करके होय सो कहावे पुंसवन। संस्कारविधि प्रथम सं० (सं० १९३२) पृष्ठ १९। पुंसवन संस्कार…… ……दूसरे वा तीसरे महिने में……… करना चाहिये, जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे। संस्कार विधि, पृष्ठ ५८ (रा० ला० क० ट्र० शताब्दी संस्करण)। **पुंसवन**—इस संस्कार का प्रयोजन वीर्य को पुनः शरीर में किस प्रकार जमावें, इस योजना के संबन्ध से है। पूना-प्रवचन, सातवां प्रवचन, पृष्ठ ७८ (रा० ला० क० ट्रस्ट सं०)।

[1] यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। मनु० ९।१३०। तथा निरुक्त ३।४ में उद्धृत स्वायम्भुव मनु का मत।

अष्टम परिशिष्ट—इस परिशिष्ट में इस संस्करण में दिये गये प्रथम परिशिष्ट में छापने से रह गये प्रश्नोत्तरों को छापा है।

नवम परिशिष्ट—इसमें पत्र और विज्ञापनों में वेदादि ग्रन्थों के उद्धृत वचनों की सूची दी है।

दशम परिशिष्ट—पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत व्यक्ति विशेषों के नामों की सूची दी है। इन नामों में उन व्यक्तियों के नामों का उल्लेख नहीं है, जिन को पत्र लिखे गये। किस किस व्यक्ति को कौन सा पत्र लिखा गया, इस की सूची पृथक् आगे दी जा रही है।

एकादश परिशिष्ट—इस परिशिष्ट में पत्र और विज्ञापनों में निर्दिष्ट ग्रन्थों के नामों की सूची दी गई है।

द्वादश परिशिष्ट—प्रस्तुत पत्र और विज्ञापन के संग्रह में छपा कौन सा पत्र कहां सुरक्षित है, इसका निर्देश किया है। यद्यपि सर्वत्र प्रतिपत्र वा विज्ञापन के नीचे टिप्पणी में यथास्थान इस का निर्देश कर दिया है तथापि सुगमता से पत्र के मूल स्थान का परिज्ञान हो जावे, इस लिये यहां नाम-निर्देश पूर्वक उल्लेख किया है।

इस प्रकार **नवम दशम** एकादश और द्वादश परिशिष्ट सर्वथा नये हैं। चतुर्थ नये परिशिष्ट को मिला कर **इस संस्करण में ५ सर्वथा नये परिशिष्ट जोड़े हैं।**

पूर्व मुद्रित परिशिष्ट छोड़े—पूर्व संस्करण के समय छापे गये परिशिष्टों में से 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन और प्रतिगमन' तथा 'ऋषि दयानन्द के निर्वाण के समय उनके संग्रह में विद्यमान पुस्तकों की सूची' शीर्षक दो परिशिष्ट इस संस्करण में छोड़ दिये हैं। इन को छोड़ने के दो कारण हैं—प्रथम ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों के साथ इनका सीधा सम्बन्ध न होना और ग्रन्थ का अधिक बढ़ जाना। इन दोनों का सीधा सम्बन्ध ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित के साथ है। इसी प्रकार हमारे पास वि० सं० १९३१-१९४० तक की मास तिथि और वार के साथ अंग्रेजी सन् के मास और तारीख की तुलनात्मक सूची भी हैं। ऋ० द० के जीवन में कार्य के ये अन्तिम दस वर्ष ही महत्त्वपूर्ण है। अतः मैंने अपने कार्य के लिये इनकी तुलनात्मक सूची पुराने पञ्चाङ्गों से तैयार की थी। यह सूची ऋ० द० के जीवन-चरित तथा पत्र और विज्ञापनों में दी गई तिथि

वार तारीखों की शुद्धि के लिये महत्त्वपूर्ण साधन हैं।[1] अतः इन तीनों का मुद्रण हम **वेदवाणी के ३४ वें वर्ष के प्रथम अंक** (नवम्बर १९८१) के विशेषाङ्क के रूप में तथा पृथक् पुस्तक रूप में कर रहे हैं। जिन सज्जनों को इनकी आवश्यकता हो वे इन्हें पृथक् पुस्तक रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

ऋ० द० के सम्बन्ध में अनुसन्धान की आवश्यकता

यद्यपि अब बहुत काल बीत चुका है। इस बीच में पुरानी सामग्री लुप्त हो चुकी है[2], ऋ० द० और आर्यसमाज के इतिहास से परिचित व्यक्ति दिवंगत हो चुके हैं, तथापि हमारा विश्वास है कि अभी भी श्री पं० भगवद्दत्त जी और श्री मामराज जी सदृश ऋषि भक्त व्यक्ति अनुसन्धान के कार्य में जुट जायें तो कुछ न कुछ अलभ्य सामग्री कहीं न कहीं से प्राप्त हो सकती है। इस विश्वास का कारण यह है कि मुझे इस प्रकार की कुछ सामग्री उपलब्ध हुई है। बम्बई आर्य समाज के २८ नियमों की ऋषि दयानन्दकृत व्याख्या की उपलब्धि और अनेक पत्र विज्ञापनों की उपलब्धि इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

नई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

आर्य समाज काकड़वाड़ी बम्बई के स्वर्गीय विद्वान् प० ऋषिमित्र जी

---

[1] यद्यपि ऋ० द० के जीवन-चरित के शोधन के लिये वि० सं० १८८१ से वि० सं० १९३० तक के ५० वर्षों के तिथि वार और तारीखों के तुलनात्मक-पत्र भी अत्यन्त आवश्यक है तथापि हम उसे संगृहीत नहीं कर पाये। हां ऋ० द० के स्थानान्तर में गमन और प्रतिगमन की जो सूची (ऋ० द० कहां और कब) तैयार की है, उसमें तिथि वार और तारीखों का शुद्धीकरण पुराने पञ्चाङ्गों के अनुसार कर दिया है। अत: सं० १८८१ सं० १९३० तक की उक्त प्रकार की तुलनात्मक सूची की अब विशेष आवश्यकता नहीं रही है। फिर भी कोई आर्य विद्वान् ऋ० द० के समग्र जीवनकाल के पञ्चाङ्गों का प्रकाशन कर दे तो यह महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। हमारे मित्र जोधपुर निवासी श्री जगदीशसिंह जी गहलोत ने गत ४०० वर्षों का पञ्चाङ्ग तैयार किया था, पर वे अपने जीवन में उसे प्रकाशित नहीं कर पाये।

[2] देहरादून लखनऊ अजमेर प्रभृति बहुत सी पुरानी आर्यसमाजों के पुराने संग्रह कार्यकर्त्ताओं के प्रमाद से नष्ट हो चुके हैं। ऋ० द० के इन समाजों में जो पत्र सुरक्षित थे वे भी सब दीमकों द्वारा उदरसात् कर लिये गये हैं। ऐसी ही प्रायः अन्यत्र की भी अवस्था हो चुकी है।

को सन् १८६५–६६ में आर्यसमाज बम्बई के पुरानी रद्दी में सन् १८७८ से सन् १८८३ तक की साप्ताहिक सत्संग की कार्यवाही का संग्रह प्राप्त हुआ था। सन् १८८२ के पूर्वार्ध में ऋषि दयानन्द बम्बई में लगभग ६ मास रहे। उन महिनों में आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में ऋषि दयानन्द के जो व्याख्यान हुए, उन के कहीं विषय का और कहीं सारांश का लेखन इसमें मिलता है। इसकी सूचना श्री पं० ऋषिमित्र जी ने मुझे दी थी। कुछ समय तक मेरा बम्बई जाना न हुआ और इसी बीच में श्री पण्डित जी का स्वर्गवास हो गया। उस कार्यवाही को देखने की लालसा बनी रही। अनेक बार यह भी मन में शङ्का हुई कि श्री माननीय पण्डित जी के साथ ही वह कार्यवाही भी कहीं समाप्त न हो गई हो।

मैं इसी वर्ष जनवरी में ३ दिन तक काकड़वाड़ी आर्यसमाज में ठहरा। आर्यसमाज के वेदोपदेशक श्री पं० दयाशंकर जी मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। उन से इस विषय में चर्चा की तो उन्होंने मुझे बताया कि यह कार्यवाही सुरक्षित है। उन के प्रयत्न और आर्यसमाज के माननीय मन्त्री जी को कृपा से मुझे उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री पं० दयाशङ्कर जी ने उसके कुछ अंश सुनाए। यह कार्यवाही गुजराती भाषा में है और लिपि के कुछ अक्षर भी प्राचीन रूप के हैं।

मैंने श्री माननीय मन्त्री जी से अनुरोध किया कि मुझे उतने अंश की प्रतिलिपि या फोटोस्टेट कापी करा देवें, जितने भाग में ऋषि दयानन्द के उपदेशों का सारांश संगृहीत है। उन्होंने इस प्रार्थना को स्वीकार किया। बीच बीच में श्री पं० दयाशंकर जी के माध्यम से उन्हें स्मरण दिलाता रहा।

श्री माननीय मन्त्री जी ने इस कार्यवाही की उपयोगिता को समझ कर इस पूरी कार्यवाही की फोटोस्टेट कापी करा ली। उन के इस सत्प्रयत्न से यह महत्त्वपूर्ण सामग्री अब ५०–६० वर्षों के लिये सुरक्षित हो गई। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये श्रीमाननीय मन्त्री जी का जितना धन्यवाद किया जाये उतना न्यून होगा। मैं जुलाई मास में बम्बई गया था। श्री पं० दयाशंकर जी से सम्पर्क जोड़ने पर २० जुलाई को उन्होंने दूरभाष से सूचना दी कि उक्त सम्पूर्ण कार्यवाही की फोटोस्टेट कापी करा ली है और आप को कुछ समय के लिये देना श्री माननीय मन्त्री जी ने स्वीकार कर लिया है। रात को ९ बजे आकर कार्यवाही की फोटोस्टेट कापी प्राप्त

कर लें। मैं नियत समय पर काकड़वाड़ी आर्यसमाज में गया और श्रीमाननीय मन्त्री जी ने मुझे उक्त फोटोस्टेट कापी कुछ समय के लिये दे दी।

मुझे गुजराती भाषा का साधारण ज्ञान है और फोटोस्टेट कापी अनेक स्थलों पर अत्यन्त अस्पष्ट है। अतः पढ़ने में बहुत असुविधा हुई फिर भी इस समय तक जितना उसे पढ़ा है, समझा है, उसके आधार पर कह सकता हूं कि इस कार्यवाही का उतना अंश जितने में ऋ० द० के व्याख्यानों का सारांश दिया है, उसे यदि **बम्बई-प्रवचन** के नाम से छाप दिया जाये तो यह **पूना-प्रवचन** के समान ही महत्त्वपूर्ण कार्य होगा।

ऋषि दयानन्द की दीर्घ-दृष्टि

ऋ० द० के जीवन-चरितों, उनके ग्रन्थों, पत्र और विज्ञापनों से ऋषि दयानन्द की दीर्घदृष्टि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसा ही एक प्रसङ्ग हम यहां उपस्थित कर रहे हैं। बम्बई आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व की एक घटना 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' ग्रन्थ में पृष्ठ ८ पर उल्लिखित है—

'.........त्यार बाद (शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराभव के पश्चात्) एमना निवास स्थान मा एमने माटे मान धरावता मुम्बई ना सम्भावित गृहस्थो ए जाई ने धार्मिक चर्चा करता करतां मुम्बई माँ आर्यसमाज स्थापन करवानी स्वामीजी ने 'विनंत्ति करी। त्यारे एमणे सर्वने उद्देशी ने स्पष्ट जणावी दीधुं के' (उसके बाद [शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराजय के पश्चात्] इनके निवासस्थान पर इनके प्रति संमान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामी जी से प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सब को उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि)—

"भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं मैं तो वेद के अधीन हुं और हमारे भारत में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई कई बात में किसी किसी में कुच्छ कुच्छ भेद है, सो विचार करने से आप ही छूट जायगा। मैं संन्यासी हुं और मेरा कर्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हुं इसके बदले जो सत्य समझता हूं उसका निर्भयता से उपदेश करता हुं। मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हुं। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा नींदा करे, मैं अपना कर्तव्य समझ के धर्मबोध कराता हुँ, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है[1]।

---

[1] ऋषि दयानन्द का उक्त कथन 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' में आर्य भाषा और नागरीलिपि में ही छपा है। भाषा ऋ० द० की अपनी है।

त्यारे एक भाइ ए कह्यु के, अमे जो समाज स्थापन करीए, तो एमां कोई सार्वजनिक नुकसान छे ? ते नो जवाब स्वामी जीए दीधो के—(एक भाई ने कहा कि हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें कोई सार्वजनिक नुकसान है ? इसका जबाब स्वामी जी ने दिया कि)—

"आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज करलो इसमें मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हुँ वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। **और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हुं। इस से यदि कोई मेरी भी गलती आगे पाइ जाय युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा, और इसी प्रकार से बाबावाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह भी एक मत बढ़ेगा।** मेरा अभिप्राय तो है की ईस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मत मतांतर प्रचलित हैं वो भी वे सब वेदों को मानते हे, ईस से वेद शास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और धम ऐक्यता से संसारीक और व्यवहारीक सुधारणा होगी ओर ईस से कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधारा होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्मबल से अर्थ काम ओर मोक्ष मील सकता है।"[१]

ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने आर्यसमाज-स्थापना की स्वीकृति बहुत झिझकते हुए दी थी। मत-मतान्तरों का जो इतिहास उनके सामने था, उसको ध्यान में रखते हुए उन्हें यह आशङ्का होती थी कि कहीं आर्यसमाज भी मेरे पीछे मेरे नाम पर एक सम्प्रदाय न बन जावे। यह बात उपर्युक्त उद्धरण के मोटे टाइप में छापे गये अंश से स्पष्ट है।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की नींव वेद पर रखी थी, अपने ग्रन्थों वा उपदेशों पर आर्यसमाज की स्थापना नहीं की थी। परन्तु जब से मैंने होश सम्भाला है, यह देख रहा हूं कि आर्यसमाज के विद्वान् वेद को पीछे

---

[१] यह अंश भी पूर्ववत् आर्य भाषा वा देवनागरी लिपि में छपा है।

रख कर दयानन्द के ग्रन्थों का ही प्रामाण्य प्रथम कोटि में स्वीकार करते रहे हैं। आपस में मतभेद होने पर प्रतिपक्षी के वचन वा सिद्धान्त को वेद-विरुद्ध न कह कर दयानन्द वा उनके ग्रन्थों के विरुद्ध बता कर उनका तिरस्कार करते रहे हैं। यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती गई। आज स्थिति यह है कि परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में 'छापे की भी अशुद्धि नहीं है' ऐसा ताल ठोक कर कहने वाले ही दयानन्द के भक्त और आर्यसमाज के हितैषी समझे जाते हैं। हमारी यही गति रही तो क्या निकट भविष्य में ऋषि दयानन्द की आशङ्का चरितार्थ होकर नहीं रहेगी ? यह आर्यसमाज के जीवन-मरण का प्रश्न है। आर्यसमाज के विद्वानों, नेताओं और स्वाध्याय-शील पाठकों को इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। अन्यथा वह दिन दूर नहीं, जब आर्यसमाज भी एक मत बन जाये।

इस के साथ ही मैं उन आर्य बन्धुओं से, जो वेदादि सच्छास्त्रों का और ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन तथा मनन न कर के ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में यत्र तत्र भूलें निकालते हैं, स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टि में इस धरातल पर मनुस्मृति के प्रवक्ता स्वायम्भुव मनु के पश्चात् यदि कोई ऐसा तत्त्ववेत्ता हुआ है, जिस के मन्तव्यों पर देश काल का कोई विशेष प्रभाव नहीं था, तो वह एकमात्र दयानन्द सरस्वती ही हैं। वे अपनी बात सीधी वेद के आधार पर कहते हैं। वेद के पश्चात् उन्होंने अपने ग्रन्थ में सब से अधिकतर महत्त्व दिया है तो मनुस्मृति को दिया है। अतः दयानन्द को समझने के लिये हमें न्यूनातिन्यून मनुस्मृति के प्रवचनकाल की स्थिति में बैठ कर उनके लेखों पर विचार करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द ने किन विषम परिस्थितियों में तथा अत्यन्त व्यस्त जीवन में अपने ग्रन्थों की रचना की, इसे भी हमें आंखों से ओझल नहीं करना चाहिये। ऋषि दयानन्द को लेखन मुद्रण आदि कार्यों में कैसे साधारण जनों से सहयोग लेना पड़ा, यह ऋषि दयानन्द के प्रस्तुत पत्र-व्यवहार से सूर्य की भांति विस्पष्ट है[1]। ऐसी अवस्था में लेखन और मुद्रण में साधारण भूलों का होना स्वाभाविक है। ऋषि दयानन्द को सारे जीवन में एकमात्र

---

[1] इसके लिये आगे मुद्रित होने वाले 'ऋषि दयानन्द के स्वरचित ग्रन्थ-विषयक विवरण-संग्रह' में (पृष्ठ १८) पर पं० भीमसेन और पं० ज्वालाप्रसाद आदि के विषय में दिये गये उद्धरण द्रष्टव्य हैं।

मुंशी समर्थदान ही ऐसा व्यक्ति मिला, जो ऋषि का पूर्ण भक्त ईमानदार और ऋषि दयानन्द के कार्य की महत्ता को समझने वाला था। उसके समय में ऋषि के जो ग्रन्थ छपे, उन में उस ने बड़ी सतर्कता बरती। उसके समय में ऐसे भी प्रसङ्ग आये, जब उसने ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य आदि में कुछ अस्पष्टता का अनुभव करके तथा ऋषि के लेख का कोई अन्यथा अभिप्राय न ले लेवे, इस दृष्टि से ऋषि के द्वारा छपने को भेजे गये वेद-भाष्यादि के अंशों को वापस लौटाकर स्पष्ट करने का अनुरोध किया। द्रष्टव्य पत्र-विज्ञापन भाग २, पूर्ण संख्या ६३८ पत्र के पृष्ठ ६६६ का ८वां सन्दर्भ (पैराग्राफ)। इसी प्रकार के अन्य भी कई उदाहरण हैं।

ऋषि दयानन्द के लेखों को समझने के लिये यह भी ध्यान में रखना अत्यावश्यक है कि ऋषि दयानन्द की लेखन शैली पर महर्षि पतञ्जलि कृत महाभाष्य का अत्यधिक प्रभाव था। अतः जैसे महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में अनेक स्थानों पर प्रौढिवाद (ज़बरदस्ती से समाधान किये हैं, उसी प्रकार ऋषि के ग्रन्थों में भी कुछ स्थलों में प्रौढिवाद का आश्रयण लिया गया है। इस प्रकार के समाधान सामयिक होते हैं, सिद्धान्त नहीं माने जाते। प्रौढ़िवाद के आश्रय को ऋषि दयानन्द अवस्था-विशेष में स्वीकार करना अनुचित भी नहीं समझते थे। यह उनके शङ्कराचार्य के विषय में लिखे गये **'जो (शङ्कराचार्य ने) जैनियों के खण्डन के लिये उस (अद्वैत) मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है'** शब्द ध्यान देने योग्य हैं। इस दृष्टि से ऋषि दयानन्द का कौन सा लेख सिद्धान्तयुक्त है और कौन सा प्रौढिवाद से लिखा गया है। इसका भेद करना भी आवश्यक है। अन्यथा भूल से प्रौढिवाद से दिये गये समाधान को सिद्धान्त मान लेने पर कई स्थानों में वेदादि सच्छास्त्रों से विरोध होगा।

ऋ० द० के ग्रन्थों पर विचार का सुगम मार्ग

ऋषि दयानन्द ने सभी ग्रन्थ वेदादि सत्यशास्त्रों के आधार पर लिखे हैं। उनका अपना कोई स्वतन्त्र मन्तव्य नहीं था। यह उन्होंने बहुत्र उद्घोषित किया है। अतः यदि उनके किसी लेख पर सन्देह होवे वा उसमें भूल प्रतीत होवे तो उसके लिये प्रथम हमें यह प्रयत्न करना चाहिये कि जिस विषय में सन्देह वा भूल प्रतीत होती है, उस विषय को उनके ही अन्य ग्रन्थों में अन्यत्र ढूंढना चाहिये।[1] क्योंकि बहुत से विषयों का प्रति-

---

[1] ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में दो एक स्थल ऐसे भी हैं जिनका एक स्थान पर

पादन उन्होंने अपने अन्य ग्रन्थों में भी किया है। इस प्रकार प्रयत्न करने से बहुत से सन्देह स्वयं दूर हो सकते हैं। और वह विषय यदि उनके ग्रन्थों में कहीं अन्यत्र न आया हो तो उन प्राचीन आर्ष ग्रन्थों को देखना चाहिये, जिनके आधार पर वह विषय लिखा गया है। ऐसा करने पर प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का जो मत विदित होवे, उसे ही ऋषि दयानन्द का मत समझना चाहिये। यदि इस प्रकार हम किसी भी विवादास्पद विषय पर विचार करें तो सभी शङ्काएं सरलता से अल्प काल में सुलझाई जा सकती हैं। प्राचीन वेदादि सच्छास्त्रों का आश्रयण न करके यदि हम केवल ऋषि दयानन्द के शब्दों की बाल की खाल ही निकालते रहें तो कभी भी विवाद हल नहीं होंगे। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी बात दयानन्द पर लादने का प्रयत्न करेगा।

ऋ० द० के चित्र और पत्रों की प्रतिकृतियां

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों के पूर्व जो दो संस्करण हमने छापे थे। उनमें एक ब्र० रामानन्द के साथ खींचा गया ऋ० द० का चित्र तथा ४-५ पत्रों की प्रतिकृतियां (फोटो) छापी थीं। इस संस्करण में हम केवल एक चित्र ऋ० द० का दे रहे हैं। ऋषि दयानन्द के ५-६ असली चित्र और १० पत्रों को प्रतिकृति अलग से छपवाने का विचार है। इसके दो कारण हैं। एक—द्वितीय भाग का अनुमानित आकार से अत्यधिक बढ़ जाना और दूसरा ब्लाक बनवाने और आर्ट पेपर पर छपवाने में अत्यधिक व्यय का होना। हां, हम यह प्रयास करेंगे कि पत्र और विज्ञापनों के ग्राहकों को यह संग्रह लागत मूल्य में दे सकें।

चित्रों और प्रतिकृतियों को इस संग्रह में न देने का एक कारण यह भी है कि हमें अभी एक दो असली चित्रों और कुछ मूल पत्रों की प्राप्ति की आशा है। इसके लिये हम बराबर प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी प्रतिकृतियों का भी सन्निवेश हम इसी संग्रह में करना चाहते हैं।

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों के सम्बन्ध में जो जो नई सामग्री द्वितीय भाग के छपने तक उपलब्ध हुई है, उसे यथास्थान सन्निविष्ट करने

विस्तार से निर्देश है और अन्यत्र पूर्वलिखित विषय का सामान्यरूप से निर्देश किया है यथा सृष्टि-संवत् का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विस्तार से वर्णन करके अन्त में जो वर्ष संख्या लिखी है उस वर्ष संख्या का ही मेला चान्दापुर आदि में निर्देश मिलता हैं। ऐसे पुनरुक्त स्थल मूल में विवादग्रस्त होने से निर्णय में सहायक नहीं होते।

से द्वितीय भाग का आकार पूर्व सम्भावित आकार से लगभग सवाया हो गया है। इसी प्रकार तृतीय भाग का आकार भी छपने तक बढ़ने का संभावना है, क्योंकि नई नई सामग्री उपलब्ध हो रही है। इस प्रकार ग्रन्थ के आकार के बढ़ने से तथा मंहगाई के उत्तरोत्तर बढ़ने से इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय पूर्व चिन्तित व्यय से भी पर्याप्त अधिक हो जायगा पुनरपि हम इसका मूल्य पूर्व जो निर्धारित कर चुके हैं उतना ही रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। जिससे पाठकों को इस ग्रन्थ को खरीदने में सुभीता होवे।

धन्यवाद

ऋ०द० के पत्र और विज्ञापन के इस परिवर्धित और परिष्कृत संस्करण को तैयार करने और प्रकाशित करने में जिन जिन महानुभावों ने हमें सहयोग दिया है, उन सब का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। विशेष करके मेरी प्रार्थना पर जिस वैदिक-धर्म-प्रेमियों और ऋषिभक्त जनों ने इस संस्करण के छापने में रामलाल कपूर ट्रस्ट की आर्थिक सहायता की है, उन सभी का रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से भी धन्यवाद करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। यदि इन महानुभावों की ओर से हमें आर्थिक सहयोग न मिलता तो इस अत्यन्त मंहगाई के काल में इस महाग्रन्थ को छापने में ट्रस्ट कभी समर्थ नहीं होता, यह वास्तविक स्थिति है। मैं आशा करता हूं कि आगे भी आप महानुभाव इसी प्रकार समय समय पर ट्रस्ट की सहायता करते रहेंगे।

पूज्य गुरुवर श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के स्वर्गवास के पश्चात् विगत सत्रह वर्षों के अल्प काल में साधन-विहीन रा० ला० कपूर ट्रस्ट ने वैदिक आर्ष ग्रन्थों और ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को प्रकाशित करने का जो महान् प्रयत्न किया है, वह वैदिक धर्मप्रेमी ऋषि-भक्त आर्य महानुभावों के द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से ही सम्भव हुआ है।

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के प्रथम भाग के मुद्रण तक जिन महानुभावों ने इस महान् कार्य में आर्थिक सहायता की थी, उनके नाम धन्यवाद पूर्वक प्रथम भाग के आरम्भ में प्रकाशित कर चुके हैं। उसके पीछे इस द्वितीय भाग के प्रकाशन तक जिन जिन महानुभावों ने आर्थिक सहायता की है, उनके नाम धन्यवाद पूर्वक इस भाग के आरम्भ में दे दिये हैं।

रामलाल कपूर ट्रस्ट — **युधिष्ठिर मीमांसक**
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) — सं० २०३८, श्रावण शुक्ला १५

15.1,67.2:2
71336
71336

ऋषि दयानन्द के स्वरचित ग्रन्थों

के विषय में

विवरण-संग्रह

अनुभ्रमोच्छेदन—तैयार हो गया है, ज्वालादत्त के नाम से छपेगा ४२६, १७-१८[1] (भीमसेन के नाम से छपा)। छप चुका है ४९३,११

अष्टाध्यायीभाष्य—बनाने और छपवाने की इच्छा है १४२,११-१३ । १००० ग्राहक होने पर छपेगा १५६,११। तैयार होने लगा है १८१,९ । आरम्भ हो गया है २०१,१ । चार अध्याय अभी तैयार हुए हैं २५९,१४;२६०, १६ । शीघ्र छपने वाला है ३१६,३ ।।

आत्मचरित—३६, ६–१७ । देवनागरी और अंग्रेजी में करवा कर भेजेंगे २८७, १३-१४ । थोड़ा सा लिखकर भेजते हैं २८८,७ । उनका समाचार (पत्रों) में छापने का समय आ गया है २८८,८ । **असंभव** बातें नहीं लिखीं २९३,१८-१९ । यही एक काम होता तो लिखवाकर भिजवा देते ३०२,१२-१३ ।।

आर्यसमाज बम्बई के २८ नियमों की व्याख्या—आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है[2] ५८,२-३।।

आर्याभिविनय—बनने के तैयारी है ५२,१८ । २ अध्याय बन गये ४ आगे बनने हैं ५८,१ ।।

आर्योद्देश्यरत्नमाला—आजकल में तैयार हो जाएगा ११०,४-५।।

कुरान हिन्दी—पूरा तैयार है, छापा नहीं गया २५९,११-१२;२६०,१४-१५ । जितना शोधा जाय भेजदें ३२०,९।।

---

[1] यहां प्रथम संख्या पृष्ठ की है, दूसरी पंक्ति की । जहां एक ही संख्या है वह पृष्ठ की है ।

[2] आर्य समाज के २८ नियम और उनकी व्याख्या तृतीय परिशिष्ट में पृष्ठ ९०८–९१८ तक देखें । यह व्याख्या ऋ० द० कृत है । द्र० सम्पादकीय वक्तव्य (भाग २) पृष्ठ २ ।

गोकरुणानिधि—छप गई ४६३,११। अंग्रेजी अनुवाद के विषय में—शीघ्र भेजें ४८५,११। विलम्ब क्यों हुआ ५०९,३। समय निकालना चाहिये ५२२,७। बम्बई में और लोगों से [अंग्रेजी] बनवानी पड़ी ५६१,२॥

गौतम अहल्या की कथा—६१०,२। (संक्षेप में पृ० ७४)॥

जालन्धर की बहस—५६६,१६॥

पञ्चमहायज्ञविधि—(संध्याभाष्य) प्रथम सं० तैयार होने को चहै है ५२, १९-२०। छपवाया गया है ५७,१॥

पञ्चमहायज्ञविधि—द्वितीय संस्करण—यह संस्करण संशोधित और परिवर्धित है १२७,१२;१२८,२॥ तैयार हो गई है १२८,१९-२०;१२९,१३॥

पोपलीला—५६६,१४। एक पुस्तक भेजा है ५८१,१०॥

प्रतिमापूजन-विचार—(विज्ञापन रूप में) ९॥

प्रश्नोत्तर-हलधर—१४५ १६ मूल्य –)

प्रश्नोत्तर-उदयपुर—मौलवी से, लिखे जाने हैं ६१५ १५॥

प्रश्नोत्तरी (जगन्नाथ कृत) का उत्तर—भेज चुके ५७५,७-८। विस्तार से लिख के भेजते हैं ५०७,१५। प्रश्नोत्तरी समीक्षा-पत्र ५८८ (टिप्पणी देखो ५८८ टि० ३)॥

भ्रमोच्छेदन—जब तक प्रकाशित न हो किसी को न दिखाना ३३८,२७-२८। शिवप्रसाद का खण्डन तैयार कर लिया है ३३६,७। २४ जून को भेजा था ३४४,१३। आठ दिन में छप सकता था ३४५,२६। कहां कहां भेजना ३३८,२८—३३९,३। जहां तहां पहुँचा वा नहीं ३४३,५॥

मेला चांदपुर—उर्दू में—१२-४-१८७८ से पूर्व छपा था १४५,१५। उर्दू हिन्दी में अलग अलग क्यों नहीं छापा? ३७७,१५-१६। उर्दू हिन्दी में सम्मिलित सितम्बर १८८० में छपा था॥

वेद-भाष्य—के लिये शेयर बेचना ६०,१०। आरम्भ भाद्र शु० १ सं० १९३३ से हुआ ६७,७-८। अपूर्वता का विज्ञापन ६७। भाद्र शु० सं० १९३३ से मार्ग० शु० १५ (३॥ मास में) दस हज़ार श्लोक प्रमाण बना ६९,१२-१४। दो तीन घण्टे में २४ गायत्री या १२ त्रिष्टुप् या १० जगती छन्दवाले मन्त्रों का भाष्य बनता है ६८७,७-८॥ मैक्समूलर और मोनियर विलियम वेदभाष्य के ग्राहक, दोनों से मूल्य भिजवा देना २७७,८-९॥

अंग्रेजी अनुवाद के विषय में—२७२;२७५॥

अशुद्ध-मुद्रण - अशुद्ध न छपे ३८९,१५। भाषा बहुत कांट छांट रक्खी है २६४, ११। नमूने के तौर पर लिखकर भेजते हैं ४५९,३;४७८,१७। पद छूटना

भाषा बनाने और शुद्ध लिखनेवाले की भूल है ६१२,७। पद की गणना राज्ञानन्द और दूसरे पण्डित से गिनाये थे, कोई पद रह गया होगा ६६७,१३। (भीमसेन ने) कई के अर्थ छोड़ दिये, कई पद अन्वय में छोड़ दिये, कई आगे पीछे कर दिये ६६८,२४-२५। ज्वालादत्त पोपलीला न घुमेड़ दे ७२६,२२। ज्वालादत्त नई (संस्कृत से भिन्न) भाषा बनाता है, गोलमाल देवता शब्द रख दिया ७२९,१५-२१। पदार्थ कुछ और है और भाषा कुछ और ही बनाई गई आदि ७६६,१२-१३॥

नमूने का अंक—शीघ्र निकलेगा ६५,११; २६,१२। पौष वदी ४ सं० १९३९ तक छप गया था ७७,९।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—नवम्बर सन् १८७६ के मध्य तक बन गई थी (टि०) ७६,३०। संस्कृत और हिन्दी मिलाकर ८ हज़ार श्लोक प्रमाण है ७६,२५। लगभग (छपाई) समाप्ति को आ रही है ११२,१५; ११३,६॥

ऋग्वेदभाष्य—माघ वदि १३ गुरु १९३४ तक १० सूक्त तक बना १२८,३-४। ८६ सूक्त ६ मंत्र से आगे १११ [सूक्त] मन्त्र तक भेजते हैं ४७६,७-८। छठा मण्डल पूरा हो गया ७६७,११। बाकी १ वर्ष में पूरा हो जायगा ७६७,१२॥

यजुर्वेदभाष्य माघ वदी १३ गुरु १९३४ तक १ अध्याय बन गया १२८,३-४। सातवां अध्याय बनता है ४००,२३। ७वें अध्याय के २३वें मन्त्र का भाष्य हो रहा है ४०८,४-५। ८वां अध्याय पूरा होने को आया ४२९,१९। अ० १३ मं० ४७-५२। जहां जहां मांस भक्षण था ठीक कर दिया ६६९,२८-२९। कोई रह गया हो तो काट देना ६७०,९। मार्ग कृ० १ सं० १९३९ को समाप्त हुआ ६२५,२॥

साम-अथर्ववेद के भाष्य में—१–१$\frac{1}{2}$ वर्ष लगेगा ७६७,१२॥

वेदविरुद्धमतखण्डन—छप गया ५२,२२। मया निर्मितः १६२,१५-१६॥

वेदान्तिध्वान्त-निवारण—मया निर्मित: १६२, १५-१६॥

व्यवहारभानु—भीमसेन से शुद्धाशुद्धपत्र लिखवाकर लगवा दो ३३६,२६-२७। (सामान्य ३३४,९; ३४५,४-५)॥

शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण—शिक्षा की पुस्तक छपी की नहीं? ४९,१०। गुजराती भाषा व्याख्या हो गई ५८,१३॥

संस्कारविधि—प्रथम सं०—बनने की तैयारी हो रही है ५२,१७। शीघ्र बनेगी ५६,३; ५८,२। बनाने के लिये पण्डित की खोज हो रही है ६१,१६। [मांसादि का वर्णन] तत्तद्ग्रन्थों का मत जताने के लिए है १५४,९-११॥

संस्कारविधि—द्वितीय सं०—बना सोधकर भेज देंगे ७२७, ८-९ । अमावस्या (भाद्र १९४०) तक बन चुकेगी ७६७, १३-१४ । छपने के लिये १-४७ पृष्ठ भेजे हैं ७९२ ४;८०७,२ । प्रति संस्कार सामग्री का सूचीपत्र लिख कर भेजेंगे ७९२, ११-१४ (टि० ३ भी देखें) ॥

संस्कृतवाक्यप्रबोध—काशी के पण्डितों का आक्षेप ३८७,७ । के एक ठिकाने अशुद्ध भी छपा है ३८७,८ । अशुद्ध छपने के कारण ३८७, ९-३८८,२ । मिथ्या आक्षेपों का उत्तर ३९०,१–३९२,२ । छपने में एक अशुद्धि ६७४–१२–१ ॥

सत्यार्थप्रकाश—प्रथम सं०—सितम्बर १८७४ तक लिखकर समाप्त हो गया था ४३ (टिप्पणी ३) । १३ वां समु० कुरान मत समीक्षा और १४ वां० समु० गौरण्ड मत समीक्षा था ४३ (टि० २) । हस्तलेख के १४ समु० के अन्त में लिखा विज्ञापन ३५,१७–४३;१३ । कुरान के अध्याय (१३ समु०) का शोधन ४९,१३ । बाइवल का अध्याय (१४ समु०) छापने के आज्ञा ४९ १३ । (१३,१४ समु० समु० के शोधने में देरी होने से न छप सके) । १२० पृष्ठ तक छप गया ५२,१;५८,१ (टि० २) । अभी (१२० पृ०) एक एक रुपये में मिलता है ५३,१ । स० प्र० कितने अध्याय छपा ४९,८ । दूसरा भाग (समु० १३,१४) नहीं छापा गया, विचार था १३१, ८-९ । मृत पितरों का श्राद्ध वा तर्पण लिखने का शोधने वालों की भूल से छप गया था १५४, १६-२० ॥

सत्यार्थप्रकाश—द्वितीय सं०—छपने को भेजा—५ पृ० भूमिका, १–३२ पृष्ठ प्रथम समु० के ६०९, ६-७ । ३३–५७ पृ०[1] तक कल भेजंगे ६२०,९ । पृष्ठ २४८—२७८ (?) तक ७६९, १२-१३ । आर्यराज वंशावली ७०.६ । २७२ से ३१९ पृ० तक १२ समु० ७८७,७-८ । १३ वा समु० भेजेंगे ७९२, १७ । ३२०—३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय ८०६.२३। (अल्लोपनिषद् समीक्षा ७५१, ११–७५२,६ । छापना आरम्भ कर दो ६१५,२)। (आश्विन कृष्ण पक्ष संवत् १९३९ को छपना आरम्भ हुआ, देखो स० प्र० द्वि० सं० में मुंशी समर्थदान का निवेदन) । ५ पृ० भूमिका और सत्यार्थ प्र० के छपे फारम पहुंच गये ६३८,१६ । स० प्र० द्वि० सं० सम्भवतः आश्विन सु० ३ सं० १९३९ तक लिखा जा चुका था, इसमें

---

१. पृष्ठ ६२० पं० ९ का पाठ इस प्रकार शोधें—'कल तुम्हारे पास ३३ पृष्ठ से ५७ पृष्ठ [तक] सत्यार्थप्रकाश के पत्रे' ।

प्रमाण—एक फारम में कितने पृष्ठ लगते हैं लिखो, तब अनुमान करके लिखेंगे स० प्र० में इतने फारम होंगे ६२०, ११-१३ ॥

भाषा-संशोधन—तुम (समर्थदान) शोध लिया करो ६२०,५। कोई अनुचित हो शब्द निकाल देना ७६४, ३-४ ॥

टिप्पणी—जहां जहां उचित समझो नोट दे दो ६१२,१९; ६१७,१४। नोट पर किसी का नाम मत दो ६३९, २-४ ॥

संशोधन का नाम—टाइटल पेज पर तुम्हारा (समर्थदान का) नाम रहना चाहिये ६३९,३ ॥

सत्यासत्य विवेक–(स्काट के साथ शास्त्रार्थ) जब छपेगा तब तुम्हारे पास भेजा जायगा २८९,२०। मूल्य ।) ४६१,७ (प्रथम सं० उर्दू में छपा) ॥

वेदाङ्ग-प्रकाश—भीमसेन को कहो व्याकरण की पुस्तक शीघ्र लिखकर शुद्ध कर तैयार कर दे ५६६, ४-५। अपना लिखवाया और तुम्हारा शोधा पुस्तक भी मंगा लिया करेंगे ४६५, ११-१२। हमने भीमसेन के शोधे पुस्तक देखे तो बहुत भूल निकलती है ५७२,११ ॥

पठन-पाठन—रामानन्द [वेदाङ्ग-प्रकाश] पढ़ना ५२५,८। क्रम से वेदाङ्ग-प्रकाश पढ़वाना ६०६,१६। राजकीय पाठशाला में लगा दिये ६५९,२१ ॥

वर्णोच्चारण-शिक्षा—पेश्तर शिक्षा की पुस्तक छपवाई जावे ३१६,७ ॥

संधिविषय—शीघ्र शीघ्र छपना ३३४,८। छपना आरम्भ न हुआ होगा ३४५,४। संधिविषय के पत्रे भी शोधे जाते हैं ३४६,९ ॥ संधिविषय की तरह अशुद्ध न होने पाये ४६४, ९-१०। जो हमने शुद्ध कर लिखा है सो भी भेज देंगे ३३६,२४। शुद्धाशुद्धि पत्र ४६४,१४। कीमत ॥) रक्खो ४५५,९ ॥

नामिक—संशोधन में अशुद्धियां ४७८. ३-४। शुद्धि अशुद्धि पत्र ४७८,१६। नवीन रचना की जरूरत नहीं ४५८,१५ ॥

आख्यातिक—कितना छप गया ५४६,११। ज्वालादत्त ने बनाना आरम्भ किया—द्र० ६१२, १२-१४; ६१४, २५-२७। ज्वालादत्त से न बन सके तो यहां भेज दो, भीमसेन से बनवायेंगे ६१२,१५; ६१४, २८-३० ॥

पारिभाषिक—८,१० दिन में तैयार कराकर भेजेंगे ६१६, १७-१८। भूमिका सहित ४३ पृ० भेजे हैं ६२०, ९-१० ॥

सौवर—हमने भेजा था, छापते होंगे ६१६,१७ ॥

उणादि-कोष—सुगम संस्कृत में वृत्ति बनाई, तैयार हो गया, सूचीपत्र बाकी है ६३८, १०-१२ ॥ उणादि पाणिनि मुनि रचित ३५, २-३; ५४,८॥

निघण्टु—सूचिपत्र सहित तुम्हारे पास भेज दिया ६३८, ११-१२ ॥

अव्ययार्थ—छपे बहुत दिन हो गये ५७२,९ ॥

निरुक्त ब्राह्मण आदि के प्रसिद्ध शब्दों की सूची—बनाकर भेजेंगे, निघण्टु की सूची के अन्त में छापना ६३८, १३-१५ ॥

पाणिनि के ग्रन्थ—अष्टाध्यायी, धातुपाठ गण, उणादि गण, शिक्षा और प्रातिपदिकगण ३५, २-३ ॥

आलङ्कारिक कथा—प्रजापति और उसकी दुहिता ७२-७३। गौतम और अहल्या ७४। इन्द्र और वृत्रासुर ७४-७६ ॥

ऋ० द० के ग्रन्थों के लेखकों के विषय में उनकी सम्मति

भीमसेन—निष्कपट है ४२६,१२। व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही पाण्डित्य है, अन्यत्र बालक है ५१७, २-४। भाषा बहुत ढीली बनाता हैं ५४६,१०। भीमसेन के शोधे भये पुस्तकों में भूल बहुत निकलती है ५७२,११। भीमसेन को अत्यन्त अयोग्यता के कारण सब दिन के लिये निकाल दिया ६५०,१। भीमसेन वकवृत्ति और मार्जारलिङ्गी है ६६९, ५-६। भीमसेन काम के अयोग्य तथा बुरे स्वभाव का है ६७३,५-६। आर्यसमाज में रखने योग्य नहीं ६७३, ७-८। दूसरे पण्डित से न्याय दर्शन पूरा करले ३५२,१० ॥

ज्वालादत्त—शोधने में बहुत गलती रहती है ४५८, ५-८। ये दोनों भी (भीम० ज्वाला०) एक से हैं कामचोर हैं ६०९, १३-१४। व्याकरण का अभ्यास वा बोध कम है ६१२,१३;६१४,१७। वैसा ही उस (भीम०) से विलक्षण दम्भी क्रोधी हठी और स्वार्थसाधनतत्पर ज्वालादत्त भी है। मेरी समझ में भीमसेन का छोटा भाई ज्वालादत्त है ६६९, ६-८। घर पै जाके दशगात्रादि मृतक कर्म करके मुर्दाविधान खाया करेगा ६८७, १४-१५। पहिले जैसी भाषा नहीं बनाता ७६३, १६-१७। अब भाषा अच्छी नहीं बनाता. घास काटता है, पदार्थ कुछ और है, भाषा बनाई कुछ और ही ७६६, १०-१३ ॥

अन्य पण्डित आदि का उल्लेख—दिनेशराम ३३, ९-१०। स्वामी पूर्णानन्द ४७,१९;६३,६। सहजानन्द ६६४,३। लक्ष्मण शास्त्री ६३,६। रामा-

नन्द ७००,१३ । शिवदयालु ७६०,३ । रामनाथ ४०२,१८;४०७,११; ६६२८ ।

कतिपय आवश्यक विषयों पर ऋ० द० का लेख

थियोसिफिकल सोसाइटी—के विषय में—पृष्ठ १४६,१५२,१५७,१७७,१८१, २०१,२४५,२६१,२६४,३६५,३६७,३६९ ३७०,४४३,४४४,४९०,५१२, ५४८–५६४,५६३,७३८–७४० ॥

संस्कृत पाठशाला—फर्रुखाबाद ८,४ काशी ३३,२;३४,३ ॥

राजकुमार (क्षात्र) पाठशाला—५४४,१४;७१९,१३;७५५,८ ॥

शिल्पशिक्षा—के लिये जर्मनी से पत्र व्यवहार ३७४,२३;३७६,२३;३७९,१९; ४०३,२;४१२,१८;४१३,१;४५० ६-११॥

गोरक्षा-आन्दोलन और उस के लिए सही कराना—५३५, १४–५३७,१२; ५३८, १–५४०,२४;५४३,९;५९९, २५–६००,२२;६०२,१५—६०४; ६०७,८;६४८,१४;७४८, १५–१७ ॥

सस्कृत और आर्यभाषा—संस्कृत से ही देश का कल्याण होगा ४३,३ । अलकाट आदि ने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया कि नहीं २५०,१५ । सं०पाठ० खोलने की सुनकर प्रसन्नता हुई २४९,१०;२५०,२ । अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रखना चाहिए ५००,१ । आप लोगों की पाठशाला में संस्कृत कम, उर्दू फारसी, अंग्रेजो अधिक है ५०१, १३-१४ । संस्कृत की उन्नति होनी चाहिए ५०४,२;५०५,१ । संस्कृत मातृभाषा है ५०५,१ । अंग्रेजी फारसी में धन व्यर्थ जाता है ६ ५,२१ । संस्कृत विरुद्ध भाषाओं की उन्नति नहीं करनी चाहिए ६२९, २-३ । तुम्हारी पाठशाला में अलिफ बे और कैट बैट की भर्मार है, जो आर्यसमाज का कर्त्तव्य नहीं ६८४, २-३ । राजकुमारों को आर्ष-ग्रन्थ और संस्कृत पढ़ानी चाहिए ७८१,२९ । वेदभाष्य के लिफाफे पर देव नागरी क्यों नहीं लिखी गई २१३,१३ । संस्कृत और मध्य देश की भाषा (हिन्दी) के लिये सही करके भिजवाई जावें ५४७,६-७;६०२,१६;६०३,१;६०५, १५-२८ ॥

प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाये जावें—३८३,२८;३८८, ५-६; ७५५,७ क्या पढ़ने पढ़ाने के सब आवश्यक ग्रन्थ तैयार हैं ? २३९,९;३६०,१२ ॥

आर्य राजा—(जो उस समय थे) ७८, ८–७९,२ ॥

आर्यसमाज की स्थापना—बम्बई में चैत्र सुदी ५ शनिवार सायं काल ५३

बजे सं० १९३१[1] पृष्ठ ५५, १७-१८ (विशेष द्रष्टव्य परिशिष्ट ४, पृष्ठ ९४३-९५९) ।

जातपात—आजकल आर्य शुद्ध हुओं के साथ व्यवहार न करेंगे ४९७, ५-६॥

पत्रों में उद्धृत पुस्तकें ऋग्वेद की दो जिल्द भेंट कीं ४९,१ । कामसूत्र २१५,१८ । चन्द्रालोक वा काव्यालंकार सूत्र २९८,९ । काव्यप्रकाश, सर्वदर्शनसंग्रह, जैन प्रभाकर तथा जैन बौद्ध मत के ग्रन्थ ४२३, ११-१२ । चन्द्रालोक सर्वदर्शन जैनमत की पुस्तकें ४२०, ६–१० । जैनियों के ग्रन्थों के विषय में ४७४,२[2] । पूना के व्याख्यान[3] छपवाते हैं ५९, १२-१३ ॥

प्रामाणिक ग्रन्थ की सूची[4]—१-४;७०, २०-२७ ॥

स्वामी जी के फोटो—मेरठ में उतारा २३८,१० । रामानन्द को देना ७००, १३,२१ । (इस विषय में षष्ठ परिशिष्ट पृष्ठ ९७४-९८१ भी देखें[5])

मुक्ति—नित्य सुखरूप जो मोक्ष ७१,२१ (मार्ग शु० १५ सं० १९३३) । पुनरावृत्ति ५९२, २६–५९३,१३ । (फर्रुखाबाद के इतिहास के पृष्ठ १३४ के साथ तुलना करो)॥

विधवा—सम्पत्ति का अधिकार ३७३, १०-१७;३७५, १५-२० । नियोग का मसविदा ३८०,१६ । जो मसौदा तैयार किया ३९३, १–३९७,१७ ॥

वैदिक-यन्त्रालय—आर्यप्रकाश यन्त्रालय नाम ३१९,८ । वैदिक यन्त्रालय (वैदिक प्रेस) नाम रक्खा ३२३,१९;३२४,११ । बाहर का काम

---

[1] यह गुजराती संवत् है । उतरभारतीय सं० १९३२ ।

[2] इस विषय में सेवकलाल कृष्णदास, मन्त्री आ० स० बम्बई १५ जनवरी १८८१ का पत्र तीसरे भाग में देखें । उसमें जैनियों के ग्रन्थों की विस्तृत सूची दी है । उस सूची की सत्यार्थप्रकाश की भूमिका (सं० १९४०) में दिये गये जैन ग्रन्थों से भी करें ।

[3] ये १५ व्याख्यान उपदेश मञ्जरी तथा पूना प्रवचन के नाम से विविध स्थानों से छपे हैं । इन का एक शुद्ध संस्करण 'पूना-प्रवचन' के नाम से रामलाल कपूर ट्रस्ट ने भी छापा है ।

[4] इस सूची के विषय में पृष्ठ २,३ पर छपी ३ संख्या की टिप्पणी तथा पृ० ८३९ पर छपा १३ वां प्रश्न वा उसका उत्तर भी देखें ।

[5] इस परिशिष्ट में वर्णित कई असली चित्र तथा ऋ० द० के कतिपय मूल पत्रों की फोटो अलग स्वतन्त्र संग्रह में आर्ट पेपर पर छाप रहे हैं ।

छापने के लिये नहीं है, सत्य ग्रन्थों के प्रकाश के लिये बनाया है, बाहर के काम से हानि होती है। बाहर का काम बन्द कर दो, नहीं तो दण्ड देंगे इत्यादि ६१४, १८-२०;६६७, २-३; ७०१,१९-२०; ७१२,६॥

वसीयतनामा (स्वीकार पत्र)—३८२, १–३८६,२७;६५३, ४–६५८,१८ ॥
श्रौताग्निहोत्र आरम्भ करना—६९२,२१;६९४, १७-१९;७१९,१२ ॥
राजाओं की नीति की आलोचना—५६८-१८-२३ ॥
समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़ कर—वेदभाष्य करना ४८०, २१-२२ ॥
सब काम वेदभाष्यादि छोड़ देंगे--४८४, २२-२३ ।
अनद्यतन का लक्षण—७८, ५-६
माता पिता की सेवा—दुराचारी होने पर भी अन्न वस्त्र से ६२३, २०-२२॥

AS
१५.१
९६.212

—:o:—

71336

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

नाम-सूची

उन महानुभावों की जिन्हें पत्र-तार-पारसल भेजे गये

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुँच का स्थान	पूर्ण संख्या
१	पत्र	४	अङ्गद शास्त्री	शाहजहांपुर, अम्बागढ़	२३२,२३३
	पत्र-सूचना	२	"	"	८२१,८२३
२	पत्र	१६	अज्ञात नाम	विविध स्थानों को	७,१०४,१०५^{२},१०७,१०८^{१}, १४१,२०१,२१६,२७६,५१५, ५४७,५५३,७७१,८४२,८५८, ८७३
	पत्र-सूचना	३	" "	"	२८,३०६,३१०
३	पत्र	१	अधिकार-पत्र	……	२०८
४		१	अन्तिम हस्ताक्षर (मनिआर्डर फार्म पर)	जोधपुर	८०८
५	लेख	१	अबोधनिवारण की अशुद्धि	काशी	३३०

६	पत्र	२	अब्दुल्ला मौलवी	मेरठ	१३४,८४५
७	पत्र-सूचना	१	अशुद्धभाषा का नमूना	काशी	७५६
८	मन्त्रार्थ	१	'आकृष्णेन रजसा' का अर्थ	बम्बई	१७
६	सूचना	१	आक्षेपखण्डन-सूचना	,,	१८
१०	पत्र	४	आत्माराम जी जैन पण्डित	गुजरांवाला	[३६७], ३७१,३७३,४१६
११	,,	१	आनन्दविजय	,,	४१६
१२	,,	१	आनन्दीलाल जी मन्त्री	मेरठ	४६७
	पत्र-सूचना	१	आर्य-समाज		
			,, ,,	,,	६१७
१३	पत्र	२	आर्यसमाज लाहौर के अधिकारी	लाहौर	५४,५६
१४	प्रशंसा-पत्र	१	आर्यसमाजस्थ प्रधान मंत्री	सामान्य बम्बई	४७०
१५	पत्र	६	आलकाट करनल साहब	अमेरिका बम्बई	६५,१०६,१६५,२२२,२६४, २७६,३२०,४४४,५११
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,, ,,	१६३,८५६,८५६
	तार	२	,, ,,	,, ,,	२७०,८५७

---

१. एक पत्र के प्रारम्भ में जहां कई व्यक्तियों के नाम उल्लिखित हैं, उन नामों का इस सूची में पृथक् पृथक् निर्देश किया है।

२. पूर्ण संख्या १०४,१०५ में से एक पत्र सम्भवतः थियोसोफिकल सोसाइटी इंगलैंड के प्रधान डा० मासि को भेजा था।

३. पूर्ण संख्या १०७,१०८ के पत्र रुड़की के किसी व्यक्ति को लिखे थे।

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
१६	पत्र-सूचना	१	आशीः पत्र (महाराणा सज्जनसिंह)	उदयपुर	६१८
१७	पत्र	१	इन्द्र नारायण प्रधान आ० स०	लखनऊ	५६३
१८	पत्र	४	इन्द्रमणि जी मुंशी	मुरादाबाद	२६१,३३१,३८३,३८७
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३०८
	तार	१	,, ,,	,,	३८०
१९	पत्र	१	ईश्वरानन्द स्वामी	प्रयाग	६६०
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	७२६
२०	,,	१	उमरावसिंह मन्त्री आ० स०	रुड़की	८५२
	तार	१	,,	,,	१७९
२१	पत्र	१	औषधि-पत्र	जोधपुर	८०१
	पत्र-सूचना	१	औषधिपत्र-सूचना	उदयपुर	७६६
२२	पत्र	१	कन्हैयालाल जी चौबे	जलालाबाद	४५०
२३	,,	१	कन्हैयालाल इञ्जिनियर	?	६४

२४	पत्र	१०	कमलनयनजी मन्त्री आ० स०	अजमेर	६५०,६९२,७०८,७१८,७३०,७४३,७६९,७७७,७७९,७९९,
	पत्र-सूचना	२	,,	,,	७८७,९०६
	तार	१	,, ,,	,,	६८५
२५	पत्र	२५	कालीचरण-रामचरणजी मन्त्री आ० स०	फर्रुखाबाद	३५८,३७७,४०५,४०८,४१३,४३१,४३२,४३५,४४६,४५५,४९८,५०८,५३०,५३८,५४२,५४३,५४६,५६०,५६४,५६७,५७०,५९२,६५६,६७४,७०२
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	४३३,५९६
	पारसल-सूचना	२	,, ,,	,,	५२५,५६१
२६		३	कालूरामजी शर्मा योगी	रामगढ़ चूरू (राज्य जयपुर)	३७,७५,६३४
			काश्मीर महाराजा	श्रीनगर	द्र० महाराजा काश्मीर
२७		२	किशनसहायजी	मेरठ	१३९,८४७
२८		७	किशन (कृष्ण) सिंहजी बारट मन्त्री महाराणा सज्जनसिंह उदयपुर।	उदयपुर	६४७,७२१,७२३;७३४,७३९,७७६,७९७
	पारसल-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	७२२

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुँच का स्थान	पूर्ण संख्या
२९		७	कृपारामजी स्वामी, जंगल-विभाग	देहरादून	१८७,२०५,३३७,३८५,४४८, ५०७,५९९
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	३३५
३०	,,	१	कृष्णलाल साह	अल्मोड़ा	५०३
३१	,,	५	केशवलाल निर्भयराय	बम्बई	२९,३३,२२७,२८०,८६१
३२	पत्र	२	खाडेराव पाण्डुरंग	खण्डुवा	५३९,५४१,
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	५४४
३३	पत्र	३	गङ्गादत्त जी चौबे पण्डित (सहपाठी श्री स्वामी जी)	मथुरा	२,३,८२५
	मनि-आर्डर	१	,, ,, ,,	,,	८२६
३४	पत्र-सूचना	१	गणेशदास एण्ड कम्पनी	काशी	६३५
३५	पत्र	२	गणेशप्रसाद पण्डित	फर्रुखाबाद	३९४,३९७
३६	,,	१	गण्डासिंह जी सरदार	रोपड़	१६८
३७	,,	१	गदाधरप्रसादसिंह	विलासपुर	५४१
३८	,,	१	गश्ती पत्र	सब समाजों को	८६७
३९	,,	५	गोपालराव हरि देशमुख	अहमदाबाद	१९,२०,२२,२३,२५,२६,

			रायबहादुर जज	पूना, बम्बई	४६,६६,६८,६९[1],७०,१६६, १७६,४२३,७३१
	पत्र-सूचना	३	,, ,, ,,	,,	३४७,७२४,७६१
	पारसल-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	६७
४०		४	गोपालराव हरि पण्डित इंस्पैक्टर आफ़ स्कूलज़	फर्रुखाबाद	२९६,४४१,५७१,६६८
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	२७८
४१	पत्र-सूचना	१	गोपालनन्द स्वामी परमहंस	जयपुर	८१२
			गोविन्द रानाडे		देखो महादेव गोविन्द रानाडे
४२	पत्र-सूचना	१	चिदानन्द साधु	सोरों	८२२
४३	,,	१	चीफ कमिश्नर	बनारस (?)	२५८
			चूरू के सेठों के सरपंच	चूरू (राज्य जयपुर)	देखो सरपञ्च चूरू के सेठों का
४४	पत्र	५	छगनलाल द्विवेदी श्रीमाली	मसूदा	५८६,६६३,७३५,७९५,८०५
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	५७३
	प्रशंसा-पत्र	१	,, ,, ,,	,,	४७०

---

[1] इस ६९ संख्या पर पत्र-सूचना मात्र छपी है। परन्तु इसका मूल पत्र हमें उपलब्ध हो गया। उसे हमने प्रथम परिशिष्ट, पृष्ठ ८५३–८५५ पर छापा है। अतः पाठक उसे वहां देखें।

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
४५	पत्र	१	छेदीलाल जी रायबहादुर (कानपुर निवासी)	मेरठ	४६१
४६	,,	१	जगन्नाथ बाबू	विलासपुर	५५१
४७	पत्र-सूचना	१	जगन्नाथ पण्डित बरेली वाले	अम्बागढ़	८२४
४८		१	जती जी जैन साधु	जयपुर	८१४
			जयकृष्ण व्यास	बम्बई	द्र० व्यास जी जयकृष्ण
४९	पत्र-सूचना	१	जयपुर के पण्डित	जयपुर	८१३
५०	पत्र	१	जवाहर	रावलपिण्डी	८४०
५१	,,	१०	जवाहरसिंह सरदार मन्त्री आर्यसमाज	लाहौर शहपुरा	४५४,४६४,६१९,६२०, ६२७,६४३,६४८,६६२, ६८९,७५१
	पत्र-सूचना	२	,, ,, ,,	,,	७०४,७०६
५२	पत्र	६	जालिमसिंह जी चौधरी ठाकुर रईस	रूपधनी (एटा)	४४५,४४९,६३३,६४५, ७७२,७८४
५३	,,१	१	जालिमसिंह राणा कच्छ दरबार	कच्छभुज	४२२

५४	पत्र	१	जी. डबल्यू लाइटनर एम.ए.बार.एट.ला	शिमला	५१
५५	,,	१	जीवनगिरि स्वामी	हरिद्वार	१९८
५६	,,	४	जीवनदास लाला	लाहौर	८३,८४,८८,५२८
५७	,,	१	जी० वाईज़ एलवर्ट्‌स	वैडन (जर्मनी)	३४०
५८	,,	१	जीवाराम टीकाराम	काशी	२९८
५९	लेख	१	जैनमत के सम्बन्ध में प्रश्न और समीक्षा	मसूदा	८६९
६०	पत्र-सूचना	१	जैन साधु	बम्बई	८३३
६०	पत्र	१	जैसराम गोटीराम	कलकत्ता	२५७
६१	पत्र-सूचना	१	जोशीलाल जी कल्याण जी	कानपुर	६२१
६२	पत्र	१	जोसेफ कुक साहब बम्बई	बम्बई	४८५
६३		३	ज्वालादत्त पण्डित लेखक तथा प्रूफ शोधक	काशी	३९१,३९८,४११
	पत्र-सूचना	६	,, ,, ,,	,,	२८४,२८५,२८६,३९५, ४००,४०७
	पारसल-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	४०१
६४		१	टिप्पणी (स्त्रैणतद्धित)	काशी	४७४
		१	,, (पत्र पर)	बम्बई	१४१
६५	पत्र	४	ठाकरदास जी जैनी	गुजरांवाला	३१७,३४२,३७१,५३७

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
६६		१	डी. रे० ए० राजा पाकसा	मदुरा (लंका)	६२३
			तुकोजीराव महाराजा	इन्दौर	द्र० महाराजा तुकोजीराव
६७	पत्र	५	तेजसिंह रावराजा	जोधपुर	६६६,६७२,६८१,८००,८०४
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	,,	७९०
६८	पत्र	१	थियोसोफिस्ट के सम्पादक	बम्बई	२६३
६९	,,	३	दयाराम वर्मा मास्टर मन्त्री आ० स०	मुलतान	१०९,१२५,४०३
७०	,,	६	दयाराम पण्डित प्रबन्ध-कर्त्ता वैदिक यन्त्रालय	प्रयाग	४७३,४७५,४७८,४७९, ४८७,५३१
	पत्र-सूचना	४	,, ,, ,,	,,	४८६,४९३,४९५क,५२४
	पारसल-सूचना	२	,, ,, ,,	,,	४६८,४६९
७१	पत्र	१	दिनचर्या के नियम महाराणा सज्जनसिंह	उदयपुर	५९८
७२	,,	१	दीनानाथ गांगोली बाबू	दार्जीलिंग	४९
७३	,,	१	दुर्गाचरण जी प्रधान आ.स.	मुरादाबाद	६९७
७४	,,	१८	दुर्गाप्रसाद जी सेठ (राय	फर्रुखाबाद	३३९,३४३,३५२,३६४,

			बहादुर)		३६६,४५६,४६०,५३४, ५६६,६००,६०६,६१५, ६२४,६३०,६६५,७१३, ७३३,७८६
७५	,,	६	देशहितैषी अजमेर	अजमेर	४७१,४८६,५०५,५६२,६११; ७२६, तथा मुन्नालाल पं० के नाम
७६	,,	१	द्वारकाप्रसाद जी	ऐतमादपुर (आगरा)	४०४
७७	,,	१	धर्मशी भाई	बम्बई	८३१
	तार	१	,, ,,	,,	८३२
७८		६	नन्दकिशोरसिंह जी ठाकुर सभासद् राज्यपरिषद	जयपुर	५२२,५३५,६६४,७१५,७५२, ७९३
	पारसल-सूचना	२	,, ,,	,,	५१९,६६५
७९	पत्र	१	नाथुराम	बम्बई	३१
८०	,,	१	नारायण किशन जी मुंशी	गुजरांवाला	४१५
८१	,,	१३	नाहरसिंह जी महाराजाधिराज शाहपुराधीश	शाहपुरा (मेवाड़)	५१०,५४९,५६८,६२६, ६६१(?)६८४,६८६,६९०, ६९९,७१७,७१९,७७३,७७४
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	५५०
८२	,,	१	नियोग का मसविदा	मेरठ	३३३

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
८३	,,	३	निर्भयराम जी सेठ मारवाड़ी बिसाउ निवासी	फर्रुखाबाद	३५६,४३६,४५७
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	२०३,४४७
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	४२७
८४		६	निवासी सचना पं० स्वा० दयानन्द सरस्वती		४३,४५,४७,५३,५५,५८; ६१,६३,७६
८५	पत्र-सूचना	१	नीलकण्ठ शास्त्री	प्रयाग	८२६
८६	पत्र	१	पञ्चायत सरावगियां	लुधियाना	३६७
८७	,,	१	पञ्जाब सरकार	लाहौर	५०
८८	पत्र-सूचना	१	पण्डित वर्ग	अजमेर	८१६
८९	पत्र-सूचना	१	पीटर डैविसन	स्काटलैण्ड	२२५
९०	पत्र	१	पूर्णानन्द स्वामी	बम्बई	३१
९१	,,	१	पोहलोराम जी लाला मन्त्री आ० स०	गुजरांवाला	८७
९२	,,	१	प्यारेलाल जी बाबू	लाहौर	१८०
९३	,,	२	प्यारेलाल जी मुंशी	चांदापुर	८३७,८३८

९४	पत्र	१	प्रतापसिंह जी महाराजा मंत्री जोधपुर		७०७
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	७८९
९५	पत्र	१	प्रभुदयाल जी खत्री	रावलपिण्डी	८४०
९६	,,	१	प्रभुदयाल पण्डित	तेरही (बांदा)	६७१
९७	पत्र-सूचना	२	प्राणजीदास काहनदास	बम्बई	५८६,८६०
९८		१	प्रशंसा-पत्र (छगनलाल)	मसूदा	४७०
९९	प्रश्नोत्तर	६	प्रश्न-उत्तर सम्बन्धी	अनेक स्थानों पर	८१२,८१३,८१४,८१७,८६४ ; ८६९
१००	पत्र	१	प्रसन्नता-पत्र (मुं. समर्थदान)	?	४५२
१०१	पत्र-सूचना	१	फतेहसिंह जी राजराणा	देलवाड़ा (मेवाड़)	५६५
१०२		१	फर्रुखाबाद के पौराणिक पण्डितों के प्रश्नों के उत्तर	फर्रुखाबाद	८६४ (विज्ञापन रूप में)
१०३	पत्र	१	फ्रेयर	बम्बई	५४५
१०४	पत्र	१८	बख्तावरसिंह प्रबन्धकर्ता वै० यं० सम्पादक आर्य-दर्पण	काशी शाहजहांपुर	२८८,२८९,२९२,२९३,२९७, २९९,३००,३०४,३०६,३११, ३१३,३१४,३१९,३२२,३२३, ३२५,३२९ ३३४,३३९,३४१, ३४४,३४६,३७९,४१४,४१७, ४२४,४२८,४३४
	पत्र-सूचना	५	,, ,,	,,	१८४,२८७,२९१,३४९,३६२

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
	पारसल-सूचना	३	वख्तावरसिंह प्र० क०वै०यं०	काशी	३०५,३१२,३१५
१०५	पत्र	१	बलदास¹ जी	लाहौर	८८
१०६	,,	१	बलदेवसिंह शर्मा	?	१२
१०७	पत्र-सूचना	१	बलदेवसिंह	देहरादून	३३६
१०८	पत्र-सूचना	१	बल्लभदास जी	लाहौर	२५६
१०९	पत्र	१	बहादुरसिंह जी राव मसूदा नरेश	मसूदा अजमेर	६८७
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	७९४,५७२
११०	पत्र	१	बालकराम वाजपेयी	अजमेर	७५५
१११	,,	३	बिहारीलाल जी पण्डित	जयपुर	६४४,६५२,७६७
११२	,,	१	बिहारीलाल	इन्दौर	७४७
११३	,,	२	बैचरभाई	अहमदाबाद	२३,२५
११४	,,	९	ब्लेवट्स्की मैडम	अमेरिकादि	९५.२२३,२६४,३२०,३८१, ४४४,४६३,५११,५१२
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	४०६,५५३
११५	पत्र	२	भगवती माई	हरियाना (होशियारपुर)	५९४,६०३

११६	पत्र-सूचना	१	भागराम पण्डित	अजमेर	७७८
११७		१	भागवत अशुद्धिपत्र	,,	८१६
११८	पत्र	३	भारतमित्र सम्पादक	कलकत्ता	५०४,७२७,७४२ तथा द्र० मनोहर दास नाम
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	५०४
११९	पत्र	१	भारतसुदशाप्रवर्तक संपादक	फर्रुखाबाद	७२८
१२०	,,	८	भीमसेन पण्डित लेखक तथा प्रूफ शोधक	काशी, प्रयाग	३२,३१६,३५६,३६०,३६१, ३७२,३७४,५७४
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	५२६,७५८,७८५
	पारसल-सूचना	२	,, ,,	,,	३५४,३५५
१२१	पत्र	१	भूपालसिंह ठाकुर (रिसालदार) रईस	ऐख (अलीगढ़)	११४
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	१५२
१२२	पत्र	२	भोलानाथ जी	अहमदाबाद	२३,२५
१२३	,,	१	मजिस्ट्रेट काशी	काशी	२५६
१२४	पत्र-सूचना	१	मथुरादास जी	मियांमोर	८०७
१२५	पत्र	१	मनसुखराय जी	अमृतसर	६०
१२६	मनिआर्डर-सूचना	२	मनिआर्डर-सूचना	बम्बई	६४२,७०४

71336

---

१. सम्भवतः यह नाम बल्लभदास हो। द्र० पूर्ण संख्या २५६ का पत्र।

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
१२७	पत्र	१	मनोहरलाल जी मुंशी	पटना	२६२
१२८	,,	२	मनोहरदास खत्री सम्पा॰ भारतमित्र	कलकत्ता	७१२,७३७ तथा द्र॰ भारत-मित्र सम्पादक
१२९	,,	१	मन्त्री-आर्यसमाज	शाहजहांपुर	२१२
१३०	,,	१	,, ,,	अमृतसर	२१३
१३१	,,	१	,, ,,	गुरुदासपुर	९८
१३२	,,	१	,, ,,	मुलतान	१२५
१३३	,,	१	,, ,,	गुजरांवाला	९८
१३४	,,	१	,, ,,	फर्रुखाबाद	३८९
१३५	,,	१	,, ,,	दानापुर	४९७
१३६	,,	१	,, ,,	लाहौर	७०१
१३७	,,	१	,, ,,	सर्वत्र	५१८
१३८	,,	१	(विना नाम का)	,,	५१५
१३९	,,	३	महादेव गोविन्द रानाडे	पूना	४२३
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३४७
१४०	,,	१	महाराजा काश्मीर	जम्मू	८५५

१४१	पत्र	२	महीपतिराम शर्मा	अहमदाबाद	२३,२५
१४२	,,	२२	माधोलाल (प्रसाद) जी मन्त्री आ० स०	दानापुर (पटना)	७९,८०,९२,९४,१०३,११६, १२२,१३६,१३८,१४४,१५०, १६२,१९२,२०३,२०७,२११, २३८,२४१,२४४,२४८,२५३, २५४
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	२३४
	पारसल-सूचना	४	,, ,,	,,	९१,९३,१२३,८६४
१४३	,,	१	मुख्तियारनामा	अलीगढ़	२१७
१४४	पत्र	६	मुन्नालाल पण्डित सं० देश-हितैषी	अजमेर	४६५,४७१,६४२,६९१,७०३, ७७० तथा द्र० देशहितैषी सम्पादक
	पत्र-सूचना		,, ,,	,,	५५६
१४५	पत्र	१	मुकुन्दसिंह ठाकुर	छलेसर (अलीगढ़)	११३
१४६	,,	७	मुहम्मद कासिम अली मौलवी, देवबन्दी	रुड़की	११७,११९,१२०,१२१,१२६, १२७,१२९
१४७	,,	२०	मूलराज जी एम. ए. राय-बहादुर	गुजरात तथा लाहौर	११०,११२,११५,१२४,१३०, १३१,१३२,१३५,२७२,३२१, ३२६,३५३,३८४,३९०,४०९, ४३८,४५८,४७७,४८०,५२७

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
	पत्र-सूचना	१	मूलराज एम. ए. रा. ब.	गुजरात तथा लाहौर	३२४
	पारसल-सूचना	५	,, ,,	,,	१११,२७३,३५०,४३७,४२०
१४८	पत्र	१	मोक्षमूलर (मैक्समूलर)	इङ्गलैण्ड	२७
१४९	,,	१	मोहनलाल जी प्रधान आ.स.	लाहौर	९९
१५०	,,	२	मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या मन्त्री परोपकारिणी सभा	उदयपुर	६३९,६४१
१५१		१	यजुर्वेदभाष्य संबन्धी टिप्पणी		८६८
१५२		१	यजुर्वेदभाष्य समाप्ति सूचना		५९७
१५३	पत्र	२	यशवन्तसिंह जी राठौर महाराजा जोधपुर नरेश	जोधपुर	७३६,७७५
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	७५३,७८८
१५४	तार	१	युधिष्ठिरसिंह	रिवाड़ी	८५२
१५५	पत्र-सूचना	१	रघुनाथसिंह ठाकुर	जयपुर	६५१
१५६	पत्र	१	रङ्गाचार्य	वृन्दावन	५
१५७	,,	२	रजिस्ट्रार पंजाब यूनिवर्सिटी कालेज	शिमला	५१ ५२

१५८	,,	१	रणजीतसिंह ठाकुर जागीरदार	अचरौल जयपुर	१५३
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	८१५,८२०,८४८
१५९	पत्र	२	रमाबाई पण्डिता	कलकत्ता	२९५,३०८
१६०	,,	१	रमादत्त त्रिपाठी	नैनीताल	७४४
१६१		१	रसीद (वेदभाष्य के चन्दे की)	मथुरा	३८६
१६२	,,	१	राजराणा जी झालावाड़ नरेश	झालावाड़	७९६
१६३	,,	१	रामचरण कालीचरण	फर्रुखाबाद	७०२
१६४	,,	१२	रामशरणदास जी सेठ मन्त्री प्रथम परोपकारिणी सभा	मेरठ	१८५,३५७,३६३,३६५, ३६८,४१०,४१८,४४२, ४५१,४८४,४९८,५४८
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	६१४
	पारसल-सूचना	२	,, ,,	,,	४४३,४३०
१६५	पत्र-सूचना	१	रामसनेहियों के महन्त	अजमेर	८१८
१६६	पत्र	२२	रामाधार वाजपेयी ट्रेजरी क्लर्क	लखनऊ	३४,३८,३९,४०,४१,४४, ४८,५७,७१,७२,७३,७४, ७७,१३३,१५१,१५५,१५९, १६०,२३१,३४९,४९४,४९९
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	१४६ ५२१

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
१६७	पत्र	१	रामानन्द ब्रह्मचारी (लेखक) स्वामी जी	फर्रुखाबाद	६७५
१६८	„	१	रिवाड़ी के पण्डित	रिवाड़ी	८५४
१६९	„	१२	रूपसिंह जी सर्दार (ट्रेजरी-क्लार्क)	कोहाट (गुजरांवाला)	३०७,४७६,४८१,४८८,४९६, ५३२,५५२,५६३,५८७,५९५, ६२२,७०९
१७०	„	१	लक्ष्मण शास्त्री	बम्बई	३१
१७१	„	१	लक्ष्मणदास जी चौधरी (स्वामी लक्ष्मणानन्द जी)	अमृतसर	२९५
१७२	पत्र-सूचना	१	लालजी कल्याण जी जोशी	कानपुर	६२१
१७३	पत्र	४	लालजी बैजनाथ	बम्बई	३१,६१०,७०० ७६५
१७४	„	२	लीलाधर हरिदास सेठ प्रधान आ० स०	बम्बई	१६१,६४६
१७५	„	१	लैफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाब	लाहौर	८३६
१७६	पत्र-सूचना	१	„ संयुक्तप्रान्त[1]	इलाहाबाद	२५८

---

[1] अर्थात् वर्तमान 'उत्तरप्रदेश' ।

१७७	पत्र	१	वनमाली सिंह (लेखक स्वामी जी)	काशी	३६
१७८		१	विनयमाधव		५९
१७९		१	विपक्षीपत्र-अशुद्धि-संशोधन		६५
१८०	पत्र-सूचना	२	विरजानन्द जी स्वामी (स्वामी जी के गुरु)	मथुरा	८०९,८१०
१८१	पत्र	१	विशुद्धानन्द स्वामी	हरिद्वार	१९७
१८२	पत्र-सूचना	१	विश्वनाथ जी	जयपूर	६३१
१८३	पत्र	८	विश्वेश्वरसिंह बाबू (वैदिक यन्त्रालय)	नैनीताल प्रयाग	३०३,६७६,६९८,७०५, ७१४,७५०,७६८,७८०
१८४	पत्र	१	वृद्धिचन्द जी	मसूदा (अजमेर)	७९५
	„		वेदभाष्यसम्बन्धोपत्र रजिस्ट्रार पंजाब यूनिवर्सिटी	लाहौर	द्र० रजिस्ट्रार पञ्जाब यूनिवर्सिटी नाम
१८५	तार	१	व्यास जी जयकृष्ण वैद्य	बम्बई	८३२
१८६	पत्र	६	शादीराम जी रईस मेरठवाले प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय	काशी	३९२,३९९,४०२,४२०,४२५,४२९
	पत्र-सूचना	१	„	„	३७५
	पारसल-सूचना	५	„	„	३९६[1],४१२[1],४१९,४२६,४३०

---

[1] ३९६ ४१२ के पारसल प्रबन्धकर्त्ता वै० य० के नाम से है। उन दिनों शादीराम प्रबन्धक थे।

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
१८७	पत्र	१	शालिग्राम पण्डित मन्त्री आ० स०	विलासपुर (सी० पी०)	५४१
१८८	पत्र-सूचना	१	शिवनारायण बाबू	मेरठ	४९५ख
१८९	पत्र	२	शिवप्रसाद जी राजा	काशी	२८२,२८३
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	२९४
१९०	पत्र	२	शिवसहाय जी गौड़ मन्त्री आ० स०	कानपुर	८,८२८
१९१	पत्र-सूचना	३	शुकदेवप्रसाद जी	नसीराबाद (अजमेर)	२६६ ७५६,८५१
१९२	सूचना	२	शुद्धि-अशुद्धि-पत्र (वेदभाष्य-नामिक)	काशी	४००,४३०
१९३	पत्र	२	शेरसिंह जी ठाकुर	करणावास	३२७,६७९
१९४	पत्र	२१	श्यामजी कृष्ण वर्मा पण्डित प्रबन्धकर्ता वेदभाष्य तथा प्रो० आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी	बम्बई लन्दन	९७,१००,१४०.१४७,१४९, १५८,१६४,१६७,१७०, १७४,१७७,१७८,१८१,१८२, १८३,१८८,१८९,१९०, २१३,३०१,३५१
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	बम्बई	१७५

१९५	पत्र	९	श्यामलदास जी कविराज	उदयपुर	९६,४७२,४९०,५५६,६४९, ६६७,६७७,६८३,७६८ ७१६,७६०
	पत्र-सूचना	२	” ”	”	४८१,६१८
	पारसल-सूचना	२	” ”	”	५५७
	तार	१	” ”	”	
१९६	पत्र	७	श्यामसुन्दरदास जी साहु	मुरादाबाद	३७०,३८२,६०२,६०८,६७८ ६९७,८६२
१९७	लेख	१	श्राद्ध पर लेख	बम्बई	२७६
१९८	पत्र-सूचना	१	श्रीप्रसाद जी बाबू मोहतिम बन्दोबस्त	जयपुर	२६७
१९९	पत्र	२	सज्जनसिंह जी महाराणा मेवाड़ाधीश	उदयपुर	४८३, ७४५
	पत्र-सूचना	४	” ”	”	५०९,६१८,७११,७६६
२००	पत्र	१	सबलसिंह ठाकुर	उदयपुर	७२०
	”	१	समीक्षापत्र	अजमेर	५६२
२०१	”	१	सम्पद्गिरि स्वामी	रावलपिण्डी	८४१
२०२		५८	समर्थदान जी मुंशी प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय	मुम्बई, नेठवा ग्राम (चूरु) प्रयाग अजमेर	१५६,१६६,१९०,१९४,१९५, १९६,२०२,२०६,२०९,२१०, २१४,२१५,२१९,२२०,२२४,

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
			समर्थदान जी प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय		२२६,२२८.२२९,२३६,२३७, २३९,२४०,२४५,२४६.२४७, २५५,२६२,२७५,४५२,५५४, ५५८,५६९.५७७,५७८,५७९, ५८१,५८५,५९०,६०५,६०६, ६१६,६२८,६३८,६५३,६५५, ६५९.६७०,६८८,६९६,७१०, ७४९.७५४,७५७,७६३,७८२, ७९१,८०२,८४९
	आदेश-पत्र	१	,,	,, ,,	६३६
	पत्र-सूचना	५	,,	,, ,,	५८४,६०१,६५७,७४६,७५९
	तार	२	,,	,, ,,	१७१,५५५
	पारसलसूचना	१९	,,	,, ,,	२३०,५७५,५७६,५८०,५८२, ५९१,६०४,६३७,६४०,६५८, ६७९,७४०,७४१,७४८,७६२, ७६४,७८३,७९२,८०३

२०३	पत्र	१	सरपञ्च चूरु के सेठों का	चूरु	४५६
२०४	पत्र-सूचना	२	सहजानन्द स्वामी	?	७२५,७३८
२०५		१	सही करने का पत्र गोरक्षार्थ	सर्वत्र	५०१
२०६	पत्र	२	साईंदास जी	लाहौर	८८,९९
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	७८१
२०७	पत्र	२	सिद्धकरण जैन साधु के उत्तर तथा समीक्षा	मसूदा	८७० (८६९ भी देखें)
२०८	,,	१	सिनेट मिस्टर, सम्पा० पयोनियर	प्रयाग	२७४
			सुखदेव प्रसाद नसीराबाद		द्र० शुकदेव प्रसाद ।
२०९	,,	१	सुखदेवगिरि स्वामी	हरिद्वार	१९९
२१०	,,	६	सुन्दरलाल पण्डित पोस्ट-मास्टर जनरल, मुख्य प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय	प्रयाग	४९२,५००,५१४,५२९, ५३३,५४०
	पत्र-सूचना	४	,, ,,	,,	५१३,५२३,४८३,६७३
२११	पत्र	३	सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आ० स०	बम्बई	३३२,४२१,६१३
	पत्र-सूचना	७	,, ,,	,,	३७८,४३९,४८२,५८८,६०७, ६९३,६३२

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

क्रम संख्या	पत्रादि	उपलब्ध-पत्रादि	नाम	पत्र पहुंच का स्थान	पूर्ण संख्या
	पारसल-सूचना	१	सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री	बम्बई	४६६
	मनिआर्डर-सूचना	१	आ० स०	,,	६६२
२१२	पत्र-सूचना	१	सेवाराम मुन्शी नहर जिलेदार	मेरठ	१४५
२१३	पत्र	१	स्टुअर्ट साहब कप्तान	रुड़की	१२८
२१४		१	स्मिथ मिस्टर	बम्बई	५४५
२१५	पत्र	२	स्वीकारपत्र	मेरठ, उदयपुर	३२८,७२५
२१६	,,	१	हरप्रसाद पादरी	फर्रुखाबाद	२९०
२१७	,,	१	हरिवंशलाल मुन्शी स्टार प्रेस	काशी	१६
२१८		७	हरिश्चन्द्र चिन्तामणि प्रबन्धकर्त्ता वेदभाष्य	बम्बई	४२,७८,१३७,१५४,१५७, १६३,१७३
२१९	तार	१	हाकिम पाली	पाली (जोधपुर)	६८०
२२०		१	हिसाब के कागजात (बख्तावरसिंह के)	फर्रुखाबाद	४६२
			हेनेरी एस० ओल्काट	अमेरिका आदि	द्र० आल्काट करनल साहब शब्द

२२१	५३	विज्ञापन, विज्ञापन-सारांश	१,५,६,६,१०,११,१३,१४, १५,२१,२४,३५,६२,८१ ८२, ८५,८६,८९,९०,१०१,१०२, ११८,१४२,१४३,१४८,१७२, १८६,२०४,२१८,२३५,२४३, २५०,२५१,२५२,२६०,२६८, २७१,२८१,३१८,३७६,३९३, ५०२,५१६,५१७,५३६ ६५४, ६९४,८१६,८३६,८६३,८६४, ८६६,८७२
,,	१	विज्ञापन-नमूना	२४२
,,	५	विज्ञापन-सूचना	८११,८३४,८३५,८४३,८५०

ओ३म्

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन

[संवत् १९३८ से अन्त तक]

[पूर्ण संख्या ४४८]   पत्र (२९८)

ता० ३१ मार्च १८८० [१८८१][1]

कृपाराम स्वामी आदि आनन्दित रहो[2]।

पत्र तुम्हारा आया[3] समाचार जाना। आगरे से भरतपुर आये और वहां से आकर यहां जयपुर में ठहरे हैं। ईश्वर विषय में एक व्याख्यान भी यहां हुआ था और भी शायद होगा। कलकत्ते की सभा[4] आदि के साथ हम को लिखने छपवाने का अवकाश नहीं, वेदभाष्य का काम बहुत है। तुम को अवकाश हो लिखो छपवावो। अनुभ्रमोच्छेदन और गोकरुणानिधि छप चुके हैं। वेदभाष्य के अंक के साथ तुम्हारे पास भी पहुंचेंगे। भागलपुर, जवनपुर, (जौनपुर) काशी, मिर्जापुर आदि में मुसलमानों का उपद्रव हमने सुन लिया। मुंशी इन्द्रमणि का मुकद्दमा भी इलाहाबाद में है अभी कुछ सिद्धान्त नहीं हुआ है।

---

[1] सन् १८८१ चाहिये भूल से १८८० लिखा गया हैं। क्योंकि ऋ० द० जयपुर में ३१ मार्च १८८१ को थे। चैत्र शुक्ल २, बृह० सं० १९३८।

[2] हाथी छाप के बारीक कागज पर सारा पत्र ऋषि के ही हाथ का लिखा हुआ है।

[3] स्वामी कृपाराम का पत्र उपलब्ध नहीं हुआ।

[4] यह सभा २२ जनवरी १८८१ रविवार के दिन शाम के समय सीनेट हाल कलकत्ता में हुई थी। इस में ऋ० द० के विचारों के विरुद्ध निर्णय किया गया। इसमें ५ प्रश्न रखे गये जिन का उत्तर श्री राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने दिया। इन उत्तरों का प्रत्युत्तर आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से दिया गया। प्रत्युत्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये उत्तर किस विद्वान् ने दिये हमें ज्ञात न हो सका। इस सभा की कार्यवाही ओर आर्यसमाज की ओर से दिये गये प्रत्युत्तर पं० लेखराज कृत जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६७०-६९६ तक छपी है।

दांत की ओषधी

माजूफल, मोरेठी, पपरिया कत्था, रूमी मस्तगी, नीला थोथा, ये पांच चीज बराबर अर्थात आध-आध पाव से कम न हों। नीलाथोथा को अग्नि पर फुला के थोड़ा सा जल कड़ाही में रख के बुझा ले और बुझा के शीघ्र निकाल के पांचों चीजें अलग-अलग पीस ले उन पांचों की बराबर आक के जड़ की छाल अर्थात् पृथिवी में से खोद के धो डाले जिस से मिट्टी कंकर न रहे। छाल को छोटी-छोटी काट के जिस जल में नीला थोथा बुझाया है उसमें छः ही चीजें डाल के लोहे की कड़ाही में लोहे की मुसली से कूटे जब महीन हो तब निर्वातस्थान में पीसे, जब-तक अंजन के समान न हो जाय पीसता जाये पीछे किसी शीशी में भर रक्खे। दांतोन करके पीछे अंगुली से दांत और मसूरों में लगावे। इससे दांत पुष्ट रहेंगे न हलेंगे न गिरेंगे न पीड़ा होगी[1]। सब से हमारा नमस्ते कह देना।[2]

सवाई जयपुर [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

---

[1] इस दांत की ओषधी का लेख आगे आश्विन वदी ११ सं० १९४० (२७ सितम्बर १८८३) को रावराजा तेजसिंह को लिखे पत्र के आगे छापे जा रहे ओषधिपत्र में २९ संख्या पर भी है। वहां पपरिया कत्था, के स्थान में 'सफेद कत्था' लिखा है।

[2] मूल पत्र इस समय डा० केदारनाथ जी के पास देहरादून में है। म० मामराज ने वहीं से उसकी प्रतिलिपि ता० २८ दिसम्बर सन् १९३२ को की थी।

[इस समय यह पत्र श्री पं० अमरनाथ जी वैद्य शास्त्री देहरादून के पास है। इस पत्र की प्राप्ति श्री डा० केदारनाथ जी को कैसे हुई, उस का वर्णन श्री पं० अमरनाथ जी वैद्य ने इस प्रकार किया—"यह पत्र किसी प्रकार एक भारतीय आर्य ठेकेदार बरमा देश में ले गया, जो कि वहीं रहता था। वह रोगी हो गया, उसकी चिकित्सा करने के लिये डा० केदारनाथ (देहरादूनवासी) जो सैनिक विभाग में नियुक्त थे, उसके घर गये। उनकी बैठक में टंगा हुआ यह पत्र देखा पढ़ा, तत्काल उनकी इस पत्र को प्राप्त करने की इच्छा हुई। जब रुग्ण महाशय को देखकर लौटने लगे तो उन्होंने शुल्क (फीस) देनी चाही, पर डाक्टर जी ने कहा कि मैं शुल्क न

[पूर्ण संख्या ४४९] पत्र (२९९)

7,336

चौधरी ठाकर जालिमसिंह जी आनन्दित रहो।[1]

मेरा विचार जयपुर में १५ दिनों तक ठहरने का है। पश्चात् अजमेर जाना होगा। यहाँ के मनुष्यों का सुधार असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। बहुत कालमें सुधरेंगे तो सुधरेगें, नहीं तो अधिक बिगड़ जायंगे। अब देखिये कि जैसी भीमसेन की इच्छा थी वैसा ही १५) रूपैये मावारी और १) एक रूपैये हाथ खर्च और खाने में ३) रू० से कम नहीं लगते। इस ने एक महीना कि जब तक उसका मासिक पूरा न हुआ था, तब तक काम भी अच्छा करता था। अब ठीक-ठीक नहीं करता। ये लोग भीतर के मैले और ऊपर के शुद्ध दिखलाई देते हैं। अच्छा, जब तक बनेगा तब तक रखना होगा,। बहुत अपराध करेगा तब निकाल देना पड़ेगा। देखिये मैंनें इस से कहा था कि जो तेरा भाई रसोई कर सके तो लाना, नहीं [तो] आपके मार्फत रसोईया लाने का कहा था। परन्तु लोभ का मारा अपने महामूर्ख जड़ बुद्धि को ले आया[2]। आज इसको रसोई बनाते १५ दिन हो चुके, कुछ भी न आया और न आगे आने की आशा है। आज भी इसने रसोई जला दी। अब आपको मैं लिखता हूं जो कोई रसोईया चतुर और धर्मात्मा आप की जान में हो तो यहां जयपुर में भेज दीजिये। और जो वहां न मिल सके

लूंगा, मुझे तो मेरे गुरु जी का यह पत्र दे दो, मैं इसको फिर जहां से (देहरादून) आया वहीं ले जाऊंगा। डाक्टर जी के आग्रह को टाल न सके। डाक्टर जी पत्र प्राप्त कर सन्तुष्ट हो गये। जब वे अवसर प्राप्त कर भारत आये तो सुरक्षित रूप से पत्र साथ ले आये।]

अनुमान १२ वर्ष हुए मैं डा० केदारनाथ जी को मिलने उनके घर गया, उन्होंने कहा मेरा शरीर अस्वस्थ रहता है। स्वामी जी महाराज का मेरे पास एक स्मृति पत्र है, जिसको मैंने दूर देश से लाकर बड़े प्रयत्न से सम्भाल रक्खा है, कहीं नष्ट न हो जावे यही चिन्ता है। आप ठीक समय पर पहुचे। ये शब्द उन्होंने श्रद्धा प्रेम भरे हृदय से कहे और शीशे में जड़ा हुआ पत्र मुझे सौंप कर निश्चिन्त हो गये।"

[1] मूल पत्र पं० विष्णुलाल जी के पास था। सारा पत्र ऋषि के अपने हाथ का लिखा हुआ है।

[2] अर्थात् अपने भाई ख्यालीराम को। ख्यालीराम लालपुर जिला एटा का रहने वाला था।

तो लिखिये। फिर यहाँ से तजवीज हो जायगा। सब से मेरा नमस्ते कह दीजियेगा।

मि० चैं० शु० ८ गुरुवार सं० १९३८, ता० ७ मार्च[1]।

[दयानन्द सरस्वती] (जयपुर)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४५०] पत्र (३००)

ओ३म्[2]

चोबे कन्हैयालाल जी आनन्दित रहो नमस्ते।

विदित हो कि पत्र आप का आया[3], समाचार विदित हुए। आप ने प्रश्न किये सो सब हमारे पुस्तकों में उत्तर सहित लिखे हुए हैं। उन में देखने से सब बातें विदित हो सकती हैं। तुम ने प्रथम ही बार ये प्रश्न किये हैं। इस लिए इस दफे तो सब के उत्तर देते हैं। परन्तु आगे हम से प्रश्न करोगे तो हम उत्तर नहीं देंगे, क्योंकि हम को काम बहुत हैं इस कारण से समय बिलकुल नहीं मिलता। उत्तर (१) संध्योपासन और गायत्र्यादि [जप] नित्यकर्म द्विजों अर्थात् तीनों वर्णों के लिए एक ही हैं। तीनों वर्ण गुण कर्मों से माने जायेंगे, जन्म से नहीं। शूद्र जो विद्यादि गुणों से हीन है इस कारण से उसे संध्योपासन नहीं आ सकता। इसलिए वेद के किसी मन्त्र को याद करके जपा करें।

---

[1] ७ एप्रिल १८८१ चाहिये। क्योंकि चैत्र शु० ८ गुरुवार को ७ अप्रेल थी।

[2] यह पत्र पहले म० मुन्शीराम जी के संग्रह में छपा था। इसको उन्होंने परोपकारिणी सभा के पास पड़ी हुई मूल पत्र की नकल से ही छापा था। पश्चात् मूल पत्र को चोबे कन्हैयालाल जलालाबाद वालों के भतीजे श्री यज्ञदत्त जी से रु० ११) देकर ता० ७ जनवरी सन् २७ को म० मामराज जी ने फरुखाबाद में खरीदा था। अब उसी से शुद्ध कर के छापा है। म० मामराज ता० ३ से ७ तक जलालाबाद, फतेगढ़ आदि में इसी पत्र के प्राप्त करने में लगे रहे थे। मूल पत्र मुंशी समर्थदान का लिखा हुआ है और हस्ताक्षर ऋषि के हैं। लिफाफे पर पता इस प्रकार लिखा हुआ है—

चोबे कन्हैयालाल, ग्राम जलालाबाद, परगना कन्नोज, जिला फरुखाबाद।

मूल पत्र लिफाफे सहित हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

उ० (२) कायस्थ अंबष्ठ हैं,[1] शूद्र नहीं। इस विषय में संक्षेप से लिखा है। विस्तार पूर्वक शास्त्रों के प्रमाण देकर लिखने को समय नहीं है।

उ० (३) मुसलमानादि अन्य मत वाले वैदिक मत में आवें तो वे जिस वर्ण के गुण और कर्म युक्त हों उसी वर्ण में रह सकते हैं। विवाह और खान पानादि व्यवहार भी अपने समान वर्ण के साथ करें। आजकल के आर्य्य लोग उन के साथ उक्त व्यवहार नहीं करेंगे, इसलिये अपने लोगों में ही करें और मत वैदिक रक्खें। इस में किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार संक्षेप से दिये हैं। विस्तार पूर्वक हमारे बनाये ग्रन्थों में देख लो।

ता० १६ अप्रैल[2]	हस्ताक्षर
	दयानन्द सरस्वती
सं० १८८१ ई०	स्थान जयपुर राजपूताना

—:o:—

## [पूर्ण संख्या ४५१]		पत्र (३०१)

लाला रामशरणदास जी आनन्दित रहो।[3]

हमने एक कार्ड भेजा था[4] आपके पास पहुंचा होगा।

आपने आगरे से कागज मंगवा लिये वा नहीं, क्योंकि उस कागज़ को आपको भी पहिले देखना चाहिए। लाला गिरधर लाल जी ९ ता० मई [१८८१][5] को तुम्हारे पास आने को लिखते हैं सो आप भी उनसे पत्र द्वारा निश्चय करलें। और उसी दिन की इतला बखतावरसिंह को भी करदें

---

[1] ब्राह्मण से वैश्य की कन्या में उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ कहाता है—ब्राह्मणाद् वैश्यकन्यायामम्बष्ठ नाम जायते। मनु १०।८॥

[2] वैशाख कृष्ण २ शनि, सं० १९३८।

[3] यह पत्र स्वर्गीय ला० रामशरणदास जी रईस मेरठ वालों क पुराने पत्रों में से म० मामराज जी तथा लाला जी के पोते बाबू परमात्माशरण तथा श्री पुरुषोत्तमप्रसाद जी ने जुलाई सन् १९४५ में खोजा। मूल पत्र उन्हीं के यहां सुरक्षित हे।

[4] सम्भवतः पूर्ण संख्या ४४२ (पृष्ठ ४८८) का कार्ड।

[5] पत्र के अन्त में तिथि—संवत् कुछ नहीं है। प्रकरण तथा अनुमान से प्रतीत होता है कि वैशाख शुक्ल ५ संवत् १९३८ मंगलवार ता० ३ मई १८८१ को मेरठ भेजा गया होगा।

कि अमुक मिति को इस काम का आरम्भ होगा कि जिससे वह भी नियत समय पर उपस्थित हो जावे। और अब छापाखाना प्रयाग में आ गया[1] सब काम दुरुस्ती से चलने लगा। अब आप लाला शादीराम को भी वहां से बुला लीजिये। क्योंकि अब पंडित सुन्दरलाल जी वहां का सब प्रबन्ध कर लेंगे। उन बिचारे ने यथाशक्ति ऐसे समय पर काम दिया। सो बहुत कुछ अच्छा किया। और हम शादीराम को लिख भेजेंगे। यहां से हम कुछ दिनों में अजमेर को जावेंगे। सब से हमारा नमस्ते कह दीजिये। और यहां जयपुर के लोगों के भाग्य मन्द हैं। कुछ भी धर्म की उन्नति वा कहने सुनने को उद्यत नहीं होते। सन्धिविषय छप गया, अब आप लोग पढ़ने पढ़ाने का आरम्भ क्यों नहीं करते? और नामिक भी अब छपकर आता है।

[द० स०] (जयपुर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४९२] पत्र (३०२)

ओ३म्

प्रसन्नता पत्र[2]

विदित हो कि मुनशी समर्थदान मंगलदान जी के पुत्र ग्राम नेठवे ताल्लुका रामगढ़ रियास्त सीकर राज जयपुर के रहने वाले हैं। इन्होंने मुंबई में हमारे वेदभाष्य कार्यालय का काम एक वर्ष तक बड़े प्रेम परिश्रम और चतुराई से किया। इन के काम देखने और ये हमारे पास भी कई दिन तक रहे। इस से हम ने निश्चय किया है कि यह पुरुष धार्मिक, निष्कपटी सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील, और चाल चलन का बहुत ही अच्छा और श्रेष्ठ है। इस लिये बहुत प्रसन्न होके लिखते हैं कि जो कोई महाशय इनको उन्नति देंगे, तो हम बहुत प्रसन्न होंगे। और हमें पूरी-पूरी आशा है कि इनके आधीन जो कार्य होगा, उसको यह अच्छे

---

[1] वैदिक यन्त्रालय चैत्र शु० १ सं० १९३८ (=३० मार्च सन् १८८१) के दिन प्रयाग लाया गया था। द्र० ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास ८ वां परिशिष्ट।

[2] इसकी छपी हुई प्रति आर्यसमाज फरुखाबाद में है। उसी से म० मामराज जी ने सन् १९२७ में इस की प्रतिलिपि की। मूल पत्र मु० समर्थदान के घर में होगा।

प्रकार पूर्ण करेंगे। हमने यह प्रसन्नता पत्र इनको बड़ी प्रसन्नता पूर्वक इस लिये दिया है किसी नये स्थान में ये जाय तो अजान लोगों को भी इन के सद्गुण प्रगट हों।

मिती वैशाख शुक्ल ६   हस्ताक्षर
सं० १९३८। तारीख ४   दयानन्द सरस्वती
मई सन् १८८१   स्थान जयपुर (राजपूताना)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४५३]   पत्र सूचना (४७)

मैडम ब्लेवेस्ट की के नाम बम्बई भेजा गया][1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४५४]   पत्रांश (३०३)

भाई जवाहरसिंह [मन्त्री आर्यसमाज, लाहौर]।

[2]मैडम ब्लेवेटस्की के पत्र का उलथा तुम ने भेजा था, सो आ गया। और उस का उत्तर भी हम ने मुम्बई में भेज दिया।[3]

१२ मई [१८] ८१[4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४५५]   पत्र (३०४)

लाला कालीचरण जी रामचरण जी आनन्दित रहो[5]।

यदुनाथ मित्र को जो तुम ने ४०) रु० मासिक पर नियत किया है सो

---

[1] इस पत्र की सूचना अगली पूर्ण संख्या ४५४ के पत्र में है।

[2] यह उत्तर में भेजा गया पत्र पूर्व पूर्णसंख्या ४४४ (पृष्ठ ४८८) पर छपे पत्र से भिन्न प्रतीत होती है। इसी प्रकार का एक पत्र आगे भाई जवाहरसिंह के नाम २२ जुलाई १८८१ को लिखा छपा है। द्र० पूर्ण संख्या ४६३।

[3] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८४० (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७६) पर उद्धृत। अजमेर से भेजा गया।   [4] वैशाख शुक्ल १४ बृह०, सं० १९३८।

[5] म० मामराज ने मार्च सन् १९२७ में आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पुराने पत्रों में से खोजा था। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

ठीक है परन्तु इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये। और इस में केवल लड़के ही पढ़ते हैं अथवा हमारे रईस लोगों में सें भी कोई पढ़ता है। और उस पाठशाला में से कोई विद्यार्थी अच्छे निकले वा नहीं, क्योंकि शाला को एक वर्ष हो चुका है चौबे तोताराम का हाल लिखा सो जाना। उस का मिज़ाज तेज है सहन शक्ति बहुत कम है। जयपुर में हम डेढ़ मास पर्य्यन्त रहे। वहां अभी राज्य प्रबन्ध में गड़बड़ सा है। और सब सर्दार लोग तो मिले थे, परन्तु राजा अभी नहीं मिला। इस लिये कि उनके बाधक लोग बहुत हैं। वहां पर वेदधर्म के प्रकाश की बड़ी आवश्यकता है। सो हमने कुछ-कुछ वहां संस्कार भी डाला है। ईश्वर करे कुछ फल लगे। हिसाब के विषय में जो तुमने लिखा सो यह बख्तावरसिंह का गड़बड़ था। अब प्रयाग में हिसाब ठीक हो रहा है। सो सबको विदित होगा। परन्तु सीधा हिसाब तो आप लोग जानते हैं कि प्रति ग्राहक दोनों वेदों का चार वर्ष का २५।।)चाहिये। इसी हिसाब से देखकर भेज दो। और लाला निर्भयराम के पास भी हिसाब से होगा। उनसे भी समझ सकते हो। आप को भी विदित करते हैं कि आर्य्यसमाज लाहौर से एक अखबार अंग्रेज़ी भाषा में जारी होने वाला है। इससे यह अभिप्राय है कि उसके द्वारा वेदोक्त आर्य्य धर्म्म तथा आर्य्य समाजों की कारवाई राज प्रधान अंगरेज़ लोगों को भी विदित होती रहे। वरन विलायत वालों पर भी प्रगट होता रहेगा। इसके प्रबन्ध में आर्य्यसमाज लाहौर और मेरठ की अन्तरङ्ग सभा की ठीक-ठीक अनुमति हो गई है। इसके नफे नुकसान में सहभागी रहेंगे। मेरी अनुमति है आप लोग भी इनके शामिल होओ क्योंकि इस्से आमदनी और तुम्हारे धर्म्म तथा आर्य्यसमाजों की कारवाई का ठीक ठीक वृत्तान्त गवर्नमेण्ट तथा सम्पूर्ण अङ्गरेजों को विदित भी होता रहेगा, जिस्से अनेक अच्छे लाभों की आशा हो सकती है। और अनुमान होता है कि यह पत्र विलायत के बड़े-बड़े ठिकानों में पहुंचेगा, इस से आशा है कि लाभ भी अच्छा होगा। पण्डित गोपालराव हरी ने जो एक मुदर्रिस हमारे पास भेजने को कहा था वह अभी तक नहीं आया। जिसकी १५ दिन का अर्सा हो गया। सो उन से कहना कि क्या कारण है जो अभी तक नहीं आया। किमधिकम्।

वैशाख शुक्ल १४ संवत् १८३८।[1]

—:o:—

---

[1] १२ मई सन् १८८१। यह पत्र अजमेर ने भेजा हुआ है।

[पूर्ण संख्या ४५६] पत्रांश (३०५)

[चुरु के सेठों के सरपञ्च][1]

एक अच्छी वर्षा होने पर हम अजमेर से कहीं को रवाना हो सकेंगे। क्यों उदयपुर मेवाड़ की तरफ भी कुछ हमारे बुलाने का विचार हो रहा है। यदि उदयपुर को गये तो वह भी आप लोगों का विदित किया जायेगा। शायद इन दोनों स्थानों को जाने से सवारी लेने को आवश्यकता नहीं दीखतो। जब जरुरत होगी आप को लिखा जायगा।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४५७] पत्र (३०६)

ओम्

सेठ निर्भयराम जी आनन्दित रहो।[2]

यह पत्र आप को आवश्यक समझकर इसलिए लिखा जाता है कि आप इस को उपसभा[3] में सब लोगों को सुना देंवे। मुंशी कालीचरण रामचरण जी के पत्र से विदित हुआ कि आप लोगों की पाठशाला में आर्य्यभाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अङ्गरेज़ी वा उर्दू फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट जिस्के लिए यह शाला खोली गई है सिद्ध होता नहीं दीखता। वरन आपका यह हज़ारहा मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है। हम ने कभी परीक्षा के कागज़ात वा आज तक की पढ़ाई का फल कुछ नहीं देखा। आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्य्यावर्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है। वरन संस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अङ्गरेज़ी लोगों की मृतभाषा हो चली है। अङ्गरेज़ी का प्रचार तो जगह-जगह सम्राट की ओर से जिनकी

---

[1] यह पत्रांश पूर्ण संख्या ४५७ (पृष्ठ ५०२ पं० २०) में उद्धृत है।

[2] फरुखाबाद आर्यसमाज के पुराने पत्रों में से म० मामराज ने सन् १९२७ में खोजा था। मूल पत्र म० मामराज जी के पास श्रीराम निवास (बिल्डिंग) खतौली मुजफ्फरनगर में सुरक्षित है।

[3] इस उपसभा का पूरा नाम 'मीसांसक उपसभा' था। इसके विषय में पूर्ण संख्या २९६, पृष्ठ ३४२ का पत्र देखें। इस सभा के विषय में परिशिष्ट ३ में आर्य समाज फरुखाबाद के रजिस्टर से आवश्यक विवरण छाप रहे हैं।

यह मातृभाषा है भले प्रकार हो रहा है। अब इस्को वृद्धि में हम तुमको इतनी आवश्यकता नहीं दीखती। और न सम्राट के सामने कुछ कर सकते हैं। हां, हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिस्का सहायक वर्तमान में कोई नहीं है। और यही व्यवस्था देखकर संस्कृत के प्रचारार्थ आप लोगों ने यह पाठशाला स्थापित की है। तो यह भी उचित कर्तव्य अवश्य है कि सदैव पूर्व इष्ट के सिद्धि पर दृष्टि रक्खी जावै। अब इस के साधनार्थ यह होना चाहिये कि **कुल पठन पाठन समय के छः घण्टों में ३ घण्टे संस्कृत २ घण्टे अङ्गरेज़ी और १ घण्टा उर्दू फारसी पढ़ाई जाया करे।** और प्रति मास संस्कृत की परीक्षा अन्य पण्डितों के द्वारा हुआ करे। और वे प्रश्नोंत्तरों के कागज़ात हमारे पास भेजे जाया करें। अभी तक कुछ फल संस्कृत में इस शाला से नहीं लगा। सो इस लिये ऊपर जो कुछ लिखा गया उस्को वर्त्ताव में लाओ तो अपने अभीष्ट के सिद्धि होने की आशा कर सक्ते हैं। किमधिकं सुज्ञेषु।

आजकल हम ऐसे देश में हैं जहां पर इस ऋतु के श्रेष्ठ फल अर्थात् आम पके तो दरकिनार कच्चे भी नहीं मिलते। उस ओर इस्को फसल कैसी हुई है। यदि वहां आम फले हों तो एक बार मुंबई आम अथवा और प्रकार के जो तुम्हारी समझ में अच्छे हों दो सौ तीन सौ रेल द्वारा प्रबन्ध करके भेज दो। परन्तु वहां से गद्दर आम रवाने करना जिस्से यहां पर ठीक-ठीक आन पहुंचे। यदि डाक गाड़ी में रख दोगे तो शायद ठीक रहेगा। हमारे पास जयपुर के मुकाम पर चुरु सेठों के सरपञ्च का पत्र आया कि आप यहां पधारें। और लिखा है कि सांभर के रेलघर[1] पर रथ, बहल और ऊंट इत्यादि सवारी भेज देवें अभी तो हमने उनको यही उत्तर लिख दिया है कि एक अच्छी वर्षा होने पर हम अजमेर से कहीं को रवाना हो सकेंगे। क्योंकि उदयपुर मेवाड़ की तरफ भी कुछ हमारे बुलाने का विचार हो रहा है। यदि उदयपुर को गये तो वह भी आप लोगों को विदित किया जायेगा। शायद इन दोनों स्थानों को जाने में आप से सवारी लेने की आवश्यकता नहीं दीखती। जब जरूरत होगी आप को लिखा जायगा। पत्र का उत्तर देना। किमधिकम्।

ज्येष्ठ कृष्ण ११ सं० १९३८। हस्ताक्षर
ता० २३ मई १८८१ ई०। दयानन्द सरस्वती (अजमेर)

—:०:—

---

[1] रेलघर=रेलवे स्टेशन।

[पूर्ण संख्या ४५८] **पत्र (३०७)**

ओ३म्

लाला मूलराज जी एम० ए० आनन्दित रहो[1] ।

अर्सा तीन महीने के लगभग व्यतीत हुआ कि हमने आगरे के मुकाम से प्रथम ही गोकरुणानिधि की प्रति आपके पास इस अभिप्राय से भेज दी है कि इस्का बहुत अच्छा तर्जुमा अङ्गरेजी भाषा में कर दीजिये । कि वह जल्द छप कर अङ्गरेज़ राजपुरुषों वा सामान्यों के अवलोकनार्थ विलायत तक भी भेजी जावें । जिस्से इस बड़े धर्म्म कार्य्य में फल प्राप्ति होवै । परन्तु मालूम नहीं अब तक उस्के तर्जुमे में क्यों विलम्ब हुआ । शायद आप भूल गये वा कार्य्य की बहुतायत से यह ढील हुई । ऐसे कार्य्य में आलस्य वा सुस्ती होना अच्छा नहीं । सो अब शीघ्र उक्त काम को पूर्ण करके भेज दीजिये । जयपुर में हम डेढ़ मास तक रहे । यथ[ा] शक्य अच्छा संस्कार वहां पर हमने डाल दिया है । ईश्वर चाहे वृद्धि होकर सफल होगा । अब ता० ६ मई से हम यहां अजमेर में हैं । सेठ फतेमल जी के बाग की कोठी में ठहरे हैं । प्रति दिन रात को दो घण्टे रोज व्याख्यान हो रहा है । हम सब प्रकार यहां आनन्द में हैं । आप अपनी कुशलता के समाचार भी दीजिए । किमधिकम् बहुज्ञेषु ।

ता० २८ मई सन् १८८१ ई० ।
मिती ज्येष्ठ सुदी १ सं १९३८ ।

द० स०
(अजमेर)

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४५९] **कार्ड (३०८)**

राजा दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो[2] ।

आप के लेखानुसार १०० ग्राम काशी से हमारे पास आ गये । हमने बम्बे फर्रुखाबाद से भेजने को लिखा था । आपने काशी से भेजने का परिश्रम

---

[1] मूलपत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

[2] यह कार्ड हमारे संग्रह में सुरक्षित है । सन् १९२७ में लाखों पत्रों में से खोजकर म० मामराज जी लाये थे ।

किया । आम बहुत अच्छे निकले । यहां पर तो आमों का बिल्कुल अभाव है । **जहां तक बने पाठशाला के उद्देश पर कि संस्कृत की उन्नति होनी सो इस पर अच्छे प्रकार ध्यान रहे** । समाज के कार्य्य प्रेमी प्रीती और उत्साह के साथ करते कराते रहें । दस दिन अभी हम यहां रहेंगे । पीछे यहां से चलते समय इत्तिला दी जायगी । मुंशी इन्द्रमणि के मु० का हाल सुन[ा] होगा ।

ता० १० जून[1] ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४६०] पत्र (३०९)

राजा दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो[2] ।

आपका कार्ड आया । समाचार विदित हुए । जयपुर में कुछ थोड़ा सा संस्कार हो गया है । और अजमेर में छोटा सा आर्यसमाज नियत हुआ है । ईश्वर करे इसकी वृद्धि हो । हम तारीख २३ जून को गुरुवार[3] को यहां से मसूदा को जो अजमेर से १२ वा १३ वा कोस है, जायंगे[4] । क्योंकि वहां के राव साहब ने बड़ी प्रीतिपूर्वक निमन्त्रण किया है । वहां अधिक से अधिक १५ दिन तक रहेंगे । आम भेजें तो गादर वा कुछ कच्चे से भेजिये । जिस्से यहां पर पकते रहें । क्योंकि पहिले आम जो काशी से आये थे थोड़े काल में अकसर बिगड़ गये थे । सो अब एक ही वार भेज दीजिये । । क्योंकि वार-वार तकलीफ होती है । **पाठशाला में संस्कृत का काम ठीक ठीक होना चाहिये** । जैसे मिशन स्कूलों में लड़के अपने अन्य स्वार्थ सिद्धि के लिये बाईबिल सुन लेते हैं और कुछ ध्यान नहीं देते, वैसे जो संस्कृत सुन लिया

---

[1] सन् १८८१ (=ज्ये० शु० १३ सं० १९३८) अजमेर से । इस पर हस्ताक्षर नहीं हैं ।

[2] पहले हमने इसे बा० देवेन्द्रनाथ के संग्रह से छापा था । पश्चात् ता० २७ मार्च १९२७ को म० मामराज जी ने मूल पत्र से शुद्ध किया । मूलपत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है । फरुखाबाद का इतिहास नामक ग्रन्थ के पृ० २१६ पर छपा है ।

[3] आषाढ़ वदी १२ सं० १९३८ ।

[3] आषाढ़ वदी १२ बृहस्पतिवार को ४ बजे दिन के अजमेर स्टेशन से रेल में चढ़ कर नसीराबाद पहुंचे । वहां से रथ पर चढ़ ९ बजे रात्रि को मसूदे जा विराजे । देखो, देशहितैषी, अजमेर, खण्ड १, अङ्क २, ज्येष्ठ संवत् १९३९ ।

तो क्या लाभ होगा । इस पाठशाला में मुख्य संस्कृत जो मातृभाषा है उसको ही वृद्धि देना चाहिये । वरन फारसी का होना कुछ अवश्य नहीं । केवल संस्कृत और राजाभाषा अंगरेजी दो ही का पठन-पाठन होना अवश्य है । सो आधे-आधे समय दोनों जारी रहें । और दोनों की परीक्षा भी माहवार बड़ी सावधानी और दृढ़ नियम के साथ हुआ करे । और दोनों ही की अपेक्षा से कक्षा वा नवम्बर की वृद्धि विद्यार्थियों की हुआ करे । और हम को सदैव परीक्षा पत्र भेजा करो । विशेष कर संस्कृत के विद्यार्थियों के माहवार पाठन का व्यौरा और किस कक्षा में कौन-कौन पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, कितनी-कितनी हुई, यह सब सूचना दिया करो । किमधिकम् विज्ञेषु । विशेष फिर आप को लिखेंगे ।

मिति आषाढ़ वदी ६ सम्वत् १९३८,
ता० १७ जून १८८१ ई० ।

दयानन्द सरस्वती
(अजमेर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४६१] पत्र (३१०)

ओ३म्

बाबू छेदीलाल जी आनन्दित रहो ।

जो कागज़ात हमने आगरे में बहुत पुरुष जो कि हिसाब के जाननें वालों की संमति से निश्चित किया है । "वे" उड़दू में तो वहां आपके पास है । और जो उनका नक़ल नागरी हमारे पास थी," वह सब आपके पास भेजते हैं । देख विचार ठीक कर जितने उस पर बाकी निकलें हुक्म लिखिये । उस फैसले में जो-जो "उसने" ख्यायानत के अपराध किये हैं, वे भी लिख दीजिये । १—एक स्वामीजी से विश्वासघात करना । २—दूसरा हिसाब जैसा मैनेजर को रखना चाहिये वैसा न रखना । ३—तीसरा छापेखाने के स्वामी की आज्ञा के बिना चोरी से अन्य के पुस्तकादि छाप के उसके

---

१. इस पत्र में जो वाक्य वा शब्द " " (इनवर्टिड) कामों के संकेतित हैं, वे सब ऋषि दयानन्द के स्वहस्तलिखित हैं ।

लाभ का गमन कर जाना। ४—हिसाब देने में झूठे छल "कर" के "अन्यथा" व्यवहार करना। ५—हिसाब "न" देने के लिये" झूठे हीले "किया" करना। ६ हिसाब देने के विना छापेखाने से चले जाना। ७—छापेखाने से जाते समय अपनी २० गठड़ियों को मास्टर शादीराम को दिखलाये विना "लेकर" चले जाना। इत्यादि जो-जो हम ने इन कागज़ों पर लिखा है उस को विचारिये। ये सब कागज़ात बखतावर के रजष्टर आदि से जांच के लिखे हैं। और इसकी नकल उड़दू में भी आगरे के कागज़ों में थी। उसको आप लोगों ने क्यों न देखके क्यों न फैसला कर दिया होता। अब न मुझ से और न बखतावरसिंह से पूछने की अपेक्षा करनी चाहिये। क्योंकि बख० तो ऐसा ही चाहता है कि यह मामला ऐसे ही घसड़ पचड़ हो के रह जाय। इन बखतावर के कागज़ातों के देखने से निश्चित होता है कि ८०००) रुपयों से कम गमन और हानि बख० ने नहीं की है। आगे जैसा आप लोगों के ध्यान में आवे वैसा कीजिये। मैं यह आप लोगों से कहता हूं कि इस मामले में जैसा आप करेंगे वैसा ही मुझको स्वीकार होगा। जो यह हिसाब लिखा है उस से कुछ कम डिगरी करनी चाहिये, अधिक नहीं। क्योंकि सत्य व्यवस्था होनी चाहिये। जो बख०सिंह के कर्म्म देखे जायं तो जितना उस पर दण्ड करे उतना ही थोड़ा है। परन्तु मुझ को आशा है कि आप लोग सत्य ही न्याय करेंगे। "अब जो हम ने जांच परताल कर उस के कागजात से बाकी रुपैये उस से लेने जिस-जिस बाब[त] में जितने जितने रु० निश्चित किये नीचे लिखते हैं।।"

१०६०।) "ये रु० वे हैं कि" जो मासिक हिसाब हमारे पास भेजता था। और बाद इस के शादीराम ने जो मास-मास में खर्च किया उन दोनों के मिलाने से जितने उस ने अधिक खर्च किये हैं।

६६७१।।।≡)ये रुपये "वे हैं कि" जितने फर्मे मास्टर शादीराम ने अर्थात् किसी माह में १४ किसी में १५ और किसी में १६ छपवायें और उस बखतावर "सिंह" ने ७ फर्मों से अधिक किसी माह में नहीं छपवाये और काम सरकारी आदमियों से रात दिन लेता था। चारी से दूसरों के पुस्तक छपवाता था जैसे कि ला रिपोर्ट, उसके दाम अन्य पुस्तकों के गिने हैं।

३००) ये रुपये "वे हैं कि जो कि उसने" टैप आदि के जो कि छापेखानें में थे और कम सौंपे। शीशा सर्कारी, फौंडरी, टैप और ढालने वाले भी सर्कारी थे। और कई एक चीजें वह ले गया। उनका तो पता ही नहीं। तो भी ऊपर लिखे रु० निकलते हैं।

१४७ -) "ये" रुपये "वे है कि" जो उसे सन्ध्यादि पुस्तकें सौंपी थीं और जितनी उस ने दीं "जितनी का खर्च रजष्टर में उसने लिखा है उस से जो" बाकी "रहे उन के दाम इतने" निकलते हैं ।

३५३॥।) "ये" रुपये "वे हैं कि जो" भूमिका के "पुस्तक" उसे सौंपी थीं उस के जमा खर्च से "बाकी निकलते" हैं ।

४४२ -) "ये" रुपये "वे हैं कि जो" ऋग्वेद के १२८६ अं-"क उस" को दिये "थे उससे कम दिये अर्थात् जितने उसने रज[ष्ट]र में खर्च में लिखे हैं उस से बाकी के हैं ।" और

४६३॥।≡) "ये" रुपये "वे हैं जो कि" यजुर्वेद के १४३७ अंकोके जमा खर्च देखने से उसी पर बाकी निकलते हैं ।

सब मिलाकर—

८६६८॥।≡) रुपये होते हैं ।

ये सब रुपये उसी के हाथ के कागजादों से उसी पर निकलते हैं। वे कागज आपके पास "भी" हैं । और जो उसकी नकल हमारे पास नागरी में थी वह हम भेजते हैं। इसको भी आप लोग देख लीजिये। और इस की जाच पड़ताल उन्हीं रजस्टरादि से जो आपके पास हैं कर लीजिये। और उस के मासिक का रजस्टर अंग्रेजी में है। उसकी नकल भी फारसी में करवा के उस में रखी थी। और सब महीनों की चिट्ठियात भी माहवारी नम्बरवार हमने आगरे में कराके उन्हीं कागज़ों में रक्खी हैं । उसमें भी इस ने 'जो" जमा नहीं किया है वह हमने नहीं छांटा। "उन चिट्ठियों को आप लोग वहां जाच कर लीजिये'। "इस से उसकी बहुत सी चोरियां पकड़ी जायंगी। आगे जो आपने थियोसोफीष्ट भेजा नोटिस देखने के लिये, सो देखा। क्या किया जाय जिनके लिये उपकार करते हैं, वे ही उलटे विरोध ही करते जाते है। अच्छा जो दुष्ट दुष्टता को नहीं छोड़ते तो श्रेष्ठ श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें। ये का[ग]जात आप के पास इस लिये भेजे हैं कि लाला रामशरणदास जी नागरी नहीं पढ़े हैं। इनको आप देख के उन को समझा दीजिये। और सब से मेरा आशीर्वा[द] कहियेगा। यहां वर्षा

---

१. यहां से लेकर अन्त तक श्री स्वामी जी के अपने हाथ का लिखा हुआ है। इस पत्र को अनेक स्थलों पर श्री स्वा० जी महाराज ने स्वहस्त से शोधा है। कई स्थानों पर नयी पंक्तियां भी लिखी है। “ ” उलटे (इनवर्टिड) कामों के अन्तर्गत सब लेख श्री स्वामी जी के हाथ का लिखा हुआ है।

बहुत हुई है। प्रतिदिन यहां राजमहल में व्याख्यान होते हैं। राजा आदि सब लोग अति प्रीति से सुनते हैं। अब जैसे बने वैसे यह मामला शीघ्र कर दीजिये। किमधिकेन व्यवहारज्ञेषु।

मि० श्रा० व० ६ मंगलवार[1]।

[दयानन्द सरस्वती]
(मसूदा) जिले अजमेर।[2]
इसका उत्तर शीघ्र भेजियेगा।"[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४६२] [हिसाब के काग़ज़ात]

हिसाब कलकत्ते का जो बखतावरसिंह ने किया[4]।

७५) हवाले जादोनाथ पेशगी वास्ते खरीद करने १ मन डबल ग्रेट। १ मन २८ सेर डबल पीका नागरी। २॥ मन सोसा। १५ सेर क्वाइटेशन। साढ़े बारह सेर क्वाडरेस्त। ता० ३० दि० स० ७६।

---

५०) रसीद तारीख ३० दिस० १८७६

८००=)॥। रसीद नम्बरी ६०२ पार्कर को० ता० ३ जनवरी १८८० कलकत्ता बाबत खरीद

रायल प्रेस	१	६००)
,, प्रोच सेंट	२	४॥) दर २।)
उमद[ा]बारीक कम्बल	१	३।)

---

[1] १६ जुलाई १८८१। यद्यपि पत्र पर संवत् नहीं लिखा गया, तथापि प्रकरण से और मसूदा से लिखे जाने से इसी तिथि सं० १६३८ का है।

[2] यह पत्र उन उन नम्बर वाली चिट्ठियों तथा हिसाब आदि के लम्बे पत्रों सहित भेजा गया था। अक्टूबर सन् १६२६ में मा० मामराज जी मेरठ से लाये थे। मूलपत्रादि हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[3] इस पत्र से सम्बद्ध हिसाब का पूर्ण विवरण आगे पूर्ण संख्या ४६२, पृष्ठ ५०८ से ५१२ पर देखें।

[4] लाला छेदीलाल जी को लिखे पूर्व पूर्ण संख्या ४६१ पर मुद्रित पत्र के साथ इस हिसाब का सम्बन्ध है। इस पर भी स्वामी जी ने स्वहस्त से छः टिप्पण दिये हैं।

कम्बल मोटा	१	४।।)
रायल रूलर फ्रेम	१	६।।।)
जाब	१	२।।)
रब कटर	१	
	१३२	९६।)
	"	१८। =)।।।
	"	२३।)
खर्च बंधवाई		२०)

---

७०) हवाले बिहारीलाल दत्त पेशगी बाबत खरी[द] ३ मन ग्रेट प्राईमर दर ४०) मन। ता० १ जन० १८८०

२९०।)। बाबत कीमत कागज दो गट्ठे २०×२४ पौंड कीमत २९२≡), डिलेवरी चार्ज १) कुल २९३≡) कमीशन २।।। =)।।ः बाकी २९०।)। ता० ३ जन० १८८०

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण १]

"यह भी रसीदें कलकत्ते की हैं। इन से भी प्रेस की चीजों का भाव आगम और खर्च विदित हो जायगा।"

२९।) बाबत रूलर मोल्ड केशसेल जान डि० कं० ता० ५ जन० १८८०।

५०।।। =) ४ रसीद जा० डि० कं० ३ जन० १८८०

२ ब्रास रूलर	६)
१ तथा	२।।)।।
१ तथा वार्निश	२।।)।।
१० टिन काली स्याही नं ३	१७।।) दर १।।।)
१० तथा	५) दर ।।)
५ इङ्गलिश बोडर नं० ५०	७।) ४ दर १।≡)
बोर्डर नं० ६३	६। =)।। दर १।। -)४
१ चेक नं० ११६५	१।। ≡)।।
बन्धवाई आदि	२)

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण २]

"यह लेख इस लिये है कि प्रेस की हर एक चीज का भाव विदित हो

सके। इससे कितनी चीजें छापेखाने में उस ने सोंपी और कितनी उड़ा ले गया।"

१४१।-) रसीद पोस्ट आफिस नं० १६८ ता० ९ अक्टूबर १८८० अधरचन्द्र टाइपं फौंडर

---

१२५) टाइप फौंडर जान डिकिशन से दिलाए १० सि० १८८०

१६२१।।।≡)४ मीजान

जो बखतावरसिंह ने कलकत्ते भेजा प्रथम स्वामी
जी से लेकर १५०—०
दूसरे तथा १४८

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण ३]

"इतने रुपेंयों को मुझ से लेके कलकत्ते में खर्च किया बख० ने। इस से अधिक जितने कल[1] कलकत्ते में भेजे वे अभयराम चुन्नीलाल की दुकान से भेजे थे। उसने इन रूपैंयों में से बहुत सी सामग्री अपने छापेखाने की है"

रुपया जो कि बखतावरसिंह ने कलकत्ते भेजा।

२९ जनवरी १८८० को स्वामी जी से लेकर	३२७)
२ फ़रवरी १८८० को तथा	१५००)
माघ ब० ४ सं० १९३६ तथा	२९३)
	२१२०)
अप्रेल मास में उसके रजिस्टर के अनुसार	४०)
मई	१००)
जून	२००)
अगस्त	२५५।)
सितं०	५४६।-)
	११३७।।-)
कुल मीजान	३२५७।।-)

---

[1] 'कल' व्यर्थ लिखा गया है।

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण ४]

यह वह हिसाब है कि उस ने कलकत्ते में कितने रुपैये भेजे। इन से क्या-क्या चीजें आई। इनमें कि[तनी] वर्तमान हैं। कितनी खर्च हुई। और कितनी उसने छापेखाने सोंपी। जो सोंपी वे कितने दाम की हैं। कौन चीज खर्च हुई। और कितनी उस ने गमन की। इसका निश्चय आप लोग करें उस से कि जो उस ने मास्तर शादीराम को उस ने जाती बखत सोंपी। उनका मूल्य का निश्चय रसीदों से कीजिये कि कौन चीज कितने मूल्य की है।"

वहां पर ३२५७।-) भेजा और रसोदें १६६१॥≡)४ की मौजूद हैं और ६७७॥=)॥ के बिल हैं ;

बिलों की रसीदें नहीं। रसीदों के बिल नहीं।

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण ५]

"इस से यह ठीक आपको विदि[त] हो जायगा कि उस ने कलकत्ते के हिसाब में कितने रुपैये उड़ाये लिये हैं और बिल के रुपैयों की पहुंच की रसीद न होने और रसीदों के बिल न होने से जालसाजी उसकी विदित हो जायगी। और उस [की] चिट्ठियों से निश्चित है कि कलकते का हिसाब चूकता कर दिया, तो बिल का होना और रसीदों का न होना सिवाय चोरी के क्या कह सकते हैं।"

बिल जो कि बखतावर सिंह ने किताब में चसपां किया और उनको रसीद नहीं है॥

१३२) बिल जान डिकि० कम्पनी तारीख २६ मई १८८०

१ बंडल कागज २० पौंड कीमती १३२॥-) डिलेवरी चार्ज ॥) कुल १३३१।-) कमीशन १।-) बाकी १३२)

---

१३२) बिल जा० डि० कं० ता० ९ अग० १८८०

१. बंडल कागज कीमत १३२॥-) डिलेवरी चार्ज ॥) १३३।-।) कमीशन १।-) १३२)

१२६॥≡)॥ बिल जा० कं० २६ जन० १८८०

१ बंडल कागज १० रिम वजनी ४८० पौंड कीमत १२७॥) मिनहा बाबत डिसकोंट १।)। बाकी १२६≡)॥ जमा किया डिलेवरी चार्ज १॥) कुल १२६॥≡)॥ [यहां १२७।≡)॥ होना चाहिये। सं०]

२५३।≡)बिल जा० डि० कं० ६ सित० १८८०, २ बंडल २० रिम वज़नी ६६० पौंड दर।)। फी पौंड कीमत २५५) डिसकोंट २।।)।।। बाकी २५२।≡)। डि० चार्ज १)कुल २५३।≡)।

३।।) बिल बाबू ब्रजभूषणदासदास कम्पनी २।।) कीमत संहिता यजुः १) कीमत सर्वदर्शनसंग्रह १८ अक्ट० १८८० ।

[इस पर श्री स्वामी जी के स्वहस्त का लिखा टिप्पण ६]

"ये रसीदें (दों) का तर्जमा है। इन रसीदों में से कई एक रसीदें फाड़ भी ली है। और कितनी एक रसीदें चिपकाई भी नहीं। हिसाब कोई न कर सके इस लिये यह काम उस ने किया।"

—:०:—

पूर्ण संख्या ४६३] पत्र-सारांश (३११)

[मैडम ब्लेवेस्तकी, बम्बई]

हम उपदेश से तुम्हारी यथाशक्ति सहायता करते रहेंगे और तुम्हारी सोसाइटी के सभासद [नहीं][1] हैं।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४६४] पत्रांश (३१२)

भाई जवाहरसिंह [मन्त्री आर्यसमाज, लाहौर[2]] ।

लेडी ब्लेवेस्टकी के पत्र[3] का उत्तर हमने दे दिया है। उसमें विशेष बात यही है कि हम उपदेश से तुम्हारी यथाशक्ति सहायता करते रहेंगे। और तुम्हारी सोसायटी के सभासद [नहीं][1] हैं।[4]

२२ जुलाई [१८]८१[5]

---

[1] यह पत्र सारांश ऋ० द० के पूर्णसंख्या ४६४ के पत्र में निर्दिष्ट है ।

[2] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८४० (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७६) में उद्धृत ।

[3] यह पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ४५३ में निर्दिष्ट पत्र से भिन्न प्रतीत होता है । हमें न मैडम ब्लेवेस्टकी का पत्र मिला और न उस के उत्तर में दिया गया ऋ० द० का पत्र ।

[4] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित में यहां 'नहीं' पद छूटा हुआ प्रतीत होता है। ऋ० द० के पूर्व पूर्ण संख्या ३८१ के पत्र की पृष्ठ ४४५ पं० २३, पृष्ठ ४४६, पं० १०-१३, पं० २१-२२, पं० २३-२७, पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

[5] श्रावण कृष्ण १२ शुक्र सं० १९३८ ।

[पूर्ण संख्या ४६५] पत्रांश (३१३)

[पं० मुन्नालाल मन्त्री आ० स० अजमेर]

१८ ता० अगस्त[1] को रायपुर [ब्यावर के निकट] जायेंगे[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४६६] पारसल-सूचना (२५)

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]

(पुस्तकें भेजी गईं)[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४६७] पत्र (३१४)

मेरठ आर्यसमाज मन्त्री आनन्दीलाल जी आनन्दित रहो[4]।

पत्र तुम्हारा आया समाचार विदित हुए। बड़े शोक की बात है कि बखतावरसिंह के मामला के कागजातों की सफाई कब करोगे। जो करना हो तो जैसा तुम लोगों को मालूम हो वैसा शीघ्र कर डालो। उस कागजात[5] के विना छापेखाने में भी बहुत हर्कत हैं।

---

[1] भाद्र कृष्ण ६, बृहस्पति सं० १९३८।

[2] मुन्नालाल को यह पत्र १७ अगस्त १८८१ को [भाद्र कृ० ८ बुध] मिला। संभवतः १५ या १६ [भाद्रकृ० ५ या ७ सं० १९३८] को मसूदा से लिखा गया होगा। देशहतैषी के रजिस्टर से लिया गया।

[3] इस पारसल की सूचना सेवकलाल कृष्णदास के १६ सितम्बर १८८१ के पत्र में मिलती है। सेवकलाल कृष्णदास ने जैनियों के कुछ ग्रन्थ भेजे थे। जिन्हें देखकर अनुपयोगी जानकर इस पारसल द्वारा लौटाया था। यह पारसल डाक द्वारा भेजा गया अथवा रेल से, यह अज्ञात है। सेवकलाल कृष्णदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] म० मामराज जी ने २३ जुलाई सन् १९४५ को ला० रामशरणदास रईस मेरठ वालों के पुराने सहस्रों पत्रों में से उनके पौत्र ला० परमात्माशरण तथा ला० श्यामलाल जी प्रधान आर्यसाज के साथ खोजा। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[5] कागजात के लिए पूर्ण संख्या ४६२ (पृष्ठ ५०८—५१२) देखें।

छः सात महीने तो हो चुके फिर कब इस झगड़े को निपटाओगे । और जो के रूपसिंह डाक्तर सिमले ने रुपैये भेजे थे रजिष्टर में जमा कर लिये हैं वा नहीं । थियोसोफिष्ट में जो नोटिस चतुर्भुज[1] का छपा है । सो बुरा है । हम उस का प्रत्युत्तर छपवाना नहीं चाहते, क्योंकि वह अयोग्य और अविद्वान् है । परन्तु जो तुम्हारी समझ में आवे सो तुम उसका उत्तर छपवा-दो । पण्डित भीमसेन वहां आर्यसमाज में रखने योग्य नहीं है ॥ सबसे हमारा नमस्ते कह देना । आजकल हम जिला अजमेर नयानगर[2] अजमेरी दरवाजे तार बङ्गले में निवास करते हैं ॥

आश्विन वदी ४ रविवार[3] ।

[दयानन्द सरस्वती]

और थियोसोफिष्ट में जो हमारे वेदभाष्य का नोटिस छपता है उस के अन्त में शादीराम का नाम लिखा जाता है । सो अब दयाराम मैनेजर प्रयाग लिखना चाहिए । सो तुम मुम्बई थियोसोफिष्ट को लिख देना ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४६८] पारसल-सूचना (२६)

[पं० दयारम, प्रयाग]
पुस्तकों का पारसल ।[4]

—:o:—

---

[1] इस व्यक्ति का हमें पता नहीं लगा कहां का है ।

[2] नयानगर, नयाशहर=व्यावर ।

[3] संवत् १९३८ । ११ सितम्बर १८८१ नयानगर (व्यावर) से मेरठ को भेजा गया ।

[4] इस की सूचना आश्विन शु० ६ सं० १९३८ (२९ नवम्बर १८८१) के पं० भीमसेन शर्मा के पत्र से मिलती है । पं० शादीराम वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के प्रबन्ध कर्त्ता थे । अतः यह पारसल उन्हीं के नाम भेजा गया होगा । पं० भीमसेन भी वहीं संशोधक थे । उनके नाम भी भेजा जा सकता है । पं० भीमसेन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[पूर्ण संख्या ४६९] पारसल-सूचना (२७)

[पं० दयाराम, प्रयाग]

१– ऋग्वेभाष्य के पृष्ठ।

२– यजुर्वेदभाष्य के पृष्ठ।

३– अन्वयार्थ की प्रेस कापी।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४७०] पत्र (३१५)

प्रशंसा-पत्र

श्रीमन् श्रेष्ठोपमायोग्य आर्यसमाजस्थ प्रधान और मन्त्री आदि सभासद आनन्दित रहो—

विदित हो कि श्रीयुत द्विवेदी श्रीमाली राज मसुदा के मुख मन्त्री श्रीमान् छगनलाल जी को यह पत्र लिखके दिया जाता है इसलिए कि उक्त जन जिस किसी आर्यसमाज में उपस्थित होवें, तो इनका सत्कार स्वात्मवत् प्रिय बंधुवत् करना उचित है, क्योंकि ये भी वेदोक्त धर्म्माचारी और आर्यसमाज अजमेर के सभासद हैं और इन को [हम] संवत् १९२३ के वर्ष से जानते हैं। यह सज्जन पुरुष हैं, उस समय अजमेर में एक साहूकार के यहां इनके पिता जी मुनीम थे, तथा अपने घर और अन्यत्र भी प्रतिष्ठित थे। और ये आचार विचार तथा शास्त्र-विषयो में भी समझते हैं, चाल-चलन भी इनका श्रेष्ठ है, और परोपकारी धार्मिक विश्वसनीय है, हमने बहुत प्रजास्थ पुरुषों से परोक्ष में पूछा तो उनने कहा कि ऐसा कामदार हमने आगे कभी न देखा था। सब प्रजा इनसे प्रसन्न है। इस से हमने जाना यह इस समय भी धार्मिक जन है।

मि० आ० शु० ११[2] सोमवार संवत् १९३८।

दयानन्द सरस्वती मसुदा मुहर–मुहर–मुहर

—:०:—

---

[1] इस की सूचना भी पं० भीमसेन शर्मा के आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पत्र में है। भीमसेन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] आषाढ़ शु० ११ को बृहस्पतिवार है, सोमवार नहीं है। आश्विन शु० १०, ११ सम्मिलित है, उस दिन सोमवार है। ३ अक्तुबर १८८१।

[पूर्ण संख्या ४७१] पत्रांश (३१६)

[सगाचार पत्र देशहितैषी अर्थात् पं० मुन्नालाल मन्त्री आर्यसमाज अजमेर को][1]

बनेड़े[2] के ग्राम भीलवाड़े में हमारी डाक भेजा करो ।

१५ अंक्टूबर १८८१[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४७२] पत्रांश (३१७)

कविराज श्यामलदास[4] ।

हमने चितौड़गढ़ २७ अक्टूबर[5] को पहुंचना है । आप स्थानादि का प्रबन्ध कर रखना, ताकि कष्ट न हो ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४७३] पत्र (३१८)

[दयाराम प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय]

[6]जो कोई नोट वा विज्ञापन शास्त्रार्थ खण्डन-मण्डन और धर्माधर्म विषयों का ज्ञापक हो वह हम को दिखलाये बिना कभी न छापना चहिये ।

---

[1] देशहितैषी के रजिस्टर से । इस के पश्चात् का मुन्नालाल जी का पत्र न० (२९) दो पैसे वाला लिफाफा "श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज नमस्ते । आपके पास यह थियोसोफिस्ट भेजता हूँ । अपने दिवाली का उत्सव अब के पत्र द्वारा निवेदन करूंगा ।" उसी रजिस्टर से, मुन्नलाल २४-१०-८१

[2] बनेड़े अर्थात् बनेड़ा राज्य ।

[3] कार्तिक कृ० ८ शनि सं० १९३८ ।

[4] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ५५२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ५९२) पर उद्धृत । २०—२५ अक्तूबर १८८१ के मध्य किसी दिन यह लिखा गया होगा ।

[5] कार्तिक शु० ५ गुरु० सं० १९३६ ।

[6] यह लेख स्वामी जी महाराज ने स्त्रैणतद्धित के 'जीविकार्थे चापण्ये' (५।३।९९) सूत्र की टिप्पणी के प्रूफ पर लिखा था । देखो मुंशीराम जी सम्पा० ऋ० द० का पत्र-व्यवहार पृष्ठ ५३ ।

यह[1] मेरे पास भेजा सो बहुत अच्छा किया। जो दिखलाये बिना छाप देते तो हम को इस के समाधान में बहुत श्रम करना पड़ता। भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उस का पांडित्य है, अन्यत्र यह बालक है। इस को इस बात की खबर भी नहीं है कि इस लेख से क्या क्या कहां विरोध होकर क्या क्या विपरीत परिणाम होंगे। इस लिये यह नोट जैसा शोध[2] के भेजा है, वैसा ही छपवाना। किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु[3]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४७४]　　[टिप्पणी[1]]

*जोविका शब्द का अर्थ मुख्य करके जीवनोपाय करना है। इस प्रकरण में सिवाय प्रतिकृति और मनुष्य के दूसरे की अनुवृत्ति नहीं आती। यहां प्रयोजन यह है कि जिन स्त्रो पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ

---

१. 'यह' पद से निर्दिष्ट स्त्रैणताद्धित का वह नोट है जो भीमसेन ने लिखा था और दयाराम मैनेजर वैदिक यन्त्रालय ने स्वामी जी को देखने को भेजा था, भीमसेन के द्वारा लिखे गये नोट को हम ने स्वामी जी के शोधे हुए नोट के नीचे छापा है।

२. यह शोधा हुआ नोट आगे पूर्णसंख्या ४७४ पर छापा है।

३. इस पर कोई तिथि नहीं है। स्त्रैणताद्धित का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सं० १९३८ (२६ नवम्बर १८८१) को समाप्त हुआ था और मुद्रण तीन दिन बाद ही समाप्त हो गया था (देखो ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ १६३, १६४)। अतः यह लेख मार्गशीर्ष के प्रारम्भ में लिखा गया होगा। [यु० मी०]

❀ यह स्त्रैणताद्धित के "जीविकार्थे चापण्ये" (अष्टा० ५।३।९९) सूत्र का श्री स्वामी जी महाराज द्वारा संशोधित नोट (टिप्पणी) है। स्त्रैणताद्धित में यह टिप्पणी कुछ रूपान्तर से छपी है, वह रूपान्तर किसने किया है, यह अज्ञात है। देखो मुंशीराम जी सम्पा० ऋ० द० का पत्र-व्यवहार पृष्ठ ५४ की टिप्पणी।

पं० भीमसेन ने जो टिप्पणी लिखकर छपवानी चाही थी और जिसे प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय ने स्वामी जी महाराज के पास देखने को भेजी थी वह इस प्रकार थी—

"जीविका शब्द का अर्थ मुख्य करके किसी प्रकार का उपकार होना है। प्रतिकृति, प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब, प्रतिरूपक, प्रतिछन्दक, प्रतिमा इत्यादि शब्द पर्यायवाची

अत्यन्त प्रेम होता है उन के वियोग में उनकी प्रतिकृति देखते और गुण कर्म तथा उपकार आदि का स्मरण करते हुए अपने चित्त में सन्तोष करते हैं। परन्तु इस प्रकरण में यह बात विचारना चाहिये कि संसार में जितने दृश्य पदार्थ हैं उन सब की प्रतिकृति होती है वा नहीं। बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अतिदर्शनीय मृन्मयादि की प्रतिकृतियां बना बना कर बेंचते हैं वे जीविकार्थ पण्य होते हैं। और बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों में पति स्त्री पुत्रादि की प्रतिकृतियां रखते है परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं। इस सूत्र से बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिप्राय है कि जीविका के लिये जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे। और लुम्मनुष्ये (अष्टा० ५।३।९८) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध न करके ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियां जो कि मन्दिरों में बना बना कर रखते हैं।

हैं। और अन्य देशीय भाषाओं में (तश्वीर) (फोटोग्राफ) भी कहते हैं। प्रयोजन यह है कि जिन स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ अत्यन्त प्रेम होता है उनके वियोग में उन के प्रतिबिम्ब देखते और गुण कर्म तथा उपकार आदि का स्मरण करते हुए अपने चित्त में सन्तोष करते हैं और उस प्रकरण में यह बात विचारना चाहिये कि संसार में जितने दृश्य पदार्थ हैं उन सब के प्रतिबिम्ब होते हैं बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अतिदर्शनीय मृन्मय आकृति बना बना कर बैचते हैं वे जीविकार्थ पण्य होते हैं। और बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों तथा स्थान विशेष कि जो अतिदर्शनीय हैं उन के प्रतिबिम्ब मकान आदि में यन्त्रित करा रखते हैं। उन के यथार्थ स्वरूप देखने में धनादि पदार्थों का अति गौरव होता है इस लिए उन के प्रतिबिम्बों को देख समझ के प्रसन्नता हो जाती है। और उन प्रतिबिम्बों में यथार्थ स्वरूपों का सा व्यवहार भी करते हैं। और इस प्रतिबिम्ब विद्या से संसार के बहुत कार्य सिद्ध होते हैं परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं। इस सूत्र में बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिप्राय है कि जीविका के लिये जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे। और (लुम्मनुष्ये) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध यहां नहीं करते। सो ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रतिमा जो कि मन्दिरों में बना बना कर रखते हैं। उन से जीविका (धन का-आगमन) तो हैं परन्तु वे प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं, इस लिये उन्हीं का ग्रहण होना चाहिये। और इस सूत्र में महाभाष्यकार ने भी लिखा है कि जो धनार्थी लोग शिव आदि की प्रतिमा बना कर बेचते हैं वहां लुप् नहीं पावेगा। क्योंकि सूत्र,

उन से जीविका (धनका आगमन) तो है परन्तु वे प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं, इसलिये उन्हीं का ग्रहण होना चाहिये। और इस सूत्र में महाभाष्यकार ने भी लिखा है कि जो धनार्थी लोग शिव आदि की प्रतिमा बना कर बेचते हैं वहां लुप् नहीं पावेगा। क्योंकि सूत्रकार ने अपण्य शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो। सो ठीक नहीं, क्योंकि यहां प्रतिकृति और मनुष्य शब्द ही की अनुवृत्ति है अन्य की नहीं। देवता शब्द भी जहां चेतन व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है वहां मनुष्यों की संज्ञा होती है और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं देवता शब्द भी वैदिक है। जो इस सूत्र में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की, यह उनका भ्रम है, क्योंकि वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्तार्थवाची समझते हैं परन्तु सामान्य ग्रहण होने से जो जो प्रतिकृति जीविका के लिये हो और बेची न जावे तो उस उस सब के अभिधेय में कन् का लुप् होना चाहिये। और जहां कोई मनुष्य प्रतिकृतियों को दिखा वा बेंच के अपनी जीविका करता

कार ने अपण्य शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो। अस्तु वहां लुप् न हो (शिवकः) ऐसा ही प्रयोग रहे। परन्तु जो वर्तमान काल में पूजा के लिये ही हैं वहां तो लुप् हो ही जायेगा। इस महाभाष्य से भी उन्हीं देवताओं की प्रतिमा सिद्ध करते हैं। इस विषय में हम लोगों का भी यह अभिप्राय नहीं है कि ब्रह्मा आदि देवता नहीं हुए और उनकी प्रतिमा रखने और देखने में अधर्म्म होता है। किन्तु उन प्रतिमाओं की यथार्थ स्वरूप के समान सत्कार पूजा धूप दीप आदि करते हैं और पूजा तथा दर्शनादि से परमार्थ सिद्धि और मुक्ति समझते हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि श्रुति और स्मृति दोनों से यह विपरीत है कि जो विद्या और आत्मज्ञान के बिना मुक्ति हो सके। हां, उन प्रतिमाओं को देख के उन लोगों के गुण कर्मों का स्मरण करके आप भी वैसे ही गुण कर्मों को धारण करें कि जिस से उत्तम कहावें। देवता शब्द भी जहां चेतन व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है वहां मनुष्यों की ही संज्ञा होती है और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं देवता शब्द भी वैदिक है। इस सूत्र में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की। वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्त समझते हैं परन्तु सामान्य ग्रहण होने से जो जो प्रतिमा जीविका के लिए हो और बेची न जावे तो उस उस सब के अभिधेय में प्रत्यय का लुप् होना चाहिये—हस्तिकान् दर्शयति। कोई मनुष्य प्रतिबिम्बों को दिखाता फिरता अपनी जीविका करता है। बहुतेरे लोग प्रतिबिम्बों को दिखा कर ही जीविका करते हैं। वहां भी लुप् होना चाहिये। यह दोष जयादित्य आदि लोगों के अभिप्राय में मनुष्य शब्द की अनुवृति न करने से आता है।

है वहां लुप् न होना चाहिए। और पूजा का अर्थ भी आदर सत्कार ही होता है सो चेतन के होने चाहिये। फिर महाभाष्यकार ने जो लिखा हैं कि 'जो इस समय पूजा के लिये है वहां लुप् होगा' इस का भी यही अभिप्राय है कि जो मनुष्य की प्रतिकृति की पूजा सत्कार के लिये है उससे प्रत्यय करने में तो लुप् हो जावेगा। क्योंकि अच्छे पुरुषों की जो प्रतिकृति है उसके बेंचने में सज्जन लोग बुराई समझते हैं । **विश्वे देवा स आगत श्रृणुतेम[1] हवम्** । यह यजुर्वेद का प्रमाण है। **विद्वांसो हि देवाः** । यह शतपथ ब्राह्मण[2] का वचन है। **मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अथितिदेवो भव,** यह तैत्तिरीय आरण्यक[3] का वाक्य है । इत्यादि सब प्रमाण वचनों से विद्वद्व्यक्ति आदि का ग्रहण देव शब्द से होता है। इस लिये पाणिनि आदि ऋषि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी न होना चाहिये। इस प्रकरण को पक्षपात छोड़ वेदानुकूलता से सब लोग विचारें[4] ।।

और पूजा का अर्थ भी आदर सत्कार ही होता है सो चेतन के होने चाहियें । फिर महाभाष्यकार ने जो लिखा है कि 'जो इस समय पूजा के लिये हैं वहां लुप् होगा' इसका भी यही अभिप्राय है कि जो मनुष्य की यथार्थ प्रतिकृति पूजा के लिये हैं उनसे प्रत्यय करने में तो लुप् हो जावेगा। क्योंकि अच्छे पुरुषों की जो प्रतिकृति हैं उनके बेचने में सज्जन लोग बुराई समझते हैं। उन प्रिय जनों की प्रतिमाओं को रखते और उन को देख कर संतुष्ट होते हैं। राम कृष्ण आदि भी इस संसार में एक अपूर्व पुरुष हुए हैं उन की भी यथार्थ स्वरूप की बोधक प्रतिमा कोई पुरुष रखे और उन के गुण कर्मों का स्मरण करके अपने आचरण सुधारे तो कोई बुराई नहीं, परन्तु उन प्रतिमाओं से परमार्थ सिद्धि समझना ही अच्छा नहीं है। पाणिनि आदि ऋषि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी नहीं हो सकता, इस प्रकरण को पक्षपात छोड़ वेदानुकूल सब लोग विचारें ।।"

यह टिप्पणी म० मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित पत्र व्यवहार में पृष्ठ ५०—५३ तक छपी है।

[1] यजु० ७।३।। ऋग्वेद २।४१।१३।।

[2] शत० ३।७।३।१०।।

[3] तै. आ. ७।११।।

[4] यह ऋषि द्वारा संशोधित टिप्पणी म० मुंशीराम जी द्वारा सन्पादित पत्र-व्यवहार में पृष्ठ ५४—५६ तक छपी है। श्री स्वामी जी के पूर्ण संख्या ४७३ के पत्र में 'जैसा शोधके भेजा है वैसा ही छपवाना' (पृष्ठ ५१७) ऐसा लिखने पर भी

पूर्ण संख्या ४७५] पत्र-सारांश (३१७)

[पं० दयाराम, प्रयाग]

ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य की भाषा कितनी हुई ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४७६] कार्ड (३१८)

ता० २ नवम्बर सन् १८८१[2]
चित्तौड़ राज मेवाड़

[महाशय रूपसिंह जी के नाम[3]] ।

महाशय श्रीमत् महाराज स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी यहां सुशोभित हैं । और आप का गुजरांवाले का कार्ड पहुंचा । यह आपको कुशल समाचार का पत्र भेजता हूँ और आप भी अपने आनन्द मंगल का समाचार सदा भेजते रहना, जिससे आनन्द होय ।

रामानन्द ब्रह्मचारी[4]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४७७] पत्र (३१९)

११ नवम्बर सन् ८१ ई०[5]
गढ़ चित्तौड़ राज मेवाड़

लाला मूलराज जी आनन्दित रहो ।[6]

स्त्रैण तद्धित में ऋषि दयानन्द के शोधे हुए पाठ के अनुसार पूर्णतया नहीं छपा । छपते समय किसने परिवर्तन किया यह अज्ञात है ।

[1] इस पत्र-सारांश को ३ नवम्बर १८८१ के भीमसेन शर्मा के पत्र से बनाया है । भीमसेन का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] कार्तिक शुक्ल ११ बुध, सं० १९३८ ।

[3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है । बा० रूपसिंह जी ने सन् १९१६-१७ में यह पत्र हमें स्वयं लाहौर में दिया था ।

[4] रामानन्द ब्रह्मचारी श्री स्वामी जी का लेखक था । उसने उनकी ओर से ही यह तथा अगले कई पत्र अपने हस्ताक्षरों से लिखे हैं ।

[5] मार्गशीर्ष कृष्ण ५ शुक्र सं० १९३८ । [6] पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

पत्र आपका पहुंचा। समाचार विदित हुआ। परन्तु यहां हमारे पास कोई इंगलिश का विद्वान् नहीं है। इस वास्ते यहां भाषान्तर होना असम्भव है और जब आप इतना भी पुरुषार्थ नहीं कर सकते तब आर्य समाज की उन्नति किस प्रकार होगी। हम चाहते थे कि किसी प्रकार आप ही इस गोकरुणानिधि पुस्तक को अंग्रेजी में करें तो बहुत ठीक होता और शीघ्र ही हो जाता, परन्तु अभी तक आप को अवकाश नहीं मिला है। किन्तु देश उन्नति के वास्ते थोड़ा अवकाश निकालना चाहिये। जब आप लोग कुछ नहीं करेंगे तब हम अकेले क्या कर सकेंगे। जो किसी प्रकार आप से तरजमा न हो सके तो हमारे पास भेज दो। जब हम मुंबई जावेंगे वहां इंगलिश के विद्वान् मिलेंगे तब अंगरेजी में करा लेवेंगे जैसा बना होय हां भेज दो। "**अब हमारा विचार मुंबई में जाने का है, क्योंकि वहां के समाज ने १५०) रुपये भी रेल के खर्च के लिये जबर्दस्ती भेज दिये है।**" यहां से जब गर्वनर जनरल साहिब दर्बार करके चले जावेंगे तब हम भी मुम्बई की तरफ रवाना होवेंगे। "जब वहां आने का समय आवेगा तभी आना होगा। क्योंकि काम बड़ा और काम के करने वाले और समय भी थोड़ा। आप लोगों को चाहिये कि जिस जिस देश में आप लोग हैं वहां वहां का काम लम्भाल लेवें, तभी उन्नति का बाग बढ़ेगा।

मि० मार्ग० व० ६ शनि सं० १९३८[1]।" दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४७८-४७९] पत्र-सारांश (३२०-३२१)

[पं० दयाराम, प्रयाग][2]

१– भीमसेन के विषय में।

---

[1] १२ नवम्बर सन् १८८१। ११ नवम्बर को पत्र लेखक ने लिखा। उस दिन समाप्त नहीं किया गया। १२ को श्री स्वामी जी ने अपने हाथ से अन्तिम पंक्तियां लिख कर पत्र समाप्त किया। " " कॉमों के अन्दर का लेख श्री स्वामी जी ने स्वहस्त से लिखा है।

[2] पत्रों की पहुंच का और नीचे लिखे विषयों का निर्देश १८ दिसम्बर १८८१ के भीमसेन और पं० सुन्दरलाल के पत्रों के आधार पर संकलित किया है। विषय १–४ तक भीमसेन के पत्र में है। ५–६ का निर्देश पं० सुन्दरलाल के पत्र में है। दोनों के पत्र साथ ही लिखे हुए हैं। इन्हें तीसरे भाग में देखें

3

२– स्त्रैणताद्धित छपे १॥ मास हो गया, भेजा क्यों नहीं ?

३– आख्यातिक कितना छपा ?

४– कृदन्त को आख्यातिक के अन्त में छापना ।

५– पुस्तकें इन्दौर भेजो ।

६– महाराणा सज्जनसिंह द्वारा चित्तौड़ में किये गये सत्कार का वर्णन ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४८०]   पत्र (३२२)

९ दिसम्बर सन् ८१ ई०[1]
चित्तौड़गढ़ राज मेवाड़ ।

लाला मूलराज जी आनन्दित रहो ।[2]

आपका पत्र आया । समाचार विदित हुआ । आपने जो गोकरुणानिधि पुस्तक को इंगलिश में भाषान्तर कर देना स्वीकार किया उससे बहुत आनन्द हुआ । क्योंकि अंगरेजी भाषा होने से अन्य देश वालों को भी लाभ पहुंचेगा । यह तो सच है कि स्वकृत से परकृत निर्बल होता है । तथापि विदेशी भी बहुधा ऐसे हैं कि जैसी इंगलिश भाषा जानते वैसी अन्य भाषा नहीं जानते । और यहां के यूरोपियन अस्वीकार करेंगे तो क्या, किन्तु यूरोप देशस्थ जब इस पुस्तक को देखेंगे तो अनुमान है कि उन में से भी कई एक सहायक हों । और आप ने जो स्वजाति विषय में लिखा इस वास्ते अपनी स्वजाति का इतिहास जो परम्परा से चला जाता है उसकी थोड़ी सी सूचना लिख भेजें । तब हम अच्छी प्रकार लिख भेजें । और पंजाब में जो हमने थोड़ा सा इतिहास सुना था वह भी विस्मरण हो गया है । इस में विलम्ब न करना चाहिये । पत्र का उत्तर मुकाम इन्दौर राज ह[ो]-लकर, बाबू बालाप्रसाद सपरडंट रेलवे पोलिस के नाम से अथवा मुम्बई नल बाजर शबिलदास लल्लु भाई के मकान के पास सेवकलाल कृष्णदास [के] नाम से भेजना[3] ।   (दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

---

[1] पौष कृष्ण ४ सं० १९३८ ।   [2] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

[3] पत्र पर उर्दू में स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी ने भी कुछ लिखा हुआ है ।

[पूर्ण संख्या ४८१] पत्र (३२३)

॥ ओम् ॥

सर्दार रूपसिंह जी आनन्दित रहो[1] ॥

विदित हो कि पत्र आप का सन् १८८१ ई० ६ छः डिसंबर का लिखा हुआ ता० १२ डिसंबर को यहां पहुँचा। पत्रस्थ समाचार विदित हुए। यहां श्री स्वामी जी महाराज की सत्कारपूर्वक श्रीमान्महाराणा उदयपुर जी ने सेवा की। और यहां के दरबार में जितने राजा महाराजा आये वे सब श्री स्वामी जी महाराज के सत्योपदेश को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। और एक दिन महाराणा उदयपुर भी आये थे। कोई तीन वा चार घंटे तक स्वामीजी महाराज जी का सत्संग किया और राजधर्म वा पारमार्थिक विषय में जितनी बातें महाराज जी ने उपदेश कीं, वे सब बातें राजा जी के ध्यान में जम गईं। और यह माड़वाड़ वा मेवा[ड़] देश में देश में व्याख्यान को कोई समझता ही नहीं। जितने लोग पूर्वपक्षी आये उन सब को स्वामी जी ने यथा तथा उत्तर देकर उन्हों को शंका रूपी दुःख सागर से छुड़ा दिया। अब यहां से श्रीस्वामी जी महाराज कल १४ चौदह डिसंबर के के मध्याह्नोत्तर के ४ बजे रेल में सवार हो कर १६ दिसम्बर के ८ बजे इन्दौर में उतरेंगे। फिर वहां से मुम्बई को पधारेंगे ॥

(प्रश्र)—मांस खाना बुरा वा अच्छा है ?।

(उत्तर) मांस खाना बहुत बुरा है और वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं विधान नहीं है। जो संस्कारविधि में लिखा है[2] वह दूसरों का एक देशीय मत दिखाने को लिख दिया है[3] कुछ उस एकदेशा मत होने से मांस खाना सिद्ध नहीं हो सकता। विशेष इस बा[त] को गोकरुणानिधि ग्रन्थ में देख लीजियेगा। उस में इस बात को प्रश्नोत्तरपूर्वक सिद्ध कर दिया है कि मांस खाना बुरा।

(प्रश्न दूसरा) मैं अङ्गरेजी पढ़ू वा संस्कृत ?

उत्तर) जो कोई योग्य संस्कृत का पढ़ाने वाला मिले तो संस्कृत पढ़ा

---

[1] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[2] यह संस्कारविधि के प्र० सं० की ओर संकेत है। सं० १९४० में संशोधित द्वि० सं० में यह प्रकरण निकाल दिया है।

[3] देखो पूर्ण संख्या १०१ का विज्ञापन।

अवश्य ही चाहिये। **संस्कृत के न पढ़ने का परिणाम तो तुम जानते ही हो कि हजारों ईसाई मुसलमान हो गये।** जो योग्य अध्यापक न मिले तो अङ्गरेजी पढ़ते ही चले जाओ इस में कुछ हर्ज नहीं।

प्रथम मेरा नाम राज बल्लभ था। अब श्री स्वामी जी ने मुझ को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्याश्रम की दीक्षा देकर मेरा नाम रामानन्द ब्रह्मचारी रक्खा है। और आप कुशल पत्र मुंम्बई में इस पते पर भेजना कि (मुकाम मुंबई बालकेश्वर पर श्री स्वामी जी के पास)। हम आनन्द में हैं। श्री स्वामी जी की कृपा से व्याकरण जो की स्वामी जी ने बनाई हैं उन में से छः पुस्तक पढ़ली हैं, और सातवीं का आरम्भ होगा॥

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु॥ सम्वत् १९३८ पौष वदी ७ मंगलवार ता० १३ डिसम्बर सन् १८८१ ई० हस्ताक्षर (रामानन्द ब्रह्मचारी)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४८२] पत्र-सूचना (४८)

सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आ० स० मुम्बई।[1]
छापने योग्य पत्र
१३ दिसम्बर १८८१[2]
चितोड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४८३] पत्र (३२४)

स्वस्ति-श्रीमदनवद्यगुणगणाऽलंकृतेभ्य आर्य्यराजकुलदिवाकरेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो[4] भूयासुस्तमामिहास्ति[3] तत्र भवदीयं नित्य-

---

[1] इस पत्र के संकेत के लिये सेवकलाल कृष्णदास का १७ दिसम्बर १८८१ का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] पौष कृ० ७ सं० १९३८।

[3] यहां पाठ छटा प्रतीत होता है—'भूयासुस्तमां शमिहास्ति' पाठ होना चाहिए।

[4] यह पत्र 'परोपकारी' पत्र (अजमेर) के चैत्र २०३३-मार्च १९७७ के अङ्क

धमानं चाशासे। विदित हो कि यह वह पत्र है कि जिसके नीचे श्रीमान् महाशयों के हस्ताक्षर और अपने-अपने राज्य की मुद्रा अर्थात् मोहर होगी इसको सुनहरी कागज में लिखवाना चाहें लिखवा लेवें। मेरी समझ में तो यह इतना ही लेख बहुत है अधिक लिखना न चाहिये। क्योंकि इस लेख में बहुत गूंजास है। और जो इसमें कुछ घटाना बढ़ाना चाहें तो मुझको विदित करके घटावें अथवा बढ़ावें। इस कार्य में जहां तक हो सके वहां तक शीघ्रता होनी चाहिये। जो-जो श्री मान् महाशय इस पर सही करें वे इस रीत से करें कि इतने लाख अथवा इतने करोड़ मनुष्यों की ओर से मेरे हस्ताक्षर और मोहर है। और अपने-अपने राज्य में जिन-जिन महाशयों को विदित करना चाहें उनको विदित भी कर देवें कि जो कोई गो-हिंसक उनसे पूछे तब वे गोहत्या के बंध करने में सम्मत और दृढ़ रहें। और जैसी सुगमता शीघ्रता जोधपुर जयपुर, बीकानेर, कोटा, बून्दी, रतलाम, इन्दौर, ग्वालियर, बड़ौदा आदि राजे महाराजों से हस्ताक्षर मोहर कराने में आपके करने में होगी वैसी किसी से नहीं हो सकेगी। यह महापुण्य का कार्य है इसलिये किसी एक बुद्धिमान् पुरुष को आप शीघ्र नियुक्त कीजिये कि वह जोधपुर-जयपुराधीशों के इस पर हस्ताक्षर मोहर कराके और सबसे दूसरों की सही कराने के लिये राजस्थानों में जा के सद्यः सही करा लेवे अर्थात् काश्मीर नेपालाधिपतियों की हो जाय तो अत्युतम हो। मुझको दृढ़ निश्चय है कि यह महोपकारक काम श्रीमान् आर्य्य राजकुल भास्कर ही के करने योग्य है अन्य किसी के नहीं। और इस महापुण्यकीर्ति के योग्य आप से अन्य किसी को मैं अपनी अल्प प्रज्ञा से नहीं समझता हूं। और जो आप महाराजे इन्दोराधिपति आदि को इस कार्य में प्रेरणा करेंगे तो लश्कर[1] और बड़ौदाधिपतियों की सही होने में विलम्ब न होगा। अर्थात् जिसकी प्रेरणा से जिस राजा, महाराजा की सही शीघ्र हो सके उसको श्रीमान् महाशय ही प्रेरणा करेंगे। सही होने के पश्चात् में जो-जो महाशय विद्वान् गर्वनर जनरल साहेब बहादुर पारलियामेंट सभा और श्रीमती राजेश्वरी से इस कार्य की सिद्धि कराने में अति निपुण धार्मिक-

---

के पृष्ठ २५ पर छपा है। परोपकारी के सम्पादक श्री भवानीलाल भारतीय ने इस पत्र की उपलब्धि के विषय में लिखा है—इस पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त कराने का श्रेय हमारे मित्र प्रो० महावीरसिंह जी सोलंकी, प्रिन्सिपल गवर्नमेंट कालेज सवाई माधोपुर को है— जिन्होंने यह पत्र (प्रतिलिपि रूप में) मेवाड़ के इतिहासज्ञ पुरोहित देवनाथ जी के संग्रह से प्राप्त किया है।

[1] अर्थात् ग्वालियर।

जनों को नियुक्त करना चाहूंगा। उनके नाम आदि सदाचार आपके विदित कर दूंगा। क्योंकि यह बड़ा भारी काम है और जब गर्वनर जनरल साहेब बहादुर के पास काम चलाया जायगा तब मैं वहां उपस्थित रहूंगा और मुंबई में जा के इस कार्य को शीघ्र करने की नीति में बड़े-बड़े बुद्धिमान् और बारिस्टरों का विचार लिया जायगा। और जब श्रीमान् महाशयों की सही हो जायगी उसके पश्चात् सरकारी राज्य में से भी रईस और प्रजास्थ लाख ६ मनुष्यों की बहुत शीघ्र सही करा ली जायगी परन्तु इसमें सर्वशिरोमणि योग्य प्रशंसा युक्त श्रीमान् ही रहेंगे। अलमति विस्तरेण लेखनाय राजकुलभास्करेषु। **मैं यहां इन्दौर आया उसी दिन से महाराजे इन्दौर के जज श्रीनिवास आदि सज्जनों ने मुझको रख लिया है और महाराजे के विद्यालय में प्रतिदिन संध्या के ६ छः बजे से लेके ८।। साढ़े आठ बजे तक वक्तृत्व होता है।** सैकड़ों बुद्धिमान् लोग सुनके प्रसन्न होते हैं। अब तीन चार दिन यहां ठहर के मुम्वई को जाना चाहता हूं।

— दयानन्द सरस्वती

।। पौष शुक्ल ५ रविवार सम्वत् १९३८, ता० २५ दिसम्बर सन् १८८१ ई०।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४८४]   पत्र (३२५)

लाला रामशरणदास जी आनन्दित रहो[1]

विदित हो कि तुम बखतावरसिंह का मामला शीघ्र [तय] कर दो। हमने यहां अच्छे-अच्छे पुरुषों से पूछा। उनों ने यही उत्तर दिया कि जब अकरारनामा में वह हस्त[ाक्ष]र कर चुका है तो अब उसका कुछ नहीं जोर चल सकता। अर्थात् जैसा पंच लोग फैसला करेंगे वैसा ही कचहरी में स्वीकार होगा। और आप भी विचार कर लीजिये। जैसी आप लोगों की राय हो वैसा शीघ्र करना उचित है परन्तु अब वह एक प्रकार का विघ्न डालता है जिस में कि मामला फैसला न हो। अब उस से कुछ भी न पूछना और जानना। जो आप लोगों की राय में आवे सो फैसला कर देना। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

ता० १७ जनवरी सन् १८८२ ई०[2]   [द० स०]

---

[1] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[2] माघ कृष्ण १३ मंगल, सं० १९३८। अक्तूबर सन् १९२६ में म० मामराजजी मेरठ से लाये थे।

[पूर्ण संख्या ४८५] पत्र (३२६)

(from PANDIT DAYANANDA SARASWATI
to Mr. JOSEPH COOK)
Walkheshwar, Bombay
January 18, 1882.[1]

Sir,—In your public lectures you have affirmed—

(1) That Christianity is of Divine origin.
(2) That it is destined to overspread the earth.
(3) That no other religion is of divine origin.

In reply, I maintain that neither of these propositions is true. If you are prepared to make them good, and to ask the people of Aryavarta to accept your statements without proof, I will be happy to meet you for discussion. I name next Sunday evening at 5–30, at which time I am to lecture at Framji Cowasji Institute. Or, if that should not be convenient to you, then you may name your own time and place in Bombay As neither of us speaks other's Language, I stipulate that our respective arguments shall be translated to the other, and that a short-hand report of the same shall be signed by us both. The discussion must also be held in the presence of respectable witnesses brought by each party, of whom at least three or four shall sign the report with us; and the whole to be placed in a pamphlet form, so that the public may judge for myselves which religion is most divine.[2]

दयानन्द सरस्वती
i.e., D Saraswati.

---

[1] माघ कृष्ण १४ बुध, सं० १९३८।

[2] यह पत्र म० मुंशीराम जी कृत 'पत्र-व्यवहार' पृ० ३००, ३०१ पर छपा है।

[भाषानुवाद]

पण्डित दयानन्द सरस्वती की ओर से

मिस्टर जाँसेफ कुक साहब के पास

बालकेश्वर बम्ब-

जनवरी १८।१८८२[१]

महाशय !

आपने अपने सर्वसाधारण व्याख्यानों में निश्चय पूर्वक कथन किया है कि

(१) क्रिश्चिन धर्म ईश्वर-मूलक है।

(२) यह पृथिवी भर में अवश्य ही विस्तृत हो जायगा।

(३) अन्य कोई भी धर्म्म ईश्वर-मूलक नहीं है।

उत्तर में मेरा कथन है कि उक्त प्रतिज्ञाओं में से एक भी ठीक नहीं है। यदि आप उक्त प्रतिज्ञाओं को यथार्थ सिद्ध कराना चाहते हैं और आर्यावर्त निवासियों को अपने कथनों को विना प्रमाण प्रस्तुत किये स्वीकृत कराना नहीं चाहते तो मैं प्रसन्नता पूर्वक आप से शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत रहूंगा। आगामी रविवार सन्ध्या समय साढ़े पाँच बजे जब कि मैं फ्रेमजी कावसजी इंस्टिटिउट में व्याख्यान दूंगा। शास्त्रार्थ के लिये नियत करता हूं। यदि उक्त समय आपको सुविधा का न हो तो आप अपनी इच्छानुसार कोई समय तथा बम्बई का कोई स्थान शास्त्रार्थ के लिये नियत करें। क्योंकि हम दोनों में से कोई भी एक दूसरे की भाषा नहीं बोल सक्ता। अतः मैं निर्धारित करता हूं कि मेरे तर्क आपको आप के तर्क मुझ को अनुवादित कर सुना दिए जांए और हम दोनों के कथन संक्षिप्त लेखबद्ध होकर उन पर हम दोनों के हस्ताक्षर हो जांय। आप की ओर तथा मेरी ओर से प्रतिष्ठित साक्षिओं का भी शास्त्रार्थ में विद्यमान रहना आवश्यक है जिन में से तीन वा चार को उक्त संक्षिप्त लेख पर हम लोगों के साथ हस्ताक्षर भी करना पड़ेगा। उक्त शास्त्रार्थ

यह वही पत्र हैं जो ऋषि के अभिप्रायानुसार कर्नल आल्काट ने लिखा था, परन्तु इस में *Most Divine* शब्द कर्नल ने अपनी ओर से जोड़ दिया। इसका उल्लेख आगे ऋषि के 'थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल' शीर्षक विज्ञापन (जो आगे छापा जा रहा हैं) के पैरा ६ में आयेगा।

[१] माघ कृष्ण १४ बुध, सं० १९३८।

पुस्तकाकार छप कर सर्व साधारण के सन्मुख प्रस्तुत किया जायगा, जिसे देखकर लोग अपने निश्चय कर लेंगे कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ ईश्वरोक्त है ।

—:o:—

पूर्ण संख्या ४८६] विज्ञापन-सूचना

[पं० दयाराम, काशी]

महाराजे उदयपुर का इश्तिहारा ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४८७] पत्र-सारांश (३२७)

[पं० दयाराम, काशी]

१– पुस्तकें तथा वेदभाष्य कितने पौण्ड के कागज पर छपता है ?

२– दो वर्ष का पुस्तकों का हिसाब भेजो ।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४८८] पत्र (३२८)

ओ३म्[3]

श्रीयुत मित्रवर आर्यकुलभूषक महाशय बाबू रूपसिंह जी योग्य इतः श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामी जी का आशीर्वाद। पश्चात् रामानन्द ब्रह्मचारी का अनेकधा शुभाशीर्वाद विदित हो ॥

हे मित्रवर आपका कृपा पत्र २७ जनवरी का लिखा हुआ १ पहली फर्वरी को पहुँचा । और जो आप ने ५) रुपये का मनियाडर भेजा वह भी

---

[1] इस का निर्देश सुन्दरलाल आदि के १ फरवरी १८८२ के पत्र मिलता है । यह सम्भवतः चित्तौड़ में महाराणा उदयपुर के द्वारा ऋ० द० के किये गये सम्मान के विषय में रहा होगा । द्र० १८ दिसम्बर १८८१ का सुन्दरलाल का पत्र । ये सभी पत्र तीसरे भाग में यथा स्थान देखें ।

[2] यह पत्र-साराँश हमने १ फरवरी १८८२ के सुन्दरलाल दयाराम आदि के द्वारा लिखे गये पत्र के अनुसार बनाया है । यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है

उसी दिवस मिला। हे महाशय आपके कुशलरूपी पत्र के अवलोकन करते ही ऐसा आह्लाद प्राप्त हुआ कि जिस को लिखने को भी अशक्य हूँ।

भो मित्र! मैं आप से विनय पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप के निवेदन किये हुए पदार्थ को अति आनन्द पूर्वक स्वीकार किया। परन्तु आपको अप्रिय लगे तो मेरी अयोग्यता समझ कर अपराध क्षमा करना। सुनिये जिस समय नयेसहर[1] में आप मुझ को चिट्ठी पत्र के खर्च के वास्ते द्रव्य दे गये थे वह आप का परमार्थरूपी भार अभी मेरे पर विराजमान था। फिर बहुत शीघ्र आप ने धर्मरूपी भार निवेदन किया। मैं आप के परमार्थरूपी भार से अति लज्जित होता हूं क्योंकि मुझ से आप का कुछ भी प्रत्यु[प]कार नहीं हो सकता। अतः मेरी प्रसन्नता तो आप के अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होने से है। परमात्मा परम दयालु ईश्वर आपकी सदैव धर्मोन्नति विषय में प्रवृति और अधर्म अवनति से निवृत्ति किया करे॥

अब आप के प्रश्नों का उत्तर श्री स्वामी जी की आज्ञानुसार लिखता हूँ। आशा है कि प्रसन्नता पूर्वक आप स्वीकार करेंगे।

(प्रश्न) दूसरी माता की सेवा करने का अधिकार पुत्र को पहली माता के सदृश है वा नहीं?

(उत्तर) जो विद्यादि शुभ गुणों से युक्त हो और शिक्षापूर्वक पुत्र पर प्रेम रखती हो, उसका अनिष्ट चिन्तन कभी न करती हो तो साक्षात् अपनी माता के समान तन मन धन से[सेवा]सदैव करना योग्य है। जो इस प्रकार वर्त्ताव न वर्त्ते तो इतनी पुत्र को सेवा करना योग्य है कि अन्न वस्त्रादि और अभिवादन से उसको प्रसन्न रखना, अधिक सत्कार करने योग्य नहीं॥

(प्रश्न) १२ वा १८ वर्ष की युवती कन्याओं से पुरुष विवाह कर लेते हैं। उनके साथ पुत्र को किस प्रकार वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये और विद्यादि शुभ गुणों की शिक्षा करे वा नहीं॥

(उत्तर) यह साधारण मनुष्यों से होना अशक्य है क्योंकि स्त्री और पुरुष की परस्पर ऐसी आकर्षणता शक्ति है कि जैसे चुम्बक पत्थर की लोहे के साथ। जिस समय युवती स्त्री और युवा पुरुष की आमने सामने दृष्टि पड़ती है उसी समय मन बिगड़ जाता है। बहुधा इन्द्रियों के वेगाश्रित होके अन्यथा व्यवहार मनुष्य कर बैठते हैं [इसमें] कुछ शंका नहीं। इससे सब

---

[1] अर्थात् व्यावर में।

Gurukul Kangri Library Haridwar

से होना असम्भव है। हां, जो पूर्ण विद्वान् योगाभ्यासी अर्थात् जिस की इन्द्रिय आत्मा के वस में हो तो वह कर सकता है। स्त्री को शिक्षा करने का अधिकार उसके पति ही को है।

(प्रश्न) नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र उन माता पिताओं के साथ किस प्रकार वर्त्तें।

(उत्तर) जो स्त्री अपने वास्ते नियोग से पुत्र को उत्पन्न करे वह पुत्र उस स्त्री के मृतक पति का होगा और उस के पदार्थों का दायभागी होगा। जो पुरुष अपने वास्ते नियोग से पुत्र को उत्पन्न करेगा तो वह पुत्र उस पुरुष का होगा और उसी के पदार्थों का दायभागी भी होगा। सेवा करना भी जिसका पुत्र कहावेगा उसी की तन मन धन से करना योग्य है। दोनों की नहीं कर सकता। इस प्रकार का निर्णय वेदादि सत्यशास्त्रों में विवेचन किया है। इन प्रश्नों के उत्तर तो सत्यार्थप्रकाश संस्कारविधि में देखने से निवृत्त हो सकते हैं॥

मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ आपका बड़ा भारी यश समझता हूँ जो आप प्रश्न भेजते हैं। अब जो मेरे करने योग्य [हो] वह आप कृपा पूर्वक पत्र पर लिख भेजा कर॥ किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु॥ आज कल यहां गोरक्षा के विषय में व्याख्यान होते हैं। यहां कोई एक मास पर्यन्त स्वामी जी का निवास रहेगा। फिर जहां को जाने का विचार होगा, पत्र द्वारा मैं आप को विदित कर दूंगा और जो यहां विशेष वार्त्ता आप को लिखने योग्य होगी; वह आप को निवेदन किया करूंगा॥

शुभम् ता० ३ फरवरी सन् १८८२ ई०[1]

(हस्ताक्षर रामानन्द ब्रह्मचारी)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४८६] **पत्रांश (३२९)**

[समाचार पत्र देशहितैषी अजमेर को[2]]

अमृतलाल[3] को अपनी समाज का सभासद कर लो।

४ फरवरी १८८२ मुम्बई[4] दयानन्द सरस्वती

---

[1] माघ शु० १५ शुक्र, सं० १९३८। [2] देशहितैषी के रजिस्टर से।

[3] रजिस्टर में एक टिप्पण है कि "ये जयपुर में रहते थे"।

[4] फाल्गुन कृष्ण १ शनि, सं० १९३८।

[पूर्ण संख्या ४९०] पत्राशय (३३०)

71336

[कविराज श्यामलदास जी, उदयपुर]

उदयपुराधीश के गौरक्षा के निमित्त हस्ताक्षर करवाने के लिये ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४९१] पारमल-सूचना (२८)

[कविराज श्यामलदास जी, उदयपुर]

गोरक्षा सम्बन्धी हस्ताक्षर कराने के पत्र ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४९२] पत्र (३३१)

पण्डित सुन्दरलाल जी आनन्दित रहो[3] !

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया । समाचार विदित हुआ । जो प्रतिमास में २० फारम वेदभाष्य के और १२ फारम वेदांगप्रकाशादि के छपें तो कुछ चिन्ता नहीं । परन्तु इतने से कम न छपना चाहिये । जो……… …………… के मन्त्री ने छापाखाना…………………………… …में होने के विषय में लिखा है यह बिलकुल बेसमझ की बात है । क्योंकि प्रथम तो जगह जगह छापेखाने के होने में व्यर्थ हजारों रुपये खर्च होते हैं । और छापेखाने की प्रसिद्धि होने में भी बहुत काल लग जाता है । प्रबन्ध भी बिगड़ जाता है । और भी बहुत प्रकार की हानि हो जाती है । इससे छापाखाना प्रथम ही रहेगा ।……………………में तो इस भाषा के जानने

---

[1] यह पत्राशय कविराज श्यामलदास के फा० शु० ७ शुक्रवार १९३८ (=१० फरवरी १८८२) के पत्र में निर्दिष्ट हैं । गोरक्षा के विजय में हस्ताक्षर करने के लिये एक पत्र ऋ० द० ने पौष शु० ५ रविवार १९३८ (=२५ दिसम्बर १८८१) को लिखा था । द्र० पूर्वमुद्रित पूर्ण संख्या ४८३ का पत्र (पृष्ठ ५२५) । कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] इस के लिये भी कविराज श्यामलदास का फा० शु० ७ शुक्र १९३८ (=१० फरवरी १८८२) का पत्र देखें । यह तीसरे भाग में छपेगा ।

[3] इस पत्र की छपी हुई प्रतिलिपि फरुखाबाद आर्यसमाज में थी । उसी से म० मामराज जी ने सन् १९२७ में प्रतिलिपि की ।

वाले कंपोजीटरों का भी मिलना दुर्लभ है। जो वह हमको लिखेगा तो हम उस को उत्तर दे देंगे। यह उसका लिखना बिलकुल व्यर्थ है।

……

तुम और बाबू विश्वेश्वरसिंह छापेखाने की तरफ दृष्टि रखोगे और भीमसेन को चेतन कर दोगे। मिति फाल्गुन वदी ३ सोमवार संवत् १९३८[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४२३] **पत्र-सूचना (४९)**

[पं० दयाराम, काशी]

बीस बीस पुस्तक भेजने के सम्बन्ध में।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४९४] **पोस्ट कार्ड (३३२)**

ओ३म्

वाजपेई रामाधार जी आनन्दित रहो[3]!

विदित हो कि आज हम ने वैदिक यंत्रालय प्रयाग मैनेजर दयाराम को लिख भेजा है सो आप का हिसाब सफा हो जायगा, अब आगे को गड़बड़ न होगा। देखिये यह परोपकार का काम है इस में सब बात के प्रबन्धकर्त्ता आप ही को रहना चाहिये, आप आपनी ओर से चाहे जिस को रक्खें परन्तु प्रधान आप ही समझे जायेंगे। अब आप इस पुराने हिसाब की सफाई करके नया हिसाब का आरम्भ कीजिये फिर गड़बड़ कभी नहीं हो सकेगी। हम यहां सेहर मुंबई बालकेश्वर गोशाला के बगल में ठहरे हैं। यहां गोरक्षा के विषय में व्याख्यान होते हैं॥

ता० २० फरवरी सन् १८८२ ई०[4]। [दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

---

१. ६ फरवरी १८८२।

२. इस पत्र का सूचना पं० भीमसेन के २७ फरवरी १८८२ को लिखे गये पत्र से मिलती हैं। भीमसेन का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है।

४. फालगुन शुक्ल ३ सोम, सं० १९३८। इस पत्र का रामाधार वाजपेयी का १ मार्च १८८२ का लिखा उत्तर तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ४९५क] पत्र-सूचना (५०)

[पं० दयाराम, काशी]

१. रामाधार वाजपेई का हिसाब भेजने के सम्बन्ध में।

२. दस दस पुस्तकें भेजने के सम्बन्ध में।[1]

२० फरवरी १८८२।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४९५ख] पत्र-सूचना (५१)

बाबू शिवनारायण जी मेरठ[3]।

२४ फरवरी १८८२[4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४९६] पत्र (३३३)

श्रीयुत मित्रवर आर्य्यकुल-प्रभाकर महाशय बाबू रूपसिंह जी योग्य इतः रामानन्द ब्रह्मचारी का यथायोग्य नमस्ते विदित हो ॥[5]

हे महाजन! आप के पत्र के प्रश्नों का उत्तर श्रीयुत स्वामीजी के आज्ञानुसार लिख कर भेज दिया था[6]। आशा है कि पहुंचा होगा। अब दो पत्र गोरक्षा के विषय के भेजता हूँ जिस में एक पत्र तो सही करने[7] का है जिसके ऊपर (ओ३म् और नीचे हस्ताक्षर) ऐसा चिन्ह है और दूसरा विज्ञापन[8] पत्र

---

[1] इस पत्र के प्रथमांश की सूचना ऋ० द० के पूर्व मुद्रित पूर्ण सख्या ४९४ के पत्र में है। द्वितीयांश की सूचना २७ फर्वरी १८८२ के भीमसेन के पत्र में मिलती ही। भीमसेन का पत्र तीसरे भाग देखें।

[2] इस तारीख का निर्देश ऋ० द० के पूर्ण संख्या ४९४ के पत्र के अनुसार किया है।

[3] इस पत्र की सूचना रामशरणदास के ९।३।८२ के पत्र में मिलती हैं। रामशरणदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] फालगुन शुक्ल ७ शुक्र, सं० १९३८।

[5] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[6] पूर्ण संख्या ४८८ का पत्र।

[7] यह आगे पूर्ण संख्या ५०१ पर छपा है।

[8] यह आगे पूर्ण संख्या ५०२ पर छपा है।

अर्थात् किस प्रकार महाशयों के हस्ताक्षर और मोहर होनी चाहिये इस विषय का है ।।

आशा है कि आप इस महोपकीर्त्ति को प्राप्त होकर आर्य्यावर्त्त में सुशोभित होंगे । आप पंजाब हाथे में जहां तक आपका पुरुषार्थ चले वहां तक अपनो और सब महाशयों को सही करा कर शीघ्र स्वामी जी के पास [भेज] देंगे । इस में सही इस प्रकार करानो होगो कि जिस महाशय के मेल में जितने आर्य पुरुष हों उन सब की ओर से वह एक पुरुष अपने हस्ताक्षर कर दे कि इतने १०० इतने १००० इतने १००००० वा इतने १०००००० करोड़ पुरुषों को ओर से मैं अमुक नामा पुरुष अपने हस्ताक्षर करता हूं । इस प्रकार सही करके पश्चात् जितने पुरुषों की ओर से उसने सही की हो उन सब के हस्ताक्षर कराके अपने पास रखले । क्योंकि जिस समय मुकद्दमा सरकार में पहुंचेगा उस समय जब सरकार पूछेगी कि इतने मनुष्यों की ओर से तुमने हस्ताक्षर किये, परन्तु उनकी सही तुम्हारे पास है कि नहीं, तब दिखलायो जायगीं कि है । इस लिये सही करा कर रखनी अवश्य चाहिये ।।

मुझ को दृढ़ निश्चय है कि इस कीर्ति के भागी आप होंगे । अब आप अपना पत्र शीघ्र भेजकर मुझ को कृतार्थ करेंगे । जो कुछ मेरे करने का काम हो कृपा पूर्वक विदित करना । आशा है कि आप कुटुम्ब के सहित आनन्द में होंगे । मैं भी ईश्वर की कृपा से आनन्द में हूं ।।

परमात्मा परम दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामो जगदीश्वर आपको सदैव आनन्द में रक्खे ।। शुभम् सम्वत् १९३८ चैत्र कृष्ण ५ शुक्र, ता० १० मार्च सन् १८८२ ई० ।।

[रामानन्द ब्रह्मचारी]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ४९७] **पत्र (३३४)**

मंत्री आर्य्यसमाज दानापुर आनन्दित रहो[1] !

मैं आप परोपकारप्रिय धार्मिक जनों को सब जगत् के उपकारार्थ गाय बैल और भैंस की हत्या के निवारणार्थ दो पत्र एक तो सही करने[2] का और

---

[1] मूल पत्र आर्य्यसमाज दानापुर में सुरक्षित है ।

[2] पूर्व पृष्ठ ५३५ की टि० ७ देखें ।

दूसरा जिस के अनुसार सही करनी[1] है, दो पत्र भेजता हूँ। इसको आप प्रीति और उत्साह पूर्वक स्वीकार कीजिये, जिस से आप महाशय लोगों की कीर्त्ति इस संसार में सदा विराजमान रहे। इस काम को सिद्ध करने का विचार इस प्रकार किया गया कि २०००००० **दो करोड़ से अधिक राजे महाराजे और प्रधान आदि महाशय पुरुषों की सही कराके आर्य्यावर्त्तीय श्रीमान् गवरनर जनरल साहेब बहादुर से इस विषय की अर्जी करके उपरी लिखित गाय आदि पशुओं की हत्या को छुड़वा देना।** मुझ को दृढ़ निश्चय है कि प्रसन्नता पूर्वक आप लोग इस महोपकारक कार्य्य को शीघ्र करेंगे। अधिक प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि जहां-जहां उचित समझें वहां-वहां भेजकर सही करा लीजिये। पुनः नीचे लिखित स्थान में रजिष्टरी कराके भेज दीजिये। "लाला रामशरण रईस मंत्री आर्य्यसमाज मेरठ [मोहल्ला कानून गोयान][2]"। अलमतिविस्तरेण धर्म्मिवरशिरोमणिषु॥

ता० १२ मार्च सन् १८८२ ई०।[3] (दयानन्द सरस्वती)

मुम्बई

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४९८] पत्र (३३५)

लाला रामचरण कालीचरण, मन्त्री आर्यसमाज फरुखाबाद[4] आनन्दित रहो।

---

[1] यह पूर्ण संख्या ५०२ पर (पृष्ठ ५४०) छपा है।

[2] यह[ ]कोष्ठान्तर्गत पाठ पूर्ण संख्या ४९८ का जो पत्र लाला रामचरण कालीचरण को भेजा गया था, उस में है। द्र० पं० घासीराम जी सम्पा० जी० च० पृष्ठ ६३१ पर लगा मूल पत्र का फोटो।

[3] चैत्र कृष्ण ७ रवि सं० १९३८।

[4] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है। इसे म० मामराज ने सन् १९२७ में आर्यसमाज फरुखाबाद के पुराने पत्रों में से खोजा था। इस मूल पत्र का फोटो पं० घासीराम जी सम्पा० जी० च० पृष्ठ ६३१ पर लगा है। तथा वेदवाणी काशी, फरवरी १९५३ के पृष्ठ १३ पर पूरा छपा है।

……………………………पूर्ण सं० ४९७ का पत्र ।

चैत्र कृष्ण ८ सोम० संवत् १९३८।[1] [ह० दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ४९९] पत्र (३३६)

आर्य्यसमाज लखनऊ, बाबू रामाधार वाजपेयी, खजाना रेलवे, आनन्दित रहो[2] ।

……………………………पूर्ण सं० ४९७ का पत्र ।

मि० चै० व० ८ सोम० सं० १९३८[1] । दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५००] पत्र (३३७)

पण्डित सुन्दर लाल असिसटेण्ट पोस्ट मास्टर जनरल प्रयाग, आनन्दित रहो ।

……………………………पूर्ण संख्या ४९७ का पत्र ।[3]

चैत्र कृष्ण ८ चन्द्रवार सं० १९३८[1] । ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५०१] सही करने का पत्र (३३८)

ओ३म्[4]

ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है, जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और

---

[1] ता० १३ मार्च १८८२ ।

[2] मूल पत्र आर्यसमाज लखनऊ के संग्रह में सुरक्षित है ।

[3] यही पत्र श्री स्वामी जी ने गोरक्षार्थ सही करने वाले दूसरे पत्र (पूर्ण संख्या ५०१-५०२) के साथ हस्ताक्षर कराने के लिये भारतवर्ष में सैंकड़ों की संख्या में आर्यसमाजों तथा अन्यों व्यक्तियों को भेजा था ।

[4] गोरक्षावाले पत्रों के साथ यह सही करने वाला छापा हुआ पत्र बहुत स्थानों को भेजा गया था । मूल मुद्रित पत्र म० मामराज फरुखाबाद से लाये थे । वह हमारे संग्रह में सुरक्षित है । फरुखाबाद का इतिहास नामक ग्रन्थ पृ० १९८ पर भी छपा है ।

दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किये अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है, वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये। क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा, जो परोपकाररूप धर्म और परहानिस्वरूप अधर्म्म के सिवाय धर्म वा अधर्म की सिद्धि कर सके? धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन, मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं, जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते है। सृष्टिक्रम से ठीक-ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो-जो वस्तु बनाया है, वह-वह पूर्ण उपकार लेने के लिये हैं। अल्प लाभ से महाहानि करने के अर्थ नहीं। विश्व में दो ही जीवन के मूल है, एक अन्न और दूसरा पान। इसी अभिप्राय से आर्य्यवर शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय, बैल, और भैंस को मारने और मरव ने देना नहीं चाहते हैं। क्योंकि अन्न और पान की वहुताई इन्हीं से होती है। इससे सब का जीवन सुख से हो सकता है। जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इन के मारने और मरवाने से होता है, उतना अन्य किसी कर्म से नहीं। इस का निर्णय गोकरुणानिधि पुस्तक में अच्छे प्रकार प्रकट कर दिया है अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से ४, २०,००० चार लाख बीस हजार[1] मनुष्यों के सुख की हानि होतो है। इस लिए हम सब लोग स्वप्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन विक्टोरिया की न्याय-प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती हैं इस को इन के राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हम को पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म्म, प्रजा-हित-प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन् महाराणी विक्टोरिया पार्लियामेण्ट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्य्यावर्त्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सब को परम आनन्दित करें। देखिये कि

---

[1] इस का पूर्ण विवरण 'गोकरुणानिधि' (दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह, पृष्ठ ५४७-५४८) तथा सत्यार्थप्रकाश समु० १० (आ० स० शताब्दी सं० २, पृष्ठ ४१५, ४१६) में देखें। दोनों ग्रन्थों में संख्या में कुछ भेद है।

उक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध घी और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्य प्रति अधिक अधिक हो जाती है। पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म्म और पर-हानि को अधर्म निश्चित जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं हैं कि जिस जिस से अधिक उपकार हो उस उस का पालन, वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त **जगदुपकारक काम करने में ऐकमत्य करे।।**

हस्ताक्षर

चुन्नीलाल प्रेस

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८०२] विज्ञापनपत्रमिदम्[1] (४३)

सब आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर (ओम्) ओर नीचे (हस्ताक्षर) ऐसा वचन लिखा है, वही सही करने का है। उस पर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिस के स्वराज्य व देश में ब्राह्मण आदि मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् इतने सौ, हज़ार, लाख व करोड़ मनुष्यों की ओर से मैं अमुक नामा पुरुष सही करता हूँ इस प्रकार एक श्रीयुत महाशय प्रधान पुरुष की सही में सर्व साधारण आर्य पुरुषों की सही आ जायगी। परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे, वह उन से सही लेके अपने पास अवश्य रक्खे। और जो मुसलमान वा ईसाई लोग इस महोपकार विषय में दृढ़ता और प्रसन्नता से सही करना चाहें तो कर दें। मुझ को दृढ़ निश्चय है कि आप परम उदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्व उपकारक महापुण्य कीर्त्तिप्रदायक कार्य यथावत् सिद्ध हो जायेगा।

चैत्र कृष्ण ९ सं० १९३९[2] तदनुसार १४ मार्च १८८२ मुंबई

दयानन्द सरस्वती

---

[1] सही करनेवाले पत्रों के साथ यह विज्ञापन भी अनेक स्थानों में भेजा गया था।

[2] यहां सं० १९३८ चाहिये, चैत्र शुक्ल १ से नया संवत् चलता है। फरुखाबाद का इतिहास नामक ग्रन्थ पृष्ठ २०० पर भी सं० १९३९ ही छपा है। वहां अंग्रेजी तारीख २४-३-१८८२ दी है, वह भी अशुद्ध है। १४ मार्च चाहिये।

[पूर्ण संख्या ५०३] पत्र-सूचना (५२)

श्री कृष्णलाल साह, अलमोड़ा[1]
गोरक्षासम्बन्धी दो पत्र
चैत्र वदी ११ बुधवार संवत् १९३८[2] मुम्बई

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५०४] पत्र-सूचना (५३)

[सम्पादक भारतमित्र कलकत्ता]
गोरक्षा सम्बन्धी दो पत्र ।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५०५] पत्रांश (३३९)

[समाचार पत्र देशहितैषी अजमेर को]
गोरक्षा के विषय में पत्र भेजते हैं ।[4]
१६ मार्च १८८२ मुम्बई[5]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५०६] पारसल-सूचना (२९)

[लाला रामशरणदास जी, मेरठ]
३०० गोरक्षा सम्बन्धी पत्र भेजे ।[6]

---

[1] इस पत्र का संकेत श्री किश्नलाल साह के ता० २९ मार्च १८८२ के पत्र में मिलता है । श्री कृश्नलाल साह का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] १५ मार्च १८८२ ।

[3] इस पत्र की सूचना श्री मनोहरदास क्षत्रिय, अवैतनिक कार्य सम्पादक, भारतमित्र, कलकत्ता के २९ मार्च ८२ के पत्र में है । ऋ० द० ने यह १२-१६ मार्च १८८२ को लिखा होगा । श्री मनोहरदास क्षत्रिय का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[4] देशहितैषी के रजिस्टर में से । [5] चैत्र वदी १२ गुरु०, सं० १९३८ ।

[6] इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ५६३ के पत्र में है ।

[पूर्ण संख्या ५०७] पत्र (३४०)

बाबू कृपाराम स्वामी आनन्दित रहो।

जो आपने ब्राह्मी ओषधी का पारसल भेजा सो पहुंचा। अब जब तक हम न लिखें तब तक मत भेजियेगा। यहां सब प्रकार आनन्द है। ३ तीन दिन के पश्चात्[१] वार्षिक उत्सव आर्यसमाज का ७ सातवां होगा। दानापुर से तीन सभासद् यहां उत्सव पर आवेंगे, और आर्यसमाज का स्थान भी थोड़े ही दिनों में बन जायगा। सब सभासद् भी प्रसन्न हैं। वहां की जो लिखने तुल्य बातें हों, लिखते रहना। [सब] से हमारा आशीर्वाद कहना।

मि० चै० व० १३ शुक्र सं० १९३८[२]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५०८] पत्र (३४१)

लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो[३]।

विदित हो कि कल रामानन्द के भाई त्रिलोचन ने एक पत्र भेजा है कि जिस में यह समाचार लिखा था। माता, पिता, बहुत बीमार हैं। और मैं भी बीमार हूँ। यहां कोई हमको जल देने वाला भी नहीं है। इस कारण तुम श्री स्वामी जी से आज्ञा लेकर देखते पत्र चले आओ। ऐसा शोक का समाचार लिखा था। इस बात की तुम पत्र के पहुंचते ही तलासी करना कि यह बात सच है किम्वा किसी के बहिकाने से उन्होंने लिखी अर्थात् केवल भाई के बुलाने के वास्ते। इसका ठीक ठीक निर्णय करके शीघ्र हमारे पास पत्र भेजो। जो ऐसा ही हो की जैसा लिखा है तो किसी एक योग्य पुरुष का प्रबन्ध करके उनके पास रख देना जो उनकी सेवा अच्छे प्रकार कर सके। और जो दवा दारू के खर्च में दो चार रुपये लगें तो दे देना। हिसाब हमारे नाम से लिख लेना। अब इसका पिता भी वहां आ गया है। इस कारण "३) रुपैये तो मा[ह]वारी इने मिलते ही हैं अब एक रु० अर्थात्

---

[१] अर्थात् चैत्र शुक्ला प्रतिपद् के दिन

[२] १७ मार्च १८८२ मुम्बई।

[३] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है। मार्च सन् २७ में म० मामराज ने आर्य्यसमाज फरुखाबाद के पत्रों में से खोजा था।

४) रुपैये मा[ह]वारी सेठ निर्भयराम जी [की] दूकान दिया करे" किसी प्रकार दुःखी न होने देना जब तक अच्छे न होंवे ॥

एक यह गुप्त बात लिखते हैं इसको प्रकट मत करना कि जो किसी का लोकान्तर हो जाय तो जैसा संस्कारविधि में लिखा है उसके अनुसार घृत चन्दनादि से मृतक संस्कार करवा देना। जो कुछ पंद्रह बीस रुपये लगें, लगा देना, परन्तु संस्कार अच्छी प्रकार करवा देना। "सब से हमारा आशीर्वाद कहियेगा। जो गोरक्षा के विषय में पत्र वहां भेजे हैं' उनको दिखला के अपनी जाति किंवा सब की सही बही में लेना। और सही करने वालों की ओर से जितनी संख्या हो उतनी लिख के पंच लोग सही उस छपे हुए पत्र पर क[र] देवें।[2]

चैत्र कृष्ण ३० रविवार संवत् १९३८[1]। (दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

पूर्ण संख्या ५०९] पत्र-सूचना (५४)

[श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर महाराणा सज्जनसिंह जी उदयपुराधीश] गोरक्षासम्बन्धी एक पत्र और एक छपी चिट्ठी[4]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१०] पत्र (३४२)

ओ३म्[5]

श्रीमन्महाराजाधिराजेभ्यः श्रीयुतशाहपुराख्याधीशेभ्यो दयानन्दसर-

---

[1] द्र० पूर्ण संख्या ५०१।

[2] " " कामों के अन्दर का लेख श्री स्वामी जी ने स्वहस्त से (लाल रंग से) लिखा है और पत्र को शोधा भी है।

[3] १९ मार्च १८८२।

[4] यह पत्र १४ से २१ मार्च १८८२ के मध्य भेजा गया होगा। देखो पूर्ण संख्या ५१०।

[5] मूल पत्र राज कार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि पं० भगवान्स्वरूपजी ने स्वहस्त से करके ता० ६-९-२८ के अपने पत्र सहित शाहपुरा से भेजी थी।

स्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमां शमिहास्ति भवदीयं च नित्यमाशासे । जब से आप और मेरा बियोग हुआ तब से अवकाश न मिलने से मैं आपको पत्र नहीं लिख सका । अब इस पत्र के पहुँचने के पश्चात् अपने कुशल क्षेम के समाचार से सुभूषित पत्र भेजियेगा । मैं भी उचित समय पर पत्र भेजा करूंगा, जो आप से और मुझ से गोरक्षा के विषय[में]संवाद हुआ था उसके वास्ते जो एक पत्र और एक चिट्ठी छपवाके श्रीमानार्य्यकुलदिवाकर उदयपुराधीशादि राजे महाराजों के पास भेजे हैं वे ही श्रीमान् महाराजाधिराज आपके पास भी दो पत्र भेजते हैं, इसका प्रबन्ध ऐसा किया है कि अपने राज्य और मित्रों के राज्य में जो जो ब्राह्मणादि मनुष्य हों उनको सही एक बही में लेके उनकी ओर से राजे महाराजे और प्रधान पुरुष उस छापे के पत्र के नीचे वा बगल में उन सही करनेवालों की संख्या लिख के अपनी सही करें। चित्तौड़ में जो कुछ अच्छी बातें हुईं वे सब श्री मदनवद्य गुणोदार महाराजाधिराजों के पुरुषार्थ ही से हुईं और अग्रे होगी। जो राजकुमार पाठशाला की बात हुई थी सो श्रीमदार्यकुलभास्करों ने भी करना स्वीकार कर लिया है। यहां मुम्बई में भी गोरक्षा के वास्ते सही हो रही है। सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा । अलमतिविस्तरेण महाराजाधिराजवर्य्येषु। मि० चै० शु० २ वार मंगल संवत् १९३९[1] । इसका उत्तर मुम्बई में शीघ्र लिख भेजिये। मुंबई बालकेश्वर ।

(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

पूर्ण संख्या ५११] पत्र-सारांश (३४३)

[कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लेवेस्टकी[2]]

मेरठ में आपने एक व्याख्यान दिया था, जिससे ज्ञात हुआ कि आप लोगों को ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह है और आप लोगों ने जो चिट्ठी अमेरिका से लिखी थी उस में अपने धर्म का नाम थियोसोफिस्ट लिखा था। हमने थियोसोफिस्ट शब्द के अर्थ अंग्रेजी जाननेवालों से पूछे तो

---

[1] २१ मार्च १८८२।

[2] यह पत्राशय पं० घासीराम जी सम्पा० जी० च० परिशिष्ट २, पृष्ठ ७७३ तथा पं० लेखराम जी कृत उर्दू जी० च० पृष्ठ ८४१ (हिन्दी सं०, पृष्ठ ८७७) पर उद्धृत है।

उन्होंने कोष को देखकर 'थियोसोफी' शब्द के अर्थ ईश्वर की बुद्धिमत्ता बतलाये थे । उससे हमने आप को आस्तिक समझा था और इस कारण आप से मित्रता करने में मुझे कोई रुकावट नहीं रही थी । अब आप के व्याख्यान इस के विपरीत देखते हैं । आप से और हम से मित्रता हो चुकी है । अतः कल के दिन अथवा जितना शीघ्र हो सके आप मेरे पास चले आओ वा मुझे अपने पास बुला लो, वा कोई अन्य स्थान नियत करो कि जहां हम दोनों मिलकर इस विषय में शास्त्रार्थ करें । यदि आप से हो सके तो हमारे मन से ईश्वर का विचार उठा दो और अपने जैसा बनालो, अन्यथा हम से हो सकेगा तो हम आप को ईश्वर का प्रमाण देंगे और आप को अपने जैसा बनावेंगे ।

२१ मार्च सन् १८८२ ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१२] पत्र-सारांश (३४४)

[मैडम ब्लेवेस्टकी[2]]

कर्नल ने हमें वचन दिया था कि हम शीघ्र ही इस विषय में शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु वह उसे पूरा किये विना ही अन्यत्र चले गये । सो यदि तीन चार दिवस के भीतर आप अकेली अथवा कर्नल सहित इस बखेड़े को न निबटा लोगी तो मैं २८ मार्च सन् १८८२ मंगलवार[3] को फ्रामजी कावसजी हाल में आप के विरुद्ध वक्तृता दूंगा ।

२२ मार्च १८८२ ।[4]

—:०:—

---

[1] चैत्र शुक्ल २ मंगल, सं० १९३९ ।

[2] यह पत्राशय पं० घासीरामजी सम्पादित जी० च० परिशिष्ट २ पृष्ठ ७७४ तथा पं० लेखराम जी कृत उर्दू जी० च० पृष्ठ ८४१, ८४२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८) पर उद्धृत है ।

[3] चैत्र शु० ९ मंगलवार सं० १९३९ सायं ६ बजे उक्त व्याख्यान दिया था । देखो ऋ० द० का जीवनचरित्र ।

[4] चैत्र शुक्ल ३ बुध, सं० १९३९ ।

[पूर्ण संख्या ५१३] **पत्र-सूचना (५९)**

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग][1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१४] **पत्र (३४९)**

पंडित सुन्दरलाल जी आनन्दित रहो ।[2]

विदित हो कि आर्यसमाज लाहौर में प्रतिमास अंग्रेजी [का] एक आर्यपत्र निकलता है। वहां के एडीटर ने लिखा है कि इस पत्र के बदले में आप प्रतिमास ऋग्यजुर्वेद का भाष्य भेजा करें और इसके बदले वह पत्र भेजेंगे। सो तुम लाला सांईदास के मार्फत वेदभाष्य भेज देना और वे जैसा नोटिस लिख भेजें छपने के वास्ते वैसा ही छपवा देना ।।[3]

भीमसेन अब भाषा बहुत ढीली बनाता है उसको शिक्षा कर देना कि भाषा के बनाने में ढील न हुआ करे और आख्यातिक अब कितना छप चुका है। हमने कई बातें पूछीं हैं उनका उत्तर हमको अब तक न दिया। उनका शीघ्र प्रत्युत्तर भेजना चाहिये।[4] मैनेजर दयाराम ने अभी त[क] हिसाब का पत्र नहीं भेजा है उससे हिसाब भिजवा देना।

मार्च ता० २३ सन् १८८२ ई०[5]

---

१. पूर्ण संख्या ५१४ के अन्त में 'जिन बातों के पूर्व पत्रों में उत्तर मांगा है' (पृष्ठ ५४७) लिखे अंश से विदित होता है कि ऋ० द० ने कई पत्र लिखे थे, जो हमें उपलब्ध नहीं हुए। यहां हमने केवल पत्र की सूचना बनाकर छापी है।

२. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

३. इस बात का निर्देश आगे पूर्ण संख्या ५३१ के पत्र में भी है। यह 'आर्य' पत्र सम्बन्धी नोटिस विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य के ४२-४३ सम्मिलित अङ्क (आश्विन कृष्ण, सं० १९३९) के टाइटल के तृतीय पेज पर तथा ऋग्वेदभाष्य के ४८-४९ सम्मिलित अङ्क (वैशाख कृष्ण, सं० १९४०) के टाइटल पेज ४ पर छपा था। इसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

४. इस पत्र में पूछी गई बातों का उत्तर भीमसेन ने दिया है। भीमसेन के पत्र पर कोई तारीख वा तिथि नहीं है। इस २३ मार्च के पत्र का उतर होने से भीमसेन ने मार्च के अन्त में अथवा अप्रेल के आदि में पत्र लिखा होगा। भीमसेन का पत्र तीसरे भाग में देखें।

५. चैत्र शुक्ल ४ बृह० सं० १९३९।

और जिन बातों के पूर्व पत्रों में[1] उत्तर मांगा है भेज देना। इसमें विलम्ब न होना चाहिये।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१५] पत्र[2] (३४६)

यह बात बहुत उत्तम है क्योंकि अभी कलकत्ते में इस विषय की सभा हो रही है।[3] इस लिये जहां तक बने वहां शीघ्र संस्कृत और मध्यदेश[4] की भाषा के प्रचार के वास्ते, बहुत प्रधान पुरुषों की सही[5] कराके कलकत्ते की सभा में भेज दीजिये और भिजवा दीजिये। और मेरठ और देहरादून से पूर्व पूर्व समाजों में पत्र इस विषय के शीघ्रतर भेज दीजिये।

चै० शु० ५ शुक्र सम्वत् १९३८[6]। दयानन्द सरस्वती

(मुंबई)

---

[1] ये पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुए।

[2] मूल पत्र मार्च सन् १९२७ में महा० मामराज जी ने फर्रुखाबाद आर्यसमाज के पत्रों में से खोजा था। अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[3] भारतीय स्कूलों में कौनसी भाषा पढ़ाई जावे, इस विषय पर विचारार्थ सन् १८८२ के आरम्भ में कलकत्ता में एक कमिशन बैठा था। लाहौर समाज ने उस कमिशन के प्रधान को आर्यभाषा पढ़ाई जाने के लिये पत्र लिखा था। मुलतान समाज ने भी ऐसा ही पत्र वहां भेजा था। उन दिनों मुलतान समाज के मन्त्री उत्साहमूर्ति मास्टर दयाराम थे। उन्होंने श्री स्वामी जी को १९ मार्च सन् १८८२ को लिखा कि वे सब समाजों को कलकत्ते को ऐसे पत्र लिखने के लिये प्रेरित करें। श्री स्वामी जी ने उसी पत्र की पीठ पर ऊपर मुद्रित लेख स्वहस्त से लिखकर फर्रुखाबाद भेजा, ताकि वहां से सब समाजों में आन्दोलन किया जावे।

[4] मध्यप्रदेश से यहां यमुना के पूर्वी तट से लेकर वाराणसी तक का प्रदेश जानना चाहिये। प्राचीन परिभाषा के अनुसार सरस्वती से प्रयाग तक तथा हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य का देश 'मध्यदेश' कहाता था। द्र० मनु २।३४।

[5] सही करने योग्य पत्र तथा मास्टर दयाराम जी का पत्र हमारे संग्रह में थे, वे लाहौर देशविभाजन के समय नष्ट हो गये।

[6] यह गुजराती संवत् है, उ० भारतीय १९३९ जानना चाहिये, २४ मार्च १८८२।

[पूर्ण संख्या ५१६] विज्ञापनपत्रमिदम्[1] (४४)

सब सज्जन उदार आर्य लोगों को विदित किया जाता है जो फीरोजपुर में अनाथाश्रम कई एक वर्षों से आर्यसमाजों ने स्थापित किया है यह बड़ा प्रशंसित और धर्म का काम है और इस में बड़े सहाय की अपेक्षा है। इस लिये आप सज्जन लोगों को उचित है कि इसका सहाय करना। क्योंकि इसके होने से आर्यलोग जिन का पालन करने वाला कोई न होवे वे ईसाई वा मुसलमान अथवा अन्य मत में वेदोक्त सनातन धर्म से छूट के मिल जाते थे उनकी रक्षा के लिये यह अनाथ-पालनार्थ सभा नियत की है। जिस प्रकार अर्थात् धन के सहाय करने से इसका दीर्घायु हो वैसे यत्न करने चाहिये॥ ॥अलमतिविस्तरेणौदार्य्यादिगुणयुक्तेषु॥

ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१७] विज्ञापन[2] (४५)

थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल[3]

श्री स्वामी जी ने और आर्यसमाज के लोगों ने उनके पूर्व पत्र और

---

[1] ऋग्वेदभाष्य, अंक ३६, ३७, वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग के मुखपृष्ठ की पीठ (=टाइटल पेज ४) पर छपा। यह अंक चैत्र शुक्ल १० संवत् १९३९ तदनुसार २९ मार्च सन् १८८२ को छपा था।

[2] यह विज्ञापन लगभग ३१ मार्च सन् १८८२ को मुम्बई के ओरियण्टल प्रेस में छपा था। यही विज्ञापन पं० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित पृष्ठ ८४२-८४४ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८-८८२) पर छपा है। पण्डित जी ने इस का उर्दू अनुवाद नहीं किया। फारसी अक्षरों में भाषा मूल समान ही दी गई है। पं० लेखराम जी का पाठ अधिक शुद्ध है। आर्यधर्मेन्द्रजीवन में कुछ शब्द बदले हुए प्रतीत होते हैं। हमें मूल मुद्रित प्रति प्राप्त नहीं हो सकी।

[3] सं० १९४२ (सन् १८८५) में मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या उपमन्त्री परोपकारिणी सभा द्वारा मुद्रापित "आवेदन-पत्र" में ऋषि दयानन्द के पुस्तक-संग्रहान्तर्गत संख्या ११६ पर **"थियोसोफिकल सोसाइटी के दोषों का स्वामी जी का उत्तर"** पुस्तिका निर्दिष्ट है, वह सम्भवतः यही विज्ञापन है।

व्यवहारों से यह अनुमान किया था कि उन से आर्यावर्त देश का कुछ उपकार होगा। परन्तु वह अनुमान व्यर्थ हो गया—

१. क्योंकि जो जो उन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठयों में प्रसिद्ध लिखा था कि हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा हुई, उससे यह लोग बदल गये।

(२) उन्होंने कहा था कि वेदोक्त सनातन धर्म के ग्रहण और विद्यार्थी होकर संस्कृत विद्या पढ़ने को आते हैं, सो तो न किया, किन्तु अब किसी धर्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म की जिज्ञासा की, न आज तक संस्कृत विद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है॥

(३) उन्होंने कहा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फीस आवेगी वह आर्यसमाज के लिये होगी और बहुत सी पुस्तकें भेंट की जावेंगी, वह तो कुछ भी नहीं किया, परन्तु जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास ७००)[1] रुपये भेजे थे वह भी निगल कर बैठ रहे, पुस्तकों का दान करना तो दूर किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और शिवनारायण आर्यसमाज मेरठ के सभासदों ने उनके सत्कार में स्थान, मान, सवारी और खान पान आदि में सैकड़ों रुपये खर्च किये, इतने पर भी एच० पी० मैडम ब्लेवटस्की और एच० एस० करनेल आलकाट साहब ने जो एक पुस्तक उनको दिया था उसके ३०) रु० झट ले लिये, लज्जित भी न हुए। इसके सिवाय सहारनपुर, अमृतसर और लाहौर आदि के आर्यसमाजों ने बहुत सा सत्कार किया वह भी उन्होंने नहीं समझा और स्वामी जी ने भी जहां तक बना इनका उपकार किया। उसको न मान कर व्यर्थ लिखते हैं कि हमने स्वामी जी का बहुत सहाय किया, परन्तु स्वामी जी कहते हैं कि कुछ भी नहीं [किया] और जो किया हो तो प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं सो कुछ भी प्रकट नहीं करते फिर कौन मान सकता है?

(४) प्रथम इन्होंने अपने पत्रों में और यहां आकर स्वामी जी और सब के सामने ईश्वर को स्वीकार किया, फिर उस के विरुद्ध मेरठ में स्वामी जी और अनेक भद्र पुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है? तब स्वामी जी ने कहा कि

---

[1] इन सात सौ रुपयों के सम्बन्ध में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने २४ फरवरी १८७९ को श्री स्वामी जी के नाम के पत्र में लिखा था। वह पत्र लाहौर में नष्ट हो गया।

तुम ईश्वर के मानने का खण्डन करो और हम मण्डन करें कि जो सच हो उसको मान लीजिये तब इन्होंने इस बात को भी स्वीकार न किया।

(५)जब यह आर्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचार पत्र(*Indian Spectator*) में तारीख २४ जुलाई सन् ७८ ईस्वी में छपवाया था कि न हम बुधिष्ट, न हम कृश्चियन और न हम ब्राह्मण अर्थात् पुराण मत के माननेवाले हैं, किन्तु हम आर्यसमाजिक हैं। अब इस से विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बुद्धिष्ट थे और अब भी हैं। क्या यह कपट और छल की बात नहीं है और जनवरी सन् ८० ई० की चिट्ठी से सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को मानते थे और आठ महीने पश्चात् उसी सन् के अक्टूबर महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। यह उसका छल नहीं तो क्या है?

(६) यहां आकर प्रथम थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा स्वीकार करके पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्यसमाज की शाखा और न आर्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है किन्तु जो एक दूसरे वेद की शाखा दोनों के साजे की है, इस से विरुद्ध अब छाप के प्रसिद्ध किया कि हमारी सोसाइटी कभी आर्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्यसमाज से बाहर हैं। क्या यह भी उनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब उन्हों ने बम्बई में सोसाइटी बनाई थी, उस में स्वामी जी के कहने सुनने, लिखने बिना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब यह प्रथम मेरठ में मूलजी के साथ मिले थे तब स्वामी जी ने कहा था कि बिना हमारे कहे सुने तुमने सोसाइटी में हमारा नाम क्यों लिखा? जहां लिखा हो काट दें। तब करनेल आलकाट साहब ने कहा कि हम इस से आगे ऐसा काम कभी न करेंगे। जहां लिखा है वहां से निकाल भी देंगे[1]।

फिर जब काशी में मिले, तब तक उन्होंने सोसाइटी से स्वामी जी का नाम नहीं निकाला था। तब स्वामी जी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहां हमारा नाम लिखा हो वहां से शीघ्र निकाल दो[2]। जब इन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या लिखें तब स्वामी जी ने तार से ही उत्तर दिया कि जैसा हमने प्रथम वैदिकधर्म्म उपदेशक लिखा था, वैसा लिखो। न मैं तुम्हारी वा अन्य सभा का सभासद हूं, किन्तु एक वेदमार्ग को छोड़ के किसी का संगी मैं नहीं

---

[1] इस बात का संकेत पूर्णसंख्या ३८१ पृष्ठ ४४६ पंक्ति १९-२५ में है।

[2] इस का संकेत भी पूर्ण संख्या ३८१ पृष्ठ ४४६ पंक्ति २५-२७ में है।

हैं। इस पर भी जब वे शिमले में थे, तब ब्लैवस्टकी ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिसको कोई सभ्य स्वीकार न करेगा, क्या यह उनको योग्य था। स्वामी जी ने कभी उनको न लिखा था और न कहा था, उस पर भी इन्होंने स्वयं स्वामी जी का नाम लिख लिया था। क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

(७) जो इन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज से पीछे आर्यसमाज के सभासदों को अपनी सोसाइटी में भरती होने को कभी न कहेंगे, इसी के दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलाल जी अम्बाले तक उनके साथ गये, तब मार्ग में बहुत समझाते गये कि आप हमारी सोसाइटी के साथ हूजिये और पत्र शिमले से बाबू जी के पास भेज दिया आप सोसाइटी के सभासद हूजिये।

(८) ऐसी ऐसी छल कपट की बातें देखकर स्वामी जी ने आर्यसमाज मेरठ के वार्षिक उत्सव में व्याख्यान दिया था कि इनकी सोसाइटी में किसी वेदानुयायी को सभासद होने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि जैसे नियम आर्यसमाज के हैं वैसे उनकी सोसाइटी के नहीं। इस पर शिमले से मैडम ब्लैवस्टकी ने असभ्यता और झूठ की भरी हुई चिट्ठी लिखी और स्वामी जी ने भी इसका उत्तर यथायोग्य दिया[1]। इसके पश्चात् स्वामी ने विचारा था कि जब हम बम्बई में जावंगे, तब उनसे सब बातों का खुलासा कर लेंगे ऐसा ही आर्यसमाज बम्बई चाहता था। जब स्वामी जी बम्बई में पहुंचे, तब बहुत से सभासद् और करनेल आलकाट साहब भी स्टेशन पर आये थे। जब स्वामी जी स्थान पर आ पहुंचे, पश्चात् उन से स्वामी जी की बहुत सी बातें हुईं और स्वामी जी ने यह भी विदित कर दिया कि आप से और भी बहुत विषयों में बातें करनी हैं। तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया। जब कुक साहब[2] के विषय में बात चीत करने के लिये स्वामी जी के पास आये तब भी कहा कि आपका और हमारा विचार हो जाना चाहिये था। तब करनेल आलकाट साहब ने कहा था कि हां करेंगे। इस पर भी स्वामी जी ने पानाचन्द आनन्द जी और राव बहादुर पं० गोपालराव हरि देशमुख द्वारा कहलाया कि आप लोग मुझ से बातचीत करने को आवें नहीं तो हम को प्रसिद्ध भाषण देना होगा। पानाचन्द आनन्द जी से

---

[1] देखो पत्र पूर्ण संख्या ३८१, पृष्ठ ४४३-४४६।

[2] देखो पत्र पूर्ण संख्या ४८५, पृष्ठ ५२८, ५२९।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

इन्होंने पूछ के स्वामी जी से कहा कि २७ मार्च ८२[1] को करनेल आलकाट साहब बातचीत करने को आवेंगे, फिर भी न आये। बम्बई से जयपुर पहुंच कर पत्र लिखा कि मैं नहीं आ सका, परन्तु मैडम ब्लैवस्टकी आप से बातचीत कर लेंगी। वह भी नहीं आई॥

तब स्वामी जी का भाषण आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के पूर्वापर-विरुद्ध अर्थात् उनकी थियोसोफिकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था, अब क्या है, इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्यसमाज बम्बई ने एक दिन पूर्व नोटिस छपवा कर प्रसिद्ध कर दिया तो भी मैडम ब्लैवस्टकी ने स्वामी के पास आकर बातचीत न की, तब स्वामी जी ने भाषण दिया[2]।

इस पर अपने थियोसोफिकल पत्र में लिखते हैं कि हम से विना कहे सुने स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। क्या यह बात उनकी झूठ नहीं थी। इनमें उनकी चिट्ठियां पढ़ पढ़ाकर सुनाई कि जिसमें उनका पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार प्रकाश किया और यह कहा कि ये लोग कहते हैं कुछ, और करते हैं कुछ। ऐसा कहते हैं कि हम आर्यावर्त देश की उन्नति करने के लिये आये हैं, परन्तु उन्नति के बदले उनके काम अवनति-कारक विदित होते हैं। देखो स्वामी जी ने अनेक बार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफिस्ट समाचार में भूत, प्रेत, पिशाच आदि का होना लिखते हो, यह विद्या के विरुद्ध व असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो, क्योंकि यह समाचार इस देश और यूरोप में भी जाता है। सब लोग जान जायेंगे कि आर्यावर्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के मानने वाले हैं। इस बात को अब तक नहीं माना और पूर्व पत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे, क्या इस बात को भी कोई सच कर सकता है।

(९) जो पत्र कुक[3] साहब को लिखा था वह करनेल आलकाट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामी जी ने लिखवाया। इस में (*Most divine*) अर्थात् कौनसा धर्म अधिक सम्बन्ध ईश्वर से रखता है, यह स्वामी

---

१. अतः मार्च के अन्त में यह विज्ञापन छपा। पूर्ण संख्या ५१२ का पत्र भी देखें।

२. २८ मार्च सन् १८८२=चैत्र शुक्ल ९, संवत् १९३९, मंगलवार, ६ बजे सायं व्याख्यान हुआ।

३. इन के नाम का पत्र पूर्ण संख्या ४८५ (पृष्ठ ५२८, ५२९) पर देखें।

जी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था। जब उनके गये पश्चात् स्वामी जी ने इस पत्र की नकल बचवाई तो अशुद्ध विदित हुआ, फिर इस पर स्वामीजी के पास करनेल साहब आये और तब वह शब्द कटवा दिया अर्थात् उसके स्थान में ऐसा लिखवाया कि जब आप और मुझ से संवाद होगा तब विदित हो जायगा कि कौन धर्म ईश्वर प्रणीत है और कौन सा नहीं। इतने पर भी उन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया। क्या ऐसी बात उनको कर्त्तव्य थी? देखो यह उनकी सोसायटी के नियमों में—"थियोसोफिस्ट अर्थात् ईश्वर के मानने वाले, इस सोसायटी में फीस नहीं ली जाती, इस धर्म से कोई धर्म उत्तम न कहना न जानना और सदा क्रिश्चियन धर्म के विरुद्ध रहना चाहिये" जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिसने यह सब बनाया है उस ईश्वर को [न] मानना, दस दस रुपये फीस लेना और जिस धर्म का व्याख्यान देते हैं, उसी को सब से उत्तम कहने लग जाते हैं, क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है?

अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं। इतने नमूने ही से सब कोई समझ लेंगे। परन्तु इस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि उनकी सोसायटी और उनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्यावर्त देश और आर्यसमाजों को सिवाय हानि के कुछ लाभ नहीं, क्योंकि इन लोगों का अन्तरीय अभिप्राय क्या है? इसको वे ही जानते होंगे। जो इनका अन्तर ही निष्कपटी होता तो ऐसा पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार क्यों करते? जब ये भयङ्कर नास्तिक, वाचाल और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्यावर्त देश और आर्यसमाजस्थ पुरुषों को उचित है कि इन से सम्बन्ध और देशोन्नति की आशा न रक्खें।

देखो और भी थोड़ा सा उनके प्रपञ्च का नमूना—प्रथम स्वामी जी का नाम लेते थे। जब स्वामी जी उनके जाल में न फंसे तो अब कोटहूमीलाल' का नाम लेते हैं जिसको न किसी ने देखा और न पूर्व सुना था। जो कभी उसके नाम से स्वार्थ सिद्ध न होगा तो गोत्र कोटहूमीसिंह[1] नाम शायद लेंगे।

---

[1] इस व्यक्ति विषय में श्री भाई जवाहरसिंह (लाहौर) का १७ फर्वरी १८८३ का पत्र देखें। इसने लाहौर आर्यसमाज में योगविद्या का अचम्भा दिखाने के लिये अपनी अंगुली कटवा ली थी। भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

अब कहते हैं कि वह हमारे पास आता, बातें और चमत्कार दिखालाता है। देखो इनका यह फोटो ग्राफ (चित्र) है, चिट्ठियां और पुष्प ऊपर से गिरते हैं, खोई हुई वस्तु निकलती हैं इत्यादि सब बातें उनकी झूठ है। क्योंकि दूसरी को तौ जाने दो, परन्तु जब प्रथम करनेल साहब मैडम के साथ बम्बई में आये थे, तब कुछ वस्त्र आदि की चोरी हुई थी, उसके लिये बहुत सा यत्न पुलिस आदि से कराया था, उनको क्यों नहीं मंगा लिया? जब अपने पदार्थ न मंगवा सकें तौ शिमले की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा।

जब स्वामी जी और मैडम से मेरठ में योग-विषय में बात हुई थी, तब कहा था कि योगशास्त्र और सांख्य की रीति से मैं योग करती हूं; तब स्वामी जी ने उनसे उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी। तब कुछ भी उत्तर न दे सकीं, अर्थात् जैसे बाजीगर तमाशा करते हैं उसी प्रकार की इनकी भी बातें हैं, जो योग थोड़ा भी करते हैं वह भीतर और बाहर से सरलता का व्यवहार करते हैं न कि छल और कपटयुक्त व्यवहार। जो योगविद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मान कर भयङ्कर नास्तिक क्यों बन जाते। इन के योगविद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है। इस लिये यही निश्चय है कि इनकी सोसायटी और उसकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इसलिये इनसे पृथक् रहना अति उत्तम है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः[1]॥

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५१८] **पत्र (३४७)**

मन्त्री आर्यसमाज आनन्दित रहो[2]।

थियोसफिकल सोसायटी के विषय में हम ने यहां पत्र छपवाया

---

[1] यह विज्ञापन आर्यधर्मेन्द्र-जीवन प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३४८ से ३५२ से लिया गया।

[2] यह पत्र पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८४२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८) पर छपा है। यह पत्र थियोसोफिसटों की गोलमाल पोलपाल के साथ सब आर्य-

है[1] । तुम को भेजते है । तुम उन को छोटी छोटी समाजों में भेज देना । और जब यह पत्र पहुंचे तो उस का एक व्याख्यान दे दो कि स्वामी जी ने थियोफिसटों से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है ।

मार्च मुम्बई

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५१९] पारसल-सूचना (३०)

[श्री नन्दकिशोर जी, जयपुर]
गोरक्षा–सम्बन्धी ५ फार्म ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५२०] पारसल--सूचना (३१)

[लाला मूलराज जी एम० ए०]
गोरक्षा–सम्बन्धी फार्म और थियोसोफिस्टों के सम्बन्ध का विज्ञापन ।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५२१] पत्र-सूचना (५६)

[पं० रामाधार वाजपेयी, लखनऊ]
थियोसोफिस्टों के सम्बन्ध में ।[4]

—:०:—

समाजों को भेजा गया था । २८ से ३१ मार्च तक किस तिथि को छपकर प्रकाशित हुआ ।

[1] अर्थात् पूर्ण संख्या ५१७ वाला विज्ञापन ।

[2] इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ५२२ के पत्र के अन्त में मिलती है ।

[3] इस की सूचना पूर्ण संख्या ५२७ के पत्र पृष्ठ ५६१ पं० २ में मिलती है ।

[4] इस पत्र की सूचना रामाधार वाजपेयी के अज्ञात-तिथि के पत्र से मिलती है । यह पत्र सम्भवतः ऋ० द० ने अप्रैल १८८२ के आरम्भ में लिखा होगा । रामाधार वाजपेयी का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[पूर्ण संख्या ८२२] **पत्र (३४८)**

Bombay 8th April [1882][7]

To

Mr. Nand Kishore Singh.[8]

Dear sir,

I gladly acknowledge the receipt of your letter of the 4th instant. I am very glad to hear that Pandit Kaloo Ram's visit to that place was crowned with success. I am also delighted to hear that arrangements have been made for the prevention of cow slaughter in Jeypor. I very much wished that such a work would well have been done through the interference of a Raja, You have certainly well planned that no kine (or oxen or she buffaloes) would be exported from your Raja. The best plan which I would like to recommend in addition to yours, would be the following:—A census so to say, of these animals should be made—that all the cows etc., of the Kingdom should be counted. So also every new animal that is born (or every one that is died) should be reported to the officer-in-charge of the business. This counting ceremony should be made after every six months or so. The reason of this is that in the night time or so i is not quite impossible for the cattle to be stolen away.

---

१. वैशाख कृष्ण ५ शनि, सं० १९३९ ।

२. श्री नन्दकिशोरसिंह जी ठाकुर, मोहन मौहल्ला, कासगंज, संयुक्त प्रान्त के निवासी थे । वे जयपुर कौंसल के मन्त्री रहे । ऋषि दयानन्द सरस्वती से उनका बड़ा प्रेम था । पहले उन्होंने महामहोपाध्याय स्वर्गीय पण्डित शिवदत्त जी की प्रेरणा से हमारे पास पत्रों की प्रतिलिपि भेजी थी । पुनः ४ अक्तूबर १९२८ को कासगंज से अपने निम्नलिखित पत्र के साथ सब मूल पत्र भेज दिये ।

"……स्वामी जी महाराज के जितने पत्र मेरे पास थे, वोह सब इस पत्र के साथ भेजता हूं, स्वीकार कर बाधित करें और मेरे योग्य सेवा सर्वदा लिखते रहै मेरी याद बनी रहै कि मैं अब इस संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ । शुभम् ॥

नन्दकिशोरसिंह"

इसके नाम का आगे छापा जा रहा आषाढ़ वदी १० शनि सं० १९४० (=३० जून १८८३) का पत्र और उस की टिप्पणी भी देखें ।

That you have established an "Arya Dharma Sabha" is certainly a very praisworthy undertaking, you have effected. I hope will have for its object the welfare of the Aryas and and the *Unnati* of their divine and true Vedic religion. I anticipate a great benefit to the country from this Sabha of yours.

The cow affair is rapidly proceeding and with utter success. Here in Bombay two thousands of signatures are being taken in favour of the prevention of the slaughter. We mean to banish cow-slaughter not simply from our native states but we mean to apply to the parliament on that act. For this purpose, we mean to collect signatures of two crores of people. It is also hoped that the Rajas also will be pleased to advise each other in this matter. Pandit Kaloo Ram ji also deserves a great merit in this respect

As for us we are doing quite well. The work of Veda Bhashya is going on uninterrupted and successfully. The Aryasamajists of Bombay have bought a large piece of ground for the Samaj building, (for Rs. 6 500). And the necessary fund of money (about 12,000 or 15.000) required for the building is also ready

We have, separately sent to you 5 printed forms with respect to the prevention of cow-slaughter which you will soon receive. All the rules and sub-rules of the Arya Samaj should be preserved in the Samaj you have successfully established. In conclusion I mean to bless you all. Be giving me the necessary information in time.

From the 5 papers we have sent you will understand our plan throughly Kindly take the signatures of as many men in your Kingdom as you can and keep them with you. We shall require them before long.[1]

[दयानन्द सरस्वती]

---

[1] इस पत्र का उर्दू अनुवाद पं० लेखराम कृत उर्दू जीवन चरित्र पृष्ठ ८७८, ८७९ (हिन्दी सं०, पृष्ठ ६३२-६३३) पर छपा हैं। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[भाषानुवाद][1]

बम्बई ८ अप्रेल [१८८२][2]

सेवा में—
श्री नन्दकिशोर सिंह[3]।
प्रिय महोदय!

मुझे आपका ४ तारीख का पत्र प्राप्त[4] कर प्रसन्नता हुई। यह सुन कर प्रसन्नता हुई कि पण्डित कालूराम[5] का उस स्थान पर आगमन सफल रहा। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि जयपुर में गोवध-निषेध का प्रबन्ध हो गया है। मेरी प्रबल इच्छा थी कि यह कार्य्य किसी राजा द्वारा होता। आपने यह अच्छी योजना बनाई है कि आपके राजा की ओर से गौओं (बैलों या भैंसों) का निर्यात नहीं होगा। आपकी योजना के साथ एक अच्छी सी योजना और जोड़ देना चाहता हूं जो इस प्रकार है—

राज्य की सब गायों आदि की गणना करा दी जाय। प्रत्येक नया पशु जो पैदा हो (या मरे) उसकी सूचना इस कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारी के पास भेज दी जाय। यह गणना प्रति ६ मास ७ मास बाद होनी चाहिए। इस का कारण यह है कि रात्रि आदि में असंभव नहीं कि पशु चुरा लिये जाँय। आपने जो 'आर्य-धर्मसभा' की स्थापना की है; वह निश्चित ही एक प्रशंसनीय कार्य है। मैं आशा करता हूं कि इस का उद्देश्य आर्यों का कल्याण और उनके ईश्वरीय तथा सत्य वैदिक धर्म की उन्नति होगा। मैं आशा करता हूं कि आपकी इस सभा से देश का बड़ा भारी लाभ होगा।

गौओं का मामला बड़ी तेजी से और सफलता से आगे बढ़ रहा हैं। यहां बम्बई में दो हजार हस्ताक्षर गोवध-निषेध के विषय में करवाये जा रहे हैं। हम न केवल देशी राज्यों में ही गोवध बन्द कराना चाहते हैं, अपितु इस कार्य के लिए पार्लियामेण्ट से भी निवेदन करना चाहते हैं। इस कार्य के लिए हम दो करोड़ आदमियों के हस्ताक्षर चाहते हैं। मुझे यह आशा है कि राजा लोग परस्पर एक दूसरे को सम्मति देंगे। इस मामले में पण्डित कालूराम जी भी प्रशंसा के पात्र हैं।

---

[1] यह भाषानुवाद संस्क० २ में प्रथमबार छापा गया था। यु० मी०

[2] वैशाख कृष्ण ५, शनि, सं० १९३९।

[3] पृष्ठ ५५६ की टि० २ भी देखें।

[4] यह पत्र हमें नहीं मिला। इस की सूचना मात्र तीसरे भाग में देखें।

[5] श्री पं० कालूराम जी के विषय में पूर्ण संख्या ३७, पृष्ठ ७८, टि० १ देखें।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, ठीक चल रहा है। वेदभाष्य का कार्य निर्विघ्न और सफलता पूर्वक चल रहा है। बम्बई के आर्यसमाजियों ने समाज-मन्दिर के लिए ६५००) में एक भूमि खरीदी है। और मन्दिर के लिए अपेक्षित आवश्यक धन की राशी १२०००) से १५०००) भी है।

हमने गोवध-निषेध के सम्बन्ध में छपे हुऐ ५ फार्म[1] अलग भेजे हैं जो आप को शीघ्र प्राप्त होंगे। आर्यसमाज के साथ नियम और उपनियम उस आर्यसमाज में सुरक्षित रहने चाहिए जिसकी आपने सफलता पूर्वक स्थापना की है। अन्त में मैं आप सब लोगों को आशीर्वाद देता हूं। ठीक समय पर आवश्यक सूचना देते रहियेगा।

पाँच फार्मों[1] से, जो हमने भेजे हैं, आप हमारी योजना पूर्ण रूप से समझ जावेंगे। कृपया अपने राज्य में जितने हस्ताक्षर आप करा सकें करायें और उन्हें अपने पास रखिए, हमें उन की शीघ्र आवश्यकता होगी।

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५२३]　　पत्र-सूचना (५७)

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५२४]　　पारसल-सूचना (३२)

[पं० दयाराम, प्रयाग]

यजुर्वेदभाष्य अ० १४ के पृष्ठ ४१६-४४७ तक।[3]

—:o:—

---

[1] गोरक्षा सन्बन्धी दो फार्म पूर्ण संख्या ५०१, ५०२ पृष्ठ ५३८-५४० पर छपे हैं। शेष तीन फार्म कौन से छपवाये थे, यह अज्ञात है। सम्भव है गोरक्षा सम्बन्धी फार्मों की पांच प्रतियां यहां अभिप्रेत हों।

[2] पं० सुन्दरलाल ने १ जून १८८३ के पत्र में ऋ० द० के कई पत्र आने का उल्लेख किया है। उसके आधार पर यह एक पत्र-सूचना छाप रहे हैं। पं० सुन्दरलाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] इस की सूचना पं० भीमसेन के ४ मई १८८२ के पत्र से मिलती है। पं० भीमसेन का पत्र तीसरे भाग में देखें।

पूर्ण संख्या ५२५] पारसल-सूचना (३३)

[लाला कालीचरण जी, फर्रुखाबाद]
जगन्नाथ की प्रश्नोत्तरो का खण्डन ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५२६] पत्र-सूचना (५८)

[पं० भीमसेन, प्रयाग]
काम सावधानता से करने के विषय में ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५२७] पत्र (३४९)

लाला मूलराज जी एमे आनन्दित रहो ।[3]

आपके दो पत्र आये। उत्तर इसलिये नहीं भेजा कि इस बात का पत्र कोई मसूदा वालों ने हमारे पास नहीं भेजा। अब उनका पत्र आवेगा तो उस बात का जवाब आप को लिखेंगे। और आप जो उस बाबू.........को रखना चाहते हैं परीक्षा करली होगी कि कैसा शील स्वभाव का है। क्योंकि प्राय:.........लोगों का स्वभाव तेज और कठोर भक्ष्याभक्ष्य में अनाचरी और लोभी भी होते हैं। और राजवाड़ों में इन बातों का बड़ा विरोध है। अब हम इस विषय का पत्र मसूदा को भेजेंगे। जो हमारे पत्र का उत्तर न आया तो आपके पास कुछ उत्तर न भेजेंगे। पश्चात् जब कभी हम मसूदे को जायेंगे तब उसका विचार होगा। आप जानते हैं कि रजवाड़ों का लखोटिया ज्ञान है अर्थात् जब तक अग्नि के सामने रहैं तब तक पिघले रहते हैं। तथापि हम पत्र भेज कर खबर मंगवावेंगे। बड़े भारी शोक को

---

[1] इस की सूचना आगे पूर्ण संख्या ५४४ के पत्र में है। उसके लेख से प्रतीत होता है कि यह प्रश्नोत्तरो का उत्तर अप्रैल के अन्त तक भेजा जा चुका था। यह उत्तर आगे 'समीक्षा' शीर्षक से पूर्ण संख्या ५६२ पर छापी जा रही है। यह 'देशहितैषी' पत्र (अजमेर) में छपी थी।

[2] इस की सूचना पं० भीमसेन के ४ मई १८८२ के पत्र से मिलती है। भीमसेन का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

बात है कि आप ने अब तक गोकरुणानिधि की अङ्गरेजी नहीं को। हमने हमें(?) निरास होकर यहां मम्बई में और लोगों से अङ्गरेजी बनवानी पड़ी अब आप उसमें कुछ मत बनाना। मालूम होता है कि आप के ऊपर बहुत कुछ बोझ पड़ गया, इस कारण ढीले हो गये। आप के पास गोरक्षा और थियोसोफिष्टों के पूर्वापर विरुद्धाचर[ण] करने के विषय का भी पत्र[1] पहुंचा होगा। अब इनसे सम्बन्ध तोड़ दिया है। सब से हमारा नमस्ते कह दीजियेगा।

मिति वैशाख शुदी ११ शनि सम्वत् १९३९[2]।

मम्बई वालकेश्वर
[द० स०]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५२८]　　**पत्र (३५०)**

लाला जीवनदास जी आनन्दित रहो[3]।

पत्र आप का आया समाचार विदित हुआ। यहां पारसी खत पढ़ने वाले बहुत कम हैं इङ्गलिश के पाठक बहुत हैं। इस लिये जब कभी लिखें तब नागरी वा इंगरेजी में लिखें। इस पत्र का मतलब हम ठीक ठीक नहीं समझते हैं। जितना समझा है उतने का उत्तर लिखा जाता है। (सूद) शब्द का अर्थ जो रसोई करने वालों का हैं। यही अर्थ अन्यत्र सूत्रादि[4] में भी है। पाककर्त्ता का कोई दृढ़ निश्चय नहीं हो सकता, क्योंकि पाचक सब वर्ण में होते हैं। अब तो इसमें सनातन का व्यवहार ही प्रमाण हो सकता है। जो आप लोगों में यज्ञोपवीत होता और धरावट अर्थात् विधवा को पुनः दूसरे के घर बैठाना नहीं होता तो शूद वर्ण में गणना आप लोगों की

---

[1] गोरक्षा सम्बन्धी पूर्ण संख्या ५०१-५०२, पृष्ठ ५३८-५३०। थिफोसोफिस्ट सम्बन्धी पूर्ण संख्या ५१७, पृष्ठ ५४८—५५४। [2] ता० २९ एप्रिल सन् १८८२।

[3] यह पत्र महा० मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार पृ० ४५८-४५९ पर छपा है। उन्होंने पत्र की प्रतिलिपि से ही छापा था।

[4] यहां कल्पसूत्रान्तर्गत धर्मसूत्रों से अभिप्राय प्रतीत होता है।

नहीं। अब यह विचारना चाहिये कि (सूद) लोग क्षत्रिय हैं अथवा वैश्य। जो राजधर्म राज्य करना आप के पुरुष शौर्यादि गुणयुक्त, युद्ध में कौशल वाले हुए हों तो क्षत्रिय और वैश्य के व्यापारादि कर्म और गुण हों तो वैश्य समझना चाहिये। अब आप लोग ही इसका निश्चय कर लीजिये।

और जो कभी (सूत) शब्द बिगण[1] के सूद हो गया हो तो आप अवश्य क्षत्रिय वर्ण हैं। हम ने सुना है कि आज कल बाबू नवीनचन्द्रराय लाहौर में हैं और विधवा विवाह में प्रयत्न कर रहे हैं और आर्यसमाज लाहौर भी इस बात में बाबू जी से संमत हो गया है। ये ब्रह्मसमाजी लोग भीतर और तथा बाहिर और बात रखते हैं। इन का यह भी मतलब होता है कि जैसे हम लोग कृश्चिनों के तुल्य अपमानित हुए हैं वैसे आर्यसमाज भी हो जाय, परन्तु जो अक्षतयोनि अर्थात् जिस का पुरुय के साथ कभी संयोग न हुआ हो उस कन्या के पुनर्विवाह करने में कुछ दोष नहीं, जिस का पुरुष से संमेल हुआ हो उस का नियोग करने में अपराध नहीं। इस से विपरीत करने से शास्त्र से विरुद्ध होने से अब अथवा पश्चात् बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा अर्थात् वर्ण बाह्य होना होवे तो भी कुछ संशय नहीं। सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५२९] पत्र-सारांश (३५१)

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग]
टाइप के लिये सीसा भेजने का प्रबन्ध यहां (=मुम्बई) से किया है।[3]

—:o:—

---

[1] अर्थात् 'बिगड़ के'।

[2] हमारा अनुमान है कि पत्र मुम्बई से भेजा गया था। वहीं "फारसी खत पढ़ने वाले बहुत कम" थे। प्रतिलिपि पर हस्ताक्षर तथा तिथि नहीं थी।

[3] पण्डित सुन्दरलाल जी ने [१० मई १८८२] के पत्र में 'दो पत्र' प्राप्त होने का उल्लेख किया है। एक पत्र पूर्ण संख्या ५१४ (पृष्ठ ५४६) पर छाप चुके हैं। दूसरा पत्र जिस में 'सीसे का प्रबन्ध करने का उल्लेख था, वह प्राप्त नहीं हुआ। उसका यहां निर्देश किया है। पं० सुन्दरलाल जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ५३०] पत्र (३५२)

लाला कालीचरण जी आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि पत्र तुम्हा[रा] आया। समाचार मालूम हुए। थियोसोफिष्टों की गोलमाल पोलपाल पत्र[2] के छपवाने [में] कुछ चिन्ता नहीं। क्योंकि जो जो उसमें बात लिखी हैं वे सब सच्ची हैं। अवश्य छपवा दीजिये। जो लाला रामशरणदास ने लिखा है वह ठीक है। छपवाना ही चाहिये। उसमें जो कुछ लिखा गया है वह विचार पूर्वक सच्ची बातें लिखी हैं। जो ऐसा न हो तो हम यहां व्याख्यान क्यों देते[3]। और इसको क्यों छपवाते। छपवाने में कुछ हानि नहीं, किन्तु लाभ ही है। जो यह बात गोलमाल रखी जाती तो आर्यावर्त्त में नास्तिक मत फैल जाता। अपने साथ इनने मेल भी इसी प्रयोजन से किया था कि हमारा प्रवेश इस देश में हो जाय। इतना इनमें अच्छा गुण है कि वेद की बड़ाई और ईसाइयों का खण्डन करते हैं। यह भी जो स्थिर रहै तो। जो यह भी कपट हो तो क्या [पता]। जो इनका प्रसिद्धि व्यवहार है वह भीतर का नहीं। इनके सम्बन्ध से जो कोई बुरी बात निकलती तो बहुत धक्का आर्यसमाज को पहुँचता। और इन लोगों ने कई एक भोले भाले आर्यसमाजस्थों को बहका कर अपने सभासद कर लिये और दश रुपये फी[4] दश लिये। अब इनकी कपटरूपी बातों के प्रसिद्ध होने पर उनकी आंख खुली कि ओहो ये ऐसे निकले अर्थात् बिचारों को पश्चात्ताप करना पड़ा। ऐसे ही अन्य लोगों को भी जो कि आर्यसमाज में नहीं थे। यही उन लोगों के मुख से बात निकली कि वृथा ही हमारे दश दश रुपये फी[4] देने में गये॥ सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मई ता० १ सन् १८८२ ई०[5]।

[द० स०]
(मम्बई वालकेश्वर गोशाला)

—:०:—

---

[1] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में है। उसकी प्रतिलिपि म० मामराज ने दिसम्बर सन् १९२६ में की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० १६१ पर भी छपा है।

[2] पूर्ण संख्या ५१७ का।

[3] देखो पूर्ण संख्या ५१२ (पृष्ठ ५४५) का पत्र।

[4] अर्थात् फीस।

[5] वैशाख शु० १३ सोम, सं० १९३९।

[पूर्ण संख्या ५३१] पत्र (३५३)

ओ३म्

पण्डित दयाराम आनन्दित रहो[1]।

तुमने यह अंग्रेजी चिट्ठी यहां क्यों भेजी, जो कि थियोसोफिष्ट के विषय की थी। और तुमने लिखा है कि मैं भूल गया इसलिये दूसरा रजिष्टर अभी किया। यह क्या बात है? और वह रजष्टर अभी तक नहीं पहुंचा। और आज तक वेदभाष्य और मासिक हिसाब नहीं पहुँचा और यहां मम्बई में सर्वत्र आयगा, यह क्या कारण है। भीमसेन से कह देना कि भाषा के पत्र जल्दी भेजदे। सीसा सुर्मा स्याही तुम्हारे पास पहुँची वा नहीं? पहुँच गये हों तो हर्फ ढालके जल्दी काम चलाओ। आर्य पत्र का नोटिस भेजते[2] हैं टाइटल पेज पर छापदो। जितने पत्रे भीमसेन के पास भेजे थे, उन सब की भाषा बन चुकी वा नहीं।

मिति जेष्ठ बदी ६ सम्वत् १९३९[3]

[द० स०]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५३२] पत्र (३५४)

ओ३म्[4]

महाशय रूपसिंह जी योग्य इतः ब्रह्मचारी रामानन्द का अनेकविध शुभाशीर्वाद विदित हो। आपका कुशलपत्र आया, समाचार विदित हुए।

आपने जो सत्यार्थप्रकाश संस्कारविधि के विषय में लिखा, परन्तु यहां मेरे पास न होने से भेजने में अशक्य हूँ। जो छापेखाने प्रयाग में होती तो भी मैनेजर दयाराम को लिख कर भेजवा देता और जो उस पुरुष को अत्यावश्यक हो तो आप मेरठ आर्यसमाज प्रधान लाला रामशरणदास के पास दाम भेज कर पुस्तक मंगवा लीजिये। अनुमान है कि वहां से पुस्तक आप को अवश्य मिल जांयगी। जो आपने गोरक्षार्थ पत्र के बाबत में लिखा सो हम ने जिस समय आपके पास पत्र भेजा था, उसी समय लाहोरादि

---

[1] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[2] इस विषय में पूर्ण संख्या ५१४, पृष्ठ ५४६ की टिप्पणी ३ देखें।

[3] ९ मई १८८२।

[4] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

स्थानों में पत्र भेज दिये थे। **ऐसा आर्य्यावर्त्त के भीतर कोई देश बचा हो कि जहां दो चार स्थानों में पत्र न भेजे हों। और जहां जहां की यादगारी आती जाती वहां वहां अभी भेजते जाते है।** इस में कारण यह हुआ है कि **डांक वालों ने अनर्थ किया** है। जैसा इस विषय में आप का पत्र आया ऐसे ही कई एक महाशयों के पत्र आये कि पत्र पहुँचा, परन्तु गोरक्षार्थ का मेमोरियल[1] नहीं मिला। पुनः उन महाशयों के पास भेजना पड़ा। ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करता हूँ कि इस महोपकार कार्य करने में आप को अत्यन्त सहायता मिले और जो पत्रों की आपको आवश्यकता पड़े तो लिखना, भेज दूंगा। मैं एक बात आप से कहता हूं कि जो आप प्रसन्नता से स्वीकार करें तो। क्या जैसे आप पहिले घूमने के वास्ते दो मास की छुट्टी लेकर आये थे ऐसे ही आप पुनः दो एक मास की छुट्टी लेकर पंजाब हाथा, पटियाला और काश्मीर आदि अच्छे अच्छे राजस्थानों में गोवध के नुकसान व्याख्यान द्वारा विदित कर, बड़े बड़े प्रधान राजपुरुष तथा राजा महाराजों की सही करावें तो बस आप आर्यावर्त्त में सर्वोत्तम प्रतिष्ठा और महापुण्य के भागी होंगे। यह लेख मैंने आपकी योग्यता समझ के लिखा। आशा है कि आप अपनी योग्यता को सफल करेंगे॥ किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु॥ अब १५ वा २० दिन में श्रीयुत स्वामी जी यात्रा करेंगे। विशेष समाचार लिखूंगा॥

आपका अभिवादन परम गुरु स्वामी जी को विदित कर दिया। श्री स्वामी का शुभाशीर्वाद आपको विदित हो॥ भद्रमस्तु॥

ज्येष्ठ वदी ९ शुक्र सम्वत् १९३८[2] ॥ ब्रह्मचारी रामानन्द

[पूर्ण संख्या ५३३] पत्र (३५५)

ओ३म्

पण्डित सुन्दरलाल जी आनन्दित रहो[3] !

विदित हो कि सीसा स्याही आदि दो तीन दिन हुए हैं रमाना हो गये।

---

[1] सम्भवतः संख्या ५०१, ५०२ के गोरक्षा सम्बन्धी फर्मों से यहां अभिप्राय है।

[2] संवत् १९३८ गुजराती है। संवत् १९३९ चाहिये। १२ मई १८८२। परन्तु उस दिन ज्येष्ठ वदी १० है। इस पत्र का लिफाफा १६ मई को कोहाट पहुंचा। उस पर ऐसी ही मोहर है।

[3] मूल पत्र परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है।

आज बिल्टी भी रवाना हो गई। उनसे जैसे अक्षर आपको चाहिये। वैसे ढलवा कर जल्दी काम चलाइये। श्याही बहुत सी भेजी है, तुम को आठ दश महीने को बहुत होगी। जो तुमने ज्वालाप्रसाद के विषय में लिखा सो ठीक है। उसको बुलाकर काम सिखलादो और भीमसेन से कहो कि व्याकरण की पुस्तक लिखकर शुद्ध कर तैयार कर दे। लाहोर ८।३।१८८२ ई० निम्नलिखित पुस्तक लाला बल्लभदास के पास से वैदिक यन्त्रलाय प्रयाग में पहुँची। ता० १९ फरवरी सन् १८८१ को सन्दूक नग ३ में पुस्तकें बन्द करके लाहोर से मारफत रेल रवाना किया। महसूल बेरंग था। उस में इस भांति पुस्तकें भेजी गई—

३८ जिल्द आर्याभिविनय
३० ,, वेदविरुद्धमतखण्डन
३१ ,, शिक्षापत्रीध्वान्तनि०
१० ,, वेदान्तिध्वान्तिनिवारण
१३११ ,, सन्ध्या भाष्य अर्थात् पंच०
२५१ ,, पोपलीला[1]
१३६ ,, जालन्धर की बहस[2]
१९ ,, वेदभाष्यभूमिका इस भांति अंक
० २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १३ १४ १५–१६
३ १ १ २ २ १ १ १ १ १ १ १ १ २
१८५ ,, ऋग्वेद अंक १ २ ३ ४ ५ ६
२८ ३० ३२ ३१ ३१ ३३
१८९ ,, यजुर्वेद अंक १ २ ३ ४ ५ ६
३१ ३३ २८ ३१ ३३ ३३
३४३५ ,, आर्योद्देश्यरत्नमाला
२८ ,, सत्यासत्यविचार[3]

---

[1] इस के लिये हमारा "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" परिशिष्ट ५, पृ० ८२-८४ देखें।

[2] देखो ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृ० १८३। यह शास्त्रार्थ एक मौलवी के साथ लिखित रूप में हुआ था। इसे रा० ला० कपूर ट्रस्ट ने 'ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ-संग्रह' में छापा है।

[3] लीलाधर हरिदास ठकर बम्बई निवासी कृत। देखो हमारा ऋ० द० ग्रन्थेतिहास, परिशिष्ट ५, पृष्ठ ८४, ८५।

और बहियां हिसाब की और हिसाब

ता० १३ मई सन् १८८२ ई०[1]

यजुर्वेद के भाषा के पत्रे, यजुर्वेद अंक गोकरुणानिधि और मासिक हिसाब पहुँचा।

[दयानन्द सरस्वती]

[पूर्ण संख्या ५३४]　　　पत्र (३५६)

ओ३म्

राजा दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो[2]।

पत्र आप का आया, समाचार विदित हुआ। हम बहुत आनन्द में हैं। आशा है कि आप लोग भी आनन्द मैं होंगे। यहां से हमारे विचार ज्येष्ठ शुदि पौर्णमासी के पश्चात् और आषाढ़ वदी ३० के पूर्व पूर्न इन्दोर की ओर यात्रा करने का है। क्योंकि महाराजे इन्दोर ने मुझ को बुलाने इन्दोर से तार भेजा था। इस समय वे पहाड़ को गये। १५ वा २० दिन इन्दोर में आ जायंगे। तब तक हम भी पहुँचेंगे। वहां से आंब भेजने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यहां मम्बई में आपुस और पारी संज्ञक आंब बहुत उत्तम होते हैं। जो न होते तो वहां से आना अवश्य होता। यहां डेढ महीने से आंब खाया करते हैं। आज आंबरस भी बहुत सा बना।

लाला कालीचरण से कह दीजियेगा कि अगले महीने में भा० सु० प्र० का नोटिस[3] वेदभाष्य पर छप जायगा॥

सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा॥

ज्येष्ठ शुदी ६ मंगल सम्वत् १९३९[4]।

[द० स०]　　　(मम्बई)

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

—:०:—

---

१. ज्येष्ठ कृष्ण ११ शनि, सं० १९३९।

२. मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में है। इस की प्रतिलिपि दिसम्बर सन् २६ में मामराज ने की। फरूखाबाद का इतिहास पृ० २१९ पर भी छपा है।

३. देखो पूर्ण संख्या ५३६ (पृष्ठ ५६९)।　४. २३ मई सन् १८८२ मंगलवार।

[पूर्ण संख्या ५३५] पत्रांश (३५७)

ओ३म्

बाबू नन्दकिशोरसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

पत्र तुम्हारा आया, समाचार विदित हुए। जो वहां शास्त्रार्थ विषय में लिखा सो आप निश्चय जानों वे हम से शास्त्रार्थ सन्मुख आके कभी न करेंगे। देखो दो तीन बार हम जयपुर में आये और प्रसिद्धि भी कर दी कि जिस पंडित का जिस जिस विषय में शास्त्रार्थ करना हो तो सन्मुख आकर करे। परन्तु कोई भी न आया, न किसी ने शास्त्रार्थ किया। अब रहा वहां आने का, उस की यह बात है कि जो श्रीमान् महाराजा जी के हस्ताक्षर का पत्र आवेगा तो आना हो सकता है अथवा वहां जो सब में अधिक विद्वान् हो उस का रेल खर्च देकर और दो एक अच्छे उत्तम पुरुष पक्षपात रहित हों साक्षी के वास्ते जहां हम हों वहां लेकर चले आइये अथवा जहां होंगे वहां से ही अच्छे योग्य पुरुषों को साक्षी कर के जो जो शास्त्रार्थ की बातें होंगी वे सब लिखी जायंगी। पुनः पत्र द्वारा श्रीमान् महाराजा[2] जी को विदित कर दिई जांयगी और छपवा कर भी प्रसिद्ध भी होंगी। जिससे सब लोगों को सत्यासत्य विदित हो जाय। यह राजाओं का मुख्य धर्म है कि शास्त्रार्थ कर कराके सत्यासत्य का निश्चय करना औरों को कराना। **देखो बड़े शोक की बात है कि जयपुर में अनेक गिरजाघर बन गये और पादरी लोग राम कृष्णादि भद्र पुरुषों की निरन्तर निंदा करते हैं और सैकड़हों को बहका कर भ्रष्ट कर रहे हैं। उनके हटाने को पण्डित वा राजा आदि राजपुरुषों ने कुछ भी प्रयत्न न किया। और जो आप लोगों ने सत्य वेद धर्म की उन्नति होने के वास्ते समाज स्थापित किया है उसकी उन्नति होने में पण्डित आदि विघ्नकर्त्ता होते हैं।** इतने ही से तुम समझ लो कि ये क्या शास्त्रार्थ करेंगे सिवाय परोक्ष में गाल बजाने के। जो कोई तुम से शास्त्रार्थ करने की बात कहे उसको तुम इतना हो उत्तर दो कि लो खर्च आने जाने का हम देते हैं, चलो हमारे साथ स्वामी जी पास शास्त्रार्थ करने को, अथवा तुम राजा जी से प्रबन्ध कराओ स्वामी जो के बुलाने के वास्ते, हमारे बुलाने से तो आ नहीं सकते। किसी प्रधान पुरुष वा रा[जा] जो की संमति से बुलाइये और शास्त्र[ार्थ] कर

---

[1] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है। श्री स्वामी जी ने लाल रंग से कहीं कहीं शोधा हैं।

[2] अर्थात् जयपुर के महाराजा

सत्य का प्रतिपादन और असत्य का खण्डन कीजिये । हम तो इस में बहुत प्रसन्न हैं, जो कोई स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें तो, क्योंकि हम को भी मालूम हो जायगा कि क्या सत्य है और क्या झूठ ॥

आप भद्र पुरुष लोग इस वेदोक्त सत्यधर्म के विषय में उत्साह पूर्वक दृढ़ निश्चित रहेंगे तो इस समाज की उन्नति करके संसार को फायदा पहुँचा सकोगे, अन्यथा वहां उन्नति को प्राप्त होकर फल-प्राप्ति पर्य्यन्त पहुँचना कठिन है । क्योंकि वहां बड़े बड़े धूर्त लोग हैं । तथापि जो मूर्ख लोग अपनी बुराई को नहीं छोड़ते तो बुद्धिमान् धर्मात्मा लोग अपनी धर्मात्मता को क्यों छोड़ कर दुःख सागर में पड़ें । देखिये—

(निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलंति पदं न धीराः) ॥

यह कवि का श्लोक है विचार लीजिये ।

मि० ज्ये० शु० १४ बुध सं० १९३९ ।[1]

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५३६] विज्ञापन[2] (४६)

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि एक भारतसुदशाप्रवर्त्तक नाम का पत्र सनातन वेदोक्त धर्म विषयक व्याख्यान नाटक[3] तथा सत्योपदेशों से सुभूषित हो के प्रतिमास निकलता है जिस किसी को उसके ग्रहण की

---

[1] ३१ मई १८८२ । मुम्बई से जयपुर भेजा गया ।

[2] यह विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य अंक ३८, ३९ (सम्मिलित) ज्येष्ठ शुक्ल १४ सं० १९३९ (३१ मई १८८२) टाइटल पेज ४ तथा ऋग्वेदभाष्य अङ्क ४२-४३ सम्मिलित (आश्विन कृष्ण १९३९ के) टाइटल पेज ३ पर ऋ. द. के हस्ताक्षर के विना छपा है । पू० सं० ५३४ पृष्ठ ५६७ के पत्र में इस विज्ञापन को छापने का आदेश दिया है ।

[3] नाटक के विषय में अगले १६ अक्टूबर १८८२ के पूर्ण संख्या ५९२, ५९३ तथा मार्ग० बदी १४, सं० १९३९ (=९ दिसम्बर १८८२) के पूर्ण संख्या ६०० के पत्र देखें ।

इच्छा हो वह लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद के पास लिख के मंगवा लेवें उस का वार्षिक मूल्य कम है अग्रिम १≡) डाक व्यय समेत पश्चात् देने से २_) हैं और इतने पर भी विशेष यह है कि जो कुछ बचता है वह संस्कृत और देश की उन्नति में लगाया जाता है ॥

(ह० दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५३७] — गुजराती पत्र (३५८)

ओ३म्[1].

आर्यसमाज मुंबई
ता० ५ मी जून १८८२[2]

मित्रवर ठाकोरदास मूलराज जोग, मुंबई

यत आपे जे जेठ सुद १५[3] ने दीने श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी ने पोस्ट कार्ड लख्यो हतो तेना प्रत्युत्तरमां जणाववामां आवेछे के जो कोई आपना मतनो ज्ञाता तथा धर्मोपदेशक विद्वान् प्रतिज्ञा पूर्वक नियम थी शास्त्रार्थ करवाने तत्पर होय तो स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करवाने कोई पण प्रकारे अडचण न थी, मात्र व्यवस्था घटती रेहेवी जोइये, तेथी आपनी जो सत्यासत्य निर्णय कराववानी इच्छा होय तो आपना मतनो कोई विद्वान् माननीय धर्मोपदेशक साथे नक्की करी मह्ने लखी जणावशो तो हमें तूर्त घटती व्यवस्था करी आपने विदित करशुं, परंतु ए बाबत ढील न थवी जोइए केम के स्वामी जी थोड़ा दाहाडामां जनार छेत गयवाद सघलो श्रम व्यर्थ जशे तेथी त्रण दिवसनो अंदर कृपाकरी लखी मोकलशी अने जो ए प्रकारे करवानी आपनी इच्छा न होय तो हमारे आपने दलगिरी साथे लखवुं पडेछे के स्वामी जी जे एने मली खुलासो लेवा आवेछे तेनी सांजना ५ थी ६ वागता सुधी प्रतिदिन मुलाकात लेयछे, त्यां जो आप जवा चाहो तो कृपाकरी मह्ने लखो जणावशो तों हुँ पणते वखते हाजर रहोश, हालतो अेज विनति।

हुँ छु आपनो सेवक
सेवकलाल करसनदास
मंत्री आर्यसमाज मुंबई
जगजीवन कीका स्ट्रीट घर नंबर ६१

---

[1] दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका, प्रथम भाग पृ० ४०-४१।

[2] आषाढ़ कृ० ४ सोम सं० १९३९।

[3] 1 जून १८८२।

[पूर्ण संख्या ५३८] पत्र (३५९)

लाला कालीचरण जी आनन्दित रहो[1]। फर्रुखाबाद

विदित हो कि प्रयाग में दयाराम मैनेजर हैं। उसने अकेले से काम बहुत होने के कारण से ठीक नहीं चल सकता। इस लिये पंडत सुन्दरलाल जी लिखते हैं कि द० रा० के पास एक सहायक और रखना चाहिये। इस लिये आप को लिखते हैं कि एक प्रामाणिक पुरुष तीन भाषा जाननेवाला कि जिस का आप को बड़ा विश्वास हो वहां भेजें। ऐसा पुरुष तलाश कर के आप हमको और पंडित सुन्दरलाल जी को भी [इस] विषय में लिखें। उसका मासिक १५) रु० वा २०) रु० वा जितना आप योग्य समझें करें। परन्तु काम बहुत ठीक होना चाहिये। पंडित सुन्दरलाल जी अन्डमान एक मास तक ब्रह्मा के मुल्क को जाने वाले हैं। इसलिये उनके सामने ही उस पुरुष का वहां पहुंच जाना चाहिये। वह पुरुष सदैव के लिये वहां रहना चाहिये। यह नहीं कि थोड़े दिन के लिये रहे। आपका समाज प्रयाग से निकट है। इस लिये आप लोगों में से कोई कोई मा[स द]ो मास से प्रयाग जाकर देख आया करें तो ठीक प्रबन्ध रहे। परन्तु वहां जाना पं० सुन्दरलाल जी न हों तब जाना चाहिये। और जब वे हों तब कुच्छ जरूरत नहीं। सब से हमारा आशीर्वाद कहना। पत्र का उत्तर शीघ्र देना चाहिये।[2]

हस्ताक्षर

ता० ९ जून स० १८८२[3]। [दयानन्द सरस्वती]

मुम्बई बालकेश्वर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५३९] पत्र-सारांश (३६०)

[खंडेराव पाण्डुरंग, खण्डवा]

हम बम्बई से आते हुए खण्डवा ठहरेंगे, स्थान का प्रबन्ध करें।[4]

—:o:—

---

[1] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में है। दिसम्बर सन् १९२६ में म० मामराज ने इस की प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १९२ पर भी कुछ पाठ भेद के साथ छापा है ।

[2] पत्र के नीचे कुछ पङ्क्तियां समर्थदानजी ने अपनी ओर से लिख दी है ।

[3] आषाढ़ कृष्ण ८, शुक्र १९३९ ।

[4] इस पत्र की सूचना खंडेराव के १७ जून १८८२ के पत्र से मिलती है । इसी

[पूर्ण संख्या ५४०] पत्र (३६१)

ओ३म्

पडित सुन्दरलाल जी आनन्दित रहो।[1]

प्रयाग

विदित हो कि हम यहां से ता० १४ जून बुधवार[2] दिन सायंकाल यहां से रेल में बैठ कर बृहस्पति के दिन अनुमान १० बजे खण्डवे पहुंचेंगे। अब पीछे पत्रि आदि खण्डवे को भेजा करें। दूसरे मैनेजर के लिये हमने फरूखाबाद को लिख दिया है[3]। उत्तर जैसा आवेगा वैसा आप को लिखेंगे। 'अन्वयार्थ' को छपे बहुत दिन हो गये हैं परन्तु उसका विज्ञापन वेदभाष्य [पर] अभी तक नहीं दिया गया है सो यह दयारम की कितनी भूल है। अब तत्काल दिलवावो। हमने भीमसेन के शोधे भये पुस्तक देखे तो बहुत भूल निकलती है। इससे ज्ञात होता है कि वह बड़ा गाफिल है। अब पीछे आप उसका मासिक पूरा प्रतिमास न दिया करें कुछ न्यून दिया करें अर्थात् दश वीश रुपये अपने में उसके रखने चाहिये। जिससे कि वह काम अच्छा किया करे। नीचे लिखे नाम के छः रुपयों की रसीद छाप देना गत वर्ष की—

कवि कृश्नाराम इच्छाराम ग्राम "खरसाज" जिला सूरत ६)

नीचे लिखे धर्मार्थ छाप दो।

चौधरी जालिमसिंह ग्राम रुपधनी जिला एटा २०)
बोहरा अमरचन्द ग्राम रुपधनी जिला एटा २०)

पत्र में ४ दिन पहले इस पत्र का उत्तर देने का उल्लेख है। अतः यह पत्र खण्डेराव ने १० या ११ जून को बम्बई भेजा गया होगा। खंडेराव का १७ जून १८८२ का पत्र भी तीसरे भाग में देखें।

[1] मूल पत्र परोपकारिणि सभा अजमेरमें सुरक्षित है। इस पत्र का कुछ भाग दयानन्दग्रन्थमाला शताब्दी संस्करण की भूमिका पृष्ठ १८ पर भी छपा है।

[2] आषाढ़ कृष्ण १४ सं० १९३९। अगले पूर्ण संख्या ५४५ पृष्ठ ५७६ की टिप्पणी ३ देखो।

[3] देखो पूर्ण संख्या ५३८ पृष्ठ ५७१।

पत्रादि सब खण्डवे को भेजना ।

हस्ताक्षर

ता० ११ जून सं० १८८२ ।[1]   [दयानन्द सरस्वती]

मुम्बई बालकेश्वर

आज कल वर्षा यहां अत्यन्त होती है । जो वक्त तारीख को चलना न हुआ तो दूसरा पत्र बुधवार के दिन आपको देंगे ।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४१]   पत्र-सारांश (३६२)

[खंडेराव पाण्डुरंग, खण्डवा]

[हम १४ जून को चलकर १५ जून को खण्डवा नहीं पहुंच रहे हैं][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४२]   पत्र (३६३)

ओ३म्

लाला कालीचरण जी मंत्र[ी] व रईस आनन्दित रहो[4] ।

विदित हो कि एक पत्र [आप] को पहले दिया था[5] । उसमें प्रयाग में

---

[1] आषाढ़ कृष्ण ११ रवि० सं० १९३९ ॥

[2] प्रतीत होता है श्री स्वामी जी १४ जून बुधवार को मुम्बई से नहीं चले । ला० ठाकुरदास ने ठीक १३ जून को उन्हें नोटिस दिलवाया (यह नोटिस तीसरे भाग में देखें) । उसी का उत्तर १९ को श्री स्वामी जी के वकीलों ने दिया । वह उत्तर पूर्ण संख्या ५४५ (पृष्ठ ५७६–५७७) पर देखें ।

[3] इस की साक्षात् सूचना कहीं से प्राप्त नहीं है । परन्तु १७ जून १८८२ के खण्डेराव के पत्र से विदित होता है कि ऋ० द० का इस आशय का पत्र १३ या १४ जून को लिखा अवश्य पहुंचा था । इसी लिये उसने १७ जून के पत्र में पूछा है 'अब आप बम्बई से कब चलोगे ?' खण्डेराव का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[4] मूल पत्र आ० स० फरुखाबाद में सुरक्षित है । इसकी प्रतिलिपि १८ दिसम्बर सन् १९२६ में म० मामराज जी ने की । फरुखाबाद का इतिहास पृ० १९३ पर कुछ पाठभेद के साथ छपा है ।

[5] पूर्ण संख्या ५३८, पृ० ५७१ ।

छापैखाने में मैनेजर रखने के लिये आप को लिखा था। परन्तु पीछे से यह नि[श्च]य ठहरा कि वहां समर्थदान को भेजना चाहिये। समर्थदान यहां हैं। सो यहां से प्रयाग को चले जायेंगे। ये प्रयाग को मास डेढ मास तक जा[वेंगे] इनका यह काम किया हुआ है। इनको इस काम में तजरबा हो चुका है। ये काम अच्छा चलावेंगे। इस लिये इनसे पक्काई करली है। सो अ[ब] आप मैनेजर के तलाश करने में परिश्रम न करें। जो इन से पक्काई न होती तो आप को परिश्रम करना पड़ता।

आर्य्यदर्पण में जो जगन्नाथदास ने लिखा है उसका उत्तर आप बहुत उत्तम रीति से लिखें। कुछ दबना मत। खूब टुकड़े टुकड़े उड़ादो। ऐसा न हो[गा] तो वे बंध न होंगे। वह लेख केवल जगन्नाथदास का ही नहीं है। उसमें इन्द्रमणी को भी शामिल समझना चाहिये। [मु]सलमानों के मुकद्दमे में सहायार्थ रुपया आया था उसमें इन्द्रमणि ने क्या क्या लीला की। सो तो आपको [वि]दित ही है। फिर ऐसे का क्या लिहाज रखना। बराबर लिखना चाहिये[1]।

हस्ताक्षर

ता० १४ जून १८८२[2]

दयानन्द सरस्वती
मुंबई

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४३] **पत्र (३६४)**

अ[ोम्][3]

लाला कालीचरण जी आनन्दित रहो।

लेखनीय यह है कि लाला रामचरण जी के पुत्र के देहान्त होने का हम को समाचार मिला। सो यह गृहस्थ लोगों को वास्तव में शोक का कारण

---

[1] मूल पत्र के जीर्ण होने के कारण कोष्ठगत पाठ फट चुके थे।

[2] आषाढ़ कृष्ण १४ बुध, सं० १९३९।

[3] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि दिसम्बर सन् १९२६ में म० मामराज जी ने की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० १९३ पर भी थोड़े से पाठभेद के साथ छपा है। मूल पत्र के जीर्ण होने के कारण कोष्ठगत पाठ फट चुके थे।

है। परन्तु आप लो[ग] बुद्धिमान् हैं सो धैर्य्यावलम्बन करें। क्योंकि विद्या ऐसे शोक के समय में धैर्य्यावलम्बन कराने वाली है। सुख में तो मूर्ख और विद्वान् स[भी] आनन्दित रहा करते हैं। परन्तु दुःख में तो विद्वान् ही धैर्य्यावलम्बन करके शोकाकुल नहीं होते। विद्या का फल सच पूछो तो यही है। अब आप लोग सब घर के धीरजता धारण करके शोक निवृत्त करें। क्योंकि शोकाकुल रहने से अनेक प्रकार की हानियां होती हैं।

जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी का खण्डन बहुत दिन हुए हम आपके पास भेज चुके हैं। उसके भेजे पीछे भा० सु० प्र० के दो अंक निकल चुके हैं। परन्तु आप ने उसको छापा नहीं। अब आप उस को शीघ्र ही छाप दें। **क्योंकि ऐसे काम में ढील करने से बड़ी हानि होती है। क्योंकि पाखण्डिओं को तो होसला होता जाता है और आर्य लोगों के चित्तों में भ्रम का संचार होने लगता है। इस लिये आप अब इसके छापने में ढील न करे।**

आप को विदित ही है कि देखो इन्द्रमणि ने उपकार का कैसा प्रत्युपकार किया है। अब देखो तो ऐसे ऐसे नामांकित पुरुषों की ही यह दशा है तो अन्य साधारण की क्या कथा है।

ता० १६ जून[1] स० १८८२	हस्ताक्षर दयानन्दसरस्वती मुम्बई

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४४]   पत्र-सूचना (५९)

[खंडेराव पांडुरंग, खण्डवा][2]

—:०:—

---

[1] आषाढ़ शुक्ल १, शुक्रवार सं० १९३९।

[2] इस पत्र की सूचना खण्डेराव के २७ (?, २०) जून १८८२ के पत्र से मिलती है। इसमें सम्भवतः ऋ० द० ने खण्डवा पहुंचने की तिथि का निर्देश किया होगा। ऋ० द० २४ जून को खण्डवा पहुंचने थे। अतः खण्डेराव के पत्र में २७ जून निश्चित ही अशुद्ध है। २० जून का पत्र रहा होगा। खण्डेराव का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ५४५] पत्र (३९८)

Bombay 19th June 1882.[1]

To

Messrs Smith & Frere,
Attorneys for Lala Thakar Das Moolraj[2]

Dear Sir,

Your letter of the 13th[3] *instant addressed to Pandit Dayanand Suruswatee Swami has been placed in our hands and in reply we are instructed to state that the Slokes referred to by you are believed to be by our client extracts from works published by person of great reputation among the Jains and to contain the principles of tenets of the Jain religion as propounded by serveral Jain Philosophers.*

These Philosophers have no doubt differed from one another and our client in these extracts had no other intention then that of giving a general idea of the tenets of the Jain religion as propounded by their several Philosophers. Our client emphatically denies that in making these extracts he had any intention of wounding and offending the religious feelings of any portion of the followers of the Jain religion.

Our client is actuated by no other desire than to seek the truth and if your client or any other person satisfies our client that any portion of the extracts is improperly

---

१. आषाढ़ शुक्ल ४ सोम, सं० १९३९। यु० मी०

२. दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका, प्रथम भाग पृष्ठ ४८-४९ पर मुद्रित। ऋ० द० ने ठाकुरदास के जिस नोटिस का यह उत्तर दिया गया था, उसे तीसरे में देखें।

३. पूर्व पत्र (पूर्ण संख्या ५४०, पृष्ठ ५७२) के अनुसार स्वामी जी १४ जून को बम्बई से नहीं चले इसी नोटिस रूपी उत्तर दिलाने के कारण पीछे चले।

taken or is opposed to the principles of the Jain religion our client will have no objection whatever to have such portions expunged from the 2nd edition which the publisher Raja JayKrishnadas, C. S. I., of Mooradabad intends to publish.

Our client desires yours to refer to the notice published at the commencement of the 'Satyarth Prakash' by the publisher in which he states the objects of the publication and accepts the whole responsibility in respect of the book. The further sale and publication of the book are entirely under the control of the publisher.

Yours truly,

(*Signed*) *PAYNE & GILBERT.*

[भाषानुवाद]

बम्बई १२ जून १८८२[1]

सेवा में

श्री स्मिथ और फ्रेयर

लाला ठाकुरदास मूलराज के मुख्तयार

प्रिय महोदय,

पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी के पते से भेजा हुआ १३ जून का पत्र हमें प्राप्त हुआ। हमें उत्तर में यह कहने के लिए आदेश दिया गया है कि मेरे मोअक्किल का विश्वास है कि जिन श्लोकों के विषय में आपने पूछा है वे जैनियों में सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में से लिये गये हैं। और उनमें जैनमत के सिद्धान्त हैं, जैसा कि अनेक जैन दार्शनिकों ने प्रतिपादित किया है।

वे दार्शनिक निःसन्देह परस्पर मतभेद रखते हैं और हमारे मोअक्किल को इन उद्धरणों से अनेक दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के सिद्धान्तों के सामान्य परिचय देने के अतिरिक्त और कुछ अभीष्ट न था। हमारा मोअक्किल दृढ़ता

---

[1] आषाढ़ शुक्ल ४ सोम, सं० १९३९। पृष्ठ ५७६ की टि० २, ३ भी देखें।

पूर्वक इस बात से इन्कार कर रहा है कि इन उद्धरणों से उसे जैन धर्म के कुछ अनुयायियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाना अभीष्ट था।

हमारा मोअक्किल सत्यान्वेषण से भिन्न किसी अन्य भावना से प्रेरित नहीं है। यदि आप का मोअक्किल या कोई अन्य पुरुष हमारे मोअक्किल को सन्तुष्ट करदे कि उद्धरण का कोई भाग अनुचित रूप से लिया गया है या जैन धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध है तो हमारे मोअक्किल को उस में कोई आपत्ति न होगी कि वह दूसरे संस्करण से जिसे प्रकाशक मुरादाबाद निवासी राजा जयकृष्णदास सी एस० आई० प्रकाशित करना चाहते हैं ऐसे भागों को निकलवा दें।

हमारा मोअक्किल तुम्हारे मोअक्किल का ध्यान इस सूचना की ओर आकृष्ट करना चाहता है जो प्रकाशक ने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में प्रकाशित कराई है जिस में वह प्रकाशक का उद्देश्य बतलाता है और पुस्तक के सम्बन्ध में सारा उत्तरदायित्व स्वीकार करता है। पुस्तक का आगामी विक्रय और प्रकाशन पूर्णरूप से प्रकाशक के अधिकार में है। आपके

(हस्ताक्षर) पेन और गिलबर्ट

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४६] पत्र (३६६)

लाला[1] कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि हम सुख पूर्वक मुम्बई से खंडुआ में आ गये हैं। यहां रा० रा० भाऊ दादा जी के बागीचे में ठहरे हैं। हमने दश महीने का पंडितों के जमा खर्च का हिसाब लाला मोहनलाल को दे दिया है। और २००) रुपये उनसे पंडितों के मध्ये लिये हैं। १४) रुपये पिछले बाकी रहे थे। सब मिलके २१४) रुपये हुए। उन में से १६०) रुपये पंडितों के मध्ये खर्च हुए। शेष ५४) रुपये रहे सो वहां लाला निर्भयराम जी के पास जमा खर्च करा देना। अनुमान है कि वह कागज भी आप के पास पहुँच गया होगा। आर्य्य प्रश्नोत्तरी को शांति के साथ इस महीने में छाप के प्रसिद्ध कर देना। उस ही के साथ आर्य्यदर्पण का उत्तर भी छाप देना॥ सब से आशीर्वाद कह देना॥ शुभमिति।

ता० २५ जून सन् १८८२ ई०।[2]

[दयानन्द सरस्वती] (खंडुआ[3])

---

[1] यहां से 'ठहरे हैं।' तक का अंश पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ५३८ (हिन्दी सं० पृष्ठ ५७८) पर उद्धृत है।

[2] आषाढ़ शुक्ल ९ रविवार सं० १९३९। लिफाफे पर २६ जून की मोहर है।

[3] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि दिसम्बर

[पूर्ण संख्या ५४७]　　　पत्र-सूचना (६०)

३ जुलाई १८८२ खण्डुग्रा[1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५४८]　　　पत्र (३६७)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान ग्रानन्दित रहो[2]।

विदित हो कि पंडित सुन्दरलाल जी जो अपनी ओर से रामनारायण वा तुम्हारे साथ प्रवन्ध कर जायेंगे तो अच्छा होगा अथवा जैसी उनकी इच्छा हो चाहे पत्र द्वारा छापाखाने का प्रवन्ध रखें वा किसी मनुष्य के द्वारा। जब तुम को अपने हाथ से कुंजी सोंप गये तो निश्चय होना है कि तुम्हारा विश्वास उनको है। अच्छा तुम जानों वे जानें। उनकी ओर से रामनारायण सहायक रहेगा। तुम अपनी ओर से चेतन रहना। और जो कुछ वहां विशेष व्यवस्था होगी उसको विशेश्वरसिंह जना देगा। जो इस समय भीमसेन वा ज्वालादत्त को सोंप जाते तो उन से कभी प्रवन्ध होना सम्भव नहीं था। अच्छा हुआ जो तुमको सोंप गए। अनुमान है कि जो दयाराम को ले जायेंगे तो २ वा ३ महीने में दयाराम लौट आवेगा। पंडित जी कहते हैं कि पत्र द्वारा हम यथायोग प्रवन्ध रखेंगे। यह भी ठीक है। जो तुम को प्रधान करना चाहते ठीक है तुम प्रधान हो जाओ। वहां वेद भाष्य के डेढ़ अंक के ऋग्वेद के पत्रे वहां हैं क्योंकि हम यहां मन्त्र और पत्रों की संख्या रखते हैं। केवल बैठा रहने के वास्ते जल्दी जल्दी छाप कर पत्रों का तकादा किया करता है। और व्याकरण के पुस्तक अभी तक तैयार

सन् १९२६ में म० मामराज जी ने की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० १९५ पर भी छपा है। हमने सारा पत्र मूल पत्र से छापा है।

[1]. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ५३८ (हिन्दी सं० पृष्ठ ५७८) पर इतनी ही सूचना है। पूर्ण संख्या ५४२ (जून १४) के पत्र में लिखा है कि मुंशी समर्थदान को वैदिक प्रेस प्रयाग में भेजने की पक्काई की। यह पत्र प्रयाग को भेजा गया। यह भी सम्भव है कि यह पत्र-सूचना अगले पूर्ण संख्या ५४८ वाले पत्र के विषय में ही दी गई हो, क्योंकि वह भी ३ जुसाई का ही है।

[2]. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

नहीं किये । अब भीमसैन से कह देना कि १० दिन के पश्चात् तुम को स्वामी जी के पास रतलाम में जाना होगा । चाहे घर होकर जाओ चाहे इधर ही से । क्योंकि जो हमारे पास रतलाम में आवेगा तो फिर उदयपुर की ओर जाने में उसको सुबीता पड़ेगा, अन्यथा २० कोश पैदल आना पड़ेगा । और उधर भीलों का भी भय है । अब वहां दो पंडित का रहना उचित नहीं । जो वहां रहेगा उसको यथेष्ट प्रूफ सोधना और ५ मन्त्रों से कम भाषा कभी न बनेगी और जो अधिक बनावेगा उसको योग्यता विदित होगी । अब जब तक हमारी दूसरी चिट्ठी न आवे तब तक चिट्ठी पत्र न भेजना ।

ता० ३ जुलाई सन् १८८२ [दयानन्द सरस्वती]
श्रावण कृष्ण[1] २ चन्द्रवार स० १९३९ ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४९] पत्र (३६८)

ओम्[2]

स्वस्ति श्रीमदनवद्यगुणगणाऽलंकृतेभ्यः श्रीयुतमहाराजाधिराजभ्यो[3] धीरवीर श्री नाहरसिंहवर्मभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम्, शमत्रास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे श्रीमान् महाशयों का गोकरुणायुक्त रजष्ट्री पत्र[4] खंडुवा में पहुंचा । देख कर अति आनन्द प्राप्त हुआ । धन्य है महाशयों को कि जिनका तन मन धन सब परोपकारार्थ है । आप के सदृश आप ही हैं । महाशयों के सामने विशेष लिखना

---

[1] द्वितीया तृतीया सम्मिलित थी ।

[2] मूल पत्र शाहपुरा राज में सुरक्षित है ।

[3] यहां **'राजाहस्सखिभ्यष्टच्'** (अष्टा० ५।४।९१) से समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त होकर **श्रीयुत महाराजाधिराजेभ्यो'** रूप प्राप्त होता है । परन्तु **'विभाषा समासान्तो भवति'** (महाभाष्य ६।२।१९७) इस परिभाषा से 'टच् प्रत्यय नहीं हुआ, ऐसा जानना चाहिये । महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में 'टच्' प्रत्यय-रहित नकारान्त राजन् शब्द के अनेक प्रयोग उपलब्ध होते हैं । देखो 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' भाग १, पृष्ठ ३८-३९, सं० २०३० का संस्करण ।

[4] इस पत्र में महाराजा शाहपुराधीश के द्वारा ४०००० चालीस सहस्र मनुष्यों की सही कराई गई थी । द्र० पूर्ण संख्या ५५२ (पृष्ठ ४८३) ।

71336

आवश्यक नहीं जो कि स्वल्प लेख से बहुत जान लेते हैं। वेदभाष्य के कार्य रहने से श्रीमानों के पास पत्र न भेज सका। जब इधर की ओर आना होगा तब प्रथम ही श्रीमानों को विदित कर दिया जायेगा। अब मैं मुम्बई से चलकर खंडुवा[1]। **खडुवा से कल[2] सायंकाल इन्दौर में, अब इन्दौर से कल[3] सायंकाल की गाड़ी में बैठ कर रतलाम में पहुंच[4]** पश्चात् वहां से उदयपुर जाने का विचार है। उसी लिये कि वेद विद्यालयादि उत्तम कार्यों का प्रबन्ध हो जाय। श्रीमान् महाराजाधिराज जी जो उचित समझें इस बात पर श्रीमान् आर्य्यकुल दिवाकर महाशयों तो लिखें। जिस से पूर्वोक्त कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो। जो कुछ चित्तौड़गढ़ में अच्छी बातें हुई हैं वे सब महाराजाधिराजों के प्रयत्न का फल है। एक पोपलीला[5] का पुस्तक आज भेजा है और वेदाङ्गप्रकाशादि पुस्तक मंगवाने का पता यह है (प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग) ऐसा लिखकर भेज दीजिये अवश्य पत्र पहुँच जायगा। जो जो पुस्तकें मंगवावेंगे वे वे सब उचित समय में पहुंचते रहेंगे। जब मैं उदयपुर में पहुँचूंगा तब महाराजाधिराज जी को समाचार विदितकर दूंगा। सब सज्जनों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। मिति श्रावण वदी ४ मंगलवार सम्वत् १९३९[6] शुभम्

(इन्दौर)　　　　ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

---

[1] खण्डुआ आषाढ़ शुक्ल ८ सं० १९३९ (२४ जून १८८२) को पहुंचे थे।

[2] पत्र श्रावण वदी ४ मंगलवार (४ जुलाई १८८२) को इन्दौर से लिखा है। अतः खण्डुआ से ३ जुलाई की सायं चले थे।

[3] अर्थात् ५ जुलाई १८८२ की सायं इन्दौर से चलेंगे।

[4] पूर्णसंख्या ५५२ के पत्र में इन्दौर से रात की दो बजे की गाड़ी से रवाना होने का निर्देश है। अतः वे ६ जुलाई की प्रातः रतलाम पहुंचे थे। पूर्ण संख्या ५५२ पृ० ५८३ की टि० १ भी देखो।

[5] इस पुस्तक के लिये देखो "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" परिशिष्ट ५, पृष्ठ ८२।

[6] ४ जुलाई १८८२।

[पूर्ण संख्या ५५०] पारसल-सूचना (३४)

[श्री महाराजाधिराज नाहरसिंह वर्मा, शाहपुरा]
पोपलीला का पुस्तक ।[1]
श्रावण वदो ४, सं. १९३९ ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५५१] कार्ड (३६९)

श्रीयुत पंडित शालिग्राम बाबू गदाधरप्रसादसिंह बाबू जगन्नाथजी आनन्दित रहो । विदित हो कि मैं ४ जुलाई को यहां स्वामी दयानन्द (सरस्वती) जो महाराज के चरणों में पहुँचा । आप का समाचार कहा । श्रवण कर महाराज आनन्दित हुए । और मैं नागपुर ले जाने के वास्ते आया । परन्तु स्वामी जी राजपुताना देश में जावेंगे और हुलकर महाराज यहां नहीं हैं । सर्व सभासदों से आनन्द कहना । दूसरा पत्र विस्ता[र] पूर्वक भेजूंगा ।

ह० आत्मानन्द सरस्वती

५ जुलाई सन् ८२[2] इन्दौर छावनी
सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा । दयानन्द सरस्वती[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५५२] कार्ड (३७०)

ओ३म्[4]

श्री स्वामी जी का आशीर्वाद विदित हो । स्वस्ति श्री मित्रवर बाबू

---

१. इसका निर्देश पूर्ण संख्या ५४६ के पत्र में है । उसी के अनुसार तिथि का उल्लेख किया है । २. श्रावण वदी ५, बुधवार सं० १९३९ ।

३. यह हस्ताक्षर ऋषि ने स्वहस्त से बनाया है । शेष पत्र उनके शिष्य स्वामी आत्मानन्द ने लिखा है । हम ने ता० २३-४-१९२७ को एक पत्र बिलासपुर भेजा था । उसके उत्तर में पत्र संख्या ८०, ता० ११-५-१९२७ को नरसिंहपुर से मध्यदेश विदर्भ आ० प्र० सभा के मन्त्री श्री शिवलाल जी ने यह मूल कार्ड हमें भेजा था । मूल कार्ड अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है । पं० शालिग्राम तथा बाबू जगन्नाथ प्रसाद से बिलासपुर में म० मामराज ता० २ फरवरी सन् १९४४ को मिले थे । अन्य कोई पत्र नहीं मिला । ४. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

रूपसिंह कलार्क जी योग्य इतः रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते। गोरक्षा की सही पहुंची। आपने यह काम धन्यवाद देने योग्य किया। अब भी सही कराइये। जो गोरक्षार्थ [मे]मोरियल पत्र न रहे हों तो लिखना, परन्तु हस्ताक्षर अलग अक्षर स्पष्ट रहें, जिस में सुगमता से पढ़ने में आवे। यहां हमारे पास श्रीयुत महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी साहपुरा मेवाड़ से ४०००[०] चाली [स] हजार मनुष्यों की सही कराके भेजी है। श्री स्वामी जी मुम्बई से चल के खंडुवा, खंडुवा से इन्दोर, अब इन्दोर से आज दो बजे रात्रो[1] की गाडी में बैठ क रतल[ा]म को जायेगे। वहां ८ वा १० दिन रह कर पश्चात् उदयपुर को जायंगे॥

विशेष समाचार उदयपुर में पहुँचे के पश्चात् भेजूंगा॥ भद्रमिति।

कल स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी इन्दोर में हमारे पास आगये॥
ता० ५ जुलाई सन् १८८२ ई०[2]।

रामानन्द ब्रह्मचारी (इन्दोर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५३] पत्रांश[3] (३७१)

....

आज हम इन्दोर से दो बजे [रात्री[4]] की गाड़ी में बैठ कर रतलाम

---

[1] इस पत्र के अनुसार ५ ता० की रात को बैठकर ६ ता० की प्रातः स्वामी जी रतलाम पहुंचे यहां 'आज दो बजे रात्री' साधारण बोल चाल के अनुसार जानना चाहिये। अंग्रेजी तिथि पत्रानुसार बारह बजे रात से तारीख बदल जाती है। यहां पूर्णसंख्या ३७ (पृष्ठ ७८) के पत्र में अद्यतन शब्द का अर्थ और उसकी टि० २ भी देखें। श्री पं० लेखराम जी कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५७८ पर तथा महेशप्रसाद जी ने 'महर्षि दयानन्द कब और कहां' पुस्तक में श्रावण कृष्ण ५ अर्थात् ५ जुलाई को रतलाम पहुंचना लिखा है। सो ठीक नहीं है। श्रावण ६ अर्थात् ६ जुलाई की प्रातः वे पतलाम पहुंचे थे।

[2] प्रथम श्रावण कृष्ण ५ बुध, सं० १९३९।

[3] यह पत्रांश पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ५३८ (हिन्दी सं० ५७८) पर उद्धृत है।

[4] इसी पृष्ठ की, टि० १ देखो।

जावेंगे। वहां से उदयपुर जाने का विचार है। श्रावण[1] वदी ५, बुद्धवार। इन्दोर ५ जुलाई ८२।

दयानन्द सरस्वती
इन्दौर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५४] पत्र-सारांश (३७२)

[मुंशी समर्थदान]
भीमसेन को हमारे पास भेजो[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५५] तार-सारांश (९)

[मुंशी समर्थदान]
भीमसेन को हमारे पास भेजो[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५६] पत्राशय (३७३)

[कविराज श्यामलदास, उदयपुर][3]

हम श्री महाराज को दिये हुये अपने वचनानुसार [उदयपुर] आते हैं। आप सवारी आदि का प्रबन्ध करके हमको सूचित करें।[4]

दयानन्द सरस्वती

---

[1] यह शुद्ध श्रावण अर्थात् प्रथम श्रावण है।

[2] देखो अगली पूर्ण संख्या ५५८ तथा ५५९ का पत्र।

[3] नाम का निर्देश कहीं नहीं मिलता है। कविराज श्यामलाल दास के श्रावण कृष्ण १० सं० १९३९ (१० जुलाई १८८२) के पत्र तथा पं० लेखराम के वर्णन से नाम की कल्पना की है।

[4] इस पत्राशय का निर्देश पं० लेखराम कृत जीवनचरित्र हिन्दी सं० पृष्ठ ५७८ पर मिलता है। यह पत्र जावरा स्टेशन पर पहुंच कर ८ जुलाई को ऋ० द० ने उदयपुर लिखा, ऐसा पं० लेखराम का कथन है। उस समय जब उदयपुर तक रेल नहीं थी, तब ८ को लिखा पत्र १० को उदयपुर पहुंचना कठिन है। कविराज

[पूर्ण संख्या ५५७] तार-सूचना (६)

[कविराज श्यामलदास, उदयपुर]
सवारी के प्रबन्ध के विषय में ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५८] पत्र (३७५)

ओ३म्[2]

मुंशी समर्थदान आनन्दित रहो ।

विदित हो कि आज कार्ड पत्र आया, समाचार विदित हुआ । परन्तु जो तुमने प्रथम पत्र में लिखा था कि विशेष यहां का वर्तमान द्वितीय पत्र में लिखूंगा वह समाचार इस पत्र में नहीं लिखा? क्या यह द्वितीय पत्र न था? अथवा लिखते समय स्मरण न रहा जो कि लिखा विशेष समाचार दूसरे पत्र में लिखूंगा । अब कब दूसरा पत्र लिखा जायगा ? वह समाचार अवश्य लिखना । यंत्रालय में जो दो महीने आगे का छपा हुआ वेदभाष्य है सो अधिक-अधिक वेदभाष्य ही के छपने से क्या लाभ होगा । और जो प्रतिमास में छपने के वास्ते वेदभाष्य ही भेजा जाय तो कई एक दिन तक वेदभाष्य ही के शोधने में व्यतीत हो जांय । पुन: आगे-आगे न बनने से कहां से छपेगा । जो वेदाङ्ग-प्रकाश के अक्षर नहीं हैं तो ढ़लवा लो । वहां शीशा रक्खा किस

श्यामलदास का श्रा० कृ० १० (१० जुलाई १८८२) का पत्र १४ जुलाई को जावरा में ऋषि दयानन्द को मिला (द्र० पं० लेख० जी० च० हिन्दी पृष्ठ ५७८)। श्री देवेन्द्र बाबू संकलित जीवन चरित में रतलाम (६ या ७ जुलाई)पहुंच कर उदयपुर पत्र देना लिखा है वह युक्त प्रतीत होता है। इसके उत्तर में कविराज श्यामलदास का श्रावण कृष्ण १० सं० १९३९ का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[1] इस तार की सूचना भी श्री श्यामलदास कविराज के श्रावण कृष्ण १०, सं० १९३९ (=१० जुलाई १८८२) के पत्र से मिलती हैं। कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

काम में आवेगा। और जब तक अक्षर न बन चुकें तब तक कम्पोजीटरों को छुट्टी देदो। जब अक्षर बन जावें तब बुला लेना। उन्हीं अक्षरों को ढलवाओ जिनकी आवश्यकता है। क्या फूंडरी में अक्षर नहीं ढलते हैं जो लिखते हो कि अक्षर नहीं हैं। जिस प्रकार काम अच्छे प्रकार चले उस प्रकार प्रबन्ध सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये।

पंडित भीमसेन के बुलाने के लिये १ तार और दो एक पत्र भेज चुके हैं[1]। उससे कह देना कि स्वामी जी के पास जावरा नवाब का जिला इन्दोर में चला आवे। और तुम वेदभाष्य और मासिक हिसाब भी यहीं जावरा में भेज दो। सर्वदा वहां का यथेष्ट समाचार लिखा करो। और जो हम लिखें उसमें ध्यान देकर काम चलाया करो।

ता: ११ जुलाई १८८२
श्रावण कृष्ण मंगलवार सं० १९३९।
[दयानन्द सरस्वती](जावरा)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५५९] पत्र (३७५)

मुन्शी समर्थदान आनन्दित रहो[2]।

विदित हो कि जो हमने लिखा और तार भेज था उसको याथातथ्य किया होगा। वेदाङ्गप्रकाश के छपने के लिये शीघ्र ही फुंडरी में अक्षर ढलवालो। और पूर्व पत्रों का उत्तर यथावत् विस्तार पूर्वक लिखना। विशेष हाल कल के पत्र[3] से जान लेना। अब देखो छापेखाने का प्रबन्ध, करनवास के ठाकुर शेरसिंह ने हमारे पास पत्र भेजा है। उसको तुम्हारे पास भी भेजते हैं। देखकर यथोचित प्रबन्ध करना। इसने २१) रुपये हमको मेरठ

---

[1] इन में से एक उस पत्र की ओर संकेत है जो ३ जुलाई १८८२ को समर्थदान को लिखा था। देखो पूर्ण संख्या ५४८ का पत्र, पृष्ठ ५७९। तार तथा द्वितीय पत्र प्राप्त नहीं हुआ, उन का सारांश पूर्ण संख्या ५५४, ५५५, पृष्ठ ५८४ पर दिया है।

[2] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[3] पूर्ण संख्या ५५८ का पत्र। यहां 'कल' शब्द से विदित होता है कि वह पत्र श्रा० कृ० ११ मंगलवार को लिखा और अगले दिन बुधवार को भेजा गया।

में वेदभाष्य के मध्ये दिये थे। वे रुपयें टाटल पेज पर छप भी चुके[1]। भला ऐसे-ऐसे ग्राहकों को वृथा अपनी अज्ञानता से क्लेश देते हैं। इस ग्राहक के २५॥) रुपये आ चुके हैं। अब पांचवें वर्ष के ८) रुपये रहे होंगे, मंगवा लेना। जो इनके पास वेदभाष्य न जाता हो तो जहां से बंध हुआ हो वहां से उनसे पूछ कर बराबर भेजा करना और जो जाता हो तो अच्छा है। और करनवास में ठाकुर गोपालसिंह भी वेदभाष्य लेते हैं। उनसे भी बाकी रुपये उन्हीं के द्वारा और उनके भी रुपये पांच वर्ष के अन्त तक के सब मंगवा लेना। और छापेखाने की व्यवस्था अच्छे प्रकार रखना। इति ता० १३ जुलाई सन् १८८२ ई०।

श्रावण कृष्ण १३ बृहस्पतवार
सं १९३९।

दयानन्द सरस्वती
नवाब का जावरा (मालवा)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५६०] पत्र (३७६)

लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो[2]!

विदित हो की लाला जगन्नाथदास मुरादाबाद की प्रश्नोत्तरी के विषय में विस्तार से लिख के ७ पृष्ठ भेजते हैं[3]। पहुंचेंगे। जिस समय पहुँचे उसी समय १००० प्रति छपवा देना। परन्तु छपवाने में विलम्ब किंचिन्मात्र भी न करना। पश्चात् तुम अपने समाचार में छपवाना। छपवाने में इतना ध्यान रखना कि जैसा लेख है वैसा ही छपवाना। कम व अधिक न करना। और इसका मूल्य)॥ आना रखना। परन्तु बाहर के मंगवाने वालों से डाक व्यय भी ले लेना। इसको शीघ्र ही छपवा के सर्वत्र प्रसिद्ध कर दो। जिस से लोगों की शंका दूर हो जाय। और उनकी बुद्धि का भी प्रकाश हो जाय कि ये गुरु और चेला किस प्रकार के हैं। और इन्होंने

---

[1] इस विषय में पूर्ण संख्या ३२७ (पृष्ठ ३८१) भी देखें।

[2] मूल पत्र आर्य समाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। इस की प्रतिलिपि दिसम्बर सन् १९२६ में म० मामराज ने की। फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १९५ पर भी छपा है।

[3] पूर्ण पूर्ण संख्या ५४३ (पृष्ठ ५७५) में 'प्रश्नोत्तरी का खण्डन 'बहुत दिन हुए भेज चुके हैं' ऐसा लिखा [illegible] ह उत्तर संक्षिप्त था। यह उत्तर विस्तृत है। यह इसी वाक्य के 'विस्तार से' शब्द से स्पष्ट है।

क्या-क्या विचित्र वर्त्तमान किया है। आज कल आत्मानन्द सरस्वती स्वाजी हमारे पास हैं। इति

ता० १३ जुलाई सन् १८८२ ई०।[1]

[दयानन्द सरस्वती]
मालवा नवाब का जावरा

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६१] पारसल-सूचना (३५)

[लाला कालीचरण जी फर्रुखाबाद]
जगन्नाथ की प्रश्नोत्तरी की समीक्षा के ७ पृष्ठ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६२] समीक्षा-पत्र (३७७)

श्रीयुत सम्पादक देशहितैषी महाशय मंत्री आर्य्यसमाज अजमेर समीपेषु[3]।

प्रिय सम्पादकवर! जो मनुष्य स्वार्थ बुद्धि छोड़ परमार्थ करने में प्रवृत्त नहीं होता उस का हृदय पूर्ण शुद्ध होना असम्भव है, चाहे वह बहुत

---

१. प्रथम श्रावण कृष्णा १३ बृहस्पतिवार सं० १९३९।

२. इसका निर्देश पूर्ण संख्या ५६० के पत्र में हैं। इसे रजिस्ट्री से भेजने का उल्लेख आगे पूर्ण संख्या ५७९ के पत्र में मिलता है।

३. मुंशी इन्द्रमणि ने सहायता में आए हुए धन का पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार पूर्ण ब्यौरा न बताया और न छापा। जब श्री स्वामी जी ने उन सब से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, तब मुन्शी जी ने आर्यप्रश्नोत्तरी (संवत् १९३८, आर्यदर्पण प्रेस, शाहजहांपुर) छापी। उसका उत्तर लिखवा कर श्री स्वामी जी ने भारत सुदशा प्रवर्तक में छपने के लिये भेजा। फरुखाबाद समाज वालों ने वह न छापा।

अपने १६ जून के पत्र (पूर्ण संख्या ५४३, पृष्ठ ५७६) में श्री स्वामी जी ने ला० कालीचरण को लिखा—"प्रश्नोत्तरी का खण्डन बहुत दिन हुए हम आप के पास भेज चुके हैं। उस के पीछे भारत सु० प्र० के दो अंक निकल चुके हैं। परन्तु आप ने उस को छापा नहीं।" अर्थात् श्री स्वामी जी का यह उत्तर एप्रिल १८८२ में लिखा गया होगा।

पुनः १३ जुलाई पत्र पूर्णसंख्या ५६० के अनुसार श्री स्वामी जी ने उसी प्रश्नोत्तरी का एक विस्तृत उत्तर छपने को भेजा।

युक्ति और गूढता अपनी कपटता को प्रसिद्ध करने में कैसा ही यत्नवान् क्यों न हो। उस का कपट कभी न कभी प्रकाशित हो ही जाता है। प्रत्यक्ष दृष्टान्त देख लो कि लाला जगन्नाथदास मुन्शी इन्द्रमणिजी के शिष्य की बनाई हुई [आर्य्य प्रश्नोत्तरी] की समालोचना करने से (वहुत से विषय

फर्रुखाबाद वालों ने यह उत्तर भी न छापा। और मन्त्री आ० स० फर्रुखाबाद ने १४-७-८२ को एक पत्र (संख्या २७) श्री स्वामी जी की सेवा में खण्डुआ भेजा। उस का विषय "प्रश्नोतरी" था। पुनः मन्त्री समाज ने १९-७-८२*को एक और पत्र (संख्या ५२) श्री स्वागी जी को जावरा भेजा—

"पत्र आप का और ७ पृष्ठ आर्यप्रश्नोतरी के उत्तर में पहुंचे। छापने के विषय में अन्तरङ्ग सभा से यह अनुमति मिली कि नया प्रेस एक्ट में छपने छापने का विषय है।"......और जो १००० प्रति अलग छापी जावे वह भी ऊपर के कारणों से (मुझे छोड़) आप लिखें जिसके नाम से छपवाने का विचार किया जावे।"

फिर १४ अगस्त १८८२ [पूर्ण संख्या ५६७] के पत्र में श्री स्वामी जी ला० कालीचरण को लिखते हैं—

"अभी तक "आर्य प्रश्न०" के उत्तर नहीं छपवाये। क्या कारण है। जो प्रेस एक्ट की शंका ही तो पत्र के देखते पण्डित मुन्नालाल मन्त्री आ० स० अजमेर के पास दीजिए। वे छाप देंग।"

फिर श्री स्वामी जी ने उदयपुर से श्रावण शुक्ल ३ संवत् १९३९ [१७ अगस्त १८८२। पूर्ण संख्या ५६९] को बाबू दुर्गाप्रसाद के नाम एक पत्र लिखा। उस में भी इसी उत्तर के छापने का उल्लेख है।

२४ अगस्त १८८२ को [पूर्ण संख्या ५७०] श्री स्वामी जी पुनः लिखते हैं-

"तुमने "आ० प्र०" के उत्तर अजमेर पण्डित मुन्नालाल जी के पास भेज दिये। अच्छा किया।"

१४-८-८२ को [पूर्ण संख्या ५६६] ही मुन्नालाल सम्पादक देशहितैषी श्री स्वामी जी को अजमेर से लिखता है-

'आर्य्य प्रश्नोत्तरी के खण्डन को किसकी ओर ये प्रकाश करें।"

अन्त में यह उत्तर देशहितैषी अजमेर में "उचित वक्ता" के नाम से छपा।

---

* हमें यह तारीख अशुद्ध प्रतीत होती है। इस के दो कारण हैं। १—इस पत्र की पत्र संख्या २७ है और १९-७ ८२ को लिखे पत्र की संख्या ५२ है। ५ दिन में

उसमें सत्य और परोपकारक दीख पड़ते हैं, परन्तु बहुधा विषय उस में ऐसे भी हैं कि जिनके सुनने वा पाठ करने वालों का भ्रमजाल में फंस वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होना सम्भव है । यह विरुद्ध विषय केवल लाला जगन्नाथदास ही के अभिप्राय से नहीं किन्तु मुन्शी इन्द्रमणि भी उन दोषयुक्त विषयों के अनुयायी प्रतीत होते हैं।) अस्तु जो हो मुझको सत्य-सत्य परीक्षा इस ग्रन्थ की करके दोषों का प्रकाश करना अवश्यनीय है । कारण, सज्जन लोग गुणग्रहण कर दोषों को छोड़ दें। इतना ही नहीं, किन्तु जैसे विषयुक्त उत्तमान्न का बुद्धिमानों को त्याग करना अवश्य होता है, इसी प्रकार आर्य्य लोगों के लिये यह [आर्य्यप्रश्नोत्तरी] ग्रन्थ गुणों के साथ दोषदायक होने से श्रेष्ठ को त्याग के योग्य है। अब इसका कुछ थोड़ा सा नमूना संक्षेप से दिखलाता हूं।

[आर्य प्रश्नोत्तरी पृष्ठ २। प्रश्नोत्तर ७] परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का प्रकाश किया। उन से ऋषि मुनि अस्मदादिकों को प्राप्त हुये।

[समीक्षा] यह बात प्रमाण करने योग्य नहीं, क्योंकि (**अग्नेर्वै ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः**) शतपथ ब्राह्मण वचन[1]।

"अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥"

मनस्मृति [१।२३] का वचन। अब देखिये अग्नि आदि महर्षियों से ऋग्वेदादि का प्रकाश हुआ। इत्यादि ब्राह्मण वचनों के अनुसार मनुजी महाराज कहते हैं कि ब्रह्मा जी ने अग्न्यादि महर्षियों के द्वारा वेदों की प्राप्ति की। अतः एव "**यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै**" इस श्वेताश्वरोपनिषद् [६।१८] के वचनार्थ की संगति शतपथ और मनुजी के वचन से अविरुद्ध होनो चाहिये। किन्तु परमात्मा ने चारों महर्षियों के द्वारा श्री ब्रह्मा जी को चार वेदों की प्राप्ति कराई। और अब भी जो कोई चार वेदों का पढ़ता है वही यज्ञ में ब्रह्मासन को प्राप्त और उसी का नाम ब्रह्मा भी होता है । यदि मुन्शी इन्द्रमणिजी और उनके

---

२५ पत्र लिखे जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। २—१४-७-८२ को ऋ० द० खण्डवा में नहीं थे जावरा में थे। अतः यहां २४-६—८२ तारीख हो सकती है। यह पत्र प्रश्नोत्तरी के संक्षिप्त विषय में था।

[1] शत० ब्रा० ११।५।२।३ में त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।

शिष्य लाला जगन्नाथदास वेद और तदनुयायी ब्राह्मणादि ग्रन्थों को पढ़े होते तो ऐसे भारी भ्रम में पड़ ऐसे-ऐसे अन्यथा भाषण वा लेख क्यों करते ? इनको उचित है कि अपना हठ छोड़ सत्य का ग्रहण अवश्य करें।

[पृष्ठ ३ प्रश्नोत्तरी १६] जीव वास्तविक अनन्त हैं। इस कारण ईश्वर के ज्ञान में भी अनन्त ही हैं।

[समीक्षा] जब जीव देश काल वस्तु परिच्छिन्न अर्थात् भिन्न-भिन्न हैं। उनको अनन्त कहना मानों एक अज्ञानी का दृष्टान्त बनना है। अनन्त तो क्या, परन्तु परमेश्वर के ज्ञान में असंख्य भी नहीं हो सकते। परमेश्वर के समीप तो सब जीव वस्तुत: अतीव अल्प हैं। जीवों की तो क्या परन्तु प्रति जीव के अनेक कर्मों के भी अन्त और संख्या को परमेश्वर यथावत् जानता है। जो ऐसा न होता तो वह परब्रह्म जीव और उसके कर्मों का जैसा-जैसा जिस-जिस जीव ने कर्म कीया है उन-उन का फल न दे सके। जब कोई इनसे प्रश्न करे कि एक-एक जीव अनन्त हैं वा सब मिल के ? जो एक-एक अनंत हैं तो **"य आत्मनि तिष्ठन्"** इत्यादि ब्राह्मण[1] वचन अर्थात् जो परमात्मा व्याप्य जीवों में व्यापक हो रहा है और ऐसा ही लाला जगन्नाथ ने 'पृष्ठ ५। प्रश्नोत्तर ३२" के उत्तर में लिखा है कि "जीवेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध और पृष्ठ ४ प्र० २१" "में जीव को अणु माना है।" जीव शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में जाता और शरीर के मध्य में रहता है। इस लिये अनंत वा असंख्य ईश्वर के ज्ञान में नहीं। किन्तु जीवों के ज्ञान में जीव असंख्य हैं। जिन लाला जगन्नाथदास वा मुन्शी इन्द्रमणिजी को अपने ग्रंथस्थ पूर्वापर विरुद्ध विषयों का ज्ञान भी नहीं है तो आगे क्या आशा होती है। इसी से इनके सब प्रपंचों का उत्तर समझ लेना शिष्टों को योग्य है।

[पृष्ठ ४ प्र० २४] "जीव के गुण वास्तव में विभु है, परन्तु बद्धावस्था में अविद्या से आच्छादित होने से परिच्छिन्न हैं। मुक्तावस्था में विभु हो जाते हैं।"

[समीक्षा] विभु गुण उसी के होते हैं जो द्रव्य भी विभु हो। और जिसको अणु मानते हैं क्या उसके गुण विभु कभी हो सकते हैं ? क्योंकि गुणों का आधार द्रव्य होता है। भला कोई कह सकता है कि परिच्छिन्न द्रव्य में विभु गुण हों। क्या गुणी एक देशी और गुण विभु हो सकते हैं ? और गुणी को छोड़ केवल गुण पृथक् भी रह सकता है? नहीं ! नहीं ! और जो (पृष्ठ

---

[1] शत० १४।६।७।३२॥

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

४। प्रश्नोत्तर २१) जीव को अणु माना है। वह भी ठीक नहीं। क्योंकि एक अणु में भी जीव रह सकता है। अर्थात् एक अणु में अनेक जीव रह सकते हैं। देखो अणु कांच वा पृथिवी आदि के मध्य में से पार नहीं जा सक्ता और जीव जा सकता है। इसीलिये जीव अणु से भी सूक्ष्म है और इसके गुण भी विभु नहीं। हां मुक्तावस्था में जिस ओर उसका ज्ञान होगा उस दूरस्थ पदार्थ को भी अपने ज्ञान से जान लेता है। नहीं तो "**युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्**" इस न्याय शास्त्र [१।१।१६] के सूत्र का अर्थ ही नहीं घट सकेगा। जो एक क्षण में एक पदार्थ को जाने अनेक को नहीं, उसी को मन कहते हैं। वही मन मुक्तावस्था में भी रह जाता। पुनः उसी मनरूप साधन से विभु गुण वाला जीव कैसे हो सकता है।

[पृष्ठ ४ प्रश्न २५] "जीव परतन्त्र हैं।"

[समीक्षा] जीव किस के आधीन है? जो कहो कि परमेश्वर के तो जो कुछ जीव कर्म कर्त्ता है वह स्वतन्त्रता से वा ईश्वराधीनता से? जो ईश्वराधीनता से करता है तो जीव को पाप पुण्य का फल न होना चाहिये, किन्तु ईश्वर को होना चाहिये। जैसे सेनाध्यक्ष वा राजा की आज्ञा से कोई किसी को मारे वह अपराधी नहीं होता, अथवा किसी के मारने में लकड़ी तलवारादि शस्त्र [न] अपराधी और न दंडनीय होते हैं, वैसे ही जीवों को भी दंड न होना चाहिये। किन्तु पाप पुण्य का फल सुख दुःख ईश्वर भोगे। उस लिये जीव अपने कर्म करने में सर्वदा स्वतन्त्र और पाप का फल दुःख भोगने में ईश्वर को व्यवस्था से परतंत्र रह जाते हैं जैसे चोर चोरी करने में स्वतंत्र और राजदंड भोगने में परतंत्र हो जाते हैं इसी प्रकार जीवों को भी जानो।

[पृष्ठ ४ प्रश्नोत्तर २८] "मुक्त जीव कर्म्मवश होकर कभी फिर ससार से नहीं आते। ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्म रक्षा करने को आते हैं।"

[समीक्षा] पाठक गण! विचारिये यह अविद्या का प्रताप नहीं है तो और क्या है? जो कहते हैं कि जीव संसार में कभी नहीं आते और ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्म रक्षा करने को आते भी हैं। धन्य! भला इस पूर्वापर विरुद्धता को गुरु और चेले ने तनिक भी न समझा। विचारणीय है कि जिस का ज्ञान, सामर्थ्य, कर्म अन्त वाले है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? और जो मुक्ति में से जीव संसार में न आवें तो संसार का उच्छेदन अर्थात् नाश ही हो जाय। और मुक्ति के स्थान में

भीड़ भड़क्का हरद्वार के मेले के समान हो जाय। और ईश्वर भी अंत वाले गुण कर्म्म का फल अनन्त देवे तो वह न्यायरहित हो जाय। और परिमित गुण कर्म स्वभाव वाले जीव अनन्त आनन्द को भोग भी नहीं सके। फिर यह बात वेद तथा शास्त्र से विरुद्ध भी है। देखो "अग्नेर्नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च" ऋग्वेद[1] वचन—अर्थ-हम उसी सुन्दर निष्पाप परमात्मा का नाम जानते हैं और स्व-प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर प्राप्तमोक्ष जीवों को पुनः अवधि पर संसार में माता पिता के दर्शन कराता है अर्थात् मुक्ति सुख को भुगा के पुनः संसार में जन्म देता है॥ इसी प्रकार सांख्य शास्त्र में भी लिखा है "नात्यन्तोच्छेदः"[2] इत्यादि वचनों से यही सिद्ध होता है कि अत्यन्त जन्म मरण का छेदन [न] किसी का हुआ और न होगा, किन्तु समय पर पुनः जन्म लेता है। इत्यादि प्रमाणों और युक्तियों से मुक्त जीव भी पुनरावृत्ति में आते हैं।

[पृष्ठ ४ प्रश्नोत्तर ३०] "एक वृक्ष में एक ही जीव होता है न अनेक"।

[समीक्षा] जो एक वृक्ष में एक जीव होता तो प्रत्येक जीव [वृक्ष] में पृथक् पृथक् जीव कहां से आते और किसी वृक्ष की डाली काट कर लगाने से जम जाता है उस में जीव कहां से आया, इस लिये एक वृक्ष में अनेक जीव होते हैं।

[पृष्ठ ५ प्रश्नोत्तर ३५] अनेक पूर्व जन्मों के कर्म जो ईश्वर के ज्ञान में स्थित हैं वे सञ्चित कहलाते हैं।

[समीक्षा] क्या जीव का कर्म जीव के ज्ञान में सञ्चित नहीं होता? जो ऐसा न हो तो कर्म्मों के योग से पवित्रता और अपवित्रता जीव में न होवे। इस लिये जो जो अध्ययनादि कर्म जीव करते हैं उनका सञ्चय जीव ही में होता है, ईश्वर में नहीं। किन्तु ईश्वर तो केवल उन के कर्म्मों का ज्ञाता है और फल प्रदाता है।

[पृष्ठ १२- प्रश्नोत्तर ७७] "केवल देवता और शिष्ट पुरुषों के नाम पर

---

[1] द्र० ऋ० १।२४।२॥ ऋग्वेद में 'अग्नेर्वयम्' पाठ है। 'अग्नेर्नूनम्' पाठ स० प्र० के द्वितीय सं० पृष्ठ २३९ पर भी छपा था।

[2] इस का पूरा पाठ है—इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः। सांख्य १।१६०॥

जन्माष्टम्यादि व्रत है। सो ईश्वरातिरिक्त किसी भी देवता की उपासना कर्तव्य नहीं।”

[सुमीक्षा] क्या शिष्ट पुरुषों से भिन्न भी कोई देवता है ? बिना पृथिव्यादि के तेतीस और वेदमन्त्र तथा माता पिता आचार्य अतिथि आदि के जिन का वेदों ने पूजन अर्थात् सम्यक् सत्कार करना कहा है। क्या यह भी मनुष्यों को कर्तव्य नहीं।

[पृष्ठ १३–प्रश्नोत्तर ८२] “जो कुछ ईश्वर ने नियत किया है उस में न्यूनाधिक्य करने वाला कोई नहीं। जो बात जिस प्राणी के लिये जिस काल में जिस प्रकार से ईश्वर ने नियत की है उस से विरुद्ध कभी नहीं होती।”

[समीक्षा] क्या ब्रह्मचर्य्य और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से आयु का अधिक होना और कुपथ्य से वा व्यभिचारादि से न्यून नहीं होता ? जब ईश्वर का नियत किया हुआ ही होता है तो जोव के कर्मों की अपेक्षा कुछ भी नहीं रह सकती। और जो अपेक्षा है तो केवल ईश्वर ने नियत नहीं किया किन्तु दोनों निमित्तों से होती है। जो हमारा क्रियमाण स्वतन्त्र न हो तो हम उन्नति को प्राप्त कभी नहीं हो सकते। इसीलिये हम कर्म करने में स्वतन्त्र और ईश्वर जीवों के कर्मों को यथायोग्य जानकर कर्म्मानुसार शुभाऽशुभ फल देने में स्वतन्त्र है। ऐसा माने बिना ईश्वर में वे ही दोष आ जावेंगे जो २५ वें प्रश्नोत्तर की समीक्षा में लिख आये हैं।

[पृष्ठ १३–प्रश्नोत्तर ८४] “स्वर्ग संसारांतर्गत है वा लोकान्तर(“उत्तर” स्वर्ग लोकविशेष है वहां क्षुधा पिपासा बुढ़ापा आदि दुःख नहीं है।

[समीक्षा] क्या लोकान्तर का नाम संसार है नहीं। क्या बिना मुक्ति के वा प्रलय अथवा स्थूल शरीर के क्षुधादि की निवृत्ति हो सकती है। ऐसे विशेष स्वर्ग लोक को गुरु शिष्य देख आये होंगे। जो पूर्वमीमांसा को देखा होता तो ऐसी अन्यथा बातें क्यों लिखते। देखिये “**स एव स्वर्गः स्यात् सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात्**” पूर्वमीमांसा[1] का वचन। जो सर्वत्र अविशेष अर्थात् सुख विशेष की प्राप्ति का नाम स्वर्ग और दुःख विशेष की प्राप्ति का नाम नरक लिखा है। सब जीवों को सब संसार में प्राप्त होता है किसी विशेष लोकान्तर ही में नहीं। और जहां शरीर धारण श्वास प्रश्वास भोग वृद्धि

---

[1] पूर्वमीमांसा ४।३।१५।। यहां ‘एव’ पद नहीं है

क्षय आदि होते हैं वहां क्षुधा पिपासा और बुड्ढापन आदि क्यों नहीं ? यह सब अविद्या की बात है। ध्यान दीजिये वेद का कोष क्या कहता है (स्वः) साधारण नाम में है निघं १।४। "स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः" जिस में सुख की प्राप्ति हो वह स्वर्ग कहाता हं। परन्तु **"गौणमुख्ययोर्मध्ये मुख्ये कार्य्ये सम्प्रत्ययः"** यह व्याकरण महाभाष्यकार का[२] वचन है। इस से यह सिद्ध होता है कि निर्मल धर्म्माऽनुष्ठानजन्य सत्य विद्यादि साधनों से सिद्ध आत्मीय और शारीरिक सुख विशेष है। उसी प्रधान सुख की प्राप्ति का नाम स्वर्ग है ॥

[पृष्ठ १४–प्रश्नोत्तर ९१] "सम्पूर्ण जीव वास्तव में ईश्वर के दास हैं इस कारण मनुष्यों के नाम में ईश्वर वाच्य शब्द में दास शब्द का प्रयोग करना अत्युत्तम है।"

समीक्षा—यह शास्त्रीय व्यवहार से सर्वथा बाहर है। किन्तु केवल कपोलकल्पना मात्र ही है क्योंकि—

"शर्म्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद् राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य गुप्तिसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्" ॥ मनु० [२।३२]

जैसे ब्राह्मण का नाम विष्णु शर्म्मा, क्षत्रिय का विष्णु वर्म्मा, वैश्य का विष्णु गुप्त और शूद्र का विष्णुदास इस प्रकार नाम रखना चाहिये। जो कोई द्विज शूद्र बनना चाहे तो अपना नाम दास शब्दान्त धर ले और जो शास्त्रोक्त विधि छोड़ मनोमुख चले उस को क्या कहना।

[पृष्ठ १६–प्रश्नोत्तर ९७] "परलोक और धर्मार्थ के फल तथा ईश्बर को न माननेवाले को नास्तिक कहते हैं।

[समीक्षा] इस में केवल इतनी ही न्यूनता है कि **"नास्तिको वेद-निन्दक"**[२] जो लाला जगन्नाथदास और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने मनुस्मृति पढ़ी वा अच्छे प्रकार से देखी भी होती तो वेद-निन्दक का नाम नास्तिक क्यों न लिखते, जिस से सब कुछ अर्थ आ जाता और लक्षण भी दृष्टि पड़ता।

[पृष्ठ १६–प्रश्नोत्तर ९८] "हिन्दू" शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है,

---

२. महाभाष्य १।१।१५।

१. मनुस्मृति ५।११॥

पारसी भाषा में वास्तविक अर्थ "हिन्दुस्तान" के रहने वाले का है और (काला, लुटेरा, गुलाम) "यह सांकेतिकार्थ है" ।

(समीक्षा) वह क्या ! जब संस्कृत भाषा का नहीं है तो इसका वास्तविक अर्थ कभी नहीं हो सक्ता,[1] वास्तविक अर्थ [में] इस देश वालों का नाम (आर्य्य) और इस देश का नाम "आर्य्यावर्त्त है" । इस सत्यार्थ को छोड़ असत्यार्थ की कल्पना करनी मुझ को तो अविद्या और हठ की लीला दृष्टि पढ़ती है । जब "अर्बी" की (लुग़ात) नामक पुस्तक में लिखा है कि लुटेरे आदि का नाम हिन्दू है तो उस भाषा में वास्तविक नाम[2] क्यों नहीं ? केवल सांकेतिकार्थ क्यों ? अर्थात् जो कोई आर्य्य होकर अपने हिन्दू नाम होने में आग्रह करे उन्हीं का नाम काला, लुटेरा, गुलामादि का रहो, आर्य्य का नहीं ।

[पृष्ठ १६–प्रश्नोत्तर १००] पहिले कहने वाला "**परमात्मा जयति**" कहे और उत्तर देने वाला "**जयति परमात्मा**" कहे ।

[समीक्षा] यह कल्पना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा मिथ्या ही जान पड़ती है क्योंकि "**नमस्ते रुद्र मन्यवे०**[3] । **नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः**[4]" इत्यादि यजुर्वेद वचन "**परमर्षिभ्यो नमः**[5] "**नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो**"[6] इत्यादि उपनिषद् वचन, इनसे निश्चित यही सिद्ध होता है कि परस्पर सत्कारार्थ (नमस्ते) शब्द से व्यवहार करने में वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रमाण है और परस्पर अर्थ भी यथावत् घट जाता है जैसे (ते) तुभ्यं वा तव अर्थात् जिस को मान्य देता है उस का वाची है और (नमः) शब्द नम्रार्थ वाचक होने से नमस्कार कर्ता का बोधक है मैं तुम कू नमता हूं अर्थात् (ते) आप वा तेरा मान्य वा सत्कार करता हूं । इस में नमस्कर्त्ता और नमस्करणीय दोनों का परस्पर प्रसंग प्रकाशित होता है और यही अभिप्राय दोनों का है कि दोनों प्रसन्न

---

[1] द्र०—ततश्चासत्यशब्देषु कुतस्तेष्वर्थसत्यता । भट्ट कुमारिल, तन्त्रवार्तिक १।३।६, पृष्ठ २३७, पूना सं० । इस का भाव है–असत्यशब्दों=अपशब्दों=असंस्कृत शब्दों में अर्थ की सत्यता वास्तविकता नहीं हो सकती है ।

[2] यहां 'नाम' शब्द के स्थान में 'अर्थ' शब्द होना चाहिये ।

[3] यजुः १६।१॥

[4] यजुः १६।३२ ।

[5] अनुपलब्ध

[6] तै० आर० ७ १ के अन्त में ।

रहें और जो असंवद्ध प्रलाप अर्थात् तीसरे परमेश्वर का प्रसंग लाना है सो व्यर्थ ही है। जैसे आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे" किसी ने किसी से पूछा कि आम्र के वृक्ष कौन से हैं उसने उसे उत्तर दिया कि यह कचनार के वृक्ष हैं, क्या ऐसी ही यह बात नहीं है? किसी ने ईश्वर का प्रश्न पूछा ही नहीं और न कोई परस्पर सत्कार के व्यवहार में ईश्वर प्रसंग है और कह देना कि (परमात्मा सारे उत्कर्षों के साथ विराजमान है) यह वचन हठयुक्त का नहीं है तो और क्या है? हां, जहां परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना उपदेश और व्याख्या करने का प्रसंग हो तो वहां परमात्मा के नाम का उच्चारण करना सब को उचित है। जैसा राम राम, जय गोपाल, जय श्री कृष्णादि शब्दों से परस्पर व्यवहार करना यह हठ दुराग्रह से सम्प्रदाई लोगों ने वेदादि शास्त्रविरुद्ध मनमानी व्यर्थ कल्पना की है. उसी प्रकार से मुंशी इन्द्रमणि जी वा ला० जगन्नाथदास जी की युक्ति और प्रमाण से शून्य यह कल्पना दृष्टि पड़ती है। इन विषयों में मुंशी इन्द्रमणि जी और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का सम्वाद भी पूर्व समय में हो चुका है। परन्तु मुंशी जी कब मानते हैं। विशेष क्या लिखें, शोक है कि लाला जगन्नाथदास की करतूतों को विचार अब मुझको यह कहना पड़ा कि इन दोनों महात्माओं[1] के प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें वे आर्य्य समाज मेरठ लाला रामसरनदासादि भद्र पुरुषों से पूछ देखें कि एक अन्य मार्गियों के विवाद विषय की शान्ति कारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया, जिस को सब जानकार आर्य्य लोग जानते हैं। सत्य यह बात चली आती है कि "सब पापों का पाप लोभ है[2]" जो कोई उसी तृष्णारूपी नदी प्रवाह में बहे जाते हैं उन में पवित्र वेदोक्त आर्य्य धर्म्म की स्थिरता होनी कठिन है। अब जो मुन्शी इन्द्रमणि जी और उनके चेले लाला जगन्नाथदास, स्वामी जी और भद्र आर्य्यों को व्यर्थ निन्दा करें तो इसमें क्या आश्चर्य है? पाठक गण! ठीक भी तो है जब जैसे में वैसा मिले फिर क्या न्यूनता रहै। जैसे दावानल अग्नि का सहायक वायु होता है वैसे ही इन के श्री मुन्शी बखतावरसिंह जी सहायकारी बन बैठे। अब तो जितनी निन्दा आर्य्य लोगों और स्वामी की करें उतनी ही थोड़ी।

---

[1] अर्थात् मुंशी इन्द्रमणि और लाला जगन्नाथदास। 'महात्माओं' यह व्यङ्ग्यात्मक वचन है।

[2] लोभश्चेद्गुणेन किम्? भर्तृहरि नीतिशतक

चलो भाई यह भी अच्छी मंडली जुड़ी, महाशयो ! जब तक तुम्हारा पेट न भरे तब तक निन्दा करने में कसर न रखना, क्योंकि यह अवसर अच्छा मिला है। जैसे किसी कवि ने यह श्लोक कहा है सो बहुत ठीक है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु यगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलंति पदं न धीराः ॥१॥[1]

चाहै कोई अपने मतलब की नीति में चतुर निन्दा करे वा स्तुति करै, चाहै लक्ष्मी प्राप्त हो वा चलो जाओ, चाहे मरण आज हो हो वा वर्षान्तरों में, परन्तु जो धोर पुरुष महाशय महात्मा आप्तजन हैं वे धर्म्म मार्ग से एक पाद भी विरुद्ध अर्थात् अधर्म मार्ग में नहीं चलते हैं ॥ १ ॥

सभ्य गणो ! यह तो आर्यों की शुभेक्षा का कारण हैं, परन्तु जो प्रथम उत्तमाचरण करके पश्चात् गड़बड़ा जायं वे ही तो आर्य्यावर्त के हानिकारक होते हैं। परन्तु यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि "**श्रेयांसि बहुविघ्नानि**"[2] जो इस सनातन वेदोक्त सत्य धर्म का आचरण करते हैं उस में अनेक विघ्न क्यों न होय, तदपि इस सत्यमार्ग से चलायमान न होना चाहिये। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर परमात्मा अपनी कृपा दृष्टि से इन विघ्नों को हम से और हम को इन से सर्वदा दूर रख कर हम से आर्यावर्त की उन्नति कराने में सहायक रहै। इस थोड़े से लेख से सज्जन पुरुष बहुत सा जान लेंगे। अलमतिविरतरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥

एक उचित वक्ता

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५६३] **पत्र (३७८)**

ओ३म्[3]

श्री स्वस्ति श्री परोपकारप्रिय सद्गुणविभूषित महाशय बाबू रूपसिंहाभिधेयेषु रामानन्द ब्रह्मचारिणो शतधाऽऽशिषो भूयासुस्तमां, शमिहास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे।

---

[1]. यह भर्तृहरिकृत नीतिशतक का वचन है

[2]. वह सुभाषित वचन है।

[3]. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

महाशय ! नमस्ते । आप का शुभ समाचारों से अलंकृत अनुग्रह पत्र (मालवा नवाब का जावरा) में सुशोभित हुआ । अवलोकन कर अतीव हर्षित हुआ । परमात्मा से सर्वदा यही प्रार्थना करता हूं कि आप महाशय पुरुषों को बुद्धि को परोपकार के करने में निरन्तर नियुक्त किया करे, जिस से पुनः यह आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वदशा को सम्प्राप्त होकर अपने मनुष्य-रूपी वृक्ष में धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी चतुष्टय फलों से संयुक्त होकर परमानन्द भोगे । धन्य है आप के पिता जी को जिन महाशय की ऐसी विशाल बुद्धि कि जो इस महोपकारक गोरक्षार्थ विषय को श्रवण कर अति हर्षित हुए और आप को उत्साही किया । परमात्मा करे ऐसे ही पिता सब के होवें । और आप मेरा मान्य पूर्वक आशीर्वाद भी विदित कीजियेगा । मैं नाम से विदित नहीं हूं, परन्तु उनकी ऐसी योग्यता के जानने से मुझ को अति आनन्द हुआ और ऐसे परोपकार प्रियों के नाम से विदित होने की भी चेष्टा हुई । आशा है कि आप विदित कर देंगे । दूसरा यह हर्ष हुआ कि अब आप का उद्वाह होने वाला है और आपकी योग्यता भी हुई अत्युत्तम है आप प्रसन्नता के साथ अपना विवाह कीजिये । आप बहुत सारी बातें जानते भी हैं । तथापि मेरा मन नहीं मानता, इस कारण लिखता हूं । देखिये मूल कारण आर्य्य[ा]वर्त्त के सुधार होने का उचित समय पर विवाह का होना और सत्योपदेश । गृहाश्रम केवल भोग विलास के अर्थ नहीं, किन्तु संसार की उन्नति के अर्थ है । अर्थात् संस्कारविधि के अनुसार विवाहाऽनन्तर उचित समय पर क्रिया करना । इस आश्रम का मुख्य फल यही है कि सुन्दर, धीर, वीर, विद्यादि शुभ गुण युक्त पुत्र रूपी फल की प्राप्ति होना । विना विधि के सांगोपांग कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता । इसलिये उचित समय पर जो आप को जिज्ञासा हो पत्र द्वारा विदित करना । मैं (श्रीयुत परम पूज्य गुरु जी) से पूछ कर आप को विदित करूंगा, वैसा ही करना होगा । आप विवाह किये पश्चात् इस महोपकारार्थ पंजाब हाथा और काश्मीर आदि राजधानियों में जा गोरक्षा के विषय में (गोकरुणानिधि) के अनुसार व्याख्यान देकर सही करावें तो क्या ही अत्युत्तम बात होवे कि जिसकी उपमा भी मैं देने में असमर्थ हूं । परन्तु इतना तो कह सकना हूं कि थोड़े ही श्रम से महापुण्य का संचय कर अपने मनुष्य जन्म को सफल कर लोगे । जो तुम ने सही करा के भेजी थी वह हमारे पास मुम्बई में पहुँची अब जिन जिन मनुष्यों की सही कराई जाय, वह प्रायः देवनागरी के अक्षरों में होनी चाहिये । और स्पष्ट अक्षर जिससे स्पष्टता से नाम बंच

जावे, परन्तु जो पुरुष अप[ना] नाम किसी विद्या में न लिख सके उसका नाम सही कराने वाला पुरुष उसकी सम्मति से लिख दे और एक बही के समान पत्रों को बना कर उस में सब गोरक्षाप्रिय मनुष्यों की सही करानी। पश्चात् उस ग्राम वा नगर में जो माननीय प्रतिष्ठित पुरुष हो उस से हस्ता[क्ष]र गवाही के समान सही कराने के पत्र पर इस प्रका[र क]राना कि (हमारे यहां इतने मनुष्यों की सही हुई। पश्चात् अपना नाम लिख दे) यह रीति पीछे से श्री स्वामी जी ने प्रकट की है। इस प्रकार के लेख से किन्ही को राजसम्बन्धी भय न होगा। यह डरपुकनों के लिए है। मुख्य तो विज्ञापनपत्र[1] के अनुसार सही कराना। गोरक्षार्थ आजकल भारत मित्र कलकत्ता ने पत्र छपवा के सही करा रहा है। मुंबई के लोगों ने भी बहुत सी सही कर ली और बराबर कराते जाते हैं और गुजरात आदि देशों में भी सही होती है। और स्वामी [जी] के पास मेवाड़ महाराजाधिराज नाहरसिंह जी ने ४०००(०) इतने हजार मनुष्यों की ओर से सही कर के भेज दी है। और मध्य देश में भी बहुत सी सही हो गई। प्रति दिवस होती जाती है। इस **महोपकारक काम में डाक वालों ने बुद्धता बहुत सी की हैं**[2]। क्योंकि बहुत से स्थानों को पत्र भेजे, परन्तु उन के पत्र आने से यह विदित हुआ कि उनके पास नहीं पहुंचे। देखिये आश्चर्य की बात है (लाला रामशरणदास मेरठ के पास) ३०० पत्र **रजिष्टरी करा के भेजे थे इतने पर भी उनके पास न पहुंचे, पुनः उनके पास ५० पत्र भेजे हैं।**[3] **परमात्मा कृपा करे कि ऐसे ऐसे विघ्नकारी** राक्षसों से बचा कर इस महोपकारक कार्य की सिद्धि करने में आर्य भाईयों को सहायता देकर इस कार्य की सिद्धि करावे। किमधिकलेखेन परोपकारप्रियेषु। आज वा कल परम **गुरु जी उदयपुर पधारेंगे।**

ता० २४ जुलाई १८८२ ई०[4]।

रामानन्द ब्रह्मचारी
मालवा जावरा नवाब का

—:o:—

---

[1] पूर्ण संख्या ५०२ पृष्ठ ५८०।

[2] इस बात का संकेत कई पत्रों में है। बुद्धिमान् पाठकों को इस का रहस्य समझना चाहिये।

[3] इतना काले टाइप में छपा पाठ पत्र में काट दिया गया है।

[4] प्रथम श्रावण शुक्ल ९, सोम, सं० १९३९।

[पूर्ण संख्या ५६४] पत्र (३७९)

(ओ३म्)

लाला कालीचरणदास रामचरण जी आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि प्रथम तो तुम लिखते थे कि शीघ्र (आर्य प्रश्नोत्तरी) के विस्तारपूर्वक प्रत्युतर लिख के भेज दीजिये। जब भेज दिये तो अब कहते हो कि कानून बनकर आवे तो छापें। छपाने में विलम्ब करना अच्छा नहीं। जो उसमें कोई शब्द निकालने योग्य हो निकाल दीजिये। परन्तु जो जो उनके अभिप्राय के शब्द हैं उनमें कुछ न्यूनाधिक न करना॥

कल हम (मालवा नवाब के जावरा से चितोड़गढ़) में आ पहुंचे। यहां के हाकिम ठाकर जगन्नाथ जी ने हमारे लिये यथायोग्य प्रवन्ध किया है। **अब दो एक दिन में उदयपुर जायंगे।**

अनुमान है कि चातुर्मास वहीं होगा[2]॥

ता० २६ जुलाई सन् १८८२ ई०[3]।

[दयानन्द सरस्वती] (चितोड़गढ़ मेवाड़)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५६५] पत्र-सूचना (६१)

[राजराणा फतेहसिंह जी, देलवाड़ा][4]

कुशल क्षेम का समाचार पूछा।

[द्वितीय] श्रावण कृष्ण १२ [सं० १९३९][5]

---

[1] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। म० मामराज जी ने जनवरी सन् १९२७ में प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १९६ पर भी छपा है।

[2] यह अन्तिम पंक्ति पं० लेखराम संपा० उर्दू जीवन चरित पृष्ठ ५५६ (हिन्दी सं० पृष्ठ ५९६) पर उद्धृत है। हम ने मूल पत्र से इसे छापा है।

[3] प्रथम श्रावण शुक्ल ११ बुध, सं० १९३९।

[4] इस पत्र की सूचना राजराणा फतेहसिंह के सं० १९३९ अधिक श्रावण सुदी ४ के पत्र से मिलती है। राजराणा फतेहसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें। ये राजराणा महाराणा सज्जनसिंह के पश्चात् उदयपुर की गद्दी पर बैठे थे।

[5] १० अगस्त १८८२। तिथि का उल्लेख राजराणा के पत्र में है।

[पूर्ण संख्या ५६६] पत्र-सूचना (६२)

[मुन्नालाल जी, मन्त्री आ० स० अजमेर]
आर्य प्रश्नोत्तरी के उत्तर देशहितैषी में छापने के विषय में[1]
१४ अगस्त १८८२[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६७] पत्र (३८०)

ओ३म्

लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो[3]।

विदित हो कि आज ४ वा ५ दिन व्यतीत हुए हैं, हम उदयपुर में आके नौलखा बाग के महल में ठहरे हैं[4]। यहां सब प्रकार आनंद मंगल है। बहुत दिन हो गये हैं, अभी तक "आर्य प्रश्नोत्तरी" के उत्तर नहीं छपवाये[5] क्या कारण है। जो प्रेस एक्ट की शंका हो तो देखत पत्र के पण्डित मुन्नालाल मन्त्री आर्यसमाज अजमेर के पास भेज दीजिये। वे छाप देंगे। इस विषय में पत्र भी आज उनके पास भेज दिया है। जो छप चुकी हो तो शीघ्र विदित करो।

और गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी। इस का भी उत्तर लिखना। इस समय (आर्य भाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मोमरियल छपे हैं[5] सो शीघ्र भेजना। और आप लोग भी जहां तक हो सके गोरक्षार्थ

---

[1] इस पत्र की सूचना अगले पूर्ण संख्या ५६७ के पत्र में है।

[2] द्वितीय श्रावण शुक्ल १ सोम, सं० १९३९।

[3] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। जनवरी सन् १९२७ में म० मामराज जी ने उसकी प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १९७ पर भी छपा है।

[4] पत्र १४ अगस्त १८८२ का है, अतः स्वामी जी लगभग १० अगस्त को उदयपुर पहुंचे होंगे।

[5] ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से आर्य भाषा को राजकार्य में प्रवृत्त कराने के हेतु अनेक स्थानों से मेमोरियल भेजे गये थे। उन में से नमूने के रूप में आर्यसमाज मेरठ द्वारा प्रेषित मेमोरियल तथा कानपुर से प्रेषित निवेदन की प्रतिलिपि हम परिशिष्ट ४ में छाप रहे हैं।

सही और आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये। और फर्रुखाबाद के आर्य्यसमाज तथा पाठशाला का जैसा वर्तमान हो लिखना। और हम भी जो कुछ विशेष यहां का समाचार लिखने योग्य होगा लिखेंगे।

१४ अगस्त सन् १८८२ ई०[1]   [दयानन्द सरस्वती] (उदयपुर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६८]   **पत्र (३८१)**

ओ३म्[2]

स्वस्ति श्रीमद्वर-सद्गुण-समूहालंकृतेभ्यो राजराजाऽधि[3]-श्रीयुतनाहरसिंहवर्म्मभ्यो दयानन्दसरस्वती-स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमां शमिहास्ति तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे। उदन्नु[4] नृगिरा[5] वेदितव्यः। विदित हो कि अब हम परमात्मा की कृपा से उदयपुर में पहुंच कर नौलखा बाग के राजमन्दिर में निवाश किया है। और एक दिन श्रीयुत आर्य्यकुल-दिवाकर भी सुशोभित हुए थे। कोई एक दो कला पर्य्यन्त अच्छे-अच्छे विषयों में चर्चा भी हुई थी। और पश्चात् जो जो लिखने योग्य वर्तमान होगा वह श्रीमन् के निवेदन किया जावेगा।

श्रीमान् अपने कुशल समाचारों को विदित किया करें। प्रथम तो श्रीमान् महाशयों ने करुणा पूर्वक ४०००० हजार पुरुषों की ओर से हस्ताक्षर कर पत्र मम्बापुरी में हमारे पास भेजा था, परन्तु अब इस विषय में श्रीमानों के प्रबन्ध से कितनी सही हुई है। जो भवान् सदृश महाशय इन महोपकारक माता पिता के समान संसार के रक्षक करुणापात्र गायादि पशुओं के दुःख निवारणार्थ प्रयत्न किया है वा करते जाते हैं, वह अवश्य

---

[1] द्वितीय श्रावण शु० १ सोम, सं० १९३९।

[2] मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

[3] राजराजेषु अधि। शौण्डादिगण (काशिका २।१।४०) में 'अधि' का पाठ होने से सप्तमी समास जानना चाहिये।

[4] 'उदन्नु'—उदं नु। वद धातु से घञर्थं में 'क' प्रत्यय। कित् होने से सम्प्रसारण—उद=वार्ता। अथवा 'उदन्तन्नु' पाठ होना चाहिये। उदन्त=वार्ता का वाची है।

[5] नृगिरा=सामान्य जन भाषा।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

सफल होकर इस आर्य्यावर्त्त की औषधि रूप होकर सब आर्यों के हृदय की अग्नि को शान्त करेगा।

किमधिकलेखेन श्रीमद्राजाधिराजबुद्धिमद्विचक्षरोषु अलमिति ॥

श्रावण[1] शुक्ल १ मंगल संवत् १९३९[2]। (उदयपुर)

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५६९] पत्र (३८२)

ओ३म्[3]

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि हम मुम्बई से चलकर ठहरते ठहराते अब उदयपुर में पहुंच कर नौलखा बाग के राजमहल में निवास किया है। एक दिन श्रीयुत आर्य्यकुलदिवाकर श्री महाराणा जी पधारे थे। अच्छे विषयों में वार्त्तालाप हुआ। और राजपुरुष प्रतिदिन आया जाया करते हैं। यथा-योग्य प्रश्नोत्तर भी होते हैं। जो आगे विशेष वर्तमान लिखने योग्य होगा विदित करेंगे। आशा है कि आप अपना कुशल क्षेम का भी समाचार लिखेंगे।

बड़े आश्चर्य का विषय है कि पुकारते तो हैं हमारी उन्नति हो, परन्तु उन्नतिकारक विषय जब आ पड़ता है तब ऐसे निरुत्साही और भयातुर होकर चुपचाप बैठे रहते हैं। क्या ऐसी ही बातों से उन्नति होने कि आशा करते हैं। देखिये लाला कालीचरण जी ने प्रथम चिट्ठी पर चिट्ठी[4] भेजीं और बड़ी शीघ्रता के साथ लिखा कि (मुरादाबाद वाले जगन्नाथ निर्मित

---

[1] यह द्वितीय श्रावण है। शुक्ल १ को सोमवार था। क्या प्रतिलिपि करने वाले ने २ को १ तो नहीं पढ़ा। [2] १५ अगस्त १८८२।

[3] पहले हम ने इस पत्र का लगभग आधा उत्तरभाग बंगाली बाबू श्री देवेन्द्र-नाथ के संग्रह से श्री पं० घासीराम जी की कृपा से म० मामराज द्वारा अक्टूबर १९२६ में प्राप्त किया था। फिर ला० मामराज फरुखाबाद से सन् १९२७ में मूल पत्र की प्रतिलिपि लाये। मूल पत्र फरुखाबाद आर्यसमाज में सुरक्षित है। फरुखा-बाद का इतिहास पृ० २१६ से २१८ पर किंचित शब्दभेद के साथ छपा है।

[4] ये चिट्ठियां उपलब्ध नहीं हुईं।

प्रश्नोत्तरी के) विस्तारपूर्वक उत्तर प्रमाणों के साथ भेजिये[1]। जब हमने वेदभाष्य के काम का छोड़ प्रमाण सहित उत्तर लिख रजष्टरी कराके भेज दिये और उसके साथ एक पत्र भी भेजा कि शीघ्र छपवा कर प्रसिद्ध कर देओ[2]। उस शीघ्रता का फल यह हुआ कि अब दो महीने व्यतीत हुए एक अक्षर भी नहीं छपवाया। लिखा कि प्रा[3] एकट होने वाला है। उसको देख पश्चात् छपवावेंगे। यह इनको केवल किसी के बहकाने से भ्रम मात्र हुआ है। क्योंकि जो ऐसा होता तो भारतमित्रादि पत्रों में अवश्य छपता। अथवा अन्य मनुष्यों के द्वारा भी सुनने में आता। सो केवल प्रश[3] एकट के भ्रम होने से डर गये हैं। भला ऐसे ऐसे सद्यः कर्त्तव्य कर्मों के करने में भ्रम मात्र से डरकर निरुत्साही हो जाना अवनति का कारण नहीं तो क्या है। इसलिये––

आप उस प्रश्नोत्तरी के उत्तरों को ले के पण्डित मुन्नालाल मन्त्री आर्य्यसमाज अजमेर के पास देखत पत्र के भेज दीजिये। अथवा जो अगले भारतसुदशाप्रवर्तक के अंक में छपने का प्रारम्भ हो गया हो तो कुछ चिन्ता नहीं। दूसरी अति शोक करने की यह बात है कि आज कल सर्वत्र अपनी आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्ति होने के अर्थ-(भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है) उसमें पंजाब हाथा आदि से मेमोरीयल भेजे गये हैं। परन्तु मध्यप्रान्त, फर्रुखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये। ऐसा ज्ञात हुआ है। और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था। उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये। और हम को लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिये। अब कहिये हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं। जो यही एक काम हो तो कुछ चिन्ता नहीं। इस लिये आप को अति उचित है कि मध्यदेश में सर्वत्र पत्र भेज कर बनारस आदि स्थानों से और जहां जहां परिचय हो सब नगर वा ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं। और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की नीव पड़ जावेगी। आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। इसलिये विशेष लिखना आव-

---

[1]. ये चिट्ठियां उपलब्ध नहीं हुईं।

[2]. देखो पत्र पूर्ण संख्या ५६०।

[3]. अर्थात् प्रेस एक्ट।

श्यक नहीं । **और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है ।** इस विषय में ध्यान देना अवश्य है । **बड़े हर्ष के ये दोनों विषय प्रकाशित हुए हैं ।** इस लिये जहां लों हो सके तन मन धन से सब आर्य्यों को अति उचित है इन दोनों कार्यों के सिद्ध करने में प्रयत्न करें । वारंवार ऐसा निश्चय होता है कि ये दो सौभाग्यकारक अंकुर आर्यों के कल्याणार्थ उगे हैं । अब हाथ पसार न लेवे तो इस से दौभग्यि [की] दूसरी क्या बात होगो । अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु । लाला निर्भयराम से हमारा आशीर्वाद कहियेगा ।

शुद्ध श्रावण शुक्ल ३ बृहस्पति सम्वत् १९३९[1] ।

[दयानन्द सरस्वती] (उदयपुर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७०] पत्र (३८३)

(ओ३म्)

लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो[2] ।

विदित रहो कि पत्र तुम्हारा आया । समाचार मालूम हुआ । **तुम ने 'आर्य प्रश्नोत्तरी' के उत्तर अजमेर पण्डित मुन्नालाल जी के पास भेज दिये । अच्छा किया । अब वे शीघ्र छाप डालेंगे ।** विद्यार्थियों को निम्न लेखानुसार ग्रन्थ पढ़ना पढ़ाना चाहिये । **कि प्रथम क्रम से वेदाङ्गप्रकाश पढ़वाना ।** फिर वैदिक निघण्टु । फिर पिङ्गल सूत्र । पश्चात् काव्य की रीति से मनुस्मृति । इत्यादि ग्रन्थ जब पढ़ चुकें तब आगे पूछना । और हम यहां आनन्द मंगल

---

१. शुद्ध श्रावण शुक्ल अर्थात् द्वितीय श्रावण का शुक्ल पक्ष । उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गों की यह रीति है कि जिस वर्ष जो मास अधिक होता है उसे शुद्ध मास के कृष्ण पक्ष के बाद में गिनते हैं । अर्थात् प्रथम शुद्ध मास का कृष्ण पक्ष, तदनन्तर अधिक मास का शुक्ल पक्ष, तदनन्तर अधिक मास का कृष्ण पक्ष और तदनन्तर शुद्ध मास का शुक्ल पक्ष । तदनुसार १७ अगस्त सं० १८८२ को यह पत्र लिखा गया ।

२. मूल पत्र आर्य स० फरुखाबाद में सुरक्षित है । दिसम्बर सन् १९२६ में म० मामराज ने इसकी प्रतिलिपि की । फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०० पर भी छपा है ।

में हैं। आशा है कि परमेश्वर की कृपा से तुम भी कुशल युक्त होगे । सब से हमारा आशीर्वाद कह देना। द्वितीय श्रावण शुदी १० गुरु संवत् १९३९।

[दयानन्द सरस्वती][1]
[राज मेवाड़ उदयपुर]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७१]   पत्र (३८४)

ओ३म्[2]

श्रीयुत पण्डित गोपालराव जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्र के सहित आप का कुशल पत्र पहुंचा। पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्ष हुआ । यह आप ने सर्वोपकारक धन्यवादार्ह पुरुषार्थ किया। परमात्मा दिन प्रति ऐसे ही कर्मों के सिद्ध करने में उत्साही करे। आशा है कि **आर्यभाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रकटता करेंगे**। हम उदयपुर पहुंच कर नौलखा बाग के राज महलों में ठहरे हैं। **एक बार श्रीयुत आर्यकुल दिवाकर श्री महाराणा साहब पधारे। परस्पर प्रेम प्रीति के साथ समागम हुआ। जैसा उन का नाम है वैसे ही गुण** भी देखे। इत्यादि[3] । द्वितीय श्रावण [शुदी] १२ शनि सम्वत् १९३९[4]।

(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७२]   पत्र-सूचना (६३)

[श्री राव बहादुरसिंह जी मसूदा।
द्वितीक श्रावण शुदी १२[4] उदयपुर][5]।

---

[1] ता० २४ अगस्त १८८२।

[2] दयानन्द दिग्विजयार्क तृतीय खण्ड पृष्ठ ७९ से उद्धृत । फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ २०० पर भी छपा है।

[3] पत्र पूर्ण संख्या ५६८ के अनुसार १५ अगस्त तक महाराणा जी एक बार ही आए। और पुनः २६ तक नहीं मिले। २९ को मिले, देखो पत्र पूर्ण संख्या ५७७।

[4] २६ अगस्त १८८२।

[5] इस पत्र का संकेत महाराज बहादुरसिंह (मसूदा) के सं० १९३९ भाद्र सुदि

[पूर्ण संख्या ५७३] पत्र-सूचना (६४)

[छगनलाल मसूदा]।

……महाराज गजसिंह जी और उनके भाई भी व्याख्यान में आये।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७४] पत्र-सारांश (३८५)

[भीमसेन]

हम अपने पास तुम को २२) नकद और अन्न वस्त्र भी दिया करेंगे। और छुट्टी में भी उतना ही मासिक दे दिया जावेगा[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७५] पारसल--सूचना (३६)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

ऋग्वेदभाष्य के दो पृष्ठ और यजुर्वेदभाष्य के पत्रे।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७६] पारसल-सूचना(३७)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

---

६ सोमवार (१८ सितम्बर १८८२) के पत्र में मिलता है। महाराजा बहादुरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[1] राव बहादुरसिंह जी मसूदा ने सं० १९३९ भाद्र सुदि ६ सोमवार (१८ सितम्बर १८८२) के अपने पत्र में पं० छगनलाल मसूदा के नाम आए पत्र में से यह पंक्ति लिखी है। इस पत्र की तिथि पिछले पत्र की तिथि ही अर्थात् द्वितीय श्रावण सुदी १२ होगी।

[2] यह सारांश पूर्ण संख्या ५७७ में निर्दिष्ट है। तिथि अज्ञात है।

[3] इस पारसल की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ५७७ के पत्र से मिलती है। तिथि अज्ञात है। पत्र में 'पहुंचे होंगे' लेख से विदित होता है कि पत्र लिखने की भाद्र वदी १, सं० १९३९(२९ अगस्त १८८२)तिथि से ४-५ दिन पूर्व तो अवश्य भेजे होंगे।

सत्यार्थप्रकाश भूमिका पृष्ठ ५, तथा प्रथम समुल्लास के ३२ पृष्ठ[1]।
भाद्र   द१, मंगल, सं. १९३९[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७७]   पत्र (३८६) ②

प्रबन्ध-कर्त्ता मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[3]!

विदित हो कि ऋग्वेद के दो पृष्ठ हमने भेज दिये, पहुंचे होंगे । और यजुर्वेद के भी भेजे हैं। **आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध कर के ५ पृष्ठ भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास से भेजे हैं,** पहुँचेगे। **भीमसेन के पास हम ने पत्र भेज दिया** और यह लिख दिया कि हम अपने पास तुझको २२) नगद और अन्न वस्त्र भी दिया करेंगे। और छुट्टी में भी उतना ही मासिक दे दिया जायगा। उसका स्वभाव है कि जब तक रुपये पास रहेंगे तब तक ऐसा ही करेगा। तुम भी उस को पत्र लिख देना, शीघ्र चला आवे।

वहां क्या ज्वालादत्त एक फार्म के लिये भी तैयार नहीं कर सकता। वह बड़ा लिखने वाला है। ये दोनों एक से ही हैं। जैसा भूतनाथ वैसा प्रेतनाथ। इन से चतुराई के साथ काम लेना। ये काम-चोर हैं।

निम्नलिखित पुस्तकें पहुंची

भूमिका	५	स्त्रैणास्ता	१
चांदापुर	२४	वर्णो	२
संध्या	५०	गोकरु०	५०
व्यवहा०	१०	भूमि०	२५
संस्कृत	४	अनु०	२५
संधि	१	आर्यो०	४९

---

[1] इस पारसल की सूचना भी ऋ० द० के पूर्ण संख्या ५७७ के पत्र से ही मिलती है।

[2] यह तिथि पूर्ण संख्या ५७७ के पत्र में 'आज' पद के अनुसार दी है। २९ अगस्त १८८२।

[3] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है। पहली तीन पंक्तियां Works of Maharshi Dayanand, पृ० १२९ पर भी छपी हैं।

नामि	१	शास्त्रा०[1]	२५
कारकी	१	गोतम०[2]	२५
सामासि	१		

आज श्रीयुत महाराणा जी इस वाग में प्रातःकाल से पधारे हैं। अब सांयकल से रात्री के समय में वार्तालाप होगा। जो लिखने योग्य समाचार होगा सो लिखेंगे। यहां हम आनन्द मंगल में हैं। तुम वहां सब से अच्छी प्रकार काम लेना। आशा है तुम अच्छे प्रकार प्रबन्ध करोगे। और यन्त्रालयस्थों से आशीर्वाद कह देना।

भाद्र वदी १ मंगल सम्वत् १९३९[3]। [दयानन्द सरस्वती]
(राज मेवाड़ उदयपुर)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७८] पत्र (३८७)

⑦ ओ३म्[4]

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि ३ सप्तंवर का लिखा हुआ अति लम्बायमान पत्र तुम्हारा पहुंचा[5]। पत्रस्थ समाचार मालूम हुये। टैपके विषय में हमने तुमको प्रथम ही लिखा था[6] कि मंगवालो। परन्तु तुम्हारी इस प्रकार की सम्मति हुई थी कि यहां ढलवा लेंगे। अब तुम्हारी सम्मति यह है कि यहां नहीं बन सकते अस्तु। अब तुम मुम्बई और कलकत्ता से पत्र भेज कर ठीक ठीक भाव का निश्चय कर लो कि मुम्बई और कलकत्ते से कितना फेर पड़ता है। और जब मंगवाओ तब बहुत विचार से मंगवाना अर्थात् बाबू विशेश्वरसिंह पंडित देवीप्रसाद और कम्पोजीटरों से पूछ और आप स्वयं देख भार कर। फिर जिस जिस प्रकार के जो जो अक्षर वा मात्रा और जिन अक्षरों का अपने यहां अधिक काम पड़ता है उन उन को मंगवा लेना। और जो कल-

---

[1] सम्भवतः 'शास्त्रार्थ जालन्धर'। देखो पृष्ठ ५६६ (पं० १६) पर निर्दिष्ट 'जालन्धर की बहस'।

[2] गोतम अहल्या की कथा। इसके विषय में 'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ १२८ देखें। [3] २९ अगस्त १८८२।

[4] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[5] यह आवश्यक पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ

[6] ऋषि दयानन्द का यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

कत्ते से मंगवाये जायेंगे तो अच्छा होगा । क्योंकि वहां से टैप मंगवाने में फूण्डरी के सांचे भी बरावर काम में आवेंगे । और वहीं के सांचे अपने यन्त्रालय में हैं भी । इस विषय में पंडित जी की भी सम्मति कलकत्ते ही से मंगवाने की थी । प्रथम कलकत्ते से टैप मंगवाये थे । सो हम को खबर है कि कोई ४०) रुपये और कोई ५०) रुपये और कोई कोई ६०) रुपये [मन] के हिसाव से आये थे । सो उन में से अच्छे अच्छे तो बखतावर चुरा ले गया । क्योंकि पीछे तोलने से ५ऽ मन टैप घटा था ।

अब सत्यार्थप्रकाश छपेगा । इस लिये भाषा के अक्षर अधिक मंगवाना चाहिये । सत्यार्थप्रकाश में संस्कृत पाठ के अक्षर भाषा से कुछ थोड़े उन्नीस बीस होने चाहिये । आजकल जो मूलमन्त्रों वा पदों में अक्षर लगते हैं वे बिलकुल कुढंगे हैं । इस लिये अब दो तीन महीने का तो वेदभाष्य छपा रखा ही है । तव तक आख्यातिक छपवाओ । क्योंकि आगे वेदभाष्य उत्तम अक्षरों में छपना चाहिये । और जो तुम ने टैप ढालने वाले के विषय में लिखा, ठीक है । वह दश पांच मन टैप नहीं ढाल सकता । किन्तु अटके समय उस का सहायक मात्र है कि जिस से काम बन्ध न रहे । विशेष अक्षर वह तैयार नहीं कर सकता । और कितना सुर्मा पड़ना चाहिये यह भी उस को ठीक ठीक ज्ञान नहीं है । मुम्वई और कलकत्ते के अक्षरों में कुछ बहुत भेद तो नहीं है । किन्तु मुम्बई के अक्षरों की ढाल और प्रकार की है और कलकत्ते को और प्रकार की । परन्तु कलकत्ते से मंगवाने में मुम्बई से दूना नहीं तो सवाया वा ड्योढा दाम अवश्य लगेगा । आगे जैसे तुम्हारी सम्मति हो । और जहां से मंगवाने में सोबिता समझो वहां से मंगवाना उचित है । परन्तु इस बात का प्रबन्ध शीघ्र करो । अपने यन्त्रालय के अक्षरों को चलते दो वर्ष हो गये हैं । इस लिये उन में अब कुछ फेर पड़ गया है । और जिन टैपों में आख्यातिक के कम्पोज में कम पड़ते हों उन को जल्दी ढलवा लो । आर्यपत्र लाहौर और देशहितैषी अजमेर जिस प्रकार का नोटिस वेदभाष्य के टाटल पेज पर छपने के लिये भेजें, वैसा एक बार छाप देना ।[1] आगे सव काम बुद्धिमत्ता के साथ करना, औरों से करवाना ।

ता० ८ सिप्तंबर सन् १८८२ ईस्वी [दयानन्द सरस्वती]
भाद्र कृष्णा ११ शुक्रवार सं० १९३९ (उदयपुर राज मेवाड़)

---

[1] आर्य पत्र लाहौर का विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य ४२-४३ तथा ४८-४९ के

[पूर्ण संख्या ५७९] पत्र (३८८)

प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदान आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि ता० ४ सप्तम्बर लिखा हुआ पत्र तुम्हारा पहुंचा। समाचार ज्ञात हुये।

टैप के विषय में एक पत्र आज भेज चुके[2]। उसके अनुसार प्रबन्ध करना।

जो कहीं पद छूट जाता है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है। हम प्रायः इस बात में ध्यान नहीं देते, क्योंकि यह सहज बात है। अच्छा जहां कहीं रह जाया करे तुम देख लिया करो कि किस-किस मंत्र में क्या-क्या छूटा। और यहां लिखके भेज दिया करो[3]।

ज्वालादत्त चाहें रात दिन काम करे, परन्तु तुम देख लिया करो कि कि कितना काम करता है कितना नहीं। इस को व्याकरण बनाने में देर इस लिये लगती है कि उस को व्याकरण का अभ्यास कम है। तभी बहुत सी पुस्तकें रखनी पड़ती हैं—जो इस से आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। यहां भीमसेन आ जायगा, तब उससे बनवा कर शुद्ध करके भेज देंगे।

जिन अक्षरों में वेदभाष्य की भाषा छपती है उसमें भाषा और जिन अक्षरों में पदान्वय छपता है उन में संस्कृत का पाठ छपना चाहिये[4]। और दो हज़ार कापी छपनी चाहियें। जहां जहां उचित समझो वहां-वहां नोट देदेना। सत्यार्थप्रकाश अच्छे कागज़ और टैप में छपवाना। जो इन अक्षरों से पुस्तक न बिगड़े तो छापने का आरम्भ करदो। और मुम्बई कलकत्ते के

के सम्मिलित अङ्कों में दो बार छपा है(द्र० पूर्ण संख्या ५१४ पृष्ठ ५४६ की टि० ३। देशहितैषी का विज्ञापन भी ऋग्वेद भाष्य के ४२-४३ सम्मिलित (आश्विन कृष्ण १९३९ में छपा है।

[1] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[2] सम्भव है पूर्ण संख्या ५७८ (८ सितम्बर) वाला पत्र ही ९ सितम्बर को इस पत्र से पूर्व भेजा गया, क्योंकि उस में टाइप के विषय में विस्तार से लिखा है।

[3] यहां तक का पाठ आर्यधर्मेन्द्र-जीवन तृतीय संस्करण के पृ० ३७० पर है।

[4] यह निर्देश सत्यार्थप्रकाश छापने के लिये है।

भाव ताउ का शीघ्र निश्चय करके जहां सोविता पड़े, माल अच्छा मिले और दाम कम लगे, वहां से मंगवा लेना। टैप के विना शीघ्र काम न चल सकेगा।

यहां कोई पांच सात बात चलाई हैं और स्वीकार भी करली है। परन्तु उनमें से अभी कोई सिद्ध नहीं हुई। इस लिये नहीं लिखा। जब उनमें से कोई भी बात सिद्ध हो जायगी, वह चाहें गुप्त हो वा प्रगट, परन्तु तुम को विदित कर देंगे। अभी तक महाराणा जी का विचार अच्छा है। आगे जैसा होगा विदित कर दिया जायगा।

पांच पत्र गोरक्षार्थ सही कराने के और पांच विज्ञापनपत्र[1] भेजे हैं, पहुंचेंगे। न रहें तो वहीं छपा लेना। हमारे पास सही तो कई स्थानों से आई है, परन्तु संख्या हमने नहीं की। जब करेंगे तब लिखेंगे। यहां के कार्य हुये पश्चात् सब संख्या पूरी हो जायगी। कार्य सिद्धचर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है कि परमात्मा की कृपा से पूरे हो जायेंगे।

भाद्र वदी १२ सम्वत् १९३९[2]। दयानन्द सरस्वती
उदयपुर नौलखा बाग

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८०] पारसल-सूचना (३८)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
पांच पत्र गोरक्षार्थ सही कराने के और पांच विज्ञापन।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८१] पत्र (३८९)

ओ३म्[4]

प्रबन्धकर्ता मुन्शी समर्थदान जी आनंदित रहो।

ता० १३ सितम्बर का लिखा हुआ पत्र तुम्हारा पहुँचा। समाचार

---

[1] द्र०—पूर्ण संख्या ५०१ और ५०२ के पत्र तथा विज्ञापन।

[2] ९ सितम्बर १८८२।

[3] इस की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ५७९ से मिलती है।

[4] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

ज्ञात हुए। दो पत्र[1] पूर्व तुम्हारे पास टैपादि के विषय में विस्तार पूर्वक लिख भेजे हैं, पहुंचे होंगे। उन्हीं के अनुसार टैप आदि के विषय में शीघ्र प्रबन्ध करना।

इस पत्र का उत्तर यह है कि जो हम प्रतिदिन एक फार्म के लिये शुद्ध करके भेजा करें तो आगे वेदभाष्य का काम सब बंध हो जाय। अब आगे वने नहीं तो पुनः छापने के लिये कहां से भेजा जाय। और तुम भी क्या छापो। अब ४ महीने का वेदभाष्य छपा रखा है। इसलिये इस टैप में वेदभाष्य आगे न छपना चाहिये। क्योंकि इस के मूल अक्षर बहुत बड़े और बेडोल के हैं। जब नया टैप आ जायगा तब वेदभाष्य को अच्छे अक्षरों में छापा जायगा। हमारा विचार यह है कि ८ फार्म वेदभाष्य के और ८ अन्य वेदाङ्गप्रकाशादि के १६ फार्म से कम अपने निज पुस्तक न छपने चाहिये। और जो अधिक छापने की आवश्यकता हो शुद्धप्रति छापने के लिये यन्त्रालय में उपस्थित हो उस समय एक एक फार्म भी प्रति दिन छप सकता है वा अधिक भी। क्योंकि अपना काम बढ़ाया जाय तो कुछ कम नहीं है। जो पण्डित सुन्दरलाल जी और तुम्हारी भी यही सम्मति है कि जो बाहर का काम यंत्रालय में लिया जाय तो अधिक यन्त्रालय को फाइदा हो सकता है और हानि किसी प्रकार से न होगी, तो भले ही बाहर का काम ले लो। कुछ चिन्ता नहीं। **परन्तु जब हम बाहर के काम से निज पुस्तकों के छपने में वा कुछ और प्रकार से हानि होती देखेंगे तो उसी समय बाहर का काम बंध करा देंगे।** इस बात में सर्वदा ध्यान रखना। और जो हम को निश्चय यह विदित हो जायगा कि बाहर के काम से यन्त्रालय को फाइदा पहुँचा और निज पुस्तकों के छपने में भी हानि न हुई देखेंगे तो दूसरे प्रेस का भी प्रबंध करने में यत्न किया जायगा। परन्तु किसी प्रकार की हानि होने पर नहीं।

तुम्हारे लिखने से निश्चय हुआ कि सातवें दिन आख्यातिक का एक फार्म तैयार होता है। इसका कारण मुख्य तो यह है कि **ज्वालादत्त को व्याकरण का बोध कम है।** और आख्यातिक प्रक्रिया भी कठिन है। इसलिये उससे यथावत न बन सकेगी। इसलिये आख्यातिक के पत्र उससे लेकर यहां भेज दो। कल भीमसेन भी हमारे पास आ गया है। यहां शीघ्र उसको बनवा और शुद्ध करके तुम्हारे पास भेज देंगे।

---

[1] सम्भवतः पूर्ण संख्या ५७८, ५७९ के।

थोड़े दिनों के पश्चात् और सत्यार्थप्रकाश के पत्रे शुद्ध करके भेज देंगे। तुम सत्यार्थप्रकाश के छापने का आरम्भ कर दो। काम कभी बंध मत रखो। और टूटे फूटे अक्षरों को फुंडरो में ढलवा लो। काम बंध मत रखो। और सौवर तथा पारिभाषिक के भी पत्रे बनवा कर भेजे जायेंगे। आर्यो० १ चादां० १ इन दो पुस्तकों के कम होने का कारण यह है कि न जाने तुम्हारे बांधने में कसर रही अथवा डाक में कुछ बिगाड़ हुआ। हमारे पास तो वहां खुला[1] और पुस्तक टूटी फूटी होकर पहुंची। उसी समय गिनी तो दो कम हुई। ये किसी ने लेली होगी। और वेदान्तिध्वान्ति तुमने भेजी कब, जो रसीद भेजें। जो भेजा भी हो तो यहां नहीं पहुंचा। उसने नौकरी क्यों छोड़ी। क्या उसकी इच्छा नौकरी करने की नहीं थी। हम तो यह जानते हैं कि तुम्हारे नीचे एक दूसरा सहायक चाहिये, क्योंकि तुम कहीं विशेष कारण से गये आये तो वह काम कर सके। इसलिये तुम्हारी इच्छा हो तो किसी योग्य पुरुष को रखलो।

यहां श्री महाराणा जी प्रतिदिन मिलते और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होते हैं और वे लिखे भी जाते हैं[2] सो तुम्हारे पास भेजेंगे। अभी महाराणा जी से दो एक बार एकान्त में गोरक्षार्थ सही आदि कराने के विषय में बातें चीतें हुई हैं। आशा है कि यह कार्य सिद्ध हो जायगा। इसके सिवाय जो और कोई बात होगी सो पीछे से लिखेंगे। हम सब प्रकार से आनन्द मंगल से हैं।

[भाद्र सुदी (६ ?) सम्वत् १९३९[3]।]

उदयपुर
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८२]   पारसल-सूचना (३९)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
सौवर का हस्तलेख।[4]

---

[1] अर्थात् पारसल।

[2] ये प्रश्नोत्तर अक्षरशः पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित में छपे हैं। इसे रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' में प्रकाशित किया है।

[3] १८ सि० १८८२। तिथि हमने अनुमान से लिखी है।

[4] इसकी सूचना अगली पूर्ण संख्या ५८५ के पत्र (पृष्ठ ६१६) में है। सौवर

[पूर्ण संख्या ५८३] पत्र-सूचना (६५)

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग]

टाइप मंगाने की सम्मति दे दें[1]।

सं० १९३९ आश्विन वदी ६ चन्द्रवार[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८४] पत्र-सूचना (६६)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

कुंवर जवाहरसिंह के २२॥-) भीमसेन के मार्फत पहुँचने के विषय में[3]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८५] पत्र (३९०)

मुंशी समर्थदान आनन्दित रहो।[4]

विदित हो कि २१ सप्तम्बर का लिखा हुआ पत्र पहुंचा। समाचार ज्ञात हुए। हम तुम को इस विषय में कई बार लिख चुके हैं कि अभी वेदभाष्य की प्रति इस लिये नहीं भेजते कि वेदभाष्य के मूल मन्त्र तथा पद के अक्षर बेढंगे हैं। और भाषा के भी अक्षर घिस गये हैं। इस लिये बाहर के छापने के लिये हमने आज्ञा दे दी है। सो लेकर छापो। और उनसे रुपये लो। जब नये अक्षर आ जांय तब वेदभाष्य छापा जायगा।

हमने सौवर भेजा था सो छापते होगे। और कोई ८ वा १० दिन गें पारिभाषिक तैयार करा कर भेज देंगे। इस पत्र के साथ दूसरा पत्र भेजा

के अन्त में ग्रन्थ रचनाकाल भाद्र शु० १३ सं० १९३९ लिखा है। उसके दो तीन दिन पीछे प्रेस में भेजा गया होगा।

[1] इस की सूचना अगली पूर्ण संख्या ५८५ के पत्र में है। तथा आश्विन सुदी ३ सं० १९३९ (१५ अक्टूबर १८८२) पूर्ण संख्या ५९० के पत्र (पृष्ठ ६२०) में भी इस का निर्देश है।

[2] २ अक्टूबर १८८२।

[3] इस की सूचना आश्विन सुदी ३ (१५ अक्टूबर सन् १८८२) पूर्ण संख्या ६०० के पत्र (पृष्ठ ६२१) में है।

[4] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

है उस के पास विक्रिय पुस्तकों का सूचीपत्र भेज देना ।

पत्र तुम्हारा दूसरा भी २९।९।८२ समय का लिखा आया । हाल जाना । इस में दो बातें हैं । एक तो अक्षर मंगाने के लिये तुमने पं० सु० जी० की सम्मति विरुद्ध लिखी । सो आज हम भी एक पत्र उन को भेज देते हैं । वे तुमको सम्मति शीघ्र देवेंगे । तुम कलकत्ते में यदुनाथ बनर्जी को लिखो कि वे अक्षर भेज देंगे । पहिले ४०) रु० मन उनके यहां से पहिले[1] आये थे । सो अब भी मिलेंगे । भाड़ा पृथक् लगेगा । और जितने मन अक्षरों की आवश्यकता हो और जो जो अक्षर जितने जितने कम बढ़ चाहियें सो सब [लिखो ।] उनके रुपये हम वहीं कलकत्ते में दिला देगें । और सेवकलाल निर्भयराम को भी हम कागज़ के लिये लिख देंगे । और सत्यार्थप्रकाश के छपाने को हमारा तो यही विचार है कि नवीन टैप में छपे । जो आरम्भ न किया होय तो पीछे छापना । और आरम्भ कर भी दिया हो तो उस में संस्कृत के मूल वचन कुछ बड़े अक्षर में और भाषा छोटे में । तथा जो तुम को विचार पूर्वक नोट देना हो सो भी देते जाना ।

संवत १९३९ आश्विन बदी ६ चं०[2] ।   [दयानन्द सरस्वती]
उदयपुर[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८६]   पत्रांश (३९१)

पं० छगनलाल [मसूदा]

....

[4]श्रीयुत महाराणा जी दूसरे तीसरे [दिन] समागम करते हैं । और उपदेश सुन कर बहुत से व्यसन अर्थात् दिन का सोना, रात्रि में न सोना,

---

१. यह पद भूल से दो बार लिखा गया ।

२. २ अक्तूबर १८८२ सोमवार ।

३. पूर्ण संख्या ५८५ से आगे समर्थदान का जो अधूरा पत्र संस्क० १ और २ में यहां छपा था । उसे हम आगे पूर्ण संख्या ६०६ पर छाप रहे हैं ।

४. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ५६४ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६०५) पर इतना अंश उद्धृत है ।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

दिन चढ़े उठना इत्यादि बहुत बातें छोड़ दी हैं। और अच्छी अच्छी बातों को ग्रहण करते जाते हैं।

आश्विन सु० ११ सं० १९३९। ७ अक्तूबर ८२[1]। उदयपुर[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८७] कार्ड (३९२)

ओ३म्[3]

सम्वत् १९३९ आश्विन वदी १४।[4]

महाशय बाबू रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विदित हो। महाशय ! कई एक पत्र आप के पास विस्तार पूर्वक समाचार लिख के भेजे[5] परन्तु प्रत्युत्तर एक का भी न मिला। इस में क्या कारण हुआ। अब पत्र देखते ही अपना विस्तार पूर्वक समाचार भेजना। श्रीयुत जगद्गुरु स्वामी जी महाराज उदयपुर में विराजमान हैं। श्रीयुत आर्य्यकुल-दिवाकर महाराणा जी अत्यन्त प्रेम से आते हैं और उपदेश सुनकर बहुत हर्षित होते हैं। कई एक बातों को छोड़दीं जो कि हानिकारक हैं। और कई एक बातें जो कि सर्व सुख दायक हैं उनको ग्रहण कर ली हैं। आशा है श्री स्वामी जी के प्रताप से यह देश भी पवित्र हो जायगा। गोरक्षार्थ यहां भी सही हो गई हैं। आशा है कि यहां के सम्बन्ध से अन्यत्र अर्थात् जोधपुराधीशों आदि राजाओं से हो जायगी। विशेष समाचार तुम्हारे पत्र आये के पश्चात् लिखूंगा।

(रामानन्द ब्रह्मचारी उदयपुर)

—:o:—

---

[1] सु० ११ लुप्त है। २२ या २३ अकतूबर था। ७ अकतूबर को आश्विन वदी ११ है। तथा पूर्ण संख्या ५८७ आश्विन वदी १४ के पत्र में भी इस पत्र की बातों का संकेत होने से यही तिथि ठीक प्रतीत होती है। जीवनचरित में कुछ भूल हुई है।

[2] पं० लेखरामकृत जीवनचरित में भूल से रायपुर छप गया है। रायपुर के स्थान में उदयपुर होना चाहिये। [3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[4] १० अक्टूबर १८८२

[5] इस से प्रतीत होता है कि पूर्ण संख्या ५६३ (२४ जुलाई) के अनन्तर कुछ पत्र और भेजे गये थे, वे प्राप्त नहीं हुए।

[पूर्ण संख्या ५८८]　　　पत्र-सूचना (६७)

[सेवकलाल, बम्बई]
कागज़ भेजने के सम्बन्ध में[1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८९]　　　पत्र-सूचना (६८)

[मास्टर प्राणजीवनलाल कानदास बम्बई]
सेवकलाल से पत्रों का उत्तर भिजवाने के विषय में[2]।
सं० १९३९ आश्विन सुदी ३ रवि[3]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५९०]　　　पत्र (३९३)

ओम्[4]

प्रबन्धकर्त्ता मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि ७-१०-८२ नम्बर १३०५ का पत्र आया। समाचार विदित हुए। हम तुम्हारे पत्र भेजने में कुछ भी विलम्ब नहीं करते। हमने बाहर के काम लेने के लिये तुम को पत्र द्वारा आज्ञा दे दी थी। उस बात को कोई एक मास हुआ होगा[5]। तुमने कुछ भी नहीं लिखा कि अभी तक लिया वा नहीं। इसका उत्तर देना। जो एक फारम के अनुमान नित्यप्रति शोध कर तुम्हारे पास भेजा जाय तो यहां का सब काम अर्थात् वेदभाष्यादि का बनाना छूट जाय। **प्रत्युत इस काम के लिये महाराणा आदि जी से कह**

---

[1] पूर्ण संख्या ५९० द्र० (पृष्ठ ६२०) में ३, ४ पत्र भेजने का उल्लेख है। ये पत्र कब कब भेजे गये, यह अज्ञात है। हमने निदर्शनार्थ एक ही पत्र-सूचना छापी है।

[2] इस का निर्देश अगले पूर्ण संख्या ५९० के पत्र में है। द्र० पृ० ६२१, पं० २।

[3] १५ अक्टूबर १८८२।

[4] शताब्दी संस्करण, भूमिका पृ० १८ पर खण्डशः मुद्रित। *Works of Maharshi Dayanand* पृ० १२८ पर शताब्दी संस्करण की अपेक्षा कुछ अधिक भाग मुद्रित। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[5] देखो पूर्ण संख्या ५८१ पृष्ठ ६१३ का पत्र।

दिया गया कि सन्ध्या समय आया करें। हम को कुछ भी अवकाश नहीं मिलता। अर्थात् प्रातःकाल से ११ वा १२ बजे तक वेदभाष्य बनाते हैं। पश्चात् अन्य काम शोधने आदि का। और वह काम ऐसा है कि बिना हमारे बन नहीं सकता। जो कहीं भाषा असंबध हो और अभिप्राय वा अक्षर मात्रा आदि से अशुद्ध हो उसको तुम ही शोध लिया करो। बाहर के काम के लिये बिना यहां से तुम्हारे योग्य इस समय छपवाने के लिये नहीं भेज सकते। जैसी तुम जल्दी चाहते हो ऐसा तो तब हो सके कि जब हम स्वयं छापेखाने में आकर तुम को शोध शोध दिया करें और तुम छापो।

कल तुम्हारे पास ३३ पृष्ठ से सत्यार्थप्रकाश के पत्रे[1] और पारिभाषिक भूमिका सहित ४३ पृष्ठ तथा जितना यहां **वेदार्थयत्न**[2] के अंक हैं अर्थात् २० अंक वे सब भेजेंगे। तुम हम को यह लिखना कि सत्यार्थप्रकाश के कितने पृष्ठ एक फारम में लगते हैं। सो ब्यौरे वार से जब लिख भेजोगे तब हम यहां से अनुमान करके लिख देंगे कि सब सत्यार्थप्रकाश के इतने फर्म होंगे। हम ने तुम को कई एक बार लिखा कि वहां जो कुछ हमारी फुटकर चीज व वस्तु पड़ी हैं उस का सूची बना के भेजो। सो अभी तक नहीं भेजा। शीघ्र अब लिखके भेजना।

शोक की बात है कि **तीन चार पत्र हम भी सेवकलाल को भेज चुके हैं।** परन्तु एक का भी उत्तर न दियां। इसी प्रकार तूहमारे[3] पत्रों के विषय में कर्त्ता होगा। जो तुम इस से काम चलते न देखो तो स्वतन्त्र किसी मातवर आदमी की दुकान से कागज आदि मंगवाने के लिये प्रबन्ध कर लो। क्योंकि अब तुम्हारे पास वहां कुल १० रीम बाकी है। जो शीघ्र न भेजेगा तो कागज के बिना काम ही बन्ध हो जायगा। जहां से टैप मिले वहां से जितना चाहो मंगवा लो। इस विषय में **पण्डित जी को भी हमने लिखा था कि टैप मंगवाने की तुम को आज्ञा देदें।** न जाने तुम को आज्ञा दी वा नहीं। आशा है कि अवश्य वे तुम को आज्ञा देंगे। और तुम शीघ्र टैप मंगवा लो। परन्तु हम को यह लिखो कि तुम कै मन टैप मंगवाना चाहते हो और क्या खर्च पड़ेगा। इस बात का निश्चय करके लिखो। अब तुम रजिस्ट्री कराके

---

[1] २९ अगस्त को ३२ पृष्ठ तक भेजे थे। देखो पत्र पूर्ण संख्या ५७७।

[2] सायणकृत अथर्ववेदभाष्य के सम्पादक पण्डित बालकृष्ण शङ्कर पाण्डुरङ्ग इस वेदार्थयत्न को निकाला करते थे। इस में सायण भाष्य के आधार पर ऋग्वेद का मराठी और अंग्रेजी में अनुवाद रहता था।

[3] अर्थात् तुह्मारे=तुम्हारे।

पत्र सेवकलाल के नाम से भेजो कि जिस में उस को सही तुम्हारे पास आ सके। हम ने भी आज एक पत्र मास्तर प्राणजीवनलाल कानदास जी के नाम से भेजा है। क्योंकि वे उस को समझा देंगे और जिन बातों का उत्तर हमने मांगा था सो सो भी सब उसमें लिखवा भेजेंगे। हमारा आशीर्वाद जज कार्ष्टीफन साहेब को लिख भेजना। कुंवर जवाहरसिंह जी के रुपये अर्थात् २२॥—) भीमसेन के मार्फत हमारे पास आये, सो तुमको लिखा था वेदभाष्य में क्यों नहीं छपे। क्या अगले में छापोगे? और रजिस्टर में जमा कर लेना।

सम्वत् १९३९ आश्विन सुदी ३ रवि।[1]   [1](उदयपुर)

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९१]   पारसल--सूचना (४०)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

१. सत्यार्थप्रकाश के ३३ पृष्ठ से ५७ पृष्ठ तक[2]।

२. पारिभाषिक भूमिका सहित ४३ पृष्ठ।

३. वेदार्थयत्न के २० अङ्क।

सं० १९३९ आश्विन सुदी ४ सोम (१६ अक्टूबर १८८२)।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९२]   कार्ड (३९४)

ओ३म्[3]

③

लाला कालीचरणदास जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि तुम आर्य्यसमाज के पत्र में नाटक का विषय मत छापो।[4]

---

[1] १५ अक्तूबर १८८२।

[2] इन को भेजने का निर्देश तथा तिथि की सूचना पूर्ण संख्या ५९० के पत्र में है।

[3] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०२ पर भी छपा है। इस की प्रतिलिपि म० मामराज ने की।

[4] पूर्ण संख्या ५३६ के विज्ञापन में 'नाटक' का निर्देश है। सम्भव है उसमें 'नाटक' पद ऋषि दयानन्द की सम्मति के बिना मुद्रण काल में बढ़ाया होगा।

यह अनुचित बात हैं। यह आर्य्यसमाज है। भडुआ समाज नहीं। जो तुम नाटक का विषय छापते हैं[१] ऐसा करना भडुआपन की बात है। इस लिये ऐसा वर्त्तना उचित नहीं।

[द० स०]

ता० १६ अकटूबर[२]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९३] पत्र-सारांश (३९५)

[पं० इन्द्रनारायण; प्रधान आर्यसमाज लखनऊ]

समाज में नाटक प्रहसन आदि करना अनुचित है।[३]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९४] पत्रांश (३९६)

[माई भगवती[४]……………………हरियाना पञ्जाब]

……………तू लाहौर जा सके तो हम लाहौर आर्यसमाज को तेरे वास्ते लिखें। ……

१६ अक्तूबर १८८२[५]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९५] पत्र (३९७)

ओ३म्[६]

महाशय बाबू रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विदित हो—

---

[१] यहां 'हो' चाहिये।

[२] सन् १८८२ [आश्विन सुदी ४, सोम सं० १९३९] पत्र की मोहर पर उदयपुर से पत्र का चलना लिखा है।

[३] इस पत्र का संकेत पं० इन्द्रनारायण, प्रधान आ० स० लखनऊ के २८ अक्टूबर १८८२ के पत्र में मिलता है। अतः यह पत्र ऋ० द० ने १६ अक्टूबर के आस पास लिखा होगा। पं० इन्द्र नारायण का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[४] इस ने बम्बई में श्री स्वामी जी के दर्शन किये थे। देखो पं० देवेन्द्रनाथ संक० जी० च० पृष्ठ ३४७।

[५] आश्विन सुदी ४ सं० १९३९। यह पत्रांश और इसका संकेत माई भगवती हरियाणा के ४ नवम्बर १८८२ के पत्र में मिलता है। माई भगवती का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[६] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

पत्र तुम्हारा पहुँचा । कुशल समाचार ज्ञात हुए । परमात्मा की कृपा से यहां श्री परमगुरु जी आदि सब आनन्द मङ्गलयुत हैं । अनुमान है कि अब थोड़े दिनों के पश्चात् स्वामी जी की उदयपुर से अन्य स्थ[ा]न को य[ा]त्रा होगी । मेरा निज समाचार आप से मित्रता होने के कारण विदित करता हूं कि मेरे पिता जी का स्वर्गलोक हो गया है । इस क[ा]रण से अब मैं घर को जाने वाला हूँ । अनुमान है कि दश वा बारह दिन के पश्चात् जाऊंगा । दूसरा प्रजोज[न] यह भी है कि मैं कुछ काल निरन्तर पढ़ना चाहता हूं । क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रम केवल मैंने विद्या पढ़कर परोपकार करने के अर्थ लिया है और श्री परम गुरु स्वामी जी की भी पूर्ण कृपादृष्टि है । अब आपको पत्र मैं फरुखाबाद पहुंचने पर दूंगा ।।

अब जो आप के प्रश्न और जो फरुखाबाद में रुपये दिया करते हो उसका उत्तर श्री गुरु जी की आज्ञा से लिखता हूँ । आप निश्चय समझना ।।

१—रुपयों के विषय में स्वामी जी ने यह आज्ञा दी कि रुपये फरुखाबाद में ही भेजना चाहिये । और हमारे पास जितना रुपया पंडितों के मासिक में लगता है वह फरुखाबाद ही से लगा करता है । अभी हाल में २००) रुपये मुम्बई में मंगवाये थे । तुम कुछ संदेह मत करो । वहां से जब जब हम चाहते हैं, मंगवा लेते हैं । इस लिये तुम वहीं भेजना ।।

प्रश्नों का उत्तर—धर्म कार्य के करने में जो पिता आदि किसी प्रकार का विघ्न करें तो उनकी ऐसी बात सर्वथा अमन्तव्य है । हां, पुत्र को उचित है कि माता पिता चाहे कैसे ही दुष्टाचारी क्यों न हों उनकी अन्न वस्त्र से सेवा अवश्य ही करनी चाहिये । जो वे पुत्र की सेवा न चाहें तो ऐसा करना उचित है कि जिस समय पुत्र अपने माता पिता को दुःखी देखे, उस सम[य] विना पूछे गाछे सेवा करना उसको चाहिये ।।

२—चाहे कोई निन्दा वा स्तुति करे वा न करे तो भी धर्म जो कि सत्य भाषणादि है नहीं छोड़ना । क्योंकि लौकिक जि[त]ने मनुष्य हैं उन से मित्रता यहीं काम में आती है परन्तु परलोक में धर्म्म के विना दूसरा सहायक मित्र कोई भी नहीं है । देखिये इस विषय में एक श्लोक लिखे देता हूं । आप कण्ठस्थ कर लेना—

(निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।)

इसका अभिप्राय यह है कि संसार में चाहे कोई निन्दा करे वा स्तुति, लक्ष्मी अर्थात् धनादि पदार्थों को प्राप्ति हो चाहे अप्राप्ति, और मरण चाहे इसी समय हो वा कालान्तर में, परन्तु धीर पुरुष ऐसी ऐसी विपत पर भी धर्मरूपी मार्ग नहीं छोड़ते । इस का फल यह है कि जो पुरुष ऐसा दृढ़निश्चययुक्त धर्म पथ में स्थिर होता है उस के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की प्राप्ति होती हैं ।।

स्त्री का पढ़ाना अत्युत्तम है, यथेष्ट पढ़ाओ। और संस्कारविधि के अनुसार गर्भाधान संस्कार [कर] के पुत्रोत्पत्ति करना ।।

हे प्रिय ! अब मैं अपनी ओर से इतना विशेष लिखता हूं कि तुम अपनी स्त्री को इस मन्त्र को शुद्ध बतला देना—

(ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव) यजु० अ० ३० म० ३ ।।

इसका अर्थ भूमिका[1] में देख के सुना देना । इस समय पिता जी के देवलोक हो जाने के कारण विशेष आप को नहीं लिख सका, परन्तु जब जब आप को कुछ प्रष्टव्य हुआ करे, आप अवश्य लिखा करें । मैं उत्तर देने में आलस्य न करूंगा ।।

कार्तिक शुदी १ सम्वत् १९३९[2] ।। (रामानन्द ब्रह्मचारी)
उदयपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९६] **पत्र-सूचना (६९)**

[लाला कालीचरण जी, फरुखाबाद]
वैदिक यन्त्रालय के लिये रुपयों के सम्बन्ध में ।[3]

—:o:—

---

[1] यह मन्त्र ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आरम्भ में व्याख्यात है ।

[2] ११ नवम्बर १८८२ ।

[3] इस की सूचना आगे पूर्ण संख्या ६०० के पत्र से मिलती है ।

[पूर्ण संख्या ५९७]　　यजुर्वेदभाष्य समाप्ति की सूचना

मार्ग कृष्ण १ शनिवार सं० १९३९[1] में समाप्त किया[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९८] महाराणा श्री सज्जनसिंह जी उदयपुर की दिनचर्या के नियम[3]

तत्

जब न्यायस्थान पर जावे तब सब प्रजास्थ वादी प्रतिवादी साक्षी राजपुरुष सम्प्रेक्षक आदि मनुष्यों को प्रसन्नवदन कृपादृष्टि से आनन्दित करे।

---

[1] २५ नवम्बर १८८२।

[2] यह सूचना मुद्रित यजुर्वेदभाष्य के अंक ११६, ११७ (सम्मिलित) के पृष्ठ १२९० के अन्त में छपी है। इस विषय का मुंशी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग का निम्न विज्ञापन भी दर्शनीय है—

"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामी जी महाराज ने यजुर्वेदभाष्य बना कर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेदभाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र पूरा होगा...............।"

देखो ऋग्वेदभाष्य माघ कृष्ण सं० १९३९ अंक ४६, ४७ (सम्मिलित) के अन्त में।

यजुर्वेदभाष्य का मुद्रण वैशाख शुक्ल ११ शनिवार १९४६ में समाप्त हुआ था। देखो यजुर्वेदभाष्य अङ्क ११६, ११७ (सम्मिलित) पृष्ठ १२९० के अन्त में।

इस विषय में जो अधिक देखना चाहें वे "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ १०४–१०८) देखें।

[3] पूर्ण संख्या ५९९ (पृष्ठ ६३३) तथा महाराणा सज्जनसिंह को जोधपुर से लगभग १०–१६ सितम्बर १८८३ के मध्य लिखे पत्र में इस दिनचर्या का उल्लेख है। पं० चमूपति जी सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १४८-१६२ तक छपी है। उस में दो तीन शब्द अशुद्ध हैं। हमने म० मामराज जी द्वारा की हुई प्रतिलिपि से छापा है। मूल लेख ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था।

दक्षिण हाथ उठा कर सब को स्वास्थ्य अभयदान देकर न्यायासन पर बैठ सर्वव्यापक यथावत् न्यायकारी अन्तर्यामी को मन से नेत्रोन्मीलन करके प्रार्थना करे कि 'हे परमेश्वर आप की कृपादृष्टि हो जिस से मैं चाहता हूं कि कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादि के वश हो के अन्याय न करूं। ऐसा अनुग्रह आप भी कीजिये।' परन्तु इस बात को सदा ध्यान में रक्खे कि सब कामादि और अन्याय में फसाने वाला लोभ है। उस को अपने से और आप उस से सदा दूर रहे। उस समय न किसी का शत्रु और न किसीका मित्र तथा उदासीन बने। किन्तु समदृष्टि कि जैसा पक्षपात छोड़ परमेश्वर वा आप्तपुरुष सब के साथ वर्तता है वैसे वर्त्ते। प्रत्येक सप्ताह में गुरुवार के [दिन] ऋणादानादि में विवाद अर्थात् दिवानी का न्याय करे। और रविवार के दिन साहसिकों का अर्थात् फहोजदारी का न्याय करे। जब अर्थी वा प्रत्यर्थी अथवा साक्षी जो कुछ स्वभाव से बोले उस पर अतीव ध्यान देकर विचार करे। और उनको कठिन से कठिन शपथ करावे। सब साक्षियों को पृथक् पृथक् रक्खे। सीखावट की साक्षी को न माने। और यह भी जना देवे कि मिथ्या बोलने, मानने और करने वाले को इस जन्म और परजन्म में सुख व प्रतिष्ठा नहीं होती। और देखो थोड़े से जीवन में धर्मात्मा अर्थात् सत्यवादी सत्यमानी सत्यकारी मनुष्य धर्मार्थ काम मोक्ष फलों को प्राप्त होता और मिथ्यावादी, मिथ्यामानी अनृतकारी सर्वदा दुःख को प्राप्त होता है। इस लिये किसी को आत्मा और परमेश्वर के मिथ्याभाषणादि से शत्रु न बनना चाहिये। जैसा कुछ तुम्हारे आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोलो। जब वे कुछ भाषण करें वह सब लिपिवध होवे। और उन के नेत्र तथा मुखाकृति की ओर देख कर भीतर के आशय को पहिचाने। यदि कोई बड़ा ढीठ अथवा प्राड्विाक अर्थात् वारिष्टर वा वकील जो कुछ परस्पर प्रश्नोत्तर करें उस पर ध्यान दे कर सुने तथा लिखे। यदि जहां जहां पूछ उचित हो पूछे। बीच में अन्य अन्य सम्वाद करके वक्र[ता]वा सरलता से प्रश्न करे। यदि इतने पर भी सत्यासत्य का निर्णय न हो तो उन पर विश्वास न कर के जहां वह विरुद्ध कार्य हुआ हो वहां के सुपरीक्षित धार्मिक पुरुष और स्त्रियों की साक्षी में स्त्री जनों से पूछ कर निश्चय करे परन्तु स्त्रियों से राणी पूंछे। अथवा यदि पड़दे में रक्खे तो बड़े प्रवन्ध से रख के पूछे कि वहां उसके बदले दूसरी स्त्री न बोले। यदि सामने होवे तो न कोई उस पर दृष्टि डाले न हास्य करे और न डरावे। इतने पर भी सत्यासत्य का निर्णय न हो तो गुप्त में उन को बात

करते सुन अथवा धार्मिक आप्तजन दूतों के द्वारा निश्चय करे। पश्चात् जो अपराधी हो उसको यथायोग्य दण्ड दे कर हरावे। और अनपराधी का मान्य कर जितावे। जो हारे उस पर ताना न मारे। किन्तु ऐसा कहे कि देखो भाई मैं तुमसे ऐसे काम करने की आशा नहीं करता था। तुमने ऐसे कुल वा ऐसे के पुत्र हो कर ऐसा अनुचित काम किया। इस पर मुझ को बड़ा शोक है। हे भद्र यदि तू ऐसा काम न करता तो ऐसे दण्ड को प्राप्त क्यों होता। यदि कोई धूर्त वा आतुर बुरा शब्द बोले वा कुचेष्टा करे, सह लेना। परन्तु अपने शरीर की रक्षा सब प्रकार से करना। और सब की मानसी वा बाह्य चेष्टा को जानते रहना। चाहे कोई कितनी ही प्रार्थना करे वा क्रोड रुपैये भी देकर अन्याय कराया चाहै तो भी कभी अन्याय न करे। यही राजा के प्रताप, कीर्ति, श्री और राज्य बढ़ाने वाला कर्म है। यदि भूमि धन धरावट सीमा आदि जितने विवाद लेख वचन से हों अथवा साहस मारपीट कुवचन आदि से दूसरे को पीड़ा वा हानि पहुंचावें उनका भी न्याय यथोचित करे। जैसा मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय में न्याय व्यवस्था १८ प्रकारों में लिखी हैं यथायोग्य करे। ये सब काम मध्यान्होत्तर चार बजे तक कर के कुछ ४५ पल अर्थात् १५ मिनट तक स्वस्थ होकर जिन के साथ मिलके राज प्रबन्धार्थ विचार करना चाहिये ५। सवा [पांच] बजे तक प्रजास्थ जनों से बात करे। पश्चात् यदि प्रातःकाल १० बजे भोजन किया हो और उष्णकाल हो तो शौच आदि से निवृत हो कर ६ छः बजे तक भोजनादि से निवृत्त होकर जहां का शुद्ध वायु शुद्ध देश एकान्त हो पैदल घूमने को जाय। यदि चलने में असमर्थ हो तो सवारी पर बैठ कर घूमे। परन्तु यदि शीतकाल हो तो परमेश्वर की उपासना के पश्चात् भोजन करे। अर्थात् उष्णकाल में आठ बजे पर्यन्त भोजन के पश्चात् घूमना उपासना करनी उचित है। और शीतकाल में भी ५ बजे से सात बजे तक भ्रमण उपासना से निवृत्त हो कर साड़े सात बजे तक भोजन कर लें[1]। पश्चात् ४५ पल अर्थात् १५ मिनट पर्यन्त किसी से न बोले। किन्तु हस्त मुख प्रक्षालन कर लघुशंका से निवृत्त हो ताम्बूल भक्षण कर शतपद घूम के किंचित उत्तान, दक्षिण और वाम पार्श्व से लोट कर उठ बैठे। तत्पश्चात् अर्थात् पौने आठ बजे से नौ बजे तक दूत द्वारा स्वदेश स्वनगर परदेश पर-राज्य

---

[1] तुलना करो पूर्ण संख्या ११ पृष्ठ ३७–३८ दैनिक व्यवहार तथा सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास प्रथम संस्करण पृष्ठ १२७-१२८।

के समाचार जो कि अपने और दूसरे के सम्बंध में हो, सुने । और उसे स्वकार्यसिद्धि के लिये आज्ञा भी देवे । नौ से दश बजे तक आय व्यय आदि का वृत्तान्त सुन कर अगले दिन के लिये यथोचित प्रबन्ध करे । पश्चात् आध घण्टे में इष्ट मित्र वा मन्त्री आदि से जो कि उस समय उपस्थित हो प्रसन्नतापूर्वक विदा कर के साढ़े दश बजे शयन करे। यदि उष्णकाल हो तो १० बजे तक इन सब कामों से निवृत्त हो शयन करे । शयन एकान्त में करे। और उसी समय परमेश्वर को इस लिये धन्यवाद देना कि 'हे परमेश्वर आपकी कृपा से गत अहोरात्र जैसा आनन्द पूर्वक बीता वैसे ही अग्रस्थ अहोरात्र भी आनन्द पूर्वक व्यतीत होवें। दो दिन[1] में पूर्वोक्त दो काम करने[2]। मंगल के दिन किसी राजपुरुष ने वा अन्य राज्य से प्रजास्थ वा राजजन पीड़ित हुए हों उनकी बातें और तीन दिन अर्थात् बुध शुक्र और शनैश्चर में सब राज्य की उन्नति और स्वास्थ्य के लिये प्रबन्धार्थ अकेले वा मुख्य धार्मिक स्वराज्य भक्त मंत्रियों के साथ विचार करना चाहिये ।

विशेष नियम

१—जब पति और पत्नि समक्ष हों प्रसन्नता पूर्वक नमस्ते कर जिस जिस प्रकार दोनों में प्रेम बढ़े वैसा व्यवहार करे। विरुद्ध कभी नहीं ।

२—ऋतुदान के पश्चात् किंचित् ठहर स्नान कर शालव[3] मिश्री केशर आदि सुगन्धियुक्त परीपक्व दुग्ध शीतल यथारूचि पी के ताम्बूल भक्षण कर मुख प्रक्षालन करके पृथक् पृथक् शयन करें ।।

३—दोनों सदा विद्या धर्म प्रजासुख के लिये तन मन धन से प्रयत्न किया करें ।।

४—किसी वेदविद्या-युक्ति-विरुद्ध मतमतान्तर के झगड़े में दोनों कभी न फंसे । किन्तु पक्षपातरहित न्यायाचरण वेदोक्त धर्म ही का आचरण करे और करावें ।

५—अपने वा पराये राज्य में जहां तक शक्य हो किसी मत वाले की बहकावट से विद्यायुक्ति-विरुद्ध मत में किसी को न फंसने देवें । यदि कोई समझाने पर न माने जो कूप में गिरना ही चाहे तो उसका अभाग्य समझना चाहिये ।।

---

[1] अर्थात् गुरुवार, रविवार । देखो पृष्ठ ६२६ ।

[2] सोमवार का निर्देश यहां छूट गया है ।

[3] अर्थात् सालम मिश्री ।

६—जब बुरे बुराई नहीं छोड़ते तो भले भलाई क्यों छोड़ें।

७—सदा सनातन वेद शास्त्र आर्य राज राजपुरुषों की नीति पर निश्चित रह कर इनकी उन्नति तन मन धन से सदा किया करें। इनसे विरुद्ध भाषाओं की प्रवृत्ति वा उन्नति न करे वा करावे। किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में यदि वे इस भाषा को न समझ सकें उतने ही के लिये उन भाषाओं का यत्न रक्खे, जो वह प्रबल राज्य हो।

८—कभी बिना विचारे लिखे नियत काल के आज्ञा न देवे। पश्चात् जैसी जितने समय में कार्यसिद्धि करने की आज्ञा दी हो वह यथावत् नियमित समय में पूरी हुई वा नहीं उस पर ध्यान सदा रक्खे।

९—जो यथोक्त समय में आज्ञा को यथावत् प्रीति से पूरी करे उस का सत्कार करना पारितोषिक देना और उस की उन्नति करना अति योग्य है। और जो यथोचित न करें उस का अपमान दण्ड और ह्रास किये बिना कभी न छोड़े।

१०—बिना योग्यता वा परीक्षा के किसी को बड़ा वा छोटा अधिकार न देवे। किन्तु जो धर्मात्मता से उस कार्य के करने में समर्थ हो उसी के आधीन वह कार्य सिद्ध करे वा करावे। दरिद्र वा लोभी को प्रारम्भ में बड़ा अधिकार भी न देवे। और कुटुम्ब सम्बन्धी परस्पर मित्रों को भी एक अधिकार में न रक्खे।

११—सदा वेदोक्त धर्मावलम्बी अधिकारियों पर अन्य मतावलम्बियों को अधिकार न देवे। किन्तु जिस जिस कार्य में न्याय वा (उपदा) अर्थात् रिश्वत खाने का सम्बन्ध हो उन को छोड़ अन्य गौणाधिकारों में वैदिक धर्मावलम्बियों से कार्य सिद्ध न हो सके, रक्खे।

१२—जो प्रीतिपूर्वक धर्मात्मता से ३० वर्ष तक राज कार्य करे उन को आधी नौकरी जब तक वे जीवें देवे। यदि संग्रामादि में जिसका मृत्यु हुआ हो उसकी स्त्री पुत्रों को भी उसी प्रकार देवे। यावत् उनके पुत्र समर्थ न हों। जब समर्थ हों तब उनके पुत्रों को यथायोग्य अधिकार देवे। परन्तु उस की स्त्री को योग क्षेमार्थ यथोचित जब तक व[ह] जिये सदा दिया करे। यदि वह पांच रुपये मासिक पाता हो पूरा देवे। पुत्रों के समर्थ हुए पर स्त्री को आधा देवे।

१३—सब के लड़के लड़कियों को ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या दान दिलावे।

१४—न्यून से न्यून सोलहवें वर्ष कन्या और २५वें वर्ष लड़के का स्वयम्बर विवाह होने देवे, पूर्व नहीं।

१५–अपनी सत्ता शक्ति को यथासम्भव बढ़ाता जावे, न्यून न होने देवे।

१६––अपने अंश को न छोड़े और पराये अंश का स्वीकार कभी न करे।

१७–संग्राम में जो सेनास्थ पुरुष जीत में शत्रुओं के पदार्थ पावें उन में से १६वां भाग आप लेवे। और समुदाय के जीते हुये पदार्थों में से १६वां भाग चाहे कितने ही क्रोड़ों रु० क्यों न हों सेना को अवश्य देवे। १५वां भाग आप रक्खे।

१८–युद्ध में जो शत्रु घायल हो उसकी रक्षा औषधी अवश्य करे। स्त्री बालक, वृद्ध, आतुर, भीरु, शरणागत पर शस्त्र कभी न चलावे।

१९–हारे हुए शत्रु की अप्रतिष्ठा कभी न करे, किन्तु उस का यथायोग्य मान्य रखे। परन्तु उस को छोड़ कर स्वतन्त्रता कदाचित् न देवे।

२०–सदा प्रयत्न से अलब्ध के लाभ की इच्छा, लब्ध की सम्हाल से रक्षा, रक्षित की व्य[ाजा]दि से वृद्धि और बढ़े हुए पदार्थों का व्यय विद्या धर्म राज्य की वृद्धि इन[के] प्रचार [और] अनाथों के पालनादि शुभ व्यवहारों में करे।

२१–सर्वदा सन्तानों की शिक्षा में धन का व्यय करे, किन्तु विवाह, मृत्यु आदि में न करे।

२२–सदा दासी वेश्यागमन हास्य नृत्य भांड चारण आदि के मिथ्या स्तुति कराने आदि व्यवहार से पृथक् रहे। और अन्य को भी ऐसे प्रसंगों से सदा बचाया करे।

२३–सदा पूर्ण युवाऽवस्था में अर्थात् २५ वर्ष के उपरान्त हृद्य स्व[स]दृश्य एक स्त्री से विवाह करे और उसी से सदा ऋतुगामी रहे। यदि प्रमाद से अनेक स्त्री हों तो भी उनके साथ पक्षपात छोड़ नियमित समय में एक सा वर्त्ते।

२४–उन में परस्पर द्वेष उत्पन्न न होने दे। किन्तु सब को तुल्य अन्न वस्त्राभूषण सम्भाषणादि प्रेम व्यवहार तुल्य रक्खे और प्रेम रखवावे।

२५–उन स्त्रियों को योग्य है कि एक के पुत्र होने में सब अपने को पुत्रवती समझें। तथा सब भाई भी एक के पुत्र होने में अपने को पुत्रवन्त मानें।

२६–राजा और राज्ञी का जिस जिस कर्म से पति पत्नी में और प्रजा में परस्पर प्रेम बढ़े उस उस का सेवन और विपरीत का सर्वथा त्याग करे।

२७–सुपरीक्षित दूत द्वारा राज्य और राजपुरुषों की सुचेष्टा और कुचेष्टा से अपने को अभिज्ञ रक्खे। जिस जिस यत्न से उनकी कुचेष्टा छूटें और सुचेष्टा बढ़े, वैसा यत्न सदा किया करे।

२८—अपराध में प्रजा से राजपुरुषों पर अधिक दण्ड होना चाहिये। क्योंकि बकरी के प्रमाद रोकने से सिंह का प्रमाद रोकने में अधि[क] प्रयत्न होना उचित है।

२९—जैसे राजा और कृषीवलादि प्रजा सुखी रहे वैसा कर-प्रबन्ध प्रजा में करे। और उन्हीं कृषीवलादि को सब राज्य के सुख का मूल कारण समझ उन से पितावत् वर्ते।

३०—जहां (साम) मेल (दाम)[1] कुछ दे (भेद) तोड़ फोड़ से शत्रु वश में न आवें वहीं दण्ड प्रचरित करना चाहिये।

३१–किसी धर्मात्मा से विरोध वा लड़ाई करना न चाहे और दुष्ट से विरोध वा लड़ाई निःशंक करे।

३२–सब काम धार्मिक सभ्यों के बहुपक्षानुसार नियत करे। और वह आज्ञा जो कि प्रजा के साथ सम्बन्ध रखती हो, सब में प्रजा की संमति लेवे और सर्वत्र [प्र]सिद्ध करके गुण दोष समझे। पश्चात् गुणाढ्य नियमों को नियत और दोषयुक्तों का त्याग करे।

३३–अपना वा अपने कुटुम्ब का नित्य नैमित्तिक व्यय भी नियमपूर्वक करे।

३४–जिस किसी को मासिक धन वा भूमि धर्मार्थ अथवा गुणानुसार कुछ भी देवे वह यावत् माननीय जीवे वा अन्यथा न वर्ते तावत् वह दान रहे पश्चात् नहीं।

३५–यदि पूर्वजों ने इस से विपरीताशय लेखपूर्वक किया हो और उस के कुलोत्पन्न वैसे न वर्तते हों तो भी वह दिया न दिया हो जावे। क्योंकि वह जिस समय दिया जाता है वह उत्तम काम के लिये होता है।

३६–परन्तु धर्मार्थादि के लिये जो दिया हो उस के भोक्ता अन्याय से

---

[1] तु०—स० प्रकाश, समु० ६, पृष्ठ २४१, पं० १६-१८ (आ० स० शताब्दी संस्करण २)। संस्कृत का शुद्ध शब्द दान है। राजधर्म प्रकरण में साम दान दण्ड और भेद इन चार उपायों का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। (द्र० मनु० ७।१९८; कौ० अर्थशास्त्र अधि० ९, अ० ५; शुक्रनीति ४।२७) हिन्दी भाषा में साम के साहचर्य्य से दान का दाम बन गया है।

वर्तते हों तो भी उस अंश के राजांश में न मिलावे, किन्तु कुकर्मी से छुड़ा योग्य धर्मात्मा को उसका अधिकारी करे। यदि वह भी प्रमादी हो तो पूर्वोक्त प्रकार उस से भी लेके अन्य योग्य को, यदि उसी के कुल में योग्य न हो तो देवे।

३७–यदि उन के सन्तान पितरों से अधिक योग्य हों तो उनको अयोग्य के अंश में से अधिकांश देवे और अधिक प्रतिष्ठा करे।

३८–यदि न्यायाधीश ही प्रमादी होकर अन्याय किया चाहे तो उन को राज्य और प्रजा के धार्मिक प्रधान पुरुष समझावें कि आप अन्याय मत कीजिये। यदि न मानें तो उसको पदच्युत करके जो उसी के कुल में निकट सम्बन्ध से न्यायास्पद के योग्य पुरुष हो उसको न्यायाधिकारी करें। परन्तु यह काम पक्षपात रहितता से होना उचित है। क्योंकि राज्य और विद्या, तथा धर्म को वृद्धि और अधर्म की हानि के लिये सब प्रतिष्ठा है प्रमाद के अर्थ नहीं।

३९–सब राज्य के आय में से दशांश धर्मादि के लिये नियत रक्खे। उस से वेदविद्या धर्म सुशिक्षा की वृद्धि के लिए अध्यापक और उपदेशक प्रचरित करें। आपत् काल में राज्य और अनाथों की रक्षा भी उसी धन से करे।

४०–और राज्य से आय के नवांशों में से दो भाग स्थिर कोश, दो अंश राजकुल, तीन अंश सेना विभाग, एक अंश स्थानविशेष और एक अंश शिल्प विद्या की उन्नति में लगावे।

४१–राज का कार्य एक पर निर्भर न रक्खे। किन्तु राजपुरुष और प्रजापुरुष की अनुमति के अनुकूल प्रचलित करें।

४२–जो राजासन पर नियत हो उस का किंचित् भी अपमान कोई मन कर्म वचन से न करे। किन्तु जो जिस पर प्रधान हो चाहे उस से अप्रधान किसी गुण में अधिक भी क्यों न हो तथापि परमेश्वर से द्वितीय स्थान में माननीय राजा और स्वामीवत् माननीय अपने अपने प्रधान को मानें।

४३–अधिष्ठाता लोग राजाज्ञा को अपने प्राण से भी अधिक मानें, चाहे कोई कैसा ही सम्बन्धी वा मित्र क्यों न हो। परन्तु जब राजाज्ञा भंग वा उस में आलस्य करे तब यह शत्रुवत् दण्डनीय हो जावे।

४४–प्रथम सब प्रयत्न से विचार कर सर्वहित समझ के आज्ञा देनी चाहिये। पश्चात् उस को पूरी करने में पूरा ध्यान और पुरुषार्थ रक्खे।

४५–अपने आत्मा वा शरीर को राजा वा अधिकारी न समझें, किन्तु राजनीति ही को राजा और राज्याधिकारिणी मानें।

४६–इस को निर्दोष और चलाने के लिए एक राजसमाज, दूसरा विद्यासमाज और तीसरा धर्मसमाज नियत करे।

४७–इन समाजों में राजपुरुष और प्रजापुरुष नियत रहैं। राजपुरुष राजोन्नति और प्रजापुरुष प्रजा की वृद्धि में प्रयत्न किया करें। और तीनों समाजों के विचारानुकूल नये नियम प्रचरित किये जावें।

४८–जो जो आज्ञा इन समाजों से निश्चित हो कर प्रचरित की जायें उनका उलंघन कोई भी न करे। यदि करे तो वह सब का अमाननीय और दण्डनीय [हो]।

४९–सदा वेदादिशास्त्र मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम और नवम अध्याय, महाभारत के राजधर्म, आपत्धर्म और विदुरप्रजागर विदुर नीति के शब्दार्थ सम्बन्ध और कर्त्तव्य को सब राजपुरुष जान के तदनुकूल वर्त्तें। और इनके प्रचार में सदा प्रयत्न किया करें।

५०–जो जो सामयिक नियम और उपनियम नियत करना होवे तो पूर्वोक्त समाज और वेदादिशास्त्रों के अनुसार निश्चित करें और करावें।

५१–यह निश्चय है कि जैसा शील आचरण उत्साह और पुरुषार्थ प्रधान पुरुष करता है वैसा ही इतरजन वर्तते हैं। इसलिये प्रधान पुरुषों को अत्यावश्यक है कि सदा अधर्मयुक्त कर्मों को छोड़ कर न्याय रूप धर्मकृत्यों में वर्त्ता करें। क्योंकि जो जो धर्म वा अधर्म प्रधानपुरुष दृष्टान्त से इतर जनों में प्रवर्तमान होता है उस का मुख्यनिमित्त प्रधान हो कर फलभागी होता है। इस लिये मुख्य पुरुषों को बहुत विचार से वर्तना चाहिये।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५९९] कार्ड (३९८)

ओ३म्[1]

बाबू कृपाराम जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि पत्र तुम्हारा पहुंचा। समाचार ज्ञात हुए। और जो

---

[1] मूल पत्र पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की भगिनी के पास गुरुकुल कांगड़ी में

तुमने ५०००[०] पचास हज़ार की सही कराके मेरठ भेज दी, सो अच्छा किया। और ब्राह्मी औषधी सेर भर का पारसल कर के उदयपुर में भेज दो। यहाँ उदयपुर का समाचार अतीव प्रशंसनीय है। और सुनकर सब को आनन्द भी होगा। श्रीमान् आर्य्यकुल-दिवाकर महाराणा जी बहुत योग्य हैं। उन्होंने **हमारे उपदेशानुसार[1] अपनी दिनचर्य्या, राजकार्य्य और धर्मकृत्य भी करना आरम्भ कर दिया है।** प्रातः सायं काल सात बजे मेरे पास नित्य प्रति आया करते हैं। कभी कभी रात्रि को मैं शम्भु-विलास महिल में जाया कर्ता हूं। **प्रातः काल कुछ योग वा राजनीति की शिक्षा होती है। और सायंकाल दर्शन शास्त्रों के उपयोगी विषय पढ़ते हैं। उनके साथ बहुत से भाई बेटे तथा अमात्यवर्ग भी पढ़ते हैं।** और सब अच्छी बातें हैं। आगे जो जो उत्तम बात होनेवाली हैं, होंगी, तो सबको प्रसिद्ध कर दी जायंगी।

सं० १९३९ मार्गशीर्ष वदि ५, ता० २९ नवम्बर [१८८२]।

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६००] पत्र (३९९)

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो[2]।

विदित हो कि बहुत दिनों से अवकाश नहीं होने के कारण पत्र नहीं लिखा। अब कुछ प्रसंग से लिखते हैं। **यहां का वर्त्तमान बहुत अच्छा है। जो लिखने लगे तो एक पुस्तक बन जावे। सो पीछे सूक्ष्मता से आप को विदित कर देंगे।** परन्तु यही समझ लेना कि समाचार बहुत ही अच्छा है। जब आप सुनेंगे प्रसन्न तो अवश्य हो जावेंगे। और हर साल आप शीत-काल में घूमने को जाते थे। यदि आप की इच्छा हो तो यहां हम कम से कम १५ दिन रहेंगे। आप आवें तो यहां का वर्त्तमान भी सब विदित हो

है। उस से सन् ३३ में म० मामराज ने शुद्ध किया। पहले मेरठ से आई प्रतिलिपि से छापा गया था।

[1] पूर्ण संख्या ५९८ पर छपी दिनचर्य्यानुसार

[2] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। म० मामराज ने इस की प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० २१९-२० पर भी कुछ पाठ भेद के साथ छपा है।

71330

जावेगा। और श्री महा[रा]णा जी तथा अन्य राजपुरुषों से भी आप का मेल मिलाप हो जावेगा। सो यदि आप आवें तो १५ दिन के भीतर ही विचार करना चाहिये। सो जो आप के आने का पत्र यहां आवेगा, तब चित्तौड़गढ़ रेल से यहां तक आने के लिये सवारी का प्रबन्ध भी हम कर देंगे। और लाला कालीचरण जी से कह दीजिये कि उनका पत्र हमारे पास आया। हमारा अभिप्राय यह नहीं था कि ६००) वा ३००) तुमको देने पड़ेंगे। किन्तु लिखने वाले की भूल है। हमारा अभिप्राय यह है कि २००) रु० कम से कम देना चाहिये कि जिस से ३ फारम का नवीन टाईप मंगा लिया जा[वे]। और ६००) रुपये के विषय में यह अभिप्राय है कि जो समाजों के समाचारपत्रादि सब पुस्तक छपने लगेंगे, तो दूसरा प्रेस मंगवाने के लिये जिन जिन के पुस्तक छपेंगे सब से रु० लिये जायेंगे। और निकाल भी दिये जायेंगे। और अब भारत-सुदशाप्रवर्तक [में] पं० लक्ष्मीदत्त जी से लिखाना चाहिये। **वे संस्कृतयुक्त अच्छा विषय लिखेंगे। और नाटक का विषय तो नाम मात्र भी नहीं आना चाहिये।** जो अच्छा विषय भी लिखना हो वह प्रश्नोत्तर वा अन्य प्रकार से लिखा जावे। नाटक [नाम] तमाशे का है। क्योंकि तुम्हारे नाटक को [लिखा] देख के लखनऊ के समाज में नाटक का व्याख्यान ही होने लगा[1]। **जब हमने मने किया तो कहने लगे कि अपने फरूखाबाद समाज [के] पत्र में नाटक क्यों छपता है[2]। यह नाटक से बिगाड़ का उदाहरण है। और पाठशाला में संस्कृत पढ़ के कितने विद्यार्थी समर्थ हुए। अथवा अंगरेजी फारसी में ही व्यर्थ धन जाता है, सो लिखो। जो व्यर्थ ही हो तो क्यों पाठशाला रक्खी जाय।** सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० मार्ग वदी १४ शनिवार सं० १९३९[3]।

---

[1] १० सितम्बर सन् १८८२ को लखनऊ आर्यसमाज के मन्त्री श्री हरनामप्रसाद जी ने एक पत्र श्री स्वामी जी को लिखा। उस में नाटक का उल्लेख है। आ० स० लखनऊ के मन्त्री हरनामप्रसाद का पत्र तीसरे भाग में देखें। (पृष्ठ६२१) पूर्ण संख्या ५९२ का पत्र तथा टि० ३ भी देखें।

[2] यह पत्र आ. स. लखनऊ पं० इन्द्रनारायण प्रधान ने २८ अक्तूबर १८८२ को लिखा था। इन का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] ९ दिसम्बर १८८२।

यह रुक्का सेठ निर्भयराम जी को देके १२) रु० मंगवा कर हजु कहार के लड़के रामदीन को दिला देना। और वहां के मुनीम से कहना कि रु० देने में देर न करें[1]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०१] पत्र-सूचना (७०)

[मुंशी समर्थदान जी, प्रयाग]

गत महिने कितने फार्म छपे। आख्यातिक और पारिभाषिक भेजो[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०२] पत्र (४००)

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनान्दत रहो।[3]

कुछ दिन हुये कि एक रजिष्टरी पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद की ओर से आया था। उस में यह विषय था कि जो **देशहितैषी में प्रश्नोत्तरी के विषय में छपा है सो किस की ओर से है। आप की सम्मति से है वा नहीं। उस का यही उत्तर है कि वह किसी की ओर से छपा हो, अच्छा है। क्योंकि प्रश्नोत्तरी में जितने विरुद्ध विषय लिखे गये थे उनके सत्यासत्य निर्णय के लिए उन का उत्तर छपना योग्य था। और मैं भी उस प्रश्नोत्तरी के विरुद्ध विषय के उत्तर में सम्मत हूं, क्योंकि जो ऐसा न हो तो जिसके मन में जैसा आवे वैसी ही बात लिख कर चला देवे।** सब मनुष्यों को यही उचित है कि सत्यासत्य का निर्णय कर करा के सत्य को मानना, मिथ्या को छोड़ देना। अब इस का उत्तर दीजिये कि जो १००) रुपये वैदिक यन्त्रालय के सहाय में आर्यसमाज मुरादाबाद से आये थे, उस के देने की प्रतिज्ञा तीसरे वर्ष की पूर्ति तक थी। सो आगामी वैशाख की पूर्ति में तीसरा वर्ष पूरा

---

[1] यह सारा पत्र ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की अपनी लेखनी का लिखा हुआ है।

[2] इस पत्र की सूचना मार्गशीर्ष शु० १० मंगल १९३९ (=१९ दिसम्बर १८८२) के पूर्णसंख्या ६०५ के पत्र में हैं।

[3] मूल पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद में सुरक्षित है।

होगा। सो वैशाख तक जहां जहां से जितने जितने रुपये आये हैं, दिये जांयगे। अब उस में यह प्रतिज्ञा थी कि व्याज के बदले १०) रु० के पुस्तक और मूल रुपये भी दिये जांयगे। सो किस प्रकार किस के पास भेजा जाय। समाज से सम्मति ले कर लिखिये। और १०) रु० के कौन पुस्तक लेना है सो भी लिखना। यहां का समाचार बहुत अच्छा है, पीछे लिखेंगे। और हमारा आशीर्वाद सब से कह दीजिये।

सं० १९३९ मार्ग शु० ७ रविवार[1]।　　(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०३]　　पत्राशय (४०१)

[माई भगवती…………हरियाना पंजाब[2]]

हमारा उत्तर लिखने का अवकाश नहीं। सत्यार्थप्रकाश और भूमिका[3] में लिखा हैं।

१७ दिसम्बर १८८२[4]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०४]　　पारसल-सूचना (४१)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

निघण्टु सूचीपत्र सहित।[5]

—:०:—

---

[1] १७ दिसम्बर १८८२।

[2] इस पत्र का संकेत माई भगवती के ६ जनवरी १८८३ के पत्र में है। माई भगवती का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका।

[4] मार्गशीर्ष शुक्ल ७ रविवार, सं० १९३९।

[5] इसे भेजने की सूचना पूर्णसंख्या ६०५ के पत्र में मिलती है। निघण्टु के अन्त में संशोधन काल इस प्रकार लिखा है— **निधिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षसिते दले। चतुर्थ्यां गुरुवारेऽयं निघण्टुः संशोधितो मया**॥ सं० १९३९ मार्गशीर्ष शु० ४ गुरुवार=१४ दिसम्बर १८८२।

[पूर्ण संख्या ६०५] पत्र (४०२)

ओ३म्[1]

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो–

पत्र तुम्हारा आया समाचार विदित हुआ। अब तुम बहुत शीघ्र नया टैप मंगाओ, नहीं तो सत्यार्थप्रकाशादि सब पुस्तक बिगड़ जायेंगे। चाहे दोनों ओर से मंगाओ, पर शीघ्र मंगाओ। हम लिख चुके हैं कि गत महीने में कितने फर्मे छपे और आख्यातिक तथा पारिभाषिक आदि पुस्तक मंगाये हैं, क्यों नहीं भेजे वा उत्तर दिया? अब शीघ्र भेजो। और कोश के विषय में जो तुमने लिखा सो हम ऐसा कोश नहीं बनाते हैं कि सब कोशों से सब शब्दों का संग्रह करते हों। किन्तु उणादि के ऊपर अनुकूल सुगम संस्कृत में वृत्ति बनाई है। उसके प्रत्ययों के प्रसंग में जो अन्य शब्द आये हैं वे भी लिख दिये हैं। सो बन के तो तैयार हो गया है। सूचीपत्र बाकी है। निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है। और निरुक्त तथा ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची भी बनाकर भेजेंगे। सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना। और ज्वालादत्त के पास भाषा बनाने के लिये अब भेजें वा ऐसा ही रक्खोगे। ५ भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के फारम भेजे थे सो पहुंच गये। परन्तु सत्यार्थप्रकाश अक्षरों के घिस जाने से अच्छा नहीं छपता।

मि० मार्ग शुदी १० मंगल १९३९[2]।

दयानन्द सरस्वती।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६०६] पत्र (४०३)

ओ३म्[3]

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि तुम्हारा पत्र पहुंचा, समाचार ज्ञात हुये। परन्तु उत्तर

---

[1] आर्यधर्मेन्द्र जीवन तृतीय संस्करण पृ० ३७० पर मुद्रित। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

[2] १९ दिसम्बर १८८२।

[3] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है। [यह पत्र प्रथम और

जो तुमने कागजात भेजे हैं उनके पहुंचने के पश्चात् भेजेंगे। **सत्यार्थप्रकाशादि किसी ग्रन्थ में जो नोट लिखो**[1] **तो उसमें किसी का नाम न लिखना**[2]। किन्तु टाइटल पेज के ऊपर तो तुम्हारा नाम रहना ही चाहिये। **परन्तु ग्रन्थ के नोट पर न रहना चाहिये**[2]। सरदार विष्णुसिंह जी मोहतमिम जंगलात उदयपुर के पास आजतक का जितना दोनों वेदों का भाष्य आरम्भ से छपा है भेज दो और आगे को भी सदा भेजा करो। परन्तु भूमिका मत भेजना। क्योंकि वह यहां से लेली है और जैसा ऊपर लिखा है..................[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०७] पत्राशय-सूचना (७१)

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]

पुरोहित उदयलाल के लिये घड़ी भेजो, गोरक्षा की सही के कागजात भी।[4]

द्वितीय संस्करण में सं० १९३९ आश्विन वदी ६ चं० (२ अक्टूबर १८८२) के पत्र (तृ. सं. की पूर्ण संख्या ५८५) के आगे अस्थान में छपा था हम इस संस्करण में प्रकरणानुसार यहां छाप रहे हैं।]

[1] सत्यार्थप्रकाश में नोट लिखने की स्वीकृति स्वामी जी ने पूर्ण संख्या ५७९ (पृष्ठ ६१२) तथा ५८५ (पृष्ठ ६१६) के पत्रों में दी थी।

[2] समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में कुछ स्थानों पर अपने नोटों के आगे 'समर्थदान' तथा 'स॰ दा॰' ऐसा निर्देश छापा था। सम्भवतः उसे देख कर ऋ० द० ने यह निर्देश दिया, अथवा कहीं समर्थदान नोटों के साथ अपना नाम न दे देवे, यह सोच कर छपे पृष्ठ विना देखे ही निर्देश दिया, यह हम नहीं कह सकते यदि पहले दिया होगा तब भी इतना निर्विवाद है कि इस पत्र के पहुंचने से पूर्व सत्यार्थप्रकाश के कुछ पृष्ठों पर उसका नाम छप चुका था। ऋ० द० के आदेशानुसार समर्थदान ने उन पर सादी चिप्पी चिपका दी थी। परन्तु वै. य. अजमेर से सं. १९२५ के शताब्दी संस्करण से आगे कई संस्करणों तक पुनः समर्थदान का नाम छप रहा है।

[3] यहां से आगे पत्र फटा हुआ है। इसी कारण तिथि का ज्ञान न होने में ठीक स्थान पर जोड़ने में असमर्थ हैं।

[4] इस पत्र की सूचना सेवकलाल कृष्णदास के ६ जनवरी १८८३ के पत्र में

[पूर्ण संख्या ६०८] पत्र (४०४)

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो[1]।

पत्र आप का आया समाचार विदित हुआ। ऐसे जो आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध व्याख्यान होते हैं तो उन को रोक दीजिये। यदि रोकने से न मानें तो दूसरे स्थान में करें। **और मेरी निन्दा करते हों उस पर कुछ ध्यान न देना चाहिये, क्योंकि निन्दक निन्दा ही किया करते हैं और क्षमावान् क्षमा ही करते हैं।** ऐसों की निन्दा से क्या हो सकता है। इन मुन्शी इन्द्रमणि तथा जगन्नाथदास का हाल मुझ से अधिक आप जानते ही हैं, क्योंकि **सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम्।** सो जैसे इन में गुण कर्म हैं वैसा करते हैं, करो। अब एक नई बात की है कि विज्ञापन के तौर पर लिख के छपवा के जहां तहां भेजा है कि जो धन मेरे मुकद्दमा के लिये आया था उस के मालिक स्वामी जी तथा लाला रामशरणदास जी बन बैठे। **देखो कैसी मिथ्या बात है।** ऐसी ऐसी बातों के प्रसिद्ध करने से इन की ही फजियत होगी। और **जगन्नाथदास आदि को समाज का सभासद नहीं, किन्तु कलंक समझना चाहिये।** ऐसे लोगों से कुछ सुधार की आशा नहीं होती कि जो पहिले अच्छे जान पड़ें और पीछे से बिगड़ जांय। अब इन की सब बातें खुलेंगी तब कोई भी इन का विश्वास न करेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना। सं० १९३९ पौष वदी १२ शनिवार[2]।

(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०९] पत्र (४०५)

बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो[3]।

विदित हो कि इस पत्र के भेजने का मुख्य प्रयोजन यही है कि जो यात्रा करने का प्रथम विचार किया था कि १५ दिन के पश्चात् यहां से

है। इसी पत्र के आधार पर यह आशय बनाकर लिखा है। सेवकलाल कृष्णदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[1] मूल पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद में सुरक्षित है।

[2] ६ जनवरी १८८३।

[3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

अन्यत्र की यात्रा करेंगे[१], उस में श्रीयुत आर्यकुल दिवाकर उदयपुराधीशों के अत्याग्रह से अब माघ शुक्ल १५ पर्यन्त रहना होगा। **छः शास्त्रों का विषय तो पढ़ा दिया है। अब मुख्य जो राजनीति का विषय है उसके लिये मनुस्मृति के ७वें अध्याय से ९वें तक पढ़ावेंगे।** यदि अब आप आना चाहैं तो हम को पत्र लिखो। जब हमारा पत्र तुम्हारे पास पहुंच जावे कि अब चलो, सवारी भेज दी है तब वहां से चलना चाहिये। और यदि अब न आया चाहो तो जब रेल[२] पर पहुंचेंगे तब आपको खबर देंगे। उस समय मिलना हो जायगा। पंडित लक्ष्मीदत्त आदि सभासदों से हमारा आशीर्वाद कहियेगा। शुभम्।

पौष वदी १४ सं० १९३९[३]।

[दयानन्द सरस्वती]

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१०]   पत्राशय (४०६)

[लालजी बैजनाथ जी, बम्बई]
विट्ठल रसोइया का वेतन दिलवा दो।[४]

—:o:—

---

१. इस का संकेत दुर्गाप्रसाद जी को लिखे गये पूर्ण संख्या ६०० के पत्र पृष्ठ ६३५, पं० १-३ में है।

२. अर्थात् ऐसे स्थान पर जहां रेल है।

३. ८ जनवरी सन् १८८३ सोम।

४. लालजी बैजनाथ के नाम का एक पत्र पूर्ण संख्या ३१ पर छप है। उक्त पत्राशय की सूचना लालजी बैजनाथ के २० जनवरी १८८३ के पत्र में है (इसे तीसरे भाग में देखें)। इन रुपयों के देने के लिये १ जून की आ० स० बम्बई की अन्तरङ्ग सभा ने निश्चय किया, परन्तु २५ जून तक नहीं दिये (द्र० तीसरे भाग में सेवकलाल कृष्णदास का २५ जून १८८३ का पत्र)। इसी बीच लालजी का ज्येष्ठ वदी ८ सं० १९४०=२९ मई का पत्र ऋ० द० को मिला जिसमें ४० रु० मनीआर्डर से भेजने को लिखा था (द्र० लालजी बैजनाथ का पत्र तीसरे भाग में) तदनुसार ऋ० द० ने अपने पास से ज्येष्ठ शु० ७ सं० १९४० (१२ जून १८८३) को ४० रु०

[पूर्ण संख्या ६११] पत्र (४०७)

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादक समीपेषु । मान्यवर नमस्ते ।[1]

विदित होय कि एक पत्र मुन्शी इन्द्रमणि जी के विज्ञापनरूप मेरे पास आया । इसका उत्तर बहुत लम्बा है । परन्तु इस समय इस पत्र के थोड़े से उत्तर को आप अपने पत्र में स्थान देकर मुझ को कृतार्थ कीजिये । यदि मुन्शी इन्द्रमणि जी अपने लेखानुसार सच्च हों तो उस व्यवहार में अन्यत्र से जितना आय व्यय हुआ हो आपके पत्र (दे० हि०) में छपवा के प्रसिद्ध करैं । और इसी प्रकार लाला रामशरनदास जी भी । जिस के देखने से सज्जन लोगों को स्वयं सत्यासत्य का विचार हो जायगा, अर्थात् समझ लेंगे । और उसी हिसाब के नीचे यह भी लिखा हो कि जिस जिस भद्र आर्यजन ने मुन्शी जी और मुसलमान मुरादाबाद के झगड़े में जितने रुपये जिस जिस के पास भेजे होयं और जिस जिस की रसीद भी उन के पास हो नाम लेख पूर्वक वह वह देशहितैषी पत्र सम्पादक के पास भेजें । और उस उस के पत्र को आप अपने पत्र में छपा कर प्रसिद्ध कर दिया करें । जिस से सत्य और असत्य सब साम्हने प्रकाशित हो जाय ।

इस में सत्य तो यह है कि मुन्शी जी जो झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और लाला रामशरणदास रहीस मेरठ के ऊपर आरोपित करते हैं, वह सब अपराध मुन्शी जी का है । क्योंकि जब मुन्शी जी पर मैजिस्टरेट मुरादाबाद ने ५००) रु० दण्ड किये थे उसके पश्चात् मुन्शी जी मेरठ में आये (जहां उस समय स्वामी जी भी उपस्थित थे) और कहा कि यह विवाद सब वेदमतानुयाइयों के ऊपर समझना चाहिये, न केवल

मनीआर्डर से भेजे (द्र० तीसरे भाग में ज्येष्ठ सुदी ७ सं० १९४० =१२ जून १८८३ का तथा उससे अगला विना तिथि का लाल जी बैजनाथ का पत्र) ।

[1] मासिक पत्र देशहितैषी अजमेर मास माघ सं० १९३९ के अंक १० खण्ड १ के पृष्ठ २८.३६ से लिया गया । रजिस्टर देशहितैषी अजमेर में इस का संकेत है । श्री मुन्नालाल ने ३–१-१८८३ को श्री स्वामी जी को "मुन्शी इन्द्रमणि के विज्ञापन का खण्डन" लिखने के लिये पत्र लिखा था । उसी के उत्तर में यह खण्डन श्री स्वामी जी ने लिख कर भेजा । पूर्ण संख्या ६०८ के पत्र पृष्ठ ६४०पर छपे 'अब इन की सब बातें खुलेंगी' शब्दों का संकेत सम्भवतः इसी उत्तर की ओर है ।

मुझपर[1]। इस पर स्वामी जी और अन्य सब सज्जनों ने कहा कि यह ठीक है। क्योंकि मुन्शी जी ने वेदमत की रक्षा के लिये इतना बड़ा परिश्रम किया है। इसलिये इस समय इस मामले में सब वैदिकों को सहाय करना उचित है। इस पर सब की यही सम्मति हुई कि इस बात के लिये एक सभा नियत हो और चन्दा इकट्ठा करे। जिस से उस के आय व्यय का हिसाब वह सभा रक्खे। और मुन्शी जी को उस में से इतना धन दिया जाय कि जितना खरच होना उचित होय। अन्त को यह सभा मेरठ में नियत हुई। और मुन्शी जी से कहा कि जो कोई आप के पास रुपये भेजे उन को आप भी इस सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास जी के पास भेज दिया करें[2]। और उस के आय व्यय की परताल (जांच) यह सभा किया करे और हिसाब भी लेवे। इन सब बातों को मुन्शी जी ने भी स्वीकार स्वामी जी आदि के सम्मुख किया था। और यह भी उसी समय निश्चय हुआ था कि सिवाय उस सभा के सभासद् के दूसरे से उस धन का आय व्यय वा संख्या प्रसिद्ध तब तक न करनी चाहिए कि जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय। यदि चंदे का धन कम आवे और खर्च अधिक करना होय तो किसी योग्य धनाढ्य पुरुष से सभा उधार लेकर कार्य्य करे। इसी लिये लाला रामशरणदास जी ने जमा धन की संख्या मुन्शी जी को नहीं बतलाई थी। क्योंकि सभाकी आज्ञा बतलाने की नहीं थी। इस गुण को मुंशी जी ने दोष समझा। धन्य है मुंशी जी की बुद्धिमत्ता को। इससे सब सज्जन लोग समझ सक्ते हैं कि यह मुंशी जी को संख्या न बतलाने में लाला रामशरणदास जी का दोष है वा इस पर क्रोधित होकर यथा तथा कुवाच्य कहने लिखने में मुंशी इन्द्रमणि जी का।

इस विपरीत व्यवहार का कारण यह विदित होता है कि जब इधर-उधर से बहुत धन मुन्शी जी के पास आने लगा तब लोभ के वश में होकर जो पूर्वोक्त नियम अर्थात् जितना धन मुंशी जी के पास आवे वह

---

[1] बाबू दुर्गाप्रसाद, फरुखाबाद को २५ अगस्त सन् १८८० के पत्र में मुं० इन्द्रमणि जी लिखते हैं—"चूंकि वह काम धर्म का है, इस में सब आर्यों को कोशिश करनी चाहिये।"

[2] अपने ६ सितम्बर १८८० के पत्र में मुन्शी इन्द्रमणि जी बाबू दुर्गाप्रसाद को पुनः लिखते हैं—"चंदा सब जगह का स्वामी जी के पास जमा हो रहा है। बवक्त जरुरत आजावेगा।"

मेरठ सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरण जी के पास तो भेजना दूर रहा, किन्तु जब लाला रामशरणदास जी ने कई वार पत्र भेज कर हिसाब मांगा तो मुंशी जी ने मौन साध के हिसाब नहीं दिया। तब लाला रामशरण दासजी को निश्चय हुआ कि मुन्शी जी के मन में कुछ अन्य आशय है। इस बात के निश्चयार्थ लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के पास लाला रामशरण दास जी ने पत्र भेजा कि मुन्शी जी से हिसाब पूछ कर मेरे पास भेजो। उनको भी मुन्शी जी ने हिसाब नहीं दिया, किन्तु इस सर्ववैदिक मत के रक्षार्थ धन को अपना निज धन ही समझ लिया। जब से लाला रामशरणदास जी ने मुंशी जी को धन देना बन्द किया और स्वामी जी को पत्र द्वारा विदित किया तब **स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस समय इस बात के होने से कार्य्य में विघ्न होगा, कार्य्य होने दीजिये।** और (६००) रु० जो मांगते हैं दे दीजिये। तब उन्होंने दे दिये। और इस से अधिक धन मुंशी जी को कितना दिया और कितना लाला रामशरणदास जी के पास जमा रहा यह बात हिसाब छपने से सब को प्रसिद्ध हो जाएगी। **और स्वामी जी ने उक्त लाला श्यामसुन्दर कोठी वाले रईस मुरादाबाद के पास पत्र भेजा कि मुंशी जी से हिसाब लेकर लाला रामशरणदास जी के पास भिजवा दीजिये।** उन्होंने उत्तर दिया कि मुंशी जी हिसाब तो नहीं बतलाते, किन्तु इस विषय में पूछा जाता है तो कुछ भी नहीं कहते। **धन्य रे धन, तेरे में बड़ी आकर्षण शक्ति है, कि तू बड़ों-बड़ों को भी धर्म से डिगा कर नीचे गिरा देता है।** जब देहरेदून से आते समय मेरठ के स्टेशन पर लाला रामशरणदासादि से मेल हुआ तब मुन्शी जी के विषय की बात सुन बड़ा आश्चर्य मान के उन से (स्वामी जी ने) कहा कि मैं कोयल[1] इसी लिये ठहर के वहां मुन्शी जी को बुला कर समझा दूंगा।

स्वामी जी ने कोयल में आकर मुन्शी जी को बुलाने के लिये तार दिया। उस के उत्तर में मुंशी जी ने तार में खबर दी कि मैं बीमार हूं। नारायणदास प्रयाग को गया है। अर्थात् मैं नहीं आ सकता। **पश्चात् स्वामी जी ने आगरा में आकर मुन्शी जी के पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सत्य है तो इस में आप की बड़ी निन्दा होगी। आप यहां शीघ्र आइये।**

---

[1] कोयल—अलीगढ़ का नाम है। कोयल अर्थात् अलीगढ़ जाने का वृत्त पं० लेखराम, पं० घासीराम, स्वामी सत्यानन्द आदि किसी ने नहीं लिखा। इस लेख से निश्चित हो जाता है कि श्री स्वामी जी कुछ दिन कोयल में रहे।

मुन्शी जी ने बहुत क्रोधित होकर असभ्यता की बातें जो कि उनके लिखने के योग्य न थीं लाला रामशरणदास जी की निन्दापूर्वक बहुत सी लिखी। और यह भी उस पत्र में लिखा कि आप लाला रामशरणदास जी से हिसाब मंगवाइये। **स्वामी जी ने तब लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिख कर मेरे पास यहां भेज दीजिये। जब मैं आप के हिसाब को मुन्शी जी को दिखला दूंगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे।** इस के थोड़े ही दिनों के पश्चात् मुन्शी जी तथा लाला जगन्नाथदास जी आदि मथुरा होते हुए आगरे में स्वामी जी के पास आए। जब स्वामी जी ने उन से कहा कि हिसाब लाए हो या नहीं, तब मुन्शी जी ने कहा कि हां लाये हैं। परन्तु पहले लाला रामशरणदास जी का हिसाब मंगा लो तब हम भी दिखा देंगे। तब स्वामी जी ने कहा कि जब आप के पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते। तब पुनः मुन्शी जी और लाला जगन्नाथदास जी ने कहा कि उन का हिसाब आने दीजिये तब दिखलावेंगे।

पाठकगणों! परमेश्वर की कृपा और लाला रामशरणदास जी सच्चाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आ गया। स्वामी जी ने मुन्शी जी तथा लाला जगन्नाथदास जी को दिखला दिया। पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि अब तुम दिखलाओ। तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बैग को हाथ लगाया। इधर उधर हाथ फेर कर कहा कि वह हिसाब का कागज तो मैं मुरादाबाद ही में भूल आया। सभ्यगणों! देखो। क्या मिली हुई गुरु चेले की भक्ति है। तब स्वामी जी ने कहा कि जितना आप को स्मरण होय उतना ही कण्ठ से लिखवाइये। तब मुन्शी जी लिखवाने लगे। अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिखवाया। और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है। हम मुरादाबाद पहुंच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे। सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेंय कि मुन्शी जी सच्चे हैं वा लाला रामशरणदास जी।

तब मुंशी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितंडावाद करने लगे। और कहा कि जो २५०) रु० लाला बल्लभदास जी ने भेजे थे, सो इस हिसाब में जमा क्यों नहीं। तब स्वामी जी ने कहा कि वे रुपये तो गुरदासपुर में मेरे नाम आये थे। मैंने लाला रामसरणदास जी को दिये थे। न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किये। इस का समाचार मैं लिख कर मंगवा

दूंगा। स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामसरनदास जी को पत्र लिख उत्तर मंगवाया। तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुंशी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरदासपुर के भी २५०) रु० जमा लिखे गये हैं। अर्थात् जिस दिन १५०) रु० लाहौर समाज से आये थे। उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिये थे। भूल से ४००) रु० लाहौर समाज के नाम जमा किये गये हैं। अब मुंशी जी इस का निश्चय करें वा करावें। अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा। यदि भेजा हो तो जिस के पास स्वामी जी के हस्ताक्षर रसीद होगी, भले ही प्रसिद्ध से छपवा देवे। किन्तु स्वामी जी की कुछ इस में विपरीत बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) रुपयों के मेरे पास एक कौड़ी किसी की नहीं आई। क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता वा पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो। क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है। इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुंशीजी हैं, कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों में अपना मतलब सिद्ध करने के लिए अंड बंड छपवा कर स्वप्रयोजन सिद्ध किया। और अपनी प्रशंसा पर बट्टा लगाया। शोक है कि यह धन बुरी बला है, जो बड़े बड़े चतुरों को भी फंसा लेती है।

उसी दिन स्वामी जी ने मुंशी जी से कहा कि हिसाब ठीक ठीक मेरठ सभा में भेज दीजिये। जो एक नियम हुआ है उसका तोड़ना अच्छा नहीं। आप पूर्वकृत नियमानुसार वर्तिये, जिस से प्रीतिपूर्वक सब सहायक रहें। इसी में अच्छा है। विरोध होना अच्छा नहीं। तब तो मुंशी जी और लाला जगन्नाथदास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है। इसके मालिक हम हैं। हमारे पर यह सब मामला चला है। हमारे नाम चन्दा आता है। जो आता है हमारा ही है। और लाला जगन्नाथदास जी बोले कि यदि आप से कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे, क्या आप देंगे? स्वामी जी ने कहा कल्ल लेते आज ही लो। यहां कोई बात गुप्त नहीं। किन्तु जब कोई आर्य्य समाज का प्रतिष्ठित सभासद् हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं। तब स्वामी जी ने मुंशी जी को एकांत में ले जाके समझाया कि ऐसी बात करना आप को उचित नहीं है। एक तो वह बात थी जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म वालों का मामला है। मेरा अकेले का नहीं और इस से

विरुद्ध आज की बात है कि मेरे ही अकेले का मामला आदि है। सुनिये मुंशी जी यदि मैं आप को पहले से ऐसा जानता तो आपके साथ एक क्षण-मात्र भी न ठहरता और आप का कुछ भी समर्थ नहीं था कि अकेले इस प्रकार का सहाय प्राप्त कर सकते। अस्तु मैं तो उसी बात को समझता हूं कि यह सब वैदिकमतानुयायियों के साथ की बात है। तब तो मुंशी जी कुछ शान्त हुए। तब स्वामी जी ने कहा कि अब शेष कार्य्य आप सिद्ध कीजिये। और प्रयाग में एक दो पुरुषों का नाम लिखवाया कि उन की सम्मति से सब काम कीजियेगा। और मुरादाबाद पहुंच के हिसाब मेरठ में शीघ्र भेज दीजियेगा। मुंशी जी ने कहा कि जाते ही भेज दूंगा। सो भी न किया और न हिसाब भेजा। करते और भेजते तब, जब उन के मन में शुद्ध भाव होता। किन्तु वहां प्रयाग में भी गुप्त व्यय कर कराके जैसा कि मुरादाबाद जजी में व्यय व्यवस्था हुई थी वैसे ही प्रयाग से करा अपनी नीयत का फल पा कर चले आये। फिर भी न जाने किस किस सज्जन पुरुष के पुरुषार्थ से श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर से प्रार्थना करके १००) रु० का दण्ड भी माफ कराया गया।

यदि अब भी मुंशी जी अपनी बात को सच्चा करना चाहे तो उस मुसलमानों के साथ के मामले में जहां जहां से जितना जितना धन जिस जिस ने भेजा उनका नाम ठिकानादि सहित लिख और जितना जितना जिस जिस कार्य में व्यय हुआ हो प्रसिद्ध सब समाचारों में छपवादें। और जितना धन उस मामले के विषय में व्यय से शेष रहा हो उसको मेरठ सभा में भेज देवें। क्योंकि जो मेरठ सभा का वह निश्चित हुआ था कि यदि मुंशी जी के मामले से चन्दे का धन बचे तो उसका क्या किया जाय। इस पर सब की यही सम्मति हुई थी कि उस धन को ।।) आने ब्याज में किसी धनाढ्य के पास रखा जाय और जब जब अन्य मतावलम्बियों के साथ वैदिक आर्यों का विवाद राजन्याय घर में चले तब उसी में इसका व्यय किया जाय अन्यत्र नहीं। क्योंकि यह धन इसी बात के लिए इकट्ठा किया जाता है। और जैसा आज मुंशी जी पर कष्ट पड़ा है सम्भव है कि अन्य पर भी कभी न कभी आ पड़े। इस लिए इस धन की स्थिरता और उन्नति सदा करते जाना चाहिये। परन्तु पाठकगणो इस महोपकारक कार्य को मुंशीजी के लोभ ने बढ़ने न दिया। अब बुद्धिमान् लोग विचार कर लेवें कि इस में स्वामी जी और लाला रामशरणदास जी का अन्यथा

व्यवहार है वा मुंशी इन्द्रमणि जी का। अधिक लिखना बुद्धिमानों के साम्हने आवश्यक नहीं। क्योंकि प्राज्ञ जन थोड़े ही लेख से बहुत समझ लेते हैं। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

निधिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषमासे सिते दले ।
प्रतिपत् सौम्यवारे हि पत्रमेतदलेखिषम् ॥१॥

सम्बत् १९३९ पौष शुक्ले १ बुधवासरे ॥

वही आप का परम मित्र
उचित वक्ता[२]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१२] मनिआर्डर-सूचना (१)

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]
२५) रु० घड़ी के लिये।[३]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१३] पत्र-सारांश (४०८)

[सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज मुम्बई]

घड़ी भेजो। गोरक्षा की सही के कागज भेजो। समाजस्थान का सब हिसाब भेजो। विट्ठल का लेना देना चुका दो।[४] [अथर्ववेद की टीका और ऋषि छन्द ढूंढ कर भेजो।][५]

१७ जनवरी १८८३[६]।

---

१. १० जनवरी सन् १८८३। २. देखो पृ० ६४२ की टिप्पणी १।

३. इस मनिआर्डर की सूचना सेवकलाल कृष्णदास के २० जनवरी १८८३ के पत्र में है। पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. इस पत्र का संकेत और अभिप्राय सेवकलाल कृष्णदास के १९ जनवरी के पत्र में है। पत्र तीसरे भाग में देखें।

५. इस का संकेत सेवकलाल कृष्णदास के १९ जनवरी १८८३ के पत्र में तो नहीं है, परन्तु २० जनवरी के पत्र में मिलता है। हो सकता है यह अंश ऋ० द० ने किसी अन्य पत्र में लिखा हो। आवश्यक अंश होने से हमने इसे यहां जोड़ कर सुरक्षित किया है। ६. पौष शुक्ल ९, सं० १९३९, बुधवार।

[पूर्ण संख्या ६१४] पत्र-सूचना (७१)

[लाला रामशरणदास, मेरठ]
इन्द्रमणि के विज्ञापन के साथ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१५] पत्र-सारांश (४०९)

[श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी, फरुखाबाद]
कहार रसोइया तथा शोधक और कोषाध्यक्ष के लिए[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१६] पत्र (४१०)

ओ३म्[3]

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो—

विदित हो कि कई एक पत्र भेज चुके हैं[4]। एक का भी प्रत्युत्तर नहीं मिला, क्या कारण है? तुम्हारा शरीर तो स्वस्थ है? जैसा हो वैसा शीघ्र लिखो। और भेजे हुए पत्रों का भी उत्तर भेजना। **आज अत्यन्त**

---

[1] इस का निर्देश लाला रामशरणदास के २१ जनवरी १८८३ के पत्र में है। रामशरणदास का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] इस पत्र का संकेत ४ मार्च १९८३ (=फा० व० १० सं० १८३९) के पूर्ण संख्या ६३० (पृष्ठ ६६२) के पत्र में है। इस विषय में बा० दुर्गाप्रसाद का २० फरवरी १८८४ का पत्र भी तीसरे भाग में देखें।

[3] आर्यधर्मेन्द्रजीवन तृतीय संस्करण, पृ० ३७६ पर मुद्रित। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित होगा।

[4] इस से पूर्व का मार्ग शु० १०सं०१९३९ (=१९ दिस० १८८२)का पत्र पूर्ण संख्या ६०५ पर छप चुका है। एक अज्ञात तिथि का अधूरा पत्र पूर्ण संख्या ६०६ पर छपा है। यहां जिन पत्रों की ओर संकेत है वे पत्र हमें प्राप्त नहीं हुए।

अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिए निकाल दिया है। उस को मुख न लगाना। लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान न देना॥

मार्ग बदी ५ रवि[1]।

उदयपुर। दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१७] पत्र-सूचना (७२)

[आनन्दीलल जी (?) मन्त्री आ० स० मेरठ]

गुरुदासपुर के १५०) रुपये के सम्बन्ध में[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१८] आशीःपत्र-सूचना (७३)

पुत्र जन्म पर शुभाशीः[3]।

[माघ शु० २ शुक्र सं० १९३९][4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१९] पत्रांश (४११)

[भाई जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]

हम मद्रास्यों को भूल रहे हैं। उधर जाना उत्तम होगा।[5]

१७ फरवरी १८८३ से पहले।

---

[1] २८ जनवरी १८८३। आर्यधर्मेन्द्रजीवन में भूल से 'मार्ग' लिखा है। मार्ग वदी ५ को बुधवार था, मार्ग शु० ५ को शुक्रवार। अतः यहां माघ होना चाहिये।

[2] आर्यसमाज मेरठ के रजिस्टर (जो लाहौर में नष्ट हो गया) में अन्तरङ्ग सभा १५ फरवरी १८८३ के विषय में लिखा है—

"श्री स्वामी जी महाराज का खत पेश होकर तजवीज हुई कि गुरुदासपुर समाज के १५०) रुपये की बाबत खबर मंगानी चाहिये"। यह पत्र जनवरी १८८३ के अन्त में उदयपुर से भेजा गया होगा।

[3] इस आशीःपत्र का उल्लेख महाराणा सज्जनसिंह के सं० १९३९ माघ शु० २ मंगलवार के पत्र में हैं। महाराणा जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] यह तिथि आनुमानिक है। ९ फर्वरी १८८३।

[5] इस का संकेत भाई जवाहरसिंह के १७ फरवरी १८८३ के पत्र में है। इस पत्र को तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ६२०] पत्रांश (४१२)

[भाई जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]।

दो स्त्रियां ऐसी चाहियें जो पतिवाली शुद्धाचरणवाली, कसीदा काढ़ना और पढ़ाना जानने वाली हों। एक अन्तरङ्ग मन्त्री शाहपुरा राज्य के लिए चाहिये। एक ओवरसियर भी चाहिए। "यह देश के हित का काम है।……जिन के भाग्य होंगे वह आयेंगे।"[1]

[१७ फरवरी से पहिले।]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२१] पत्र-सूचना (७४)

[जोशी लालजी कल्याणजी][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२२] कार्ड (४१३)

ओ३म्

आर्यवर श्री बाबू रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का आशीर्वाद विदित हो। जगदीश की कृपा से यहां सब प्रकार आनंद मंगल है। आशा है कि तुम्हारे यहां भी सब प्रकार से कुशलता होगी। अब श्रीयुत जगद्गुरु श्री स्वामी जी यहां उदयपुर से फाल्गुन शुदी[3] ७ गुरु० सम्वत् १९३९ को यात्रा अजमेर की ओर करेंगे, सो जानना। आगे जहां जाके निवास करेंगे सो तुम को लिखूंगा। बहुत दिनों से तुम ने अपना कुशल पत्र नहीं दिया। इस में क्या कारण हुआ? अब आप इस पत्र के पहुंचते

---

[1] इन विषयों का संकेत भी भाई जवाहरसिंह के १७ फरवरी १८८३ के पत्र में ही है। वहां ऋ० द० के दो पत्र पहुंचने का निर्देश है। जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग के देखें।

[2] इस पत्र की सूचना जोशी लालजी कल्याणजी के सं० १९४० वैशाख सुद ९ (१५ मई १८८३) के पत्र में है। जोशी जी के पत्र के अनुसार ऋ० द० का यह संकेतित पत्र ४-५ मास पूर्व कानपुर में पहुंचा था। जोशी लालजी कल्याणजी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] "बदी" चाहिये। १ मार्च १८८३ को चले। देखो पत्र पूर्ण संख्या ६२८ (पृष्ठ ६५९)।

ही अपना कुशल पत्र भेजना। क्या मैंने एक वार तुम को लिखा था कि मैं श्री गुरु जी के पास से जाने वाला हूं, इस बात से न [पत्र] भेजा हो। परन्तु जिस बात के न होने से मैं जाना चाहता था अर्थात् पठन [न] होने से[1] सो दयानिधि गुरु जी ने मेरे पढ़ने के लिये आधा दिन दे दिया है। सो बड़ा पढ़ना होता है। अब अष्टाध्यायी के ५ अध्याय कंठ हो गये हैं। ६[ठा] अध्याय पढ़ता हूं। श्री गुरु जी का आशीर्वाद विदित हो॥

मिति माघ शुदी १२ रवि० सं० १९३९[2]।

रामानन्द ब्रह्मचारी उदयपुर।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२३] पत्र (४१४)

[डी०रे०ए० राजा पाकसा कापनिया वालनवा मालपति मदुरा लङ्का]

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप लंका के एक प्रतिष्ठित परिवार के हैं[3]।

२७ फरवरी [सन् १८८३]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२४] पत्र-सारांश (४१५)

[श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी फरुखाबाद]

रामनाथ कौन है, क्या पढ़ा है और नागरी लिखना जानता है वा नहीं। और हमारे साथ कब रहा है?[4] कौन वर्ण है? कहां का रहने वाला

---

[1] इसका संकेत पूर्ण संख्या ५९५ के पत्र के आरम्भ में 'दूसरा प्रयोजन' के अन्तर्गत है। द्र० पृष्ठ ६२३, पं० ७-८।

[2] १८ फरवरी सन् १८८३। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[3] देखो मास्टर लक्ष्मण जी सम्पादित उर्दू जी० चरित परिशिष्ट पृष्ठ २७९ [यहां पृष्ठ संख्या अशुद्ध छपी है २६३ चाहिये। यु० मी०]

[4] इस रामनाथ को बा० दुर्गाप्रसाद जी ने फर्रुखाबाद से श्री स्वामी जी महाराज के पास लेखक के रूप में भेजा था। यह स्वामी जी महाराज के पास भाद्र शु० ७ शनिवार १९३७ (११ सितम्बर १८८०) को मेरठ पहुंचा था। द्र० पूर्ण संख्या ३४३ (प्रथम भाग, पृष्ठ ४०७)।

है और मुरादाबाद वाले के लिये लिखा था कि जब तक बड़ा हानिकारक अपराध न करे न निकाला जायगा। सो भी आप के आधीन निकालना वा रखना होगा।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२५] स्वीकार-पत्र[2] (२)

॥ श्रीरामजी ॥

परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीस्वामिकृत स्वीकार-पत्र की प्रति ॥

राजकीय
मुद्रा

आज्ञा (राज्ये श्रीमहद्राजसभा) संख्या २९०

आज यह स्वीकारपत्र श्रीमान् श्री १०८ श्रीजी धीरवीर चिरप्रतापी विराजमानराज्ये श्रीमहद्राजसभा के सम्मुख स्वामीजी श्री दयानन्द सरस्वती जी ने सर्वरीत्या अङ्गीकार किया अत एवः—

आज्ञा हुई—

कि प्रथम प्रति तो इस स्वीकारपत्र को स्वामीजी श्री दयानन्द सरस्वतीजी को राज्ये श्री महद्राजसभा के हस्ताक्षरी और मुद्राङ्कित दी जावे और दूसरी प्रति उक्त सभा के पत्रालय में रहे और एक-एक प्रति इसको राज यन्त्रालय में मुद्रित होकर इस स्वीकारपत्र में लिखे सब सभासदों के पास उन के ज्ञातार्थ और इसके नियमानुसार वर्तने के लिये भेजी जाये,

---

[1] यह सारांश ४ मार्च १८८३ (=फा० व० १० सं० १९३९) पूर्ण संख्या ६३० (पृष्ठ ६६२) के पत्र में निर्दिष्ट है। ऋ० द० ने यह पत्र बाबू दुर्गाप्रसाद के माघ सु० १४, सं० १९३९ (२० फर्वरी १८८३) के पत्र के उत्तर में लिखा था। बा० दुर्गाप्रसाद का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] प्रथम स्वीकार पत्र की रजिस्ट्री १० अगस्त १८८० (=श्रावण शु० ४ मङ्गलवार सं० १९३७) के दिन मेरठ में हुई थी। वह पूर्ण संख्या ३२८ पृष्ठ ३८२-३८६ पर छपा है। यह दूसरा तथा अन्तिम स्वीकार-पत्र है। राजयन्त्रालय उदयपुर में मुद्रित मूल स्वीकार-पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

संवत् १९३९ फाल्गुन शुक्ला[1] ५ मङ्गलवार तदनुसार ता० २७ फेब्रुएरी सत् १८८३ ई० ।

हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य
(श्रीमेदपाटेश्वर और राज्ये श्रीमहद्राजसभापति)

—:०:—

(राज्ये श्रीमहद्राजसभा के सभासदों के हस्ताक्षर—

१ राव तख्तसिंह बेदले
२ राव रत्नसिंह पारसोली
३ द० महाराज गजसिंह का
४ द० महाराज रायसिंह का
५ हस्ताक्षर मामा बख्तावरसिंहस्य
६ द० राणावत उदयसिंह
७ हस्ताक्षर ठाकुर मनोहरसिंह
८ हस्ताक्षर कविराज श्यामलदासस्य
९ हस्ताक्षर सहीवाला अर्ज्जुनसिंह का
१० दा० रा० पन्नालाल
११ ह० पुरोहित पद्मनाथस्य
१२ जा० मुकुन्दलाल
१३ ह० मोहनलाल पण्ड्या

स्वीकारपत्र ॥

मैं स्वामी दयानन्दसरस्वती निम्नलिखित नियमानुसार त्रयोविंशति सज्जन आर्य्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उस को परोपकार सुकार्य में लगाने के लिये अधिष्ठाता करके यह पत्र लिखे देता हूं कि समय पर कार्यकारी हो। जो यह एक सभा कि जिसका नाम परोपकारिणीसभा है उस के निम्नलिखित त्रयोविंशति सज्जन पुरुष सभासद् हैं उन में से इस सभा के सभापतिः—

१. श्रीमन्महाराजाधिराज महीमहेन्द्र यावदार्य्यकुलदिवाकर महाराणा जी श्री १०८ श्रीसज्जनसिंहजी वर्म्मा धीरवीर जी० सी० एस० आई० उदयपुराधीश हैं, उदयपुर राज मेवाड़ ।

---

[1] यहां भूल से "कृष्णा" के स्थान में "शुक्ला" छपा है । कृष्णा ५ चाहिये, क्योंकि २७ फरवरी को फाल्गुन कृष्णा ५ मङ्गलवार था। फाल्गुन शुक्ला ५ को भी मङ्गलवार था, परन्तु उस दिन तारीख १३ मार्च थी। अगले फाल्गुन वदी १० पूर्ण संख्या ६२८, के पत्र पृष्ठ ६६० से भी इस भूल पर प्रकाश पड़ता है । उस में लिखा है—"हम उदयपुर से फाल्गुन वदी ७ गुरुवार के दिन……चले । गत पञ्चमी मङ्गलवार के दिन सायंकाल ७ बजे……स्वीकारपत्र—…श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाकर…… ।"

२ उपसभापति लाला मूलराज एम० ए० एक्स्ट्रा एसिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहौर जन्मस्थान लुधियाना ।

३ मन्त्री श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी उदयपुर राज मेवाड़ ।

४ मन्त्री लाला रामशरणदास रईस उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ ।

५ उपमन्त्री पण्डया मोहनलाल विष्णुलालजी निवास उदयपुर जन्मभूमि मथुरा ।

सभासद् ।

नाम   स्थान

१ श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुरा राज मेवाड़

२ श्रीमत् राव तख्तसिंहजी वर्म्मा बेदला राज मेवाड़

३ श्रीमत् राज्य राणा श्रीफतहसिंहजी वर्म्मा देलवाड़ा राज मेवाड़

४ श्रीमत् रावत अर्जुनसिंहजी वर्मा आसींद राज मेवाड़

५ श्रीमत् महाराज श्रीगजसिंहजी वर्म्मा उदयपुर मेवाड़

६ श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंहजी वर्म्मा मसूदा ज़िले अजमेर

७ रावबहादुर पं० सुन्दरलाल सुपरेंटेंडेंट वर्कशोप और प्रेस अलीगढ़ [1]आगरा

८ राजा जयकृष्णदाल सी० एस० आई० डिपुटी-कलक्टर बिजनौर [1]मुरादाबाद

९ बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्य्यसमाज व रईस फर्रुखाबाद

१० लाला जगन्नाथप्रसाद रईस फर्रुखाबाद

११ सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद [1]विसाऊ राजपूताना

१२ लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद

१३ बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसर्यट छावनी मुरार कानपुर .

१४ लाला साईदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर

१५ बाबू माधवदास[2] मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर

१६ रावबहादुर रा० रा० पण्डित गोपालराव हरि देशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर बम्बई और प्रधान आर्य्य समाज बम्बई पूना

१८ रावबहादुर रा० रा० महादेव गोविन्द रानडे जज्ज पूना

१८ पं० श्यामजी कृष्ण वर्म्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनीवरसिटी आक्सफोर्ड लंडन [1]बम्बई

---

[1] वर्तमान पते के साथ निर्दिष्ट यह नगर का नाम मूल स्थान का निर्देशक है ।

[2] इन का उल्लेख पत्रों में माधोलाल, माधोप्रसाद नामों से हुआ है ।

नियम ।

१ उक्त सभा जैसे कि वर्तमानकाल वा आपत्काल में नियमानुसार मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके सर्वहितकारी कार्य में लगाती है, वैसे मेरे पश्चात् अर्थात् मेरे मृत्यु के पीछे भी लगाया करे: -

प्रथम—वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनको व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने छापने छपवाने आदि में ।।

द्वितीय–वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशकमंडली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेज कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में ।।

तृतीय–आर्यावर्त्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के संरक्षण पोषण और सुशिक्षा में व्यय करे और करावे ।।

२ जैसे मेरी विद्यमानता में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे मेरे पश्चात् भी तीसरे वा छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब किताब समझने और पड़तालने के लिये भेजा करे और वह सभासद् जाकर समस्त आय व्यय और संचय आदि की जांच पड़ताल करे और उनके तले अपने हस्ताक्षर लिखदे और उस विषय का एक-एक पत्र प्रति सभासद् के पास भेजे और उसके प्रबन्ध में कुछ हानि लाभ देखे उस की सूचना अपने भी परामर्श सहित प्रत्येक सभासद् के पास लिख भेजे, पश्चात् प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी-अपनी सम्मति सभापति के पास लिख कर भेजदे और सभापति सब की सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करे और कोई सभासद् इस विषय में आलस्य अथवा अन्यथा व्यवहार न करे ।।

३ इस सभा को उचित है किन्तु अत्यावश्यक है कि जैसा यह परमधर्म और परमार्थ का कार्य है उसको वैसा ही उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे ।।

४ मेरे पीछे उक्त त्रयोविंशति आर्यजनों की सभा सर्वथा मेरे स्थानापन्न समझी जाय अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और रहे । यदि उक्त सभासदों में से कोई इन नियमों से विरुद्ध स्वार्थ के वश होकर वा कोई अन्य जन अपना अधिकार जतावे तो वह सर्वथा मिथ्या समझा जाय ।

५ जैसे इस सभा को अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्त्तमान समय में मेरी

और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा और उन्नति करने का अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार करने कराने का भी अधिकार है अर्थात् जब मेरा देह छूटे तो न उस को गाड़ने, न जल में बहाने, न जङ्गल में फेंकने दे, केवल चन्दन की चिता बनावे और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पांच सेर कपूर, ढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ठ लेकर वेदानुकूल जैसे कि संस्कारविधि में लिखा है वेदी बनाकर तदुक्त वेद-मन्त्रों से होम करके भस्म करे इस से भिन्न कुछ भी वेदविरुद्ध क्रिया न करे और जो सभाजन उपस्थित न हों तो जो कोई समय पर उपस्थित हो, वही पूर्वोक्त क्रिया कर दे और जितना धन उसमें लगे उतना सभा से ले ले और सभा उसको दे दे।।

६ अपनी विद्यमानता में और मेरे पश्चात् यह सभा चाहे जिस सभासद् को पृथक् कर के उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग्य सामाजिक आर्य-पुरुष को नियत कर सकती है, परन्तु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जाय, जब तक उसके कार्य में अन्यथा व्यवहार न पाया जाय।।

७ मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्र की व्याख्या वा उस के नियम और प्रतिज्ञाओं के पालन वा किसी सभासद् के पृथक् और उस के स्थान में अन्य सभासद् के नियत करने वा मेरे विपत् और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करै, जो समस्त सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया वा पावे और जो सम्मति में परस्पर विरोध हो तो बहुपक्षानुसार प्रबन्ध करे और सभापति की सम्मति को सदैव द्विगुण जाने ।

८ किसी समय भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध की परीक्षा कर पृथक् न कर सके, जब तक पहिले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले।।

९ यदि सभा में से कोई पुरुष मर जाय वा पूर्वोक्त नियमों और वेदोक्त धर्मों को त्याग कर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभा के सभापति को उचित है कि सब सभासदों की संमति से पृथक् करके उसके स्थान में किसी अन्य योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्य पुरुष को नियत करदे, परन्तु जब तक नित्यं-कार्य के अनन्तर नवीन कार्य का आरम्भ न हो ।

१० इस सभा को सर्वथा प्रबन्ध करने और नवीनयुक्ति निकालने का

अधिकार है, परन्तु जो सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा-पूरा निश्चय और विश्वास न हो, पत्र द्वारा समय नियत करके संपूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे ॥

११ प्रबन्ध न्यूनाधिक करना वा स्वीकार वा अस्वीकार करना वा किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना वा आय व्यय और संचय का जांच पड़ताल करना आदि लाभ हानि सब सभासदों को वार्षिक वा षाण्मासिक पत्र द्वारा सभापति छपवाकर विदित करै ।

१२ इस स्वीकार-पत्र सम्बन्धी कोई झगड़ा टंटा सामयिक राज्याधिकारियों की कचहरी निवेदन न किया जाय । यह सभा अपने आप न्यायव्यवस्था करले, परन्तु जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो तो राज्यगृह में निवेदन करके अपना कार्य सिद्ध करले ॥

१३ यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य्यजन को पारितोषिक अर्थात् पेनशन देना चाहूं और उसकी लिखित पढ़त कराके रजिस्टरी करा दूं तो सभा को उचित है कि उसको माने और दे ।

१४ किसी विशेष लाभ उन्नति परोपकार और सर्वहितकारी कार्य के वश मुझे और मेरे पीछे सभा को पूर्वोक्त नियमों के न्यूनाधिक करने का सर्वथा सदैव अधिकार है ॥

ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२६] पत्र-सारांश (४१६)

श्री शाहपुराधीश नाहरसिंह वर्मा]
हम उदयपुर से चलकर चित्तौड़ पहुंच गये हैं ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२७] पत्र-सारांश (४१७)

[भाई जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]

---

[1] यह पत्र-सारांश शाहपुराधीश नाहरसिंह जी के फाल्गुन बदी २(१२ चाहिये) के पत्रानुसार बनाया है। चित्तौड़ ऋ० द० फाल्गुन वदि ७ (१ मार्च १८८३) की रात को पहुंचे थे । द्र० अगला पूर्ण संख्या ६२८ का पत्र ।

वैदिक यन्त्रालय के सहाय में लाहौर समाज से कितना रुपया गया था[1]। लगभग ४ मार्च १८८३। [चित्तौड़गढ़]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२८] पत्र (४१८)

ओ३म्[2]

मुन्शी समर्थदानजी आनन्दित रहो—

हम उदयपुर से फाल्गुन वदी ७ गुरुवार[3] के दिन घड़ी रात से राज की चार घोड़े की डाक बग्गी में चल के शाम के ५ बजे नीमाहेड़े पहुं[च]कर ९ बजे रात के चित्तौड़ में पहुंच गये, रेल में बैठकर। यहां तीन दिन ठहरेंगे। पश्चात् जहां जायेंगे तुम को खबर देंगे। अब उदयपुर का वर्त्तमान लिखते हैं। जब से हम उदयपुर में पहुंचे उस दिन से बहुत आनन्दित रहे। और नित्य प्रीति श्रीमान् महाशयों की बढ़ती ही गई। मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम पर्यन्त राजधर्म सब याथातथ्य पढ़ लिये। अन्य बहुत से महाभारतस्थ विदुरप्रजागर तथा ६ शास्त्रों के मुख्य-मुख्य विषय और चलते वक्त थोड़ा सा व्याकरण का विषय और अन्वय की रीति भी पढ़ ली। जैसा कि राजाओं को सत्यप्रतिज्ञ और पुरुषपरीक्षक और गुणज्ञ तथा स्वगुण स्वदोष के मानने वाले होने चाहियें, वैसे श्रीमान् महाशयार्य्यकुलदिवाकरों को मैंने देखा। बहुत से राजा मुझ से मिलें, परन्तु जैसी प्रसन्नता मेरी और उदयपुराधीश की परस्पर रही और आगे के लिये भी दृढ़ रहेगी, वैसी अन्य से बहुत न्यून सम्भावना है। अब जिस समाचार को तुम पूछा करते थे वह निम्नलिखित जानो। संस्कृत के अपने जो कि वेदाङ्गप्रकाशादि हैं उन का प्रचार राजकीय पाठशाला तथा चारणों की पाठशाला में कर दिया है।

---

[1] इस पत्र का संकेत भाई जवाहरसिंह के १६ मार्च १८८३ के पत्र में है। उक्त पत्रानुसार ८ दिन पहले श्री स्वामी जी का पत्र आ चुका था। जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] आर्यधर्मेन्द्रजीवन तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३७१-३७२ से लिया गया। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

[3] १ मार्च १८८३॥

वो जो प्रसिद्ध वा रहस्य[1] में राजधर्म, ईश्वर तथा वैदिकधर्म प्रचार, और शरीर, राजनीति आदि विषयों में उपदेश मैंने किया है, उस का आचरण बहुत सा कर लिया और करने को प्रतिज्ञा भी की है।

गत पञ्चमी मङ्गलवार के दिन[2] सायंकाल ७ बजे बड़े-बड़े सर्दार तथा कामदारों की सभा बुला के स्वीकारपत्र जो कि मेरठ में हम ने रजिस्टर कराया था, उस, में से एच० एच० कर्नल आलकाट साहब, तथा एच० पी० ब्लैवस्टकी, मुन्शी इन्द्रमणी को पृथक् कर दिये, और डाक्टर बिहारीलाल जी का शरीर छूट गया, इन के ठिकाने में अन्य [चार तथा] पांच सभासद् और बढ़ा दिये अर्थात् प्रथम अठारह थे, अब तेईस हो गये। उन में सभापति श्रीमान् आर्य्यकुलदिवाकर श्रीयुत महाराणा जी और उपसभापति लाला मूलराज एम० ए०, मन्त्री कविराज श्यामलदास जी आदि नियत हुए हैं। उस की एक प्रति श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाकर सब ने माननीय प्रतिष्ठित माना है। यह बात महालाभदायक और बहुत बड़ा काम देगी। अब सरकारी राज में भी इस की रजिस्टरी करालें, सो रजवाड़ों में और अंगरेज़ो राज में भी बड़ा माननीय होगा। और राजकीय यन्त्रालय उदयपुर में छपकर सभासदों के पास एक-एक प्रति प्रहुंचेगी। और जियादह छपेंगी तो अन्य योग्य पुरुषों के पास भेज दी जायंगी। यह तुम्हारें पास इस लिये भेजते हैं कि अपने परामर्श, अनुमति और महाराणा जी को धन्यवाद लेखपूर्वक-पत्र अन्त में, और आदि में, यह स्वीकार पत्र अच्छे कागज़ पर और अच्छे टैप में छपवाकर योग्य-योग्य वेदभाष्य के ग्राहक और भारतमित्रादि समाचारपत्र और मुख्य-मुख्य पुस्तकालय में भेजदो। और जब छप चुकेगा तब हम भी लिखेंगे कि फलाने-फलाने के पास भेजदो।

और एक पत्र हमारे पास आने वाला है कि उस को एक अच्छे कागज

---

१. क्या रहस्य शब्द से अभिप्राय पूर्ण संख्या ५९८ पृष्ठ ६२५-६३३ तक मुद्रित दिनचर्य्या से है?

२. यह पत्र फाल्गुन वदी १० का है। [अतः यहां 'गत पञ्चमी मङ्गलवार' से अभिप्राय फाल्गुन वदी ५ (२७ फरवरी १८८३) से है। पूर्ण संख्या ६२५ (पृष्ठ ६५३-६५८) पर जो स्वीकारपत्र छपा है, उसमें फाल्गुन शुक्ला ५ मङ्गलवार (२७ फरवरी) लिखा है, वह अशुद्ध है। यह इस पत्र से भी व्यक्त है। यहां पृष्ठ ६५४ की टि० भी देखें।

पर छाप कर तुम को सब आर्य्यसमाजों के पास भेजना होगा । और वे श्रीमान् महाराणा जी के पास भेज देंगे। और कुछ-कुछ अपने आनन्द प्रदर्शक बातें लिख कर भेजेंगे तो अच्छा होगा ।

बारह सौ रुपये कलदार धर्मार्थ वेदभाष्य के सहाय में, एक दुशाला मुझको, तथा पांच सौ रुपये कलदार आर्य्यसमाज फीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये, और सौ रुपये कलदार वहां जो लड़कियां कसीदा का काम करती हैं उनको पारितोषिक के लिये, और सौ रुपये कलदार और साधारण दुशाला रामानन्द ब्रह्मचारी को दिया। अर्थात् उन्नीस सौ कलदार रुपये और दो वस्त्र प्रदान किये।

इन बारह सौ रुपयों को उन्हीं के पास रक्खे हैं । इस प्रयोजन के लिये कि इस मुख्यस्थान से प्रधान वैदिकधर्म प्रचार होवे और उस को पूर्ण सहाय मिले। इस का नाम वैदिकनिधि रक्खा है। और मेरे नाम से स्थापित हुआ, ऐसा खाता राजकोष में और महद्राजसभा में लिखित हो गया। इत्यादि सब उत्तम बातें वहां की यात्रा से हुईं जिस को तुम सुन कर बड़े आनन्दित होगे। इस लिए प्रथम तुम को लिखा। इस के आगे जो-जो वर्त्तमान होगा तुम को लिखा जायगा । और गोरक्षा में भीं पूरा सहाय निश्चत मिलेगा।

चित्तौड़गढ
मि० फाल्गुन वदी १० रविवार सं० १९३९ } (दयानन्द सरस्वती)
तदनुसार ता० ४ मार्च सन् १८८३

—:o:—

पूर्ण संख्या ६२९] पत्र-सूचना (७५)

[मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]
लाहौर समाचार भेजने के विषय में[1]।

—:o:—

---

[1] इसका संकेत अगले पूर्ण संख्या ६३० के पत्र में है। (पृष्ठ ६६२, पं० १५-१६)।

[पूर्ण संख्या ६३०] पत्र (४१९)

ओ३म्[1]

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो ।

विदित हो कि **कहार रसोइया तथा शोधक और कोषाध्यक्ष के लिये आप को लिखा था ।** उस का उत्तर आपने लिखा कि, ४ दिन के पश्चात् इसका निश्चित उत्तर भेजंगे[2] । सो वह आज तक नहीं आया । बीच में पण्डित लक्ष्मीदत्त जी ने उत्तर दिया' था कि आप बरेली को गये हैं । हम ने आप के पत्र का उत्तर लिखा था कि वह **रामनाथ कौन है क्या पढ़ा है । और नागरी लिख[ना] जानता है वा नहीं । और हमारे साथ कब रहा था ? कौन वर्ण है ? कहां का रहने वाला[है] ? और मुरादाबाद वाले के लिये लिखा था कि जब तक बड़ा हानिकारक अपराध न करे, न निकाला जायगा । सो भी आप के आधीन निकालना वा रखना होगा ।** सो आज पर्यन्त उस [का] उत्तर नहीं आया । सो शीघ्र भेज दीजिये । और दोनों पुरुषों [को] वैदिक यन्त्रालय में भेजने के लिए पूर्ण यत्न कीजिये । क्योंकि अकेले समर्थदान से वहां का काम नहीं चल सकता । आप के लिखे प्रमाण **आर्य-समाज लाहौर [के] मन्त्री के पास सब समाचार भेज दिया ।**

और [3]हम आज चित्तौड़गढ़ में हैं । आगामी फाल्गुन वदी चतुर्दशी गुरुवार के दिन राजस्थान शाहपुर मेवाड़ को जाकर यथ रुचि वहां ठहरेंगे ।

अब उदयपुर का वृत्तान्त सुनो । हम वहां बहुत आनन्द में रहे । नित्य प्रति श्रीमान् महाराणा जी की ओर से सेवा उत्तम रीति से होती रही । किसी दिन को छोड़ सब दिन तीन चार वा पांच घंटे तक मुझ से मिल कर प्रेम पूर्वक सत्संग किया करते थे । केवल सुनने मात्र नहीं, किन्तु उस

---

[1] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है । म० मामराज जी ने सन् १९२७ में मूल पत्र से शुद्ध किया । इस से पहले हमने बा० देवेन्द्रनाथ वाली प्रतिलिपि से छापा था । फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ २२०-२२१ पर कुछ पाठ भेद के साथ छपा है ।

[2] बाबू दुर्गाप्रसाद का [सं० १९३९] माघ सुदि १४ (=२० फरवरी १८८३) का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] यहां से लेकर 'अब हम इस वक्त चितौड़ में हैं' (पृष्ठ ६६३, पं० १७) तक का अंश पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृष्ठ ५९७ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१०) पर उद्धृत है ।

का धारण और आचरण भी करते और कराते हैं। छः शास्त्रों का मुख्य-मुख्य विषय, मनुस्मृति के राजधर्म्म विषयक तीन अध्याय, विदुरप्रजागर आदि के उपदेश के योग्य श्लोक, थोड़ा सा व्याकरण का विषय और थोड़ी सी अन्वय की रीति श्रीमानों ने मुझ से पढ़ी। और राजधर्म्म में तत्पर थे। और विशेष कर अब पूर्ण रीति से हुये। वेश्या आदि का नृत्य दर्शनादि नहीं सा निर्मूल कर दिया। स्वीकारपत्र जिसको वसीयतनामा कहते हैं वह उदयपुर में श्रीमानों ने स्वीकृत स्वमुद्रांकित स्वहस्ताक्षर स्वभूषित कर के उस [में] लिखी हुई सभा के उदयपुराधीश सभापति हुये हैं। उस का विशेष समाचार तुमको छपने पर विदित होगा। एक मान्य-पत्र[1] मुझको दिया है। और रु० १२००) कल्दार वेदभाष्य के सहायार्थ और एक दुशाला और एक साधारण दुशाला और रु० १००) कल्दार रामानन्द ब्रह्मचारी को। तथा ५००) रु० कल्दार फीरोजपुर आर्य्यसमाज के अनाथालय को। और रु० १००) कल्दार उस में कसीदा करने वाली लड़कियों को पारितोषिक प्रदान किये। वैदिकधर्म्म पर प्रथम ही रुचि थी। अब विशेष कर हुई। जैसे श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर सुशीलता सत्यता कृतज्ञता सुसभ्यता पुरुषज्ञानतादि शुभगुण कर्म स्वभावयुक्त मैंने देखे वैसे बहुत विरले होंगे। अब हम इस वक्त चित्तौड़ में हैं[2]। फाल्गुन वदी चतुर्दशी गुरुवार के दिन राजधानी शाहपुरा राज्य मेवाड़ जाकर ठहरेंगे। जो कुछ पत्रादि भेजो तो इसी पते से भेजना, फकत।

ता० ४।३।८३ ई०। मि० फा० व० १० सं० १९३९। [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

[पूर्ण संख्या ६३१]   पत्र-सूचना (७६)

[विश्वनाथ, जयपुर][3]
४ मार्च १८८३।

---

[1] यह मान्य-पत्र यजुर्वेदभाष्य के ४७–४९(सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज ३ पर छपा है। इसे हम परिशिष्ट ३ में दे रहे हैं। यह मूल मान्यपत्र कविराज श्यामलदास के संग्रह में था। अब ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है।

[2] देखें पूर्व पृ० ६६२ की टि० ३।

[3] इस पत्र और तारीख की सूचना महाशय विश्वनाथ के ६ मार्च १८८३ के पत्र से मिलती है। विश्वनाथ का उक्त पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ६३२] पत्र (४२०)

सर्व आर्य्यसमाजस्थ प्रधानादि आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि स्वामी सहजानंन्द सरस्वती उपदेशक, इसने संन्यासाश्रम धारण भी मुझ से किया है, आता है। इसको जब तक वहां रहे अन्न स्थानादि, और जब एक समाज से दूसरे समाज को जाय तब रेल के भाड़े आदि से सत्कार किया करना। जिस समाज से दूसरे समाज को जाना चाहे उस समाज का मन्त्री दूसरे समाज के मन्त्री के पास पत्र भेज देवे कि वह स्टेशन पर आके निवास स्थान को ले जावे।

मिती फाल्गुन बदी १२ मंगल सम्वत् १९३९[2]।

ह० दयानन्द सरस्वती
चित्तौड़-मेवाड़ ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६३३] पत्र (४२१)

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी जालमसिंह जी आनंदित रहो ।[3]

विदित हो कि हम उदयपुर से फाल्गुन वदि ७ सप्तमी के दिन चित्तौड़ में आन पहुंचे। और अब यहां से फाल्गुन वदि त्रयोदशी के दिन शाम की रेल में बैठकर चतुर्दशी के दिन शाहपुरा राज मेवाड़ जिला अजमेर को जो कि बड़ी रूपाहेली से ८ कोश है, जांयगे। और जो कागज दो तो इसी पते से देना। आगे हाल यह कि एक स्वीकारपत्र राज उदयपुर में मुद्राङ्कित स्वीकृत हुआ। और उसके अधिपती श्रीमान् दिवाकर हुए हैं। बाकी सब सभासद। जब छपेगा विदित होगा। और एक मान्यपत्र[4] भी दिया है। और

---

[1] भारतसुदशाप्रवर्तक फरवरी १८८४ पृ० १८ से लिया गया। फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०१ पर भी छपा है।

[2] ता० ६ मार्च सन् १८८३।

[3] इस मूल पत्र को रूपधनी वाले चौ० जालिमसिंह के भाई के पौत्र चौ० गजराजसिंह से मास्टर बद्रीप्रसाद जी ले गये थे। उसे अहीर क्षत्री स्कूल शिकोहाबाद के उक्त मास्टर से म० मामराज जी ता० १५ अप्रैल सन् १९२७ को लाये थे। मूल पत्र म० मामराज जी के पास श्रीराम निवास (बिल्डिङ्ग) खतौली में सुरक्षित है।

[4] द्र०—पृष्ठ ६६३ टि० १।

छः शास्त्रों का मुख्य मुख्य विषय और मनुस्मृति का राजधर्म्म तथा विदुर-प्रजागरादि के श्लोक कुछ व्याकरण और अन्वय की रीति भी श्रीमानों ने मुझ से पढ़ी। और रु० १२००)कल्दार[1] और एक दुशाला वेदभाष्य के सहायार्थ और एक साधारन दुशाला और रु० १००) कल्दार रामानन्द ब्रह्मचारी को और ५००) रु० कल्दार फीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये और रु० १००) कल्दार उसी में कसीदा करने वाली लड़कियों को पारितोषिक प्रदान किया।

मिती फाल्गुन वदि १२ सम्वत् १९३९।
तदनुसार तारीख ६ मार्च सन् १८८३ ई० (हस्ताक्षर)
[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६३४] पत्रांश (४२२)

श्रीयुतपण्डितकालुरामशर्मादिभ्यो दयानन्दसरस्वती-स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमां, शमिहास्ति तत्र भवदीयञ्च नित्यमाशास्महे। आपने धर्म जिज्ञासा की, उसका उत्तर यह है कि इस विषय में जो सत्यार्थप्रकाशादि मद्रचित ग्रन्थ है उन, में मन्तव्यामन्तव्यादि सर्व धर्म विषय लिखा हुआ है उसी रीति से कार्य्य करो[2] इत्यादि…… [लगभग १७ मार्च सन् १८८३[3]।]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६३५] पत्र-सूचना (७७)

[गणेशदास एण्ड कम्पनी, तारघर के नीचे, बनारस]
पुस्तकें मंगवाने के विषय में।[4]

—:०:—

---

[1] देशी रियासतों में प्रचलित विभिन्न रुपयों के सिक्कों की तुलना में अंग्रेज सरकार का रुपया कल्दार कहाता था।

[2] स्वामी कालूराम जी शर्मा स्वर्गवासी के जीवन चरित पृ० २६ पर इतना अंश उद्धृत है।

[3] तिथि सर्वथा अनुमानित है।

[4] इस पत्र की सूचना पूर्ण संख्या ६५९ के पत्र में है। वहां लिखा है—"अभी

[पूर्ण संख्या ६३६] आदेश-पत्र (४२१)

[मुंशी समर्थदान वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग]

जैसा इस को शोध के भेजते हैं। वैसा पुनः कम्पोज करके छपवा दो और जो कहीं शोधने में भूल रह गई हो तो तुम वहां शोध लेना, जिससे मांसभक्षण का अभिप्राय कुछ भी न रहे। बाकी सब पत्रों के उत्तर कल[1] भेजेंगे और अगले अंक के पत्रे तथा थोड़े से सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी भेजेंगे[2]।

[मिति फाल्गुन शु० ९ शनि सं० १९३९[3]]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६३७] पारसल-सूचना (४२)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

यजुर्वेदभाष्य अ० १३ मन्त्र ४७-५१ की पुनः शोधित प्रेस कापी।[4]

फाल्गुन शु. ९ सं० १९३९

—:o:—

हम २१।।।=) की पुस्तकें मंगा चुके हैं। इस सूचना को हमने अनुमान से यहां जोड़ा है।

[1] देखो पूर्ण संख्या ६३८ का पत्र।

[2] यह लेख श्री स्वामी जी ने यजुर्वेदभाष्य के १३ वें अध्याय की प्रेस कापी के पृष्ठ ४५९ के दूसरी ओर (पीठ पर) अपने हाथ से लिखा है। यह लेख १७ मार्च १८८३ (=फा० शु० ९ सं० १९३९) को लिख कर भेजा था। देखो अगला पूर्ण संख्या ६३८ के पत्र का ८ वाँ अंश (अन्तिम पैराग्राफ पृष्ठ ६६९)। इस का संबन्ध उक्त पत्र के अन्तिम अंश से भी है। उसके साथ मिला कर पढ़ें। यजुर्वेद अ० १३ मं० ४७–५१ तक के भाष्य को पुनः शोधने के लिये मुंशी समर्थदान ने शाहपुरा भेजा था। इस कारण विलम्ब होने से यजुर्वेद भाष्य का ४६–४७ (सम्मिलित) अङ्क कुछ देर से प्रकाशित हुआ था। इसकी सूचना समर्थदान ने इस अङ्क के टाइटल पेज के पृष्ठ ४ पर दी थी। उसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

[3] १७ मार्च १८८३।

[4] यह पारसल सूचना पूर्ण संख्या ६३६ तथा ६३८ के आधार पर बनाई है। तिथि का निर्देश पूर्ण संख्या ६३८ के अनुसार किया है।

[पूर्ण संख्या ६३८] पत्र (४२४)

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

तुम्हारी तारीख बारा [१२] मार्च की लिखी हुई चिट्ठी आई। समाचारविदित हुआ।

(१) शुद्धि पत्र और टाटल पेज भले ही बना छाप कर ग्राहकों के पास भेज देना और छापे खाने में भी जिल्दें बंधवाने का लिखा सो अच्छा। परन्तु थोड़ी, जियादह नहीं।

(२) तुम को इस बात का ज्ञान नहीं। तुम इस बात को नहीं जानते कि हम को कितना काम करना पड़ता है कि एक क्षण मात्र भी अवकाश नहीं मिलता। देखो इसका दृष्टान्त कि तुम्हारे पत्र का उत्तर रात्री के ९ बजे लिखते हैं।

और इसके पद की गणना रामानन्द तथा दूसरे पंडित के हाथ गिणवाये थे। कोई पद रह गया होगा। अब हम अपने सामने पद गिन गिनवा लेंगे और अगले अंक के पत्रे और कुछ सत्यार्थप्रकाश के पत्रे उसके साथ भेजे जायेंगे।

(३) हिसाब हमारे पास आने से सब बात का प्रबन्ध हम भी आगे आगे करते हैं। इसलिये जो तुमने उचित समय पर मासिक हिसाब भेजना लिखा सो बहुत अच्छी बात है। और द्रव्य के विषय में जो तुम को लिखा है सो तुम्हारे अविश्वास कारक नहीं है। एक उपदेश रूप हैं। देखो तुम हम और अन्य भद्र लोग मुंशी इन्द्रमणि जी को कैसा अच्छा समझते थे। परन्तु वह तभी तक रहा जब तक कि उनके सामने धन न आया। और तुम्हारे विषय में अविश्वास का हेतु प्रत्यक्ष कोई नहीं हुआ है। इस से तुम उल्टा मत समझो। इसका यह मर्म और अर्थापत्ति नहीं है कि तुमने अप्रत्यक्ष बुरा काम किया है। वह लेख इस अभिप्राय से है कि जिसका उत्तरकाल में भी कभी ठोकर खाना न पड़े। देख देख कर पग जमा कर चलना चाहिये। क्या बालक वा विद्यार्थी अथवा शिष्य को मिथ्या भाषणादि के अप्रत्यक्ष में भी तू मिथ्या भाषण चोरी जारी विश्वासघात आदि दुष्ट कर्म मत करना, उपदेश नहीं होता। इसका प्रयोजन यह है कि जैसा आचरण भूत वा वर्तमान में शुद्ध था, वा है, वैसा ही रहना उचित है। भला हरिश्चन्द्र

और बखतावरसिंह का दृष्टान्त तुम में घटता वा संभावना होती तो मैं और सेवकलाल कृष्णदास आदि वैदिक यंत्रालय के प्रबन्ध करने को तुम को कभी न कहते। क्या तुमने हमारे और सेवकलाल कृष्णदास जी के कहने ही से इस काम को स्वीकार किया है परोपकार की दृष्टि से नहीं। शोक है कि सूधी बात को तुम उल्टी समझ गये। यदि तुम्हारे कामकी पवित्रता की परीक्षा मुझको व सेवकलाल को न होती तो पुनः इस काम में तुमको नियुक्त ही क्यों करते? यदि तुम इस काम के योग्य न होते तो इतना बड़ा काम और जिस में विशेष माल का काम है, स्वाधीन क्यों करते। तुम को हम वा सेवकलालादि हरिश्चन्द्र बख्तावरसिंह वा मुंशी इन्द्रमणि सरीखा नहीं समझते। तुम को उत्तम पुरुष समझते हैं परन्तु—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते[1]

क्या हमारे पास बुरे ही मनुष्यों का निर्वाह है। ऐसी तुम्हारी बातों का जो कि कभी कभी लड़कपन की कर बैठते और समझ लेते हो इन बातों पर ध्यान करूं वा करूंगा तो क्या इस परोपकार के काम से संशयापन्न हो पृथक् हो जा नहीं सकता। मुझ को[2] इतना बड़ा परिश्रम निन्दा अपमान उठा कर कौन सा स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता हूं। यदि तुम लोग जैसा कि अब उदासीनता की बातें लिखी है लिखोगे वा करोगे तो सब संसार की हानि का अपराध तुम्हारे पर होगा और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है जहां तक बन सकेगा आमरण तक करूंगाही पुनर्जन्मान्तर में भी। जब तक इस पत्र को देख कर तुम्हारा पत्र परोपकार अर्थात् स्वदेशोपकार करने में दृढ़ता पूर्वक पत्र हमारे पास न आवेगा तब तक हमारे उपदेश रूप लेख को अपनी अल्प बुद्धि से उलटा समझ गये हो, जाना जायगा। इस लिये पत्र पढ़ते ही उसी लेख का यह तात्पर्य समझ कर प्रत्युत्तर शीघ्र भेजना।

(४) मान्यपत्र उन के साथ भेजने में रामानंद भूल गया था। पीछे से भेजा है, पहुंचा होगा। और ऋग्वेद तथा सत्यार्थप्रकाश वो (के) भी पत्र परसों[3] भेजे जायंगे। क्योंकि कल रविवार है रजिस्ट्री नहीं हो सकती। जब जब मासिक हिसाब भेजो तब तब इतने फार्म निज के और इतने बाहर के इस महीने में छपे यह भी साथ ही [लिख कर] भेजा करो।

---

[1] गीता अ० २ श्लोक ३४।

[2] यहां 'मुझको इतना……सिद्ध करना है' पाठ होना चाहिये।

[3] सोमवार १९ मार्च १८८३।

(५) यहां शाहपुरे में श्रीयुत महाराजाधिराज व्याकरण का विषय पढ़ कर कल मनुस्मृति के सप्तमाध्याय राजधर्म के पढ़ने का आरम्भ करेंगे। और बड़े बुद्धिमान् तथा राजनीति प्रजापालन में तत्पर साहसी उत्साही और बड़े बुद्धिमान् हैं। सेवा भी बहुत प्रीति और अच्छी प्रकार से करते हैं।

(६) भीमसेन को तुमने जैसा [बक]वृत्ति समझा है, वैसा ही हम बकवृत्ति और मारजारलिंगी समझते हैं। वैसा ही उस से विलक्षण दंभी क्रोधी हठी और स्वार्थसाधनतत्पर ज्वालादत्त भी है। अब उसको निकाल देना वा न निकाल देना, तुमने क्या निश्चय किया है। मेरी समझ में भीमसेन का छोटा भाई ज्वालादत्त है। यदि उसको निकाल दोगे तो भी कुछ बड़ी हानि न होगी। क्योंकि यह कभी मन लगा कर काम न करेगा और उस को ऐसी दृष्टि कच्ची है कि शोधने में अशुद्ध अवश्य कर देगा।

(७) और जो कुछ श्रीयुत आर्यकुलदिवाकर महाराणा जी के विषय में धन्यवाद का लेख लिखो सो अच्छा ही लिखोगे। मोहनलाल विष्णुलाल जी ने चलते समय कहा था कि धन्यवाद विषय का पत्र लिखकर भेजने को कहा था। यदि दो चार दिन में आया तो तुम्हारे पास भेज देंगे। तुम जानते हो राजकृत्य की शीतलता[1] को कि जैसा मेरे वहां रहने में शीघ्रता होती थी वैसी कब हो सकती है? जो कुछ होगा सो धीरे धीरे और अच्छा होगा। और तुमने कमीशन का क्या नियम किया है। क्या जैसा सुचिपत्र में छपवाया है वही है वा अन्य कोई। जो तुमने छपवाये हैं वेही ठीक है। वैसा ही हम भी लोगों से उपदेश करेंगे। और उस भीमसेन की हुई हानि कुछ भी नहीं हो सकती उसका उत्तर तुम लिख भेजो कि जब तक स्वामी जी की आज्ञा वा इच्छा तुमको कहीं रखने वा भाषा बनवाने की नहीं होती, तक तक कुछ भी नहीं हो सकता। अब उस ने उदयपुर में जो भाषा बनाई है, सोधी गई तो कई एक के अर्थ में पदार्थ छोड़ दिया। कई एक पद अन्वय के छोड़ दिये। और कई एक पद आगे पीछे भी कर दिये गये हैं। और उसका कार्ड बुक पोस्ट के साथ तुम्हारे पास भेजेंगे।

(८) हमने आज ४७ मंत्र से लेकर ५२ मन्त्र तक के पत्रे शोध कर आज आये और आज ही रजिस्ट्री करा के भेज दिये हैं। उन में से जहां जहां मांस खाने का विषय [था] काट दिया और उचित अर्थ कर दिया है।

---

[1] शीतलता = ढीलापन।

परन्तु राजा और राजपु[रु]षों को हानिकारक सिंहादि जांगल पशुओं को मारना तो रहने ही दिया है, क्योंकि उन मन्त्रों में अनुदिशामि । आरण्यम् । तेन । तन्वम् । पुष्यस्व आदि पदों के अर्थ के अनुरोध से राजपुरुषों को उनका मारना अवश्य ही सिद्ध होता है । तथा युक्ति से भी सिद्ध है, क्योंकि यदि डाकू चोर आदिकों को भी राजधर्म में मारना उचित है तौ वैसे प्रजा के हानिकारक पशुओं को मारने में राजाओं को कुछ भी अपराध नहीं हो सकता । यदि ये न मारे जांय तो प्रजा के खेती आदि के नाश से बड़ी ही हानि होवे इत्यादि । यदि शीघ्रता से शोधने में **मांस खाने में कोई रह गया है तौ उसको तुम कटवा देना** और उचित धरवा देना'[1]। और उन्ही पत्रों को शोधा है कि जिस से तुम्हारा कंपोज सब व्यर्थ न जाय किन्तु उसके बराबर सही करवा कर ग्राहकों के पास भेजदो । अब आगे वेदभाष्य के पत्रे उचित समय पर सदा भेजे जायेंगे । और मुम्बई से टैप आने का क्या समाचार है । तीन महीने तो हो गये होंगे । उनसे तकादा करो कि शीघ्र टैप भेज देवें ।

मिति फा० शु० ६ शनिचर सं०[2]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६३९] पत्र-सारांश (४२५)

[पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया–उपमंत्री परोपकारिणी सभा ।]
रुपयों का फरक क्यों पड़ रहा है । १९००) रु० थे, अथवा २०००)रु० ।

---

[1] यजुर्वेद १३ । ४७–५१ मन्त्रों में हानिकर पशुओं के मारने का उल्लेख है । उन से भूल कर भी कोई मांस खाने का विधान न मान ले, इस लिए श्री स्वामी जी ने समर्थदान की प्रार्थना पर सारा प्रकरण अति स्पष्ट करके प्रूफ भेजा । इसी विषय का संकेत समर्थदान ने अपने १३-७-१८८३ के पत्र में किया । समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

इस विषय में पूर्ण संख्या ६३६ पर छपी ऋषि के हाथ की यजुर्वेद भाष्य अ० १३ की प्रेस कापी के पृष्ठ ६६६ पर लिखी सूचना भी पढ़ें ।

[2] १७ मार्च १८८३ ।

यहां राजाधिराज ने मनुस्मृति का पढ़ना आरम्भ कर दिया है।[1]
फा० शु० १०, १९३८[2]।

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६४०] पारसल-सूचना (४३)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
ऋग्वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश के पत्रे ।[3]
फाल्गुन शु० ११, सं० १९३९ [१९ मार्च १८८३]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६४१] पत्र-सारांश (४२६)

[मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया, उदयपुर]
१. आर्यसमाज फिरोजपुर का पत्र भेजा है ।[4]
२, १०० रुपये का फरक क्यों है ?
३. ब्रह्मानन्द मेरे पास पहुंच गया है ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६४२] पत्राशय (४२७)

[श्री मुन्नालाल जी स० देशहितैषि, अजमेर]
सहजानन्द को जयपुर भेज दो ।[5]

---

[1] इस सारांश का संकेत मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया के २२ मार्च १८८३ के पत्र में है। पण्डिया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] संवत् १९३९ चाहिये । १८ मार्च रवि० १८८३ ।

[3] इस रजिस्टर्ड पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ६३८ के पत्र के ४ वें सन्दर्भ (पृष्ठ ६६८ पं० २६) है। तिथि का निर्देश भी उसी अंश के अनुसार किया है।

[4] यह पत्र-सारांश मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया के २७ मार्च १८८३ के पत्र में है। पण्डिया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[5] इस आशय की सूचना मुन्नालाल (अजमेर) के २८ मार्च के पत्र में है। मुन्नालाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ६४३] पत्रांश (४२८)

[भाई जवाहरसिंह मंत्री आर्यसमाज लाहौर]

.........."जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी[1]।"

लगभग २३ मार्च १८८३।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६४४] पत्र (४२९)

(ओ३म्)

श्रीयुत बिहारीलाल जी आनन्दित रहो।[2]

धर्म्मजीवन और मित्रविलास आदि पत्रों का झूठ बकना ही रात-दिन काम है। और जैपुर गजट वाला भी उनके सदृश ही बुद्धि रखता होगा। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। जैसी सम्मति लाहौर और मेरठ वालें दें वैसी करो। तुम जानते थे कि स्वामी जी जोधपुर में गये ही नहीं, फिर तुम को शोक कैसे हुआ। और हमारे लिये ऐसे सैकड़ों मनुष्य बका करते हैं, कि जैसे मित्रविलास और धर्म्मजीवन आदि पत्रों के मांसहारी काश्मीरी ब्राह्मण आदि लाहोर में बका करते हैं। सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजीयेगा।

मिती चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९[3]।

(शाहपुरा)

(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

---

[1] ऋषि के पत्र से इतना लेख—भाई जवाहरसिंह ने अपने पत्र ता० १८ अप्रैल १८८३ बुधवार, में उद्धृत किया है। श्री स्वामी जी का पत्र भाई जवाहर सिंह के १६ मार्च १८८३ के पत्र के उत्तर में लिखा गया होगा। उस पत्र में भाई जवाहरसिंह जी ने लिखा है—

"मुझे हिन्दी लिखनी नहीं आती"..............................प्रन्तू जैसे आई वैसे लिख दी।" भाई जवाहरसिंह के ये दोनों १६ मार्च और १८ अप्रैल के पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[3] २८ मार्च सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ९४५]   पत्र (४३०)

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो[1] ।

जब वह स्वीकार-पत्र छपेगा तब एक कापी तुम्हारे पास भेज देंगे। **भीमसेन को न हम अपने पास वा न अन्यत्र कुछ काम देना चाहते हैं । वह काम करने में अयोग्य और वह स्वभाव का भी बहुत बुरा आदमी है।** हम उस के विषय में पहले भी लिख चुके हैं[2]। और वह न किसी आर्य्य समाज में रहने के योग्य है। यदि कहीं जायगा बुरे हवाल निकाला जायगा। अन्यत्र जहां उस की इच्छा हो जाये, चाहे न जाये, उसकी खुशी। परन्तु हम उसको कहीं नौकर वा काम कराना नहीं चाहते। यह सब एक ज़ात बद्री[3] ब्राह्मण सिकन्दरपुर के सदृश हैं। चाहे इनके ऊपर कितनी दया करो वे कृतघ्न[ता] ही करते जाते हैं। जब से वह गया है तब से जो पुरुष हमारे पास हैं, आनन्द में रहते हैं। यदि वह होता तो न जाने अब तक कौन जाता, कौन रहता **केवल वह दम्भी और मिथ्याचारी है**। यदि बद्री ब्राह्मण का विष देने का कर्म प्रसिद्ध हो गया है तो उसको जेलखाने में भेज दिया वा नहीं। ठीक साबूती हो तो उस को अवश्य जेलखाने में भिजवा देना चहिये। जिससे दूसरा भी कोई ब्राह्मण ऐसे काम करने की इच्छा न करे। बड़ा शोक है उस बद्री दुष्ट पर कि जिसकी आप लोगों ने हजारह रुपये की सेवा की और उसका फल उस कुपात्र ने प्राण लेना चाहा था। हम यहां राजधानी शाहपुरा राज मेवाड़ ज़िले अजमेर में ठहरे हैं । कुछ एक आध महीना यहां रहेंगे। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९[4]।

(शाहपुरा)
(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

---

[1] मूल पत्र पं० विष्णुलाल जी एम० ए० बरेली के पास था । उस की प्रतिलिपि हमने वहां से की थी ।

[2] द्र० पूर्ण संख्या ४४९, पृष्ठ ४९५ ।

[3] इस बद्री का उल्लेख आगे भाद्र सुदी ४ सं० १९४० (५ सितम्बर १८८३) को चौ० जालिमसिंह को लिखे पूर्ण संख्या ७७२ के पत्र में भी है ।

[4] २८ मार्च १८८३ ।

[पूर्ण संख्या ६४६] पत्र-सारांश (४३१)

[लीलाधर हरिदास मुम्बई[1]]

१. सेवकलाल ने घड़ी क्यों नहीं भेजी।

२. समर्थदान ने जो टाईप मंगवाया। उसका क्या उत्तर है।

३. आर्यसमाज मन्दिर का काम कैसा हो रहा है।

चैत्र वदी १०[2] दयानन्द सरस्वती
शाहपुरा

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६४७] पत्र (४३२)

।। ओ३म् ।।

वारट श्रीकृशन जी आनन्दित रहो[3] !

विदित हो कि पत्र आपका आया समाचार विदित हुए। **संस्कृतवाक्यप्रबोध के विषय में जो तुमने लिखा सो छापेवालों की भूल से छप गया है। वहां—(एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरंगुलयः) ऐसा चाहिये, सो सुधार लीजिये ।।**[4]

---

[1] इस पत्र का संकेत लीलाधर हरिदास के सं० १९३९ (गुजराती, उ० भा० १९४०) के चैत शुक्ल १५ शनिवार [२१ अप्रैल १८८३] के पत्र में है। लीलाधर का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] संवत् १९३९। २ एप्रिल, १८८३ सोमवार।

[3] मूल पत्र श्री कृष्ण जी के पुत्र ठाकुर किशोरसिंह वारहट के संग्रह में सुरक्षित है। पं० चमूपति संपा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १६५ से लिया।

[4] प्रथम संस्करण में 'मुष्टिबन्धने एकत्राङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति ऐसा छपा था। भाषा में भी यही अशुद्धि थी। यह अशुद्ध पाठ वैदिक यन्त्रालय के छपे संस्कृतवाक्यप्रबोध के १० वें संस्करण तक छपता रहा। ११ वें संस्करण में शुद्ध किया गया। संस्कृतवाक्यप्रबोध के छपने में इस प्रकार की कुछ भूलें और भी हो गई थीं। उन के विषय में पूर्ण संख्या ३२९ (पृष्ठ ३८७) का पत्र भी देखें। काशी के पण्डितों ने इस पर अपने अज्ञान से कुछ झूठे आक्षेप किये थे। उन में से कुछ आक्षेपों का समाधान पूर्ण संख्या ३३० (पृष्ठ ३९०) पर छपे लेख में किया है।

संस्कृतवाक्यप्रबोध पर किये गये शेष सभी आक्षेपों का उत्तर रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्करण देखें।

यदि श्रीमान्महाशयों से निवेदन करके कविराज जी के पास जोधपुर से उक्त कार्य्य कराने के लिए जयपुर जाने के आने की आज्ञा पहुंच जाय तो अत्युत्तम है। और यह भी निवेदन करना कि पत्र द्वारा श्रीमानों की दिनचर्या और शरीर कुशलता की सत्य-सत्य सूचना मुझको हुआ करे तो अच्छी बात है। क्योंकि उसको सुनना मैं अवश्य चाहता हूं। और फतहकरण उदयपुर में है वा कविराज जी के साथ जोधपुर गये हैं। **फतहकरण का नाम (विजयकरण) हो सकता है वा नहीं। क्योंकि (फतह) शब्द फारसी का है और उसका अर्थ विजय है इसलिए (विजयकरण) नाम होना उचित है।**

और जो तुमने महाराजाधिराज की चिट्ठी के साथ एक चिट्ठी भेजी थी कि जिसमें लिखा था[१] १००) सौ रुपये स्वामी जी के नौकरों को अर्पित किये लिखा था[२] और उस समय यही मैं ने और आप लोगों ने भी सुना होगा कि ५००) रुपये अनाथाश्रम और कसीदा करने वाली कन्याओं के [लिये] पारितोषिक देते हैं। ज[ब] पण्ड्या जी की चिट्ठी आई, उस पर हमने पूछा कि ६००) रुपये भेजने चाहियें, सातसे कहां से भेजे। उस पर उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे पास राजसे ७००) रुपये आये', सो ६९२) रुपये भेजे और ८) रुपये मनियाडर और रजिष्टरी कराई दिये। यह क्या बात है। हम तो ६००) रुपये सब मिल कर फिरोजपुर के लिये श्रीमानों ने दिये हैं, ऐसा सर्वत्र लिख चुके हैं यदि इस में १००) रुपये भूल से चले गये हों वा सातसे ही प्रदान किये गये हों, जैसा हुआ हो वैसी निश्चित बात लिखो। जिस से हम पुनः जैसा हो वैसा सर्वत्र लिखदें।

और श्रीमानों की दिनचर्य्या का विषय ठीक ठीक लिखा करो। गोलमाल मत किया करो। और यहां सब प्रकार से आनन्द मंगल है। और सब महाशय भद्र जनों से मेरा आशीर्वाद कहियेगा!

चैत्र कृष्ण १० सोम संवत् १९३९[३]। [दयानन्द सरस्वती]
शाहपुरा राज मेवाड़

—:०:—

---

१. द्र०—यह बात मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया ने अपने २२ मार्च १८८३ के पत्र में लिखी थी। पण्डया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. 'लिखा था' दो बार है।

३. एप्रिल १८८३।

[पूर्ण संख्या ६४८] पत्र-सारांश (४३३)

[भाई जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर[1]]

हमारे पत्रस्थ दो बातों का उत्तर तुम ने नहीं दिया। एक तो लाला मूलराज के भाई……… ।

चैत्र शुक्ल ३ मंगल[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६४९] पत्र-सारांश (४३४)

[कविराज श्यामलदास जी, उदयपुर[3]]

१. गोरक्षार्थ सही कराने आप जयपुर गये या नहीं ?

२. जोधपुर में गोरक्षार्थ सही हुई या नहीं ?

३. उदयपुर का वृत्तान्त छापें वा नहीं ?

४. डा० भवानीसिंह के विषय में…… ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६५०] पत्र-सारांश (४३५)

[कमलनयन शर्मा, अजमेर]

दामोदर शास्त्री से पूछ कर लिखो कितने रुपयों पर हमारे पास आ सकता है।[4]

—:०:—

---

[1] इस पत्र का संकेत भाई जवाहरसिंह के ११ मई १९४० के पत्र में है। वहां श्री स्वामी जी के इतने शब्द उद्धृत किए गए हैं। भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] सं० १९४०। १० अप्रैल १८८३।

[3] इस पत्र वा इन विषयों की सूचना बारहट किशनसिंह जी के चैत्र शुक्ल १४ शनिवार सं० १९४० (२१ अप्रेल १८८३) के पत्र में है। तथा पूर्ण संख्या ६५६ तथा ६६७ में भी इस का संकेत है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] इस पत्र का सारांश पं० शुकदेव के १७ अप्रेल १८८३ के पत्रानुसार बनाया है पं० शुकदेव का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ६५१] पत्र-सूचना (७८)

[ठाकुर रघुनाथसिंह जी][1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६५२] पत्र (४३६)

ओ३म्

श्रीयुत बिहारीलाल जी आनन्दित रहो[2]।

पत्र तुम्हारा आज आया[3] समाचार विदित हुआ आप लोग धर्म में दृढ़ रहिये कि जिस का फल आनन्द ही होगा। जो बात श्रीयुत ठाकुर रघुनाथसिंह जी तथा श्रीयुत गोविन्दसिंह जी ने सत्य धर्म रक्षार्थ की है यदि यह ऐसी ही है तो उन को अनेक धन्यवाद देना चाहिये। तुम्हारे लिखे अनुसार **ठाकुर रघुनाथसिंह जी के पास हमने पत्र भेज दिया है**। और उस के साथ जो श्रीमान् आर्य्यकुलदिवाकर महाराणा जी ने हम को मान्यपत्र[4] दिया है और जो हमने स्वीकारपत्र उदयपुर में रजिष्टर कराया है उन की एक एक नकल आज तुम्हारे पास भेजते हैं। कुछ चिन्ता मत करो। जिन का सहाय धर्म है उसी का सहाय परमेश्वर है। जब बुरे बुराई न छोड़ें, तो भले भलाई क्यों छोड़ें। और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० चै० शु० ९ शनिवार संवत् १९४०[5]। (शाहपुरा)

(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६५३] पत्र-सारांश (४३७)

[मुन्शी समर्थदान, प्रयाग]

हमने २१ ।।। =) को पुस्तकें गणेशदास एण्ड कम्पनी, तारघर के नीचे बनारस से मंगवाई हैं।[6]

---

[1] इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६५२ के पत्र में है।

[2] मूल पत्र ठाकुर नन्दकिशोर ने भेजा था। अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[3] बिहारी लाल जी का विना तिथि का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] यह मान्य पत्र तीसरे परिशिष्ट में देखें। [5] १५ एप्रिल १८८३।

[6] इस सारांश की सूचना ऋ० द० के आगे पूर्ण संख्या ६५९ के पत्र में मिलती है।

[पूर्ण संख्या ६५४] विज्ञापन[1] (४७)

विदित हो कि जो विक्रम संवत् १९३७ तदनुसार सन् १८८० में मुं० इन्द्रमणि जी रहीस मुरादाबाद का मुसलमानों से विवाद हो कर मुन्शी जी पर ५००) रु० मेजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने जुर्माना किया। तब उस पर आर्य्य जनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय की थी। वह मामला तभी हो चुका था। परन्तु मेरठ में उस समय इस के लिये यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शो जो के मुकदमे में से जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित सहूकार के यहां ।।) व्याज पर रक्खा जाय। जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वेदिक धर्म्मावलम्बी आर्य्य का अन्य मतवादियों से धर्म विषय का विवाद हो के कचहरी में मुकदमा जाय और वह असमर्थ होय तो इन्हीं रुपयों से उस की सहाय की जाय। इस नियम को मुन्शी जी ने भी स्वामी दयानन्दसरस्वती जी आदि के सम्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था। परन्तु शोक का विषय है कि उक्त मुनशी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ अब हिसाब नहीं देते[2]। और उल्टा चोर कोतवाल को दाण्डे इस के सदृश लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्दसरस्वती जी पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं। इस कारण मेरठ आर्यसमाज के आय व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा। जिस्से मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शी जी को हुआ वैसा किसी अन्य सज्जन आर्य्य पुरुष को न होय। और मुं० इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य इस हिसाब और मुनशी जी के विज्ञापन[3] को देख कर सब पर प्रगट हो जायगा।

मुनशी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्यजनों ने मेरे मुकदमे की सहाय में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्दसरस्वती जी के पास धन भेजा था। "उसमें केवल ६००) रु० मेरे पास पहुंचे। बाकी उनके पास रहे।" परन्तु इस मेरठ के मिती वार क्रमानुसार हिसाब देखने से निश्चय होता है कि मुनशी जी के पास उन्हीं के मामले में ९६३॥=)॥। मेरठ समाज से पहुँचे है? न जाने मुनशी जी ने ६००) रु० क्यों अपने विज्ञापन[3] द्वारा प्रकाश किये। इस बात से तो मुनशीजी की असत्यता प्रगट होती है। यदि मुनशी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरणदास वा

---

[1] मासिक पत्र देशहितैषी, अजमेर, ज्येष्ठ १९४०, पृ० १–५ पर मुद्रित। दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ, ११४ के अनुसार यह विज्ञापन 'आर्यसमाज मेरठ' की ओर से दिया गया था। [2] यह हिसाब मुन्शी जी ने अन्त तक न दिया।

[3] मुन्शी इन्द्रमणि का विज्ञापन परिशिष्ट ३ में देखें।

स्वामी जी के पास किसी ने और रुपये भेजे होंय, और उन के पास उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होय, शीघ्र प्रकाश करें अथवा करवावें, क्योंकि सांच को आंच कहां। और जो मुंशी जी ने हिसाब के छपवाने में ढच पच की वा और ही कुछ राग गाने लगे तो यह उन के लिये पूरा कलङ्क है। इस के निवारणार्थ उनको अवश्य चाहिये कि जब जब जितना जितना खर्च हुआ है यथावत् मिती वार छपवा देवें। और शेष धन आर्य्यसमाज मेरठ में सर्वोपकारार्थ भेज दें। पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें तो बहुत अच्छी बात है। नहीं तो रुपये गये हुये आ भी जाते हैं, परन्तु धर्म्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती।

।।संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते। [गीता २।३४] ।।

सत्पुरुष को मरण से अपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये। यदि हमारे आर्य्यजनों, विशेष उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक एकसा सत्याचरण रहे तो देश की बड़ी उन्नति हो। सर्वशक्तिमान् परमात्मा आर्य्यावर्त्त देश पर कृपा करे जिस से हमारे आर्य्यावर्त्तीय उपदेशक अपने किये हुये उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलंकित न करके आद्योपान्त पर्य्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें। (अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।)

।। एति जीवन्तमानन्दः। [महाभाष्य १।३।१२] ।।

विक्रमी संवत् १९३९ तदनुसार सन् १८८० ई० नकल हिसाब जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणि जी के विषय का है।

(आमदनी)	(खर्च)
३५०) मार्फत आर्य्यसमाज लहौर यह तफसील लाहौर के रुपयों की है कि	।)॥ रजष्ट्री मुनशी इन्द्रमणि साहब के पास भेजी ता० ७ अगस्त सन् १८८०
३०) आर्य्यसमाज मुलतान	३००) हवालय मु० इन्द्रमणि माफत ला० श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद ता० ७ अगस्त सन् १८८०
१००) आर्य्यसमाज झेलम	
११५) आर्य्यसमाज लाहौर	

(आमदनी)

१०५)	मेम्बरान वियास
५०)	आर्य्यसमाज अमृतसर
१००)	आर्य्यसमाज रुड़की
१००)	आर्यसमाज फरूखाबाद
२३३॥≡)	आर्यसमाज फीरोजपुर
१५०॥-)	आर्यसमाज गुर्दासपुर
२४५॥)	आर्यसमाज मेरठ। इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के जिला तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं है चन्दा शामिल है दीया हुआ।
११)	लाला केवलकृष्ण
१३८॥	लाला रकुनराय व लाला मुरलीधर औरंगाबाद से।
१३६।॥)	पांड़े रामदीन सेकिंड मास्टर दारजिलिंग।
१५१६)	संख्या सम्पूर्ण एक हजार पांच सौ सोलह रुपये।

(खर्च)

११।)	किराया रेलगाड़ी मेरठ से मुरादाबाद तक ४ आदमियों का तारीख १४ अगस्त १८८०।
६)	किराया रेल बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक।
।-)	ला० शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया।
॥)	किराया गाड़ी जो हुल साहेब बॅरिस्टर के पास मेरठ में जाते समय दिया गया १४।८।८०।
२३)	मुकदमे पहिले में खच हुआ मुकाम मुरादाबाद इस का हाल मु० जी को मालूम है।
१७≡)।	खर्च रवानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ६ सितम्बर सन् १८८०।
३००)	वजरिये नोट के मुंशी जी के पास भेजे गए।
।-)	खत रजिस्टरी महसूल डाक सहित।
३००)	वजरिये हुंडी के मुन्शी जी के पास भेजे गये।
१॥)	हुंडियावन दिये गये ता० ३०।१०।८०।
३॥)	किराया रेल झंडू नोकर मेरठ से अलीगढ़ तक मय

वापिस और खुराक के।
–) मु० इन्द्रमणि सा० के खत का महसूल

९६३॥।=)॥। संख्या सम्पूर्ण ।

उक्त बाकी ५५२–)। रु० का व्योरा इस प्राकार से है।

११) आर्यसमाज मुलतान	[११)] आर्यसमाज मुलतान के लिखने अनुसार उपदेशक मंडली के धन में जमा किया गया।
३६।≡) आर्यसमाज जेहलम	३६।≡) आ० स० जेलम के लेखानुसार वापिस किये गये।
४१॥ =) आर्यसमाज लाहौर	४१॥।=) आ० स० लाहौर तथा
३८।) मेम्बरान वियास	३८।) तथा तथा तथा।
१८।) आर्यसमाज अमृतसर	१८।) अमृतसर आ० स० के लेखानुसार आर्यसमाज जेहलम को भेजे गये।
३६।≡) आर्यसमाज रुड़की	३६।≡) आ० स० रुड़की के लेखानुसार उपदेशक मंडली धन में जमा किये गये।
३६।≡) आर्यसमाज फरूखाबाद	३६।≡) आ० स० फरूखाबाद के लेखानुसार किसी उचित कार्य में खर्च करने के लिये यहां जमा हैं।
८५–)। आर्यसमाज फीरोजपुर	८५–)। आ.स. फीरोजपुर के लेखानुसार वापिस भेजे गये।
५४॥=) आर्यसमाज गुरदासपुर	५४॥=) आ० सा० गुरदासपुर के तथा तथा।
८९॥) आर्यसमाज मेरठ	८९॥) आ० सा० मेरठ के विचार अनुसार अंतरंग सभा के वापिस लिये गये।

४–)	लाला केवलकृष्ण	४–)	लाला केवलकृष्ण के जवाब न आने से मेरठ समाज में जमा हैं ।
५०≡)	लाला रकुनराय वा ला० मुर्लीधर	५०≡)	ला० रकुनराय वा ला० मुर्लीधर के पास रजिष्ट्री खत भेजा था परन्तु खत पता न लगने से लौट आया इस लिये इन के रुपये यहां जमा हैं ।
४६।।।=)	पांडे रामदीन मास्टर	४६।।।=)	पं० रामदीन मा० के लेखानुसार इस रुपये की उनके पास पुस्तकें भेजी गईं ।।

५५२–)। संपूर्ण संख्या

पाठक गण ! अब देखिये यह अपराध भी मुं० इन्द्रमणि जी पर हुआ, कि यदि मुन्शी जी पूर्व स्वीकृत नियमानुसार वर्तते तो उक्त ५५२–)। ये रुपये सर्वोपकार आर्य्यधर्म रक्षा में लगते । और आर्य्यसमाज मेरठ मुन्शी जी के अन्यथा व्यवहार पर शोक करके हिस्सेवार वैदिकधर्म रक्षणार्थ धन को पुनः दाताओं के पास क्यों फेर देते । जैसे थोड़े से उदार आर्यों ने वैदिक धर्मोपदेशक मंडली के लिये अपना-अपना भाग दे दिया वैसे सब धन आर्य्यावर्त देशोन्नति में लगता तो कितनी अच्छी बात होती । परन्तु ऐसी-ऐसी तुच्छ बातों से देशहितैषी महाशय जन देशोन्नति करने में उदासीन न हों, किन्तु जब बुरे बुराई नहीं छोड़ते तो भले भलाई क्यों छोड़ें[1] ?

द० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

---

[1] १. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ८१६ से ८२२ तक (हिन्दी सं० पृष्ठ ८४६—८५२] तक छपा । पं० जी ने भारतमित्र कलकत्ता २६-४-१८८३ से लिया । भारतमित्र के लेखानुसार "शाहपुरा" से भेजा गया ।

[पूर्ण संख्या ६५५] पत्र-सारांश (४३८)

[मुंशी समर्थदान वै० य० प्रयाग]
जब तक ईश्वरानन्द पढ़ता रहे उसे ५)रु० मासिक मिलता रहे[1] ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६५६] पत्र (४३९)

ओ३म्[2]

श्रीयुत लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो ।

पत्र तुम्हारा महादेव पंडित के पत्र के साथ आया[3] । समाचार विदित हुआ । समाज का उत्सव अच्छी प्रकार हो गया, यह बहुत सौभाग्य की बात हुई । जो महादेव पण्डित के विषय में जो तुम ने कुछ अनुमान किया सो हमको नहीं दीखता । यह पण्डित धनार्थी है धर्मार्थी नहीं । क्योंकि इसका पत्र इस बात की सिद्धी करता है । जैसा कि कानपुर में एक पंडित को रक्खा था और पश्चात् खराब निकला । इन लोगों का विश्वास हमारे हृदय में तभी होगा कि जब उनका वर्तमान प्रत्यक्ष वा परोक्ष में एक सा देखा जाय । इस पत्र के साथ मान्यपत्र की नकल भेजते हैं । मेरठ से आया हुआ मुंशी इन्द्रमणि का हिसाब[4] इस लिये नहीं भेजते कि तुम को प्रेस एक्ट के मिथ्या भ्रम ने भ्रान्त कर रक्खा है । अथवा मुंशी इन्द्रमणि से किसी प्रकार का सम्बन्ध होगा । अस्तु जो हो । तुम्हारा प्रबन्ध भी पाठशाला विषयक अच्छा नहीं है । अब कई बार हमने लिखा कि पंडित लक्ष्मीदत्त जी के आने के पश्चात् वा पहले संस्कृत में कौन-कौन ग्रन्थ का

---

[1] यह अंश पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित पृष्ठ ६८८ में निर्दिष्ट है ।

[2] मूल पत्र आर्य्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है । म० मामराज जी ने जनवरी सन् १९२७ में प्रतिलिपि की । फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०२-२०३ पर कुछ पाठ भेद के साथ छपा है । इस पत्र के उत्तर में लिखा २ मई १८८३ का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] लाला कालीचरण रामचरण का यह पत्र १९ अप्रैल १८८३ का तीसरे भाग में देखें ।

[4] पिछली पूर्ण संख्या ६५४ पर मुद्रित ।

किस-किस ने वा कितनों ने पढ़ा वा पढ़ते हैं। उसका समाचार कुछ भी नहीं लिखा। इस से विदित होता है कि **तुम्हारी पाठशाला में अलिफ बे और कैट बैट का धर्मार[1] है जो कि आर्य्यसमाजों को विशेष कर्तव्य नहीं है।** और इसके साथ पंडितों का हिसाब भेजते हैं देखलो। तुम अपने हिसाब से मिला लो। और आगे रु० शाहपुरा राज मेवाड़ के पते से मेरे पास भेज दो। और सब से बाबू जी आदि से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० बै० ब० ३ सं० १९४०[2]। (हस्ताक्षर)[3]

—:o:—

पूर्ण संख्या ६५७] पत्र-सूचना (७९)

[मुंशी समर्थदान, वै० य० प्रयाग[4]]

पत्रों का उत्तर……।[वै० कृ० ३ सं० १९४० (२५ अप्रेल १८८३)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६५८] पारसल-सूचना (४४)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

यजुर्वेदभाष्य के मई के अङ्क के लिये भेजे गये पत्रे][5]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६५९] पत्र (४४०)

ओ३म्[6]

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो!

तुम्हारे सब पत्रों का उत्तर और पुस्तक के बंडल के विषय का पत्र **कल तक भेज चुके हैं।** आज एक विशेष समाचार के लिये लिखते हैं। जो

---

[1] अर्थात् भरमार=आधिक्य। [2] २५ एप्रिल, बुध, सन् १८८३।

[3] इस पत्र पर ऋषि के हस्ताक्षर नहीं हैं। सारा पत्र लेखक के ही हाथ का है। ऋषि का एक भी अक्षर नहीं है। इस लेखक के लिखे और भी कई पत्र हैं।

[4] इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६५९ में है। तिथि का निर्देश भी उसी पत्र के अनुसार किया है।

[5] इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६५९ के पत्र में है।

[6] मूल पत्र परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है।

तुम को पंड्या जी ने उदयपुर का वर्त्तमान न छापने के विषय में लिखा था उसको सुनकर हमने उदयपुर को लिखा था[1] कि इस को छपवावें वा नहीं। वहां से उत्तर आया[2] कि निसंक छपवा दीजिये। सो इन के छपवाने में विलम्ब न कीजिये। इस लिये अब स्वीकारपत्र, मान्यपत्र और धन्यवादपत्र उत्तम कागज पर छपवा कर सब समाजों में और जहां उचित समझो भेज दो। अर्थात् जहां जहां लाइब्रेरी वा उत्तम समाचार पत्रों में भी भेज दो। और हमारे पास भी उसकी १०० नकल भेज दो। और टाइटल पेज पर भी उदयपुर का वर्तमान छपवा दो[3]।

और गनेशदास और कम्पनी तारघर के नीचे चांदनी चौक के उत्तर नई सड़क बनारस के पास से हम पुस्तक अनेक वार मंगवाते हैं। और उनका व्यवहार वैदिक यन्त्रालय के साथ है। और कुछ कमीशन तुम भी उनको देते होगे और वो तुमको देता होगा। तुम उस को एक चिट्ठी भेज दो कि स्वामी जी जो जो पुस्तकें मंगवावें भेज दिया करो और हमारे हिसाब में लिख लो क्योंकि उसका कमीशन वैदिक यन्त्रालय में रहा करे। अभी हम २१।।।=) आने के पुस्तक मंगवा चुके हैं जिस का हाल तुम को लिख दिया[4]। और दो एक दिन में ५०) रु० या ६०) रु० के पुस्तक श्रीयुत महाराजाधिराज हमारे द्वारा मंगवावेंगे। और **गनेशदास का व्यवहार शुद्ध है क्योंकि हमने उसकी दूकान से हजारों रुपये की पुस्तकें ली हैं।** और कमीशन भी कुछ देता था, हमको ठीक याद नहीं। तुम ने तो उस से कमीशन का खुलासा कर लिया होगा। यदि न करा हो तो अब कर लेना। पूर्व पत्रों का उत्तर और इसका उत्तर शीघ्र लिखना।

आज तुम्हारा २३-३[5] का पत्र पहुंचा[6] समाचार विदित हुये। ईश्वरा-

---

[1] द्र० पत्र-सारांश, पूर्ण संख्या ६४९, पृष्ठ ६७६।

[2] द्रष्टव्य तीसरे भाग में बारहठ किशनसिंह का सं० १९४० चैत्र शु० १४ (= २१ अप्रैल १८८३) का पत्र।

[3] उदयपुर का वृत्तान्त वेदभाष्य के टाइटल पर किस अङ्क में छपा, यह हमें ज्ञात नहीं हुआ।

[4] द्र०—पत्र-सारांश पूर्ण संख्या ६५३, पृष्ठ ६७७।

[5] २३-४ चाहिये यह पूर्ण संख्या ६५९ का पत्र २६ अप्रेल को लिखा गया।

[6] यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

नन्द वहां पहुंच गया, अच्छा हुआ। और रामनाथ को तुमने लौटा दिया होगा, अच्छा किया। जैसा तुम ने उस का सूची पत्र बनवाया है उसको बहुत जल्दी छपवाओ। यजुर्वेद के पत्रे भेज दिये हैं पहुंचे होंगे। ऋग्वेद के भी अब भेजने वाले हैं। परन्तु यह समझो कि यजुर्वेद भेजा है मई महीने का। और जो यह ऋग्वेद का भेजेंगे जून का है। अब हम आगे यजुर्वेद के पत्रे जुलाई की ५ वीं तारीख तक पहुँचेंगे। बीच में भले ही तुम जब आधा जून हो हमको स्मरण देना। वैसे ही आगे को भी भेजा करेंगे।

मुम्बई से आज लीलाधर हरिदास[1] का पत्र[2] आया है। उस में लिखा हैं कि टैप ढल रहे हैं। बहुत अच्छी बात है।

अब जो तुम ने ज्वालादत्त के लिये भाषा बनाने के विषय में लिखा उसके ये नियम हैं। यदि स्वीकार करेगा तो रक्खेंगे, नहीं तो नहीं।

(१) यदि वह १७) रुपये ही अपना मासिक रखना चाहे तो १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनानी पड़ेगी, चाहे वह गायत्री छन्द हो चाहे उत्कृति[3] अर्थात् छोटे बड़े मन्त्र सब गिनती में आवेंगे।

(२) अक्षर स्पष्ट और चित्त लगाकर सुन्दर भाषा बनानी होगी।

(३) जो तुमने प्रयाग में नौकर रखा है, वह हमारी पुस्तकें सहष प्रूफ सोधे देवे। और जहां उस को संदेह पड़े ज्वालादत्त से पूंछ ले। और शिवदयाल को ईश्वरानन्द भी कुछ सहाय दिया करेगा। अन्त का प्रूफ जिस पर छापने की आज्ञा दी जाती है वह एक बार ज्वालादत्त और शिवदयाल देख लिया करें। उसके सिवाय ज्वालादत्त को कुछ न करना होगा, किन्तु भाषा ही बनाना होगा।

(४) यदि उस पर उसकी प्रसन्नता न हो तो घर को चला जाय। यदि

---

[1] लीलाधर हरिदास रचित 'सत्यासत्यविचार' नामक पुस्तिका का उल्लेख पूर्व ५६६ पृष्ठ पर आया है। विशेष 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ के परिशिष्ट पृष्ठ ८४, ८५ पर देखें।

[2] लीलाधर हरिदास का सं० १९३९ (गुजराती सं०, उत्तर भारतीय १९४०) चैत्र शुक्ल १५ शनीश्चर का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] गायत्री छन्द २४ अक्षरों का और उत्कृति १०४ अक्षरों का होता है।

घर में रह कर भाषा बनाना चाहे तो उसको ८) रु० माहवारी देवें और १२ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बना दिया करे। बाकी अपना घर का काम किया करे। डाक और कागज का खर्च हमारा होगा। और यन्त्रालय में अच्छी भाषा और कुछ अधिक करेगा तो उसका मासिक यथायोग्य बढ़ा दिया जायगा।

(५) यदि वह कहे कि इतनी भाषा मुझ से नहीं बनाई जाती तो उस का कहना व्यर्थ है। क्योंकि जब **हम दो घंटे वा अढ़ाई घंटे अथवा तीन घंटे में २४ गायत्री मंत्र, १२ त्रिष्टुप् और १० जगती छंद[1] का भाष्य सुखपूर्वक बना लेते** हैं तो उस से अधिक समय और परिश्रम कभी नहीं लग सकता। इन दोनों बातों पर उसकी प्रसन्नता न हो तो हम को भी उस पर कुछ प्रसन्नता नहीं। यदि वह घमण्ड करके चला जायगा तो ऐसी जीविका कहीं नहीं मिलेगी और दुःख पावेगा। और हमारी कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि हम तो दूसरे को रखके भाषा बनवा लेंगे। और उसके सिवाय पश्चात्ताप के कुछ भी हाथ न लगेगा। घर पै जाके दशगात्रादि मृतक कर्म कराके मुर्दाविधान खाया करेगा। यह सब बातें तुम उसको समझा दो। पश्चात् जैसा हो वैसा हमको १० दिन [के] भीतर शीघ्र उत्तर लिखा भेजो। पीछे हम भाषा बनाने के लिये पत्र भेजेंगे, पूर्व नहीं।

ईश्वरानन्द को हमने जैपुर भेजा था। उस ने उस का वर्तमान कुछ नहीं लिखा। सो क्या बात है। सो उस से पूछ कर लिख देना।

मि० बै० कृष्ण ४ सं० १९४०[2]।   हस्ताक्षर

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६०]

पत्र (४४१)

ओ३म्[3]

स्वामी ईश्वरानन्दजी आनन्दित रहो।

१—सब यन्त्रालय के पदार्थ और नौकरों पर दृष्टि रखना कि नियमानुसार सब काम होते हैं वा नहीं।

---

[1] गायत्री में २४ त्रिष्टुप् में ४४ और जगती में ४८ अक्षर होते हैं।

[2] २६ एप्रिल, १८८३।

[3] म० मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १७–१८ पर मुद्रित।

२—जब कभी जिस किसी का व्यक्तिक्रम देखे तो जो शिक्षा करने से सुधर सक्ता हो तो वहीं सुधार देना, न माने तो हम को लिखना।

३—प्रति अष्टवारे वहां का वर्त्तमान पत्र द्वारा हम को भेजा करना और यथाशक्ति जो कोई पुस्तक छपे उसको दूसरे के साथ मिलकर वा स्वयं शोधा करना।

४—और जब कभी तुज को व्यक्तिक्रम विदित हो, तब, वा जब हम लिखें तब अपने सामने डाक खुलवाना और पुस्तकालय तथा धन, कोश और अन्य पदार्थों की सम्हाल से यथावत् रक्षा करना।

५—यावत् प्रबन्धकर्त्ता का व्यक्तिक्रम कोई विदित न हो तब तक उसके साथ मिलकर उसको सहायता देना और प्रीति प्रेम से यन्त्रालय की उन्नति करते रहना। ५) रुपये मासिक प्रतिमास यन्त्रालय से मिला करेंगे। उन से खान पानादि उचित व्यवहार करना। और जब कभी अधिक व्यय की इच्छा हो तब हम को लिखना।

६—सदा व्याकरण पढ़ने में परिश्रम किया करना और नियत समय पर यन्त्रालय का भी काम किया करना।

७—शरीर का संरक्षण, प्रातः व्यायाम, भ्रमण, सदा शास्त्रों का चिन्तन करना और जब तक तेरे स्थान को दूसरा निज पुरुष न आवे तब तक कहीं न जाना। धर्म से घर के समान काम किया करना। वैदिकयन्त्रालय से वेदाङ्गप्रकाश के पुस्तक लेकर पढ़ा करना[1]।

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती[2]
शाहपुरा राज मेवाड़ राजपूताना

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६६१] **पत्र (४४२)**

ओ३म्

श्रीयुत श्रीमान् महाशय आनन्दित रहो!

यहां जो नहर आपके खुदाई जाती है वह ३ फुट ऊपर ३ फुट नीचे और

---

[1] इस में तिथि का निर्देश नहीं है। अनुमान से यहाँ धरा है। वै० शु० ३ सं० १९४० (=९ मई १८८३) के पूर्ण संख्या ६७० के पत्र में ईश्वरानन्द का अन्यत्र चला जाना लिखा है। अतः यह पत्र उस से पूर्व का है।

[2] म० मुन्शीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १८ पर हस्ताक्षर नहीं है।

३ फुट चौड़ी खुदायी जाती है सो मेरी समझ में ३ फुट चौड़ी ४ फुट ऊपर और दो फुट नीचे रहना बहुत अच्छा है। इस का विशेष गुण आपको श्याम को समझा दूंगा। इत्यलम्। ....

वैशाख कृष्ण ४ गुरु सं० १९३९[1]।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती[2]]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६२] पत्रांश (४४३)

[भाई जवाहरसिंह, मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]
....

मुझ को निश्चय है कि आप के आने से यहां बड़ा आनन्द और उन्नति होगी[3]। ....

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६३] पत्रांश (४४४)

[पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा]
....

अब जब कभी हम मसूदे में आवें[गे] तब श्री दरबार को और तुम को छः शास्त्र के मुख्य मुख्य विषय और मनुस्मृति के तीन अध्याय पढ़ाना चाहते हैं। उस समय वहीं रहना हो और निरन्तर पढ़ाना हो तो एक आध महीने में सब हो जावेंगे। इसका उत्तर लिखना। और यहां के श्री

---

[1] सम्वत् १९४० चाहिए। २६ एप्रिल १८८३।

[2] जिस समय स्वामी जी शाहपुरा में विराजते थे, उस समय वहां नहर की खुदाई हो रही थी। उसे देखकर अपने रहने के स्थान से ही स्वामी जी ने श्री दर्बार के पास यह पत्र भेजा था। मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

[3] भाई जवाहरसिंह ने ऊपर मुद्रित अंश 'रद्दे बुतलान' पृ० ६८ पर छापा है। दयानन्दचरित-दर्पण पृ० २७२ पर इतना लेख अधिक है—

महाराजाधिराज ने मनुस्मृति का सप्तमाध्याय पढ़ लिया है। दो दिन योगशास्त्र अभ्यास करने के लिए पढ़ कर कल अष्टमाध्याय का आरम्भ करेंगे।……………………—……

शाहपुरा
[वैशाख वदी ७ संवत् १९४० से कुछ दिन पहले लिखा गया[१]।]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६४] पत्र (४४५)

ओ३म्[२]

बाबू नन्दकिशोर जी आनन्दित रहो!

आज जैपुर समाज से पत्र आया[३]। उसके पहले भी आया था[४] और आपने जिस पण्डित के लिए विज्ञापन[५] दिया हैं इत्यादि से आप के समाज का समाचार हम जान कर यह पत्र लिखते हैं[६] कि उस पण्डित का क्या नाम है। यदि वह जैसा तुम ने विज्ञापन दिया है वैसा ही है तो उन पण्डित जी को यहां शाहपुरा में हमारे पास भेज दीजिये। हम उन की परीक्षा कर के तुम्हारे लिखे प्रमाणे २०) रु० से कम माहवारी न करके किसी योग्य

भाई जवाहरसिंह जी आनन्दित रहो।

आपका पत्र पाया विशेष आनन्द हुआ। आप रियासत जोधपुर में अवश्य आओ मुझ को निश्चय —……।" नहीं कह सकते कि इतना अंश मुंशी जीयालाल जैनी ने कहां से लिया। इन पंक्तियों वाला पत्र जोधपुर बुलाने के लिए नहीं था। भाई जवाहरसिंह को शाहपुरा बुलाने के लिए लिखा था।

[१] यह अंश पं० छगनलाल के सं० १९३९ वैशाख वद ७ के पत्र में उद्धृत है। इस पत्र में सं० १९३९ के स्थान में १९४० चाहिये। क्योंकि पत्र के आरम्भ में 'सिद्धि श्री शाहपुरा शुभ स्थाने' का निर्देश है। पं० छगनलाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[२] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[३] यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

[४] यह पत्र भीं हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

[५] इस विज्ञापन के सम्बन्ध में भी हमें कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

[६] इस पत्र के उत्तर में बा० नन्दकिशोर जी ने ज्येष्ठ कृष्णा ३० सं० १९४० (५ जून १८८३) को पत्र लिखा था। नन्दकिशोर जीं का पत्र तीसरे भाग में देखें।

स्थान पै रख देंगे, वा उतने ही माहवारी पर हम अपने ही पास रख लेंगे। एक वार यहां हमारे पास भेज दो।

द्वितीय यह बात है कि कल तुम्हारे पास जो स्वीकारपत्र उदयपुर राज यन्त्रालय में छपा है और जो एक मान्य पत्र श्रीमान् आर्यकुलदिवाकरों ने मुझे दिया है उन दोनों की दो दो नकल तुम्हारे पास भेजते हैं। उन में से एक एक नकल तो तुम अपनी लायब्रेरी में रखना और एक एक नकल आर्य्यधर्म सभा जयपुर के समाज में देना। इन दोनों बातों का उत्तर नागरी में लिखकर भेजना। इस बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप की सभा निर्विघ्नता से सदा बढ़ती है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब की आत्मा असत्य अधर्म व्यवहार से छूट कर सत्य धर्म व्यवहार में प्रवृत रहे। सब आर्यसमाज में मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा—

मि वै० कृ० ७ स० १९४०। तदनुसार ता० २९ अपरेल सन् १८८३ ई०।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६५] पारसल-सूचना (४५)

[बाबू नन्दकिशोर जी, जयपुर][1]
१. स्वीकारपत्र दो प्रति।
२. मान्य-पत्र दो प्रति।
वै० कृ० ८, सं. १९४०=३० अप्रैल १८८३।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६६] पत्र (४४६)

ओ३म्[3]

श्रीयुत रावराजा श्रीमान् तेजसिंह जी आनन्दित रहो—

श्रीमान् का पत्र संवत् १९४० वैशाख वदी ३ रविवार का लिखा[4] मेरे पास

---

[1] इस की सूचना पूर्ण संख्या ६६४ के पत्र में है।

[2] पूर्ण संख्या ६६४ में 'कल तुम्हारे पास ......भेजते हैं' निर्देश के अनुसार हमने तिथि का निर्देश किया है। [3] रावराजा तेजसिंह जी के पास था।

[4] यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। अगले ऋ० द० के वैशाख शु० ४ सं० १९४०

वैशाख वदी ८ सोमवार को पहुंचा। जिसके साथ मुंशी दामोदरदास जी का भी पत्र था[1]। वांच कर बड़ा ही आनन्द हुआ। मैं आनन्द पूर्वक जोधपुर आने का निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ। और श्रीमान् महाशय महोदय जोधपुराधीशों, श्रीमान् महाराजे श्री प्रतापसिंह जी तथा आपको अनेक धन्यवाद देता हूं कि जिन आप लोगों ने मेरे वहां जोधपुर में आने के लिए प्रीति प्रकाश की। अब मुझ को दृढ़ निश्चय इस बात से हुआ कि आर्यावर्त की उन्नति होने का समय आया है। जब श्रीमान् जोधपुराधीश आदि की वैदिक सत्य धर्म और सनातन राजनीति पर प्रीति हुई है। पुनः हम लोगों के सौभाग्य के उदय होने में कुछ सन्देह नहीं। और इस बात से परम आनन्द हुआ कि जो मुंशी दामोदरदास जी ने आप की उन्नति होने का विषय लिखा। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से मैं प्रार्थना करता हूं कि आप लोगों की उन्नति कृपा कटाक्ष से सदा किया करें। और स्वदेशोन्नति में आप सब लोगों को दृढोत्साही कर के आप लोगों के द्वारा सब आर्य्यावर्त देश की बढ़ती कराके इस महापुण्य कीर्ति के भागी आप लोगों को करे।

(१) मैं आज से १० दश वा १५ पन्द्रह दिन में दूसरी चिट्ठी आप को लिखूंगा[2] कि जिस में पाली के स्टेशन से जोधपुर आने में जितनी वा जैसी सवारी भेजनी, व जो जो उचित प्रबन्ध होना योग्य होगा लिखूंगा। उसी के अनुसार प्रबन्ध आप कर देवेंगे।

(२) यहां श्रीमान् महारा[जा]धिराज मनुस्मृति का राजधर्म पढ़ रहे हैं। सात आठ दिन में पूरा हो जायगा। और ५ पांच सात दिन, एक राज में और दूसरा पुण्डरीक जी के यहां अग्निहोम का प्रारम्भ होगा उस में उचित उपदेश वा विधि बतलाने में लगेंगे।

(३) मैं अनुमान करता हूं कि गत दिन आप का पत्र शहापुराधीशों को दिखलाया। उस से अनुमान होता है कि जोधपुर में शीघ्र आने में सम्मति कठिनता से देंगे। सम्मति शीघ्र होने के लिये यह उपाय है कि जब मेरा दूसरा पत्र आपके पास आवे तभी आप किसी दूसरे पुरुष को यहां भेज

(१० मई १८८३) के पूर्ण संख्या ६७७ पर छपे पत्र के अनुसार रावराजा तेजसिंह का पत्र ऋ० द० ने कविराज श्यामलदास जी को भेजा था।

[1] सम्भव है यह पत्र भी कविराज श्यामलदास को भेजा गया हो। हमें नहीं मिला।

[2] देखो पूर्ण संख्या ६७२ का पत्र।

देवें । वे कहेंगे और पश्चात् मैं भी विशेष कहूंगा तो आशा है कि मान जावेंगे, क्योंकि शहापुराधीश बड़े बुद्धिमान् हैं । इस में आप[1] २० दिन के भीतर समय का विलम्ब है कि इसी समय में मेरा पत्र वहां आता और वहां से योग्यपुरुष का यहां आना मेरी सम्मति है । अधिक विलम्ब होना मैं भी उचित नहीं समझता ।

(४) मैं जैसा सत्यधर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने में प्रसन्न होता हूँ वैसा किसी अन्य बात पर नहीं । क्योंकि यही मनुष्य जन्म, विद्वान्, राजा वा धनाढ्य होने का मुख्य फल है, जिस को कि आप लोग तन मन धन और पुरुषार्थ से करना चाहते हैं । और यह आप लोगों ही का कर्तव्य कर्म है । अब परमेश्वर ने चाहा तो थोड़े ही समय में मैं और आप लोग समक्ष होकर जोधपुर में आनन्दोन्नति करने में प्रवर्तमान होंगे । मेरी ओर से महाराजे श्री प्रतापसिंह आदि से आशीर्वाद कह दिजियेगा । अलमतिविस्तरेण ।

वैशाख वदी ९ भौम संवत् १९४०[2] ।

दयानन्द सरस्वती
शा[ह]पुरा राज मेवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६७]

पत्र (४४७)

ओ३म्[3]

श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो ।

विदित हो कि बहुत दिन हुए वहां के समाचार विदित होने में । अब आप श्रीमानों और आप के लिखने योग्य वर्तमान लिख भेजिये जिस्से विदित हो कि उन डाक्तरों के कृत्य सें क्या गुण हुआ । और क्या क्या हो रहा है । आगे कैसा अनुमान होता है । इसमें डाक्तर लोग भी यही पथ्य कहेंगे कि ब्रह्मचारी रहना, घोड़े पर न चढ़ना तथा मांसाहारादि [का] एक वर्ष वा ६ छः महीने अथवा ४ चार महीने तक पथ्य भी यथावत् रखना होगा ।

---

[1] यहां पाठ कुछ भ्रष्ट है । [2] १ मई १८८३ ।

[3] मूल पत्र ठाकुर किशोर सिंह जी के संग्रह में है । पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १८१-१८२ पर छपा है ।

(२) आपके लेखानुसार[1] उदयपुर का वर्तमान छापने के लिये वैदिक यन्त्रालय प्रयागादि में आज्ञा दे दी है[2]। थोड़े ही दिन में छप के प्रसिद्ध हो जायगा।

(३) एक नूतन वर्तमान यह है कि श्रीमान् जोधपुराधीशों की आज्ञा से श्रीयुत महाराजे प्रतापसिंह जी तथा श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी और बाहारट अमरदान जी आदि ने मुझको शीघ्र जोधपुर में बुलाने के लिये पत्र भेजा है। सो गत दिन मेरे पास यहां शाहपुरा में पहुंचा है[3]। इसमें आप सर्वाधीशों से पूछ कर अनुमति लिख भेजिये कि यहां क्या होना उचित है। मैंने उसको इस प्रकार का पत्र भेजा है कि जब मेरा द्वितीय पत्र आप लोगों के पास पहुंच जाय तभी पाली के स्टेशन से जोधपुर तक सवारी आदि का प्रबन्ध कर दोजियेगा। मैंने यह विचारा कि जब उदयपुर से प्रत्युत्तर आजायगा तभी जोधपुर में जाने के लिये नियत समय की सूचना तुम को लिख दी जायगी।

श्रीयुत महाराज राजाधिराज जी का पढ़ना रह जायगा। मनुस्मृति के तो ३ अध्याय हो जावेंगे किन्तु शास्त्रों का विषय रह जायगा। तथापि श्रीमानों की अनुमति से जाना होगा। पांच छः दिनों में मनु का ६ वां अध्याय पूरा हो जायगा। और ८ दिनों में अग्निहोत्र का विधि भी हो जायगा। यहां सदा के लिए दो अग्निहोत्र हुआ करेंगे[4]। एक राज में और द्वितीय पुंडरीक जी के यहां। आप जोधपुर में अभी होकर आये हैं। इस लिये आप भी मुझ को लिखिये। और जो उचित हो तो जिस किसी को जोधपुर में लिखना। अखिलेशों की संमति हो सो भी यहां लिख भेजिये। जो ५१ नियम[5] राजनीति के लिखकर श्रीमानों को दिये थे उसकी १ नकल

---

[1] द्र० पृष्ठ ६८५ की टि० २। यह निर्देश बारहट किशनसिंह के पत्र में था।

[2] द्र० पूर्णसंख्या ६५६ के पत्र के आरम्भ में ।

[3] इनमें से रावराजा प्रतापसिंह के पत्र का निर्देश पूर्ण संख्या ६६६ के पत्र में है। सम्भव है रावराजा तेजसिंह के पत्र में ही इन महानुभावों की ओर से बुलाने का भी निर्देश हो। यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

[4] इस निर्देश से स्पष्ट है कि शाहपुराधीश नाहरसिंह के यहां जो श्रौताग्नि का आधान किया गया था वह ऋ० द० के निर्देश से हुआ था। ऋ० द० श्रौतयज्ञों की विधि को यथार्थ मानते थे। इस के लिए ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का 'प्रतिज्ञा विषय' प्रकरण देखें ।

[5] ये ५१ नियम पूर्ण सं० ५६८ (पृष्ठ ६२५-६३३) पर छपे हैं।

हमारे पास अवश्य भेज दीजियेगा और सब [से] मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा ।

मि० वै० कृ० ९ सोमवार सम्वत् १९४०[१] ।

[दयानन्द सरस्वती]
(शाहपुरा)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६६८] पत्र (४४८)

पण्डित गोपालराव हरि जी आनन्दित रहो ।

आज एक साधू का पत्र मेरे पास आया[२] । वह आप के पास भेजता हूं । साधु का लेख सत्य है । परन्तु आपने चित्तौड़ सम्बन्धी इतिहास में न जाने कहां से क्या सुन सुना कर लिख दिया । उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही बार समागम हुआ । आप ने प्रतिदिन दो बार होता रहा, लिखा है । आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं । यद्यपि आप सत्यप्रिय और शुद्ध भाव-भावित ही हैं और इसी हित-चित्त से उपकारक काम कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं, तो उसके लिखने में कभी साहस मत करो । **क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है** । ऐसा निश्चय रक्खो । और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो ।

वैशाख शुक्ल २ सम्वत् १९३९[३] । स्थान शाहपुरा[४] ।

(दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

---

[१] ३ मई सन् १८८३ ।

[२] इस साधु जी का नाम अमृतराम वेदान्ती था। साधु जी का पत्र तथा साधु जी को लिखा गया पं० गोपालराव हरि का ता० २७-४-८३ का उत्तर दोनों तीस भाग में देखें । इन्हें पं० गोपालराव हरि ने दयानन्ददिग्विजयार्क के तीसरे भाग में भी छपा है ।

[३] संवत् १९४० चाहिये । ८ मई १८८३ । तिथि की भूल हो सकती है । ९ एप्रिल भी सम्भव है ।

[४] दयानन्ददिग्विजयार्क तृतीय खण्ड से लिया गया । फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०१ से २०२ पर भी छपा है ।

[पूर्ण संख्या ६६९] पारसल-सूचना (४६)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग][1]

ऋग्वेदभाष्य के पत्रे पृष्ठ १५७८ से लेकर १६९७ तक।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६७०] पत्र (४४६)

(ओ३म्)

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो—[3]

१—पत्र तुम्हारा आया[4] वर्तमान विदित हुआ। जैनियों को पुस्तक का बंडल प्राप्त होने से निश्चय हुआ।

२—ईश्वरानन्द कहीं अन्यत्र चला गया है। वह बड़ा चंचल है। बहुत लोगों के कहने से हमने दीक्षा दी और तुम लोग भी प्रसन्न हुए, परन्तु प्रसन्नता का काम करे जब ठीक है।

६ कम्पोजीटर के निकालने से हानि हुई। परन्तु जैसे बने उन सब को जो कि पूर्व थे रख लो। किसी का ।।) आना किसी का १) रुपया अधिक बढ़ा कर रखलो। क्योंकि **वेदाङ्गप्रकाश और सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छपना चाहिये।**

४ तुमको हम निश्चित कहते हैं कि बाहर का काम किसी का मत छापो। सत्यार्थप्रकाश और वेदाङ्गप्रकाश के छपने में देर होने का कारण बाहर का काम है। और देशहितैषी और भारतसुदशाप्रवर्त्तक और प्रयाग समाचार सब का छापना बन्द कर दो। और उनको लिख दो कि तुम्हारी इच्छा हो जहां छपवाओ। क्योंकि हमने पहिले ही लिखा था[5] कि जब

---

[1] इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६७० के पत्र में हैं।

[2] ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १२३० से १५२१ तक के पृष्ठ भेजने का निर्देश पूर्ण संख्या ४२५ (भाग १, पृष्ठ ४७६) के पत्र में है। १५२२ से १५७७ तक के पृष्ठ कब भेजे गये इस का निर्देश इस संग्रह के किसी पत्र में नहीं हैं। जिस पत्र में ऋ० द० ने इन पृष्ठों को भेजने का उल्लेख किया होगा, यह हमें प्राप्त नहीं हुआ।

[3] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित होगा। हमने आर्यधर्मेन्द्र जीवनचरित पृ० ३७३ संस्क० १ से लिया है।

[4] यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

[5] द्र० पूर्ण संख्या ५८१, पृष्ठ ६१४, पं० १८-२०।

हमारे निज काम में हर्कत होगी उसी वक्त हम बन्द कर देंगे । सो हर्कत बहुत होती है। **क्योंकि यह यन्त्रालय रोजगार के वास्ते नहीं है, केवल सत्यशास्त्रों को छापकर प्रसिद्ध करने के लिये है, न कि व्यापार के लिये।** यहां छापने को बहुत है जितना चाहो उतना छापो। इन समाचार आदि के छापने में समय खोना कुछ उचित नहीं। हम को आशा है कि तुम भी इस बात को प्रसन्न[1] कर लोगे, क्योंकि तुम को प्रसन्न[1] करना अवश्य है। और पण्डित जो की यही प्रसन्नता है।

५— तुम्हारे कल के पत्र में पुस्तकों का बंडल लिखा हुआ नहीं आया है। आवेगा तब देख करके मान्यपत्र पर यदि तुम्हारा लेख मानने योग्य होगा[2] तो रहने देंगे, नहीं तो नहीं। और वैदिकनिधि के विषय में तुमने लिखा सो ठीक है। क्योंकि उन्हीं लोगों के दस्तखत से छपना ठीक है। और धन्यवादपत्र तथा मान्यपत्र पर प्रयाग-समाज के प्रधान और मन्त्री के दस्तखत होना चाहिये।

६—ऋग्वेद के पत्रे १५७८ से लेके १६९७ तक पण्डित ज्वालादत्त को भाषा बनाने को लिये दे देना। और उसने १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनाना स्वीकार किया है सो बराबर बनाया करे।

मि० वै० शु० ३ सं० १९४०[3]।

ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६७१] पत्र-सारांश (४५०)

[प्रभुदयाल जी आनन्दित रहो !

आपका पत्र मिला।] 'मीमांसा के मूल शब्दों में हिंसाविधि का अर्थ

---

[1] ऋषि दयानन्द 'पसन्द' शब्द के स्थान में सर्वत्र 'प्रसन्न' शब्द का व्यवहार करते हैं।

[2] समर्थंदान के लेख के सहित मान्यपत्र यजुर्वेदभाष्य के ४८–४९ (सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज ३ पर छपा है। इसे परिशिष्ट ३ पर देखें।

[3] ६ मई १८८३

[4] पं० प्रभुदयाल जी ने चैत्र सुदी १३ सं० १९४० को एक पत्र 'मीमांसा दर्शन

नहीं है। यह भाष्यकार और वृत्तिकार की भूल है जो हिंसापरक अर्थ किया है। हम को वेदभाष्य करने आदि कार्यों से अवकाश नहीं मिलता। यही कारण है कि आप के पत्र का उत्तर इस समय दस बजे रात्रि को लिखता हूं।

(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६७२] **पत्र (४५१)**

ओ३म्

श्रीयुत मान्यवर रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

आज पूर्वप्रेषित पत्रस्थ[2] पूर्वकृत प्रतिज्ञानुसार 'आज से दसवें दिन पत्र लिख कर आपके पास [पत्र भेजूंगा, यह पत्र] भेजा था[3]। मुझको निश्चय है कि आपने श्रीमान् प्रतापसिंह जी तथा श्रीयुत केसरीसिंह जी की सम्मति मेरे बुलाने में अवश्य ले ली होगी। और इन महाशयों के द्वारा श्रीयुत महोदय महाशय जोधपुराधीशों की भी अनुमति स्वीकृत करके लिखी होगी। अब आप के पूर्वलिखित पत्रस्थ[2] प्रीति, उत्साह और परोपकार दृष्टि के अनुरोध से आपको मैं लिखता हूं कि यदि आप लोगों की ऐसी ही इच्छा है कि मुझको शीघ्र जोधपुर में बुलाना अंगीकृत है तो मैं भी आप महाशयों की

में बलिदान से यज्ञ करने का विधान' के विषय में लिख कर ऋ० द० से इस विषय में सम्मति मांगी थी (द्र० तीसरा भाग)। उसके उत्तर में ऋ० द० ने जो उत्तर दिया था। उसके विषय में पं० भगवद्दत्त जी ने २–६–१७ के पत्र द्वारा उन से पूछा था। उन्होंने उत्तर दिया–'जो पत्र आया था, उसका पता नहीं लगता। पास में नहीं है। परन्तु पत्र के लेख का स्मरण है। उत्तर में श्री स्वामी जी ने आशीर्वाद के अनन्तर लिखा था·········।' उन्होंने ऋ० द० के पत्र का जो आशय पं० भगवद्दत्त जी को लिखा था, वह ऊपर छापा है। द्र० भूमिका, भाग १, पृष्ठ २८-२९। पं० प्रभुदयाल जी ने मीमांसा को छोड़ कर ५ दर्शनों पर भाषा–भाष्य लिखा था। उनमें से कुछ को वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई ने छापा था। यु० मी०

[1] मूल पत्र जोधपुर में रावराजा जी के पास सुरक्षित थे। हमें वहीं से प्रतिलिपियां आई थीं।

[2] द्र० पूर्ण संख्या ६६६ का पत्र।

[3] यहां 'भेजा है' पाठ चाहिये। बीच में पाठ त्रुटित भी प्रतीत होता है। उसे [ ] कोष्ठ में बढ़ाकर पूर्ण करने का प्रयत्न किया है।

इच्छानुकूल लिखता हूं कि इस पत्र के पहुँचने की मिती से आगे पांच दिन के भीतर पाली में सवारी के लिए दो रथ और एक सेज गाड़ी, दो ऊंठ और एक हाथी और पुस्तकादि भार के लिए एक सवारी और दो सवार और आठ सिपाहियों का एक पहरा, पहरे के लिए भिजवा दीजिए। हमारे पास १० तथा १२ आदमियों से अधिक नहीं।

और सवारी के साथ एक बुद्धिमान् पुरुष आना चाहिए कि जो पाली में सवारी रख, रेल में बैठ के मेरे पास शाहपुरा में आ जाय। परन्तु वह रूपाहेली के स्टेशन पर उतरे। और दो दिन पहले शाहपुर में पत्र द्वारा खबर भेजदे कि जिस से शाहपुर से सवारी उन के लिए स्टेशन पर उपस्थित रहे कि वे रेल से उतर, सवारी में बैठ, शाहपुरा में आनन्दपूर्वक चला आवे। आप का भेजा हुआ माननीय पुरुष शाहपुरे में जिस दिन आवेगा उस से दो तीन दिन में यहां से यात्रा कर उचित समय पाली में पहुँचेंगे। जोधपुर में आके अत्यानन्दपूर्वक मैं आप लोगों से मिलूंगा। आगे मेरे ठहरने के लिए जहां तक हो सके बगीचे में स्थान होना चाहिए। न वह नगर से अति दूर न अति निकट। जल वायु जहां का शुद्ध और एक मील से अधिक दूर और आधा मील से कम दूर न हो। और पूर्वोक्त ऊंटों में एक सवारी का सांडिया और दूसरा साधारण। जब हम पाली में पहुँचेंगे तब उस को एक चिट्ठी इस बात की कि जिस स्थान में मेरा ठहरना हो, क्या क्या सामग्री उपस्थित करनी होगी, पत्र लिख कर उस सांडिये सवार के हाथ आप के पास भेजी जाय, एक दिन पूर्व ही। जिस के अनुसार आप उस स्थान में बिछौना आदि का यथावत् प्रबन्ध कर दीजियेगा। इस का उत्तर शीघ्र भेजिये और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिती वैशाख शु० ४ गुरुवार[1]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६७३] पत्र-सूचना (८०)

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग]
वैदिक यन्त्रालय के हिसाब की व्यवस्था के लिए[2]।

---

[1] सं० १९४०। १० मई १८८३।

[2] इस का संकेत अगले पूर्ण संख्या ६७४ के पत्र में है।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

[पूर्ण संख्या ६७४] पत्र (४५२)

ओ३म्[1]

श्रीयुत कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २-५-८३ का लिखा[2] हमारे पास सहित ३००) की हुंडी के आया। मैं भी जानता हूं वैदिक यन्त्रालय का हिसाब गड़बड़ है। परन्तु अब पण्डित सुन्दरलाल जी का आदमी गया है। वह हिसाब किताब लिखा करेगा। इस से आशा है कि सुधर जायगा। यदि न सुधरेगा तो जैसी आप लोगों की सम्मति—यही कि एक सराफी पढ़ा हुआ अच्छा प्रामाणिक आदमी आप लोगों की सम्मति से लिया जायगा। इस के लिये **आज मैंने पण्डित सुन्दरलाल जी को लिखा है**। उन की सम्मति आने पर मैं लिखूंगा। अथवा परबारा पण्डित सुन्दरलाल जी तुम को लिखेंगे। लाला सेवाराम जी तथा बाबू जी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। **और एक यह फोटोग्राफ** तथा छोटा सा पत्र[3] रामानन्द को दे दीजियेगा। और पाठशाला के कक्षा विषय में अवकाश पाकर लिखूंगा और यहां का समाचार भी।

शाहपुरा
मि० वै० शु० ४ सं० १९४०[4]।

(दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६७५] पत्र (४५३)

ओ३म्[5]

रामानन्द आनन्दित रहो।

तेरे लिखे प्रमाणे प्रतिकृति भेजी जाती है[6]। कोई कहार अच्छा मिले

---

[1] मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। इस की प्रतिलिपि जनवरी सन् २७ में म० मामराज जी ने की। फरुखाबाद का इतिहास पृष्ठ २०३-४ पर पर भी छपा है। [2] कालीचरण रामचरण का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] यह पत्र अगली पूर्ण संख्या ६७५ पर छपा है।

[4] १० मई बृहस्पतिवार सन् १८८३।

[5] मूल पत्र म० मामराज जी के पास श्रीराम निवास (बिल्डिङ्ग) खतौली (जिला मुजफ्फरनगर, यू० पी०) में सुरक्षित है।

[6] यह पत्र तथा प्रतिकृति अर्थात् रामानन्द के साथ खिंचा हुआ अपना फोटो

तो लेते आना। तेरे ३०)रु० के लिए १०) १५) २०) तक देंगे। १०) जमा रहेंगे। दुकान को लिख दिया। जब आवश्यक होगा, तब दे देंगे। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० वै० शु० ४ सं० [१९४०। १० मई] १८८३

[दयानन्द सरस्वती]
शाहपुरा

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६७६] पत्र (४५४)

ओ३म्[1]

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो।

निम्नलिखित वर्तमान पंडित बालमुकुन्द तथा देवीप्रसाद को भी सुना कर कार्य्य कीजिये। हम को मुंशी समर्थदान ने लिखा था कि बाहर का काम भी छपना चाहिये[2]। उस पर हम ने ऐसी अनुमति दी कि हमारे काम में हर्ज होगी तो हम उसी वक्त काम बन्द कर देंगे[3]। अब देखो कि एक सप्ताह में तो प्रयागसमाचार छपता है। और मासिक ये दो ले लिये। और आठ फारम वेदभाष्य का छपता है। और यह सब मिलकर महीने में १० फारम तथा १२ यह हो जाते होंगे। इस हिसाब से २० तो हो गये। अब कहो सत्यार्थप्रकाशादि कैसे छपे। इस लिये हम चाहते हैं कि बाहर का काम जब तक दूसरा प्रेस न लिया जाय तब तक न छपाया जाय। **क्योंकि यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र के प्रचार के लिये किया गया, रोजगार के लिये**

मन्त्री आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद के द्वारा भेजा गया था। म० मामराज जी ने सन् १९२७ में वहां से प्रतिकृति तथा पत्र प्राप्त किया। इस पर रामानन्द का नोट इस प्रकार है—

"इस पत्र को जब कभी काम पड़े प्रवर्तक में छाप दीजिये कृपा होगी।" रा० न०।

[1] मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

[2] सम्भवतः मुन्शी समर्थदान ने यह १३ सित० १८८१ के पत्र में लिखा होगा। इस का निर्देश ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ५८१ के पत्र (पृष्ठ ६१४) में किया है। इसी पत्र में बाहर के काम से हानि होने पर बन्द करने का भी उल्लेख है।

[3] द्र० पूर्ण संख्या ५८१ (पृष्ठ ६१४, पं० १८-२०)।

नहीं। यद्यपि समर्थदान की मनसा छापेखाने की उन्नति करने पर हो कि बाहर के काम से कुछ सहाय होगा तथापि अपने निज पुस्तकों के छपने में हानिकारक को हम नहीं छपवा सकते। इस लिये मुंशी समर्थदान को हम ने लिखा है[1] और तुम भी उन को समझा दो कि नोटिस देदें। पंडित सुन्दरलाल जी की भी यही सम्मति होगी अर्थात् बाहर का काम बिलकुल बन्द किया जाय। कारण कि समाचार चाहे जहां छपेगा, उनकी कुछ हानि नहीं होगी। और अपने पुस्तक अन्यत्र नहीं छप सकते। और हम ने इस से कहा था जब इस प्रतिज्ञा पर कहा था। चाहे चिट्ठी भी हमारी इसी के पास होगी,[2] भले ही देख लो। यदि तुम प्रयागसमाचार लो तो रात में वा अनध्याय में तथा सत्य शास्त्रों के छपने का समय बचा कर अन्य समय में कि जिस में इन शास्त्रों के छपने में विघ्न न हो, लिखा था। सो अब समर्थदान को कह दो कि १५ दिन पहले नोटिस दे दो प्रयागसमाचार वाले को और महीने पहले देशहितैषी आदि को। और बाहर की छपवाई किसी की मत लो। जब बाहर की छपवाई लेने का समय आवेगा तब हमहीं कह देंगे, अब बाहर का काम जो कुछ आवे तो ले लो। एक तो प्रेस है, उस में अपना छपना बहुत है। इस से बाहर की छपवाई लेनी अवश्य नहीं। और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

और तुम तीन और समर्थदान मिल कर एक सभा करो कि जिस से कोई व्यवस्था नई करनी वा पुरानी हटानी हो तो विचार करके हम को और पंडित जी को लिखा करो। और जो मुंशी समर्थदान ने मान्यपत्र के साथ छापा है[3], सो अच्छा है। क्योंकि इतने लेख के बिना मान्यपत्र का अर्थ लोगों के समझ में नहीं आता। इतना लेख अवश्य होना था।

मि० वै० शु० ४ सं० १९४०[4]।

हस्ताक्षर

[दयानन्द सरस्वती]

शाहपुरा

---

[1] द्र० पूर्ण संख्या ६७० का पत्र

[2] अर्थात् पूर्ण संख्या ५८१, (पृष्ठ ६१३-६१५) पर छपा पत्र।

[3] मान्यपत्र यजुर्वेद भाष्य अंक ४८, ४९ (सम्मिलित) के टाइटल पेज ३ पर छपा है। उस के ऊपर मुन्शी समर्थदान ने तीन पंक्तियां 'विज्ञापन' शीर्षक के नीचे स्पष्टीकरण के लिये लिखी हैं। हम उसे परिशिष्ट ३ में दे रहे हैं।

[4] १० मई १८८३।

[पूर्ण संख्या ६७७] पत्र (४५५)

ओ३म्

श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो[1]।

मेरे पत्र[2] का उत्तर बारहट किशन जी के हस्ते शाहपुराधीशों के द्वारा पहुँचा। बांच कर आनन्द हुआ। और इस बात से परम आनन्द हुआ कि श्रीमानों का शरीर आरोग्य होता आता है। निश्चय है कि परमेश्वर की कृपा से अब आरोग्य हो जायगा। और इसी द्वारा देस मेदपाट और त[द्]द्वारा आर्यावर्त देश की उन्नति की भी आशा है।

(१) जो जोधपुर से पत्र आया था वह रावराजा तेजसिंह का था[3]। और उस में यह लिखा था कि तेजसिंह जी ने प्रतापसिंह जी से कहा और प्रतापसिंह जी ने श्रीमान् जोधपुराधीशों से और जोधपुराधीशों ने प्रत्युत्तर दिया कि स्वामी जी को शीघ्र बुलाओ। और मुझ से पूछा कि किस स्टेशन से और कितनी सवारी और कितने आदमी आप के साथ हैं, कितनी सवारी भेजें इत्यादि। और असल पत्र रावराजा तेजसिंह जी का आप के पास भेजता हूं। बांच कर लौटा दीजिये। और मैंने पहले पत्र[4] में लिखा था कि दस दिन पीछे हम एक पत्र जोधपुर को आप के पास भेज देंगे। सो आज भेजा है[5]। उस में यह लिखा हैं कि हमारे साथ अधिक से अधिक १० तथा १२ आदमी होंगे। और उनके लिए २ रथ एक सिकरम और मेरे लिए एक सिकरम अच्छी इत्यादि लिख दिया है। अब उन का और आप का प्रत्युत्तर आने पर जैसा होगा वैसा विचार किया जायगा। और अब श्रीमानों की सम्मति लेकर वहां का वर्तमान लिखा कीजिये। और आप अपने नेत्रों की ओषधी शीघ्र कीजिये।

मिती वैशाख शुक्ल ४ सं० १९४०[6]। [दयानन्द सरस्वती]

---

[1] मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है। पं० चमूपति सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १८३-१८४ पर छपा है।

[2] सम्भवतः यह पत्र वैशाख कृष्ण ९ सं० १९४० का पूर्ण संख्या ६६७ (पृष्ठ ६९३) पर मुद्रित पत्र है।

[3] संभवतः यहां निर्दिष्ट राव राजा तेजसिंह का वही पत्र है जिस का निर्देश ऋषि दयानन्द ने पूर्ण संख्या ६६६ (पृष्ठ ६९१) के पत्र में किया है।

[4] यह पत्र पूर्ण संख्या ६६६ (पृष्ठ ६९१) पर छपा है।

[5] द्र० पूर्ण सं० ६७२, पृष्ठ ६९८। [6] १० मई १८८३।

पूर्ण संख्या ६७८] **पत्र (४५६)**

ओ३म्

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो।

मुन्शी इन्द्रमणि जी और लाला जगन्नाथदास समाज में रहने के योग्य नहीं है। क्योंकि केवल मेरी निन्दा करने से मेरा वह कुछ नहीं बिगाड़ सकते, परन्तु जो देश की उन्नति और उन्नत्यर्थ समाज के उद्देश हैं, उन से इन का आचरण विरुद्ध है। अब देखिये इन का सच और झूठ मुसलमानों के साथ मामले में प्रसिद्ध हो गया है। अब वे कितना ही उद्योग करें, परन्तु वह उन के लिये सफल न होगा। इस लिये मुन्शी इन्द्रमणि जी का सभापति और लाला जगन्नाथदास का पुस्तकाध्यक्ष रहना अयोग्य है। क्योंकि मैंने प्रथम इन दोनों के पास प्रयाग से पण्डित सुन्दरलाल जी की मारफत बहुत से पुस्तक रक्षा और विक्रयार्थ भेजे थे। उन का हिसाब आज तक उन्होंने नहीं दिया है। सिवाय अपने मतलब सिद्ध करने के लिये, देशोन्नति का नाममात्र कह के, स्वप्रोजन[सिद्ध] करने के अन्य कुछ भी नही दीख पड़ता। हां प्रथम यत्किंचित् था, सो लोभादि दोष ने अब नष्ट कर दिया। इसलिये जो उन का संगी हो उन के साथ जाने दो। और बाकी समाज उन से अलग कर लीजिये। और रजिष्टर तथा समाज का धन उन को कभी मत दीजिये। यदि कोई दूसरा समाज होता तो लाला जगन्नाथदास को 'इस समाज पर धिक्कार है' कहते समय पर ही हाथ पकड़ धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता। और उसी वक्त उस का नाम कट जाता। ऐसे दुष्ट भाषण करने वाले पुरुषों का समाज में रहना परम दूषण है। देखो मुम्बई समाज ने ऐसी बातों से बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि को प्रधान पद से शीघ्र च्युत कर दिया। ऐसा ही अनेक समाजों में हुआ है। इसी से समाज की उन्नति है।

बस आप अपने स्थान पर समाज किया कीजिये और समाज के नियमों पर दृढ़ रहिये। और उन से अलग आप और जो समाज के हितैषी आर्यावर्त देश की उन्नति चाहें वे भी आपके साथी हों। और जो उनके संगी होवें उनके साथ जावें। और अन्य समाज के सभासद के आने की वहां आवश्यकता क्यों समझते हैं। क्या आप समाज के सभासद नहीं हैं। आप ही जो कि लिखने में बातें नहीं आतीं समाज की ओर से अन्तरंग सभा में प्रसिद्ध कर दीजिये। और ४७) रु० समाज के जमा और रजिष्टर पुस्तक उन को न देने में जो कुछ वे आप की निन्दा करेंगे उस से आप को कुछ

भी हानि नहीं हो सकती। और आप निश्शंक कह दीजिये कि हम मुन्शी इन्द्रमणि जी और लाला जगन्नाथदास को सभा के अधिकारी वा सभासद् रखना नहीं चाहते। न इनके साथ हम, वा हमारे साथ वे रहें। और न इन के संग देश की उन्नति हो सकती है। इसलिये हम आज से समाज का कार्य स्वतन्त्र होकर इन दोनों महात्माओं से पृथक् करते हैं। और उसी समय से पृथक् हो जाइये। बहुत से मुरादाबाद[के] रईसों ने प्रथम ही मुझ से कहा था कि जैसा मुन्शी इन्द्रमणीजी को आप जानते हैं वैसे नहीं हैं, सो ऐसा ही हुआ। और इसी लिये मैंने स्वीकारपत्र अर्थात् वसीयतनामा में से मुन्शी जी को पृथक् कर दिया[1]। उन का सच और झूठ इतने ही नमूने से समझ लो कि जो उन्हों ने विज्ञापन दिया था कि हमारे पास मेरठ समाज से मामले के सहाय में केवल ६००) रु० ही आये और मेरठ समाज के हिसाब ९६३।।।=)।।।[2] पहुचे हैं। यह महा झूठ नहीं तो क्या है? इस लिये सज्जनों को विदित कराता हूँ कि यदि आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति चाहो तो मुन्शी इन्द्रमणी जी और लाला जगन्नाथदास के अन्यथा आचरण से पृथक् हो के देशोन्नति किया करो। इनके समाज में मेल से सिवाय हानि के दूसरा कुछ भी नहीं है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर अपनी कृपा कटाक्ष से देशोन्नति दृढ़ोत्साही कटिबद्ध करें कि जिस से मुन्शी इन्द्रमणीजी तथा लाला जगन्नाथ दास के किये हुये विघ्न आप लोगों को निरुत्साही न करें और तन मन धन से देशोन्नति में तत्पर रक्खे। (अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु)।

मि० वै० शु० ६ सं० १९४०[3]। शाहपुरा राज्य मेवाड़

[दयानन्द सरस्वती]

---

१. **प्रथम** स्वीकारपत्र में मु० इन्द्रमणि का नाम रखा था। देखो पूर्ण संख्या ३२८, प्रथम भाग पृष्ठ ३८२। द्वितीय स्वीकारपत्र पूर्ण संख्या ६२५ (पृष्ठ ६५३) में हटा दिया।

२. **इस पत्र** की जो नकल हमें प्राप्त हुई थी, उस में ६३।।।=)।।। लिखे थे, परन्तु समस्त पुरातन लेखों में ९६३।।।=)।।। देखकर हम ने वैसा ही कर दिया है। यह स्पष्ट ही नकल करने वाले का दोष है। पुनः म० मामराज जी के मूल पत्र से मिलाने पर मूल पत्र में ९६३।।।=)।।। ही है, ऐसा ज्ञात हुआ। पूर्ण संख्या ६५४ पर जो हिसाब छपा है उस में (पृष्ठ ६७८ पर) योग ९६३।।।=)।।। ही है।

३. १२ मई १८८३।

[पूर्ण संख्या ६७९] कार्ड (४५७)

ओ३म्[1]

ठाकुर शेरसिंह जी आनन्दित रहो।

कार्ड तुम्हारा आया[2], समाचार विदित हुआ। आजकल गर्मी बहुत होती है। तुमको यात्रा में कष्ट उठाना पड़ेगा। यदि ऐसी ही इच्छा हो तो रात्रि रात्रि में रेल में बैठ दिन में ठहर ठहर के अजमेर पहुंच रूपाहेली के स्टेशन उतर के हमारे पास चले आओ। रूपाहेली से शाहपुरा ८ कोश है। यदि तुम तीन दिन पहले हमारे पास पत्र वा तार भेज दोगे तो सवारी तुम्हारे वास्ते यहां से आ जायगी जिस से तुम सुखपूर्वक यहां पहुंच जाओगे। परन्तु थोड़े दिन के लिये हमारे पास न आना चाहिये। कम से कम २० तथा ३० दिन तक जरूर रहना चाहिये। ठाकुर गोपालसिंह जी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। परमात्मा की कृपा से हम आनन्द में हैं। आशा है कि तुम भी आनन्द में होगे।

वै० शु० ७ सं० १९४० रविवार[3]।

[दयानन्द सरस्वती[4]]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६८०] तार-सारांश (७)

[पाली, (जोधपुर) के हाकिम]

२६ ता० को रूपाहेली स्टेशन पर सवारी उपस्थित होगी।[5]

—:o:—

---

१. मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। जनवरी सन् १९२७ में म० मामराज जी ने इसकी प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०४ पर भी छपा हैं।

२. यह पत्र उपलब्ध नहीं हुआ।

३. १३ मई १८८३।

४. इस पर पता ऋषि के हाथ का लिखा हुआ इस प्रकार है—‘रामानन्द ब्रह्मचारी के हस्ते लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद की मार्फत पहुंचे” । [इस कार्ड पर शाहपुरा डाक घर की मोहर १३ मई १८८३ की है]।

५. पूर्ण संख्या ६८१ के पत्र के अन्त में इस तार की सूचना है।

[पूर्ण संख्या ६८१]

पत्र (४५८)

ओ३म्

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो[1]—

मुन्शी दामोदरदास जी का ता० २७[१७?[2]] मई का लिखा पत्र हमारे पास पहुंचा[3], समाचार विदित हुआ। उन के पास इस लिये नहीं भेजा कि वह भागासे होगा। आपने पाली में सवारी आदि मुन्शी दामोदरदास[4] और बारहट अमर्थदान जी को भेजा और पाली में सवारी छोड़कर शाहपुरा में आने की आज्ञा दी। एक डेरा भिजवाया और मेरे रहने के लिये बाग में बंगला नियत किया। बहुत अच्छी बात की। यह पुरुषार्थ सब आप ही लोगों का है। इसलिये श्रीमान् योधपुराधीश महाराजा, श्रीमान् प्रतापसिंह जी, श्रीयुत महाराजा भतीजा फतेसिंह जी और आप आदि को अति प्रीति से आशीर्वाद और बहुत धन्यवाद देता हूं। इस को स्वीकार कीजिये। और यहां श्रीयुत महाराजाधिराज शाहपुराधीशों ने रूपाहेली स्टेशन पर ता० २६ मई के दिन आप के भेजे हुए पुरुषों के लिए सवारी उपस्थित कर देना स्वीकार कर लिया है। सो उसी तारीख को वह सवारी पहुंच जायगी। और जब आपके भेजे पुरुष यहां पहुंचेंगे। तत्पश्चात् मैं भी यहां से चलकर उचित समय पर जोधपुर पहुंच के आप लोगों से अत्यानन्दपूर्वक मिलूंगा। और मैं इसी बात से प्रसन्न हुं कि जो मुझ से आप लोगों का यत्किंचित उपकार हो और आप लोग मुझ से आनन्दपूर्वक उपकार ग्रहण करें। क्योंकि जो कुछ अपने आर्य्यावर्त देश की उन्नति है सो सब आप ही लोगों के द्वारा अवश्य हो रही है और होगी। अन्य किसी के द्वारा नहीं। क्योंकि **यथा राजा तथा प्रजा**—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तद् देवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥१॥ [गीता ३। २१]

राजा और राजपुरुषों के सत्य धर्मयुक्त उत्तम पुरुषार्थ ही से सब को सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। अन्य सब

---

१. मूल पत्र रावराजा तेजसिंह के पास था।

२. प्रस्तुत पत्र १९ ता० का है, अतः यहां १७ ता० चाहिये।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

४. पृष्ठ ७०८ की टि० ५ भी देखें।

सज्जनों से मेरा आशीर्वाद कहियेगा। और पाली में हाकिम के नाम ऐसा तार भेज दिया है कि ता० २६ मई को रूपहेला के स्टेशन पर सवारी उपस्थित होगी।

मि० वै० सु० १३ सोमवार सम्वत् १९४०[१]।

[दयानन्द सरस्वती]
शाहपुरा

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६८२] ओषधि-पत्र-सूचना (८१)

[श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी]
ओषधि संबन्धी[२]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६८३] पत्र (४५९)

ओ३म्[३]

श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो।

आप के नेत्र निरोग हो गये कि नहीं। किशन जी वारहट के हस्ताक्षर आपकी चिट्ठी[४] युक्त श्रीमानार्यकुलदिवाकरों के शरीर की आरोग्यता सुन बड़ा आनन्द हुआ। आप लोगों ने अपने शरीरों को अपने हाथ से ऐसा घास फूस सा बना रक्खा है कि किसी न किसी रोग को छोड़ कर थोड़े ही समय अरुग्ण रहते हैं। शरीर की आरोग्यता से धर्मार्थ काम मोक्ष यथावत् सिद्ध कर सकते हैं।

एक यह समाचार विदित होवे कि आज ३ दिन हुये मुझ को लेने के लिये जोधपुर से आदमी आ गये हैं[५]। और मैं भी परसूं अर्थात् ज्येष्ठ वदि

---

[१] १९ मई १८८३।

[२] इस पत्र का संकेत अगले पूर्ण संख्या ६८३ के पत्र में है।

[३] पं० चमूपति सम्पा० पत्र व्यवहार पृष्ठ १८५-१८६ पर मुद्रित।

[४] यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

[५] मुन्शी दामोदरदास रायजादा सिंगी नारनौली, बाबू दुर्गाप्रसाद जी फरुखाबाद निवासी को लिखते हैं—

"..........हस्बुलहुक्म जुनाब मौसूफ [श्री स्वामी जी] के माय सब सवारियों के

४ शनिवार[1] के दिन यहां से जोधपुर की ओर चलूंगा। और उचित समय वहां पहुँच कर आप को वहां का सब समाचार लिखूंगा। यह समाचार श्रीमानों से भी कह दीजियेगा। और श्रीयुत कविराज मुरारिदान जी तथा उदयपुरस्थ भद्र लोगों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा और **पूर्व मत्प्रेरित पत्रस्थौषधी थोड़े दिन सेवन कर देख लीजिये**। यदि गुण दीखे तो अधिक सेवन कीजियें। निश्चय है कि आप ओषधी का सेवन न्यून न करते रहेंगे।

मि० जे० कृ० २ सं० १९४०[2]।

हस्ताक्षर
शाहपुरा
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६८४] पत्र (४६०)

श्रीयुत मान्यवरेष्विदन् निवेदनं[3]।

विदित हो कि हमारा असबाब और आदमी प्रातःकाल दो घड़ी वा तीन घड़ी दिन चढ़े यहां से चल देवें।

एक पुस्तकादि भार के लिये गाड़ी, कि जिस के बैल १ घण्टे कोश चलने वाले होवें और सिंघी साई। जैसा कि पहिले सिंगी जी ने मुर्दार बैल भेजे थे वैसा न होना चाहिये। मैं इन बैलों को यहां चलाकर देख लूंगा।

एक सर्कारी रथ और एक सर्कारी तांगा, यदि पुस्तकों के लिये सैज गाड़ी कि जिससे मेह आदि जल पानी का बचाव होवै। ऐसा हो तो बहुत अच्छा है। और वग्गी की डाक आपने बैठा[4] ही दी होगी। और एक पहरा यहां का साथ चला जायगा। और पुस्तकों की गाड़ी के साथ एक वा दो मोम जामे भी चाहिये कि जिस से मेह पानी का बचाव हो सके[5]।

[दयानन्द सरस्वती]

कमतरीन माय मित्र अमरदान जी जोधपुर से रवाना होकर स्वामी साहब को शाहपुरा से लेकर जोधपुर में आए। चुनाचे जब से अकसर वक्त व्याख्यान हुआ है। वरना ५ बजे से १० बजे रात तक सवाल व जवाब होते रहते हे।"

[1] २६ मई १८८३।

[2] २४ मई १८८३।

[3] मूल पत्र शाहपुरा राज में सुरक्षित है।

[4] 'पैठा' (=भेज) चाहिये।

[5] संभवतः ज्येष्ठ वदी ३ सं० १९४० अर्थात् २५ मई १८८३।

[पूर्ण संख्या ६८५] तार-सारांश (१)

[कमलनयन शर्मा, अजमेर]
हम अजमेर पहुंच रहे हैं।[1]
[सम्भवतः ज्येष्ठ बदी ५, सं० १९४० २७ मई १८८३]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६८६] पत्र (४६१)

[2]श्रीयुतार्य्याऽनवद्य-शुभगुणगणाऽलंकृतेभ्यः श्रीमन्महाराजाधिराजेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमां, शमिहास्ति, तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे।

विदित हो कि हम कुशलता पूर्वक कल संध्या के समय अजमेर में पहुंच गये। और पुस्तकादि के सहित आज सब आदमी प्रातःकाल पहुंच गये हैं। विशेष विदित किया जाता है कि शाहपुरा से चल कर जहां घोड़ा बदलता है, उससे आगे दो ग्राम छोड़ के जो रूपाहेली का भोजरांस ग्राम है वह एक कोश रह गया। तब बड़े वेग से आंधी और पानी आया। वहां एक घंटा तक भीगते रहे। जब आंधी और पानी बन्द हुआ तब भोजरांस ग्राम जो कि रूपाहेली का है उस में पहुंचे। वहां प्रथम ही मुझ को लेने के लिये रूपाहेली के ठाकुर उस ग्राम में आ ठहरे थे उन के रात्रि में वहां रहने से मेरे ठहरने और घोड़े आदि के रहने के लिये सब प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। और दूसरे दिन मध्याह्न में भोजन कर मध्याह्न समय में अर्थात् गाड़ी के छूटते ही समय पहुंचा। वहां से बरल[3] के स्टेशन पर पहुंचा। देखा तो वहां न कोई सिपाई और न कोई गाड़ीमान उपस्थित था। इस लिये अजमेर को तार देकर सूधा अजमेर में पहुंचा। **आज यहां से आधी रात के समय पाली का टिकट लेकर पाली को जावेंगे।**

---

[1] इस तार की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६८६ के पत्र में है। कमलनयन शर्मा का नाम अनुमान से जोड़ा है। वे आर्यसमाज अजमेर के मन्त्री थे।

[2] मूल पत्र शाहपुरा राज में सुरक्षित है।

[3] अर्थात् षीरली स्टेशन। देखो अगली पूर्ण संख्या ६८७ का पत्र। स्टेशन का 'बरल' नाम रेलवेविभाग का है और 'षीरल' नाम स्थानीय लोगों से व्यवहृत नाम

राज के मुख्य दो अंग हैं कि अच्छे काम करने वालों को पारितोषिक और बुरे काम के करने वाले को दण्ड देना। जो दूसरी चौकी अर्थात् घरटे में घोड़ों के साथ सवार भेजा था, वह घोड़ों को छोड़ अपने घर का रास्ता लेकर चला आया। और एक मशालची गाड़ियों के साथ भेजा था सो न जाने कहां शाहपुरा में छिप रहा। उस का मुख भी नहीं देखा। यदि दोनों बग्घी के साथ सवार होते तो इतना कष्ट न उठाना पड़ता। इस लिये उन को शक्त दण्ड हो तो सब चेतन हो जावेंगे। नहीं राजाज्ञा को कुछ भी नहीं समझेंगे। आगे जैसी आप की इच्छा हो वैसा कीजिये। सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा[1]।

ज्ये० व० ६ सोम १९४०[2]।

[दयानन्द सरस्वती] अजमेर

मैं शीघ्रता के कारण मेरे [जो] साथ ४ सिपाई थे। उन को ४) ग्यार [उपहार ?] संध्या और २) जो वहां सिपाई रहे थे उनको देना चाहता था [न दे सका]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६८७]   पत्रांश (४६२)

[राव बहादुरसिंह जी मसूदा]

………रूपाहेली के स्टेशन से षीरली का ही टिकट लिया था। इसी लिये कि मसूदा को अवश्य ही जाना होगा। परन्तु वहां सवारी मौजूद नहीं पाई। तब अजमेर को आना हो गया। अब फिर इधर आना होगा, तब मसूदे आना होगा[3]।

है। यथा 'ब्यावर' स्टेशन को आस पास जनता 'नयाशहर' कहती है। 'बरल' स्टेशन का आधुनिक नाम 'विजयनगर' है। यहाँ से 'मसूदा' जाना होता है।

[1] इस पत्र का उत्तर शाहपुराधीश नाहरसिंह ने ज्येष्ठ कृष्ण [३०]सं० १९४०; ५ जून १८८३ को दिया था। इसे तीसरे भाग में देखें।

[2] २८ मई १८८३।

[3] इतना अंश राव बहादुरसिंह जी के पत्र में उद्धृत है। हम ने उस की थोड़ी सी भाषा बदली हैं। राजस्थानी प्रयोग के स्थान में भाषा का प्रयोग किया है। राव जी का पत्र सं० १९३९ ज्येष्ठाब्द ८ का है। यहां संवत् १९४० चाहिये। ज्येष्ठ वदी ८

[२८ मई[1] १८८३ को अजमेर से लिखा गया।]

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६८८] पत्र (४६३)

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2]।

हम ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार[3] के दिन शाहपुरे से चलकर ज्येष्ठ वदि १० गुरुवार[4] के दिन जोधपुर पहुंचकर फेजुल्लाखांजी के बाग में ठहरे हैं[5]। वेद भाष्य के टाइटलपेज पर जोधपुर का नोटिस छाप देना[5]। और देशहितैषी को भी हमने कह दिया है कि वैदिकयन्त्रालय को मत भेजो और प्रयागसमाचार भी बन्द करदो। यदि बन्द न करोगे तो हम दंड कर देंगे, क्योंकि बहुत वक्त हम लिख चुके हैं। सभा में जो बाहर के काम के छपने की अनुमति हो तो स्वीकार न किया जावे। ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य

को २९ मई थी। राव बहादुरसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें। षीरली तथा बरल एक ही स्टेशन के नाम थे (द्र० पृष्ठ ७१०, टि० ३)।

[1] पूर्ण संख्या ६८६ के पत्रानुसार २७ मई की संध्या को अजमेर पहुंचे और उसी पत्रानुसार तथा श्री पं० लेखराम जी के उर्दू जीवन चरित पृष्ठ ५७२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१२) के अनुसार २८ की रात में पाली के लिये रवाना हुए, अतः यह पत्र २८ मई (=ज्येष्ठ कृष्ण ६) को ही लिखा गया।

[2] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

[3] २६ मई १८८३।

[4] ३१ मई १८८३।

[5] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरि पृ० ८६०(हिन्दी सं० पृष्ठ ९०६)पर लिखा है कि २७ मई को पाली पहुंचे और २९ मई को जोधपुर पहुंचे। यह भूल है। इस पत्रानुसार ३१ मई की प्रातः जोधपुर पहुंचे। उसी जीवनचरित में पृ० ५७२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१२)पर लिखा है कि २८ मई को [रात्री के] १२ बजे अजमेर स्टेशन से चले। यह पूर्वापर विरोध पं० लेखराम जी के ग्रन्थ के सम्पादक की असावधानी से हुआ है। पं० घासीराम जी [पृ० ६९३] २९ मई को अजमेर से चलना लिखते हैं। वह भी पूर्व पत्र पूर्ण संख्या ६८६ के अनुसार अशुद्ध है।

[5] यह सूचना ऋ० वेदभाष्य के सं० १९४० आषाढ़ कृष्णपक्ष के ५०–५१ सम्मिलित अङ्क के प्रथम पृष्ठ पर छपी थी।

के टाइटलपेज पर छाप देना'[1]। श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह जी वर्मा ने ३०) रु० माहवारी सदा के लिये ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार के दिन से वैदिकधर्म उपदेशकों के लिये देना स्वीकार कर लिया है। और २००) रुपये चित्तौड़ी कि जिसके १५०) कलदार होते हैं वेदभाष्य के सहाय में प्रदान किए। और मनुस्मृति के सप्तम तथा अष्टम, नवमाध्याय जो कि राजधर्मविधायक हैं पढ़कर योगशास्त्र, वैशेषिक और न्यायशास्त्र के मुख्य विषय भी पढ़ चुके। परन्तु न्यायशास्त्र, कुछ कम रह गया, जोधपुर को शीघ्र आने से। और हम लिख चुके हैं कि वेदभाष्य के ग्राहकों का रजिस्टर जो कि तुम्हारे पास वर्त्तमान है नकल करके भेजदो और टाइप शीघ्र मंगवाओ'[2]। और यदि १५०) रु० सेवकलाल कृष्णदास ने नहीं दिये हों तो तुम्हारे पास से भेजदो और टाइप शीघ्र मंगवाओ। इसके लिये हम पण्डित जी को लिख देंगे। वह इस बात में तुमको कुछ नहीं कहेंगे। और तुम भी लिख देना कि स्वामी जी की आज्ञा से हमने भेजे हैं। और रामानन्द के कहने से विदित हुआ कि लखनऊ का कम्पोजीटर दुष्ट है। ऐसे आदमियों को यन्त्रालय में नहीं रहने देना चाहिये। और यह पत्र बाबू विश्वेश्वर सिंह जी को भी सुना देना। और जो छापने को सत्यार्थप्रकाश [के पत्रे] हैं उस को १ मास पहिले हमको लिख भेजोगे, तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पत्र पहुंचेंगे। और यहां का विशेष समाचार आगे लिखा जायगा।

मि० ज्येष्ठ वदि १० सं० १९४०।[3]

जोधपुर।

ह० (दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

---

[1] इस आदेश के अनुसार अगली सूचना ऋग्वेदभाष्य के पूर्वोक्त ५०-५१ सम्मिलित अंक के अन्त में छापी गई (द्र० परिशिष्ट ३)।

[2] टाइप शीघ्र मंगवाने के सम्बन्ध में तो पूर्व छपे पत्रों में निर्देश मिलता है, परन्तु वेदभाष्य के ग्राहकों के रजिस्टर की नकल भेजने का जिस पत्र में उल्लेख किया गया होगा, वह हमें नहीं मिला।

[3] ३१ मई १८८३

[पूर्ण संख्या ६८९] पत्रांश (४६४)

[भाई जवाहरसिंह.........शाहपुरा][1]।

....

निश्चय है कि आप अपने काम पर तत्पर रहेंगे। और श्रीमान् महाराजाधिराज को अति आनन्दित करेंगे। और अपने पुरुषार्थ स्वाभाविक सद्गुणों और उत्तम कामों से अपनी कीर्ति को बढ़ावेंगे'।.......

मिति ज्येष्ठ कृष्ण १० [सं० १९४०। ३१ मई] सन् १८८३ जोधपुर।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६९०] पत्र (४६५)

ओ३म्[2]

श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्रीनाहरसिंह जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार[3] के दिन शाहपुरा से चलकर जेष्ठ बदि १० गुरुवार[4] के प्रातःकाल योधपुर में आनन्दपूर्वक पहुंच गये। और पहुंच के कुछ देर से श्रीयुत महाराजा प्रतापसिंह जी और श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आदि भद्रजन प्रीतिपूर्वक मिले। और हम यहां फैजुल्लाखां जी के बाग में ठहरे हैं और जो आप पत्रादि लिखें सो इसी बाग के पते से लिखना। यह बाग और इसमें मकान तथा जलवायु भी अच्छा है, सो जानना। और जो आपने २००) रु० चित्तौड़ी कोंचमान के हस्ते भेजे, सो पहुंचे। यहां का जो विशेष समाचार होगा, सो लिखा जायगा। और आप भी वहां का जो विशेष समाचार हो सो लिखियेगा। बूंदी से पत्र[5] का प्रत्युत्तर आया वा नहीं।[6]

[दयानन्द सरस्वती]
(राज मारवाड़ योधपुर)

---

[1] यह पत्र भाई जवाहरसिंह के नाम लिखा गया था। भाई जवाहरसिंह जी ने ऊपर मुद्रित अंश "रद्दे बुतलान" पृ० ६८ पर छापा है।

[2] मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित हैं।

[3] सं० १९४०। २६ मई १८८३।

[4] सं० १९४०। ३१ मई १८८३।

[5] संभवतः गोरक्षार्थ लिखे गये पत्र का।

[6] संभवतः यह पत्र ३१ मई अथवा १ जून १८८३ को लिखा होगा।

[पूर्ण संख्या ६९१]   पत्रांश (४६६)

[पं० मुन्नालाल सं० देशहि० अजमेर]

…हम जोधपुर बहुत उत्तम प्रकार से पहुंच गये[1]।……

२ जून ८३[2]। जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६९२]   पोस्टकार्ड आशय (४६७)

[कमलनयन शर्मा, मन्त्री आर्यसमाज, अजमेर]

लेफ्टिनेन्ट लोंग साहब के जाने के विषय में जानकारी दो[3]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६९३]   पत्र--सूचना (८२)

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]

घड़ी के विषय में।[4]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६९४]   विज्ञापन[5] (४८)

ओं३ नमः सच्चिदानन्दादिलक्षणाय परमेश्वराय

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य

---

[1] देशहितैषी के रजिस्टर से।

[2] ज्येष्ठ कृष्ण १२ सं. १९४०।

[3] इस पत्र की सूचना कमलनयन शर्मा के ७ जून १८८३ के पत्र में है। पत्र का आशय भी उसी के आधार पर बनाया है। लौंग साहब के भाग जाने का विवरण कमलनयन शर्मा ने अपने १७ जून १८८३ के पत्र में लिखा था। कमलनयन शर्मा के दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें। लौंग साहब के भाग जाने का वृत्तान्त आगे झालावाड़ के राजराणा को लिखे पूर्ण संख्या ७९६ के पत्र में भी देखें।

[4] इस की सूचना सेवकलाल कृष्णदास के २५ जून १८८३ के पत्र में है। पत्रानुसार घड़ी १२ जून को भेजी जा चुकी थी। अतः ऋ० द० ने यह पत्र जून के प्रारम्भ में भेजा होगा। तारीख का निश्चय न हो सकने से यहां जोड़ा है। सेवकलाल कृष्णदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[5] यह विज्ञापन जोधपुर में दिया गया था। पीले चिकने देशी कागज पर

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ज्येष्ठ वदि १० गुरुवार[1] के प्रातः समय योधपुर में आके फैजुलाखां जी के बाग में ठहरे हैं । जो कोई उन से मिलना चाहै, वह सायंकाल के ५ बजे से रात्री के १० बजे तक आनन्द पूर्वक मिल के सभ्यता के साथ बात चीत करे वा सुने । उक्त स्वामी जी सन्ध्या के बजे से ६ बजे से ८ बजे तक फैजुल्लाखां जी के बाग में सनातन वेदादि सत्यशास्त्रोक्त विषयों में ज्येष्ठ वदी १३ रविवार सम्वत् १९४० के दिन से वक्तृत्व करेंगे । जिन महाशयों को श्रवण करने की इच्छा हो वे पूर्वोक्त स्थान और समय पर उपस्थित हो कर सभा को सुशोभित करें । सब विषयों के सुननें के पश्चात् यदि किसी विषय में सन्देह रह जाय तो वह उस में आनन्दनपूर्वक प्रश्नोत्तर कर लेवे । सुनने और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दित हो कर सब को आनन्दित किया करें ।

मिति ज्येष्ठ वदी १२ शनि सम्वत् १९४०[2] ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६९५] **पत्र-सारांश (४६८)**

[बाबू दुर्गाप्रसाद, फरूखाबाद]

हम जोधपुर पहुंच गये हैं । अच्छे आम भेजो ।[3]

—:०:—

लिथो में काली स्याही से छपा हुआ है । इसकी मुद्रित प्रति श्री० महावीरसिंह जी गहलोत एम० ए० रिसर्चस्कालर मेड़ती दरवाजा जोधपुर के संग्रह में सुरक्षित है । उस की प्रतिलिपि प्रो० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस द्वारा ता० ३ मई १९४५ को हमें प्राप्त हुई ।

[1] ३१ मई १८८३ । पं० लेखरामकृत जीवनचरित में २९ मई को जोधपुर पहुंचना लिखा है । यह भूल है । विशेष देखो पृष्ठ ७१२, टि० ५ ।

[2] २ जून १८८३ ।

[3] इस पत्राशय की सूचना बाबू दुर्गाप्रसाद के ७ जून १८८३ के पत्र में मिलती है । बाबू दुर्गाप्रसाद का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[पूर्ण संख्या ६९६]   पत्र-सारांश (४६९)

7-036

[मुंशी समर्थदान, वै० य० प्रयाग]
यदि बाहर का काम बन्द न करोगे तो हम तुम पर दण्ड कर देंगे।[1]
[ज्येष्ठ कृष्ण ३० मंगल १९४० (=५ जून १८८३)]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६९७]   पत्र (४७०)

ओ३म्[2]

श्रीयुत प्रधान दुर्गाचरणादि तथा श्रीयुत साहू श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो।

कार्ड आप का आया,[3] समाचार विदित हुआ। जो प्रधान और पुस्तकाध्यक्ष जो कि आर्य्यसमाजों के उद्देशों के विघ्न थे, पृथक् कर दिये गये। बहुत अच्छी बात हुई। अब आप का समाज उन्नतिशील होगा। और यही बात देशहितैषी और भारतसुदशाप्रवर्त्तक तथा मेरठ और लाहौर के समाज के पत्रों में छपवा दीजिये। और आगे को कोई समाज के उद्देशों से विरुद्ध आचरण, भाषण करे, उस को एक दो वार समझा दीजिये। और न समझे तो इसी प्रकार पृथक् करते रहिये। और अब वैदिक यन्त्रालय में आप के समाज के १००) रु० लगे हैं। और १०) के पुस्तक वैदिक यन्त्रालय से मंगवा लीजिये। अथवा ११०) रु० ही के पुस्तक मंगवा लीजिये। और सब सभासदों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० ज्ये० शु० १ सं० १९४० बुद्धवार जोधपुर[4]।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

---

[1] इस सारांश की सूचना अगले पूर्ण संख्या ६९८ के पत्र में है।

[2] मूल पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद में सुरक्षित था। यह पत्र पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८२३ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८५३) पर भी छपा है।

[3] यह पत्र नहीं मिला। तीसरे भाग में सूचना छापी है।

[4] ६ जून १८८३।

[पूर्ण संख्या ६९८] पत्र (४७१)

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि हम कई बार मुन्शी समर्थदान को लिख चुके हैं कि बाहर का छापना बिलकुल बन्द करदो। परन्तु उसने अब तक बन्द नहीं किया। इस लिये तुम उस को समझा दो कि बाहर का काम कभी न छापे। यदि बन्द न करेगा तो हम उस पर दण्ड कर देंगे। इस प्रकार की चिट्ठी **परसों हम ने उस को लिख दी**[2]। और उस को दण्ड भरना पड़ेगा। इस को बाहर का काम छापने का उस को क्या प्रयोजन है। और तुम समर्थदान को सहायता देते हो, इसमें हमारी बड़ी प्रसन्नता है। और तुम पिन्शिन कब लोगे। जब तुम पिन्शिन लोगे तब तुम्हारी नौकरी शीघ्र वैदिक यन्त्रालय में हो जायगी। और सब यन्त्रालय की भी खबरदारी रक्खा करो। और लिखने के योग्य समाचार हम को तत्काल लिखा करो। और कितनी हानि निघंटु उणादिगण और धातुपाठ सत्यार्थप्रकाश के छपने से बन्द[3] हो रहा है। अब शीघ्र तुम पिन्शिन लो और शीघ्र यन्त्रालय में आ जाओ। जब तुम यन्त्रालय में आकर काम करोगे तभी काम ठीक बनेगा। और देख लो कि मुम्बई (से टाइप) मंगवाने में समर्थदान का हठ था। नहीं तो पंडित जी ने कहा था कि हम कलकत्ते से लेते आवेंगे। इसने कहा कि नहीं मुंबई का मंगावेंगे। अब न ही मुंबई का आया, न कलकत्ते का। बहुत हानि हो रही है। और मुंबई से मंगाना भी नहीं है। २५०)[4] रु० ऐसे आदमी के पास भेजा है कि जिस का न ठोर न ठिकाना। इन सब बातों का उत्तर शीघ्र भेज दो। यहां बहुत आनन्द हो रहा है। विशेष समाचार आगे लिखा जायगा। और तुम वहां का समाचार सदा लिखा करो। और यह समर्थदान अपनी चिट्ठी में कभी तुम्हारा नमस्ते भी नहीं लिखता। यह क्या बात है। और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० ज्ये० सु० २ सं १९४० गुरुवार[5] जोधपुर राज मारवाड़।

हस्ताक्षर

[दयानन्द सरस्वती]

---

१. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

२. यह पत्र नहीं मिला।

३. यहां 'छपने के बन्द होने में हो रही है' पाठ होना चाहिये।

४. पूर्ण संख्या ६८८ के पत्र में १५०) रु० भेजने का उल्लेख है।

५. ७ जून १८८३।

[पूर्ण संख्या ६९९] पत्र (४७२)

ओ३म्[1]

श्रीमदनवद्यगुणगणालंकृत मान्यवर महाशय शाहपुराधीश आनन्दित रहो ।

निश्चय है कि जवाहिरसिंह जी शाहपुरा में पहुंच गये होंगे । और आज रुड़की से एक पत्र आया है सो आप के पास भेजा जाता है । सबओवरसीअर भी थोड़े ही समय में आप के पास पहुंचेगा । आप के लिखे अनुसार उदयपुर को लिख दिया जायगा । आपने जो पत्र भेजा था सो पहुंचवाय दिया गया है[2] । यहां का वर्तमान यह है कि आज कल विशेष कर प्रजाजनों की भीड़ भाड़ सायं समय उपदेश सुनने और प्रश्नोत्तर करने के लिये होती है । आगे विशेष समाचार जो कुछ होगा लिखा जायगा । बूंदी से कुछ पत्रोत्तर आया वा नहीं[3] । **अग्निहोत्र की शाला और कुंडादि बन गये होंगे । क्षात्रशाला का आरम्भ हो गया होगा ।** और विशेष समाचार हो सो लिखियेगा । और यह रुड़की का पत्र वांच कर जवाहिरसिंह जी को दे दीजियेगा ।[4]

मि० जेष्ट शु० ५ सं० १९४०[5] ।

जोधपुर राज मारवाड़

दयानन्द सरस्वती

---

१. मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है ।

२. यह पत्र राजाधिराज ने अपनी भूआ अजबजी के नाम का ता० ५ जून १८८३ के पत्र के साथ श्री स्वामी जी को जोधपुर में भेजा था । इस के लिये शाहपुराधीश का ५ जून १८८३ का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

३. देखो पूर्ण संख्या ६९० पृष्ठ ७१४ तथा इसी पृष्ठ की टि० ५ ।

४. शाहपुराधीश नाहरसिंह का आषाढ़ कृष्ण ३ सं० १९४०=२३ जून १८८३ का लिखा पत्र सम्भवतः इसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है । शाहपुराधीश का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

५. १० जून सन् ८३ ।

[पूर्ण संख्या ७००] पत्रांश (४७३)

[लाल जी बैजनाथ मुम्बई.........]
....

चालीस रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजते हैं। विट्ठल भाणा ब्राह्मण को देकर रसीद ले कर भेजदो। ....समाज मन्दिर का काम कैसा चल रहा है।[1]

ज्येष्ठ शुद्ध ७ संवत् १९४०[2]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७०१] मनिआर्डर-सूचना (२)

[लाल जी वैजनाथ, बम्बई]
४० रु० बिट्ठल भाणा के लिये।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७०२] पत्र (४७४)

ओ३म्[4]

मन्त्री आर्य्यसमाज फरक्काबाद लाला रामचरण कालीचरण जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि रामानन्द ब्रह्मचारी की माता मुहल्ला नुनिहाई साह

---

[1] यह पत्रांश लालजी बैजनाथ के एक पत्र के आधार पर हमने बनाया है। तिथि उसी पत्र में है और संवत् उस से पहले पत्र के आधार से लिखा हैं। संभवतः बिट्ठल ब्राह्मण कुछ काल तक श्री स्वामीजी के पास नौकरी करता रहा। लालजी के ये दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] १२ जून १८८३ मंगलवार।

[3] इस मनिआर्डर की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७०० के पत्रांश में है। इन रुपयों की पहुंच बिट्ठलभाणा ने सं० १९४० ज्येष्ठ शु० १३ सोमवार (=१८ जून १९४०) के पत्र में दी है। बिट्ठल भाणा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] मूल पत्र आर्यसमाज फरुखाबाद में सुरक्षित है। सन् १९२७ में म० मामराज

बिहारीलाल जी की हवेली के पिछवाड़े जो कि लाला बलदेवदास ने मकान मोल लेकर इसके पिता शंकरानन्द जी को धर्मार्थ दिया, उस में रहती है। यदि जब कभी उस का शरीर छूट जाय तो उसके अन्त्येष्टि कर्म के लिये ५०) पचाश रुपये लाला निर्भयराम जी की कोठी से लेलेना और हमारे हिसाब में लिखा देना। और उन रुपयों से घृत और सुगंध्यादि पदार्थों को लेकर जैसा विधान षोडश संस्कारविधि के पुस्तक में लिखा है उस के अनुसार मृतक कर्म करा देना। और इस काम के कराने में किसी प्रकार आलस्य न करना। और इस बात कों प्रत्येक सभासद को विदित कर देना जिससे समय पर सहायक होवें।

ज्येष्ठ शुक्ल ९ बृहस्पति संवत् १९४०।
राज मारवाड़ योधपुर। [दयानन्द सरस्वती]

निम्न लेखानुसार मृतकसंस्कार करने के लिये घृतादि पदार्थ लिये जावेंगें।

२५) पच्चीस रुपये का अच्छा घृत।
१०) रुपये का सफेद सुगंधि वाला चंदन।
५) अगर तगर और कपूर आदि सुगन्धित वस्तु।
५) वस्त्रादि लिये जावेंगे।
५) और पांच रुपये की पलास अर्थात् ढाख की लकड़ी अथवा आंब्र की और संस्कारविधि के लेखानुसार वेदी बनानी होगी।

उक्त लेखानुसार ५०) रुपये केवल दाहकर्म में खर्च होने चाहिये।

—:०:—

जी ने इस की प्रतिलिपि की। फरुखाबाद का इतिहास पृ० २०५ पर भी छपा है।

इसी पत्र की दूसरी प्रतिलिपि रामानन्द ब्रह्मचारी की पुस्तकों आदि में (अतरोली स्टेशन के निकट रायपुर ग्राम) से ता० १८ सितम्बर सन् १९२८ की रात्रि के तीन बजे तक खोजने पर मिली थी। उन के भ्राता त्रिलोचनदेव की आज्ञा से मा० मामराज जी ले आये। वह उन के पास श्रीरामनिवास (बिल्डिङ्ग) खतौली में सुरक्षित है।

१. १४ जून १८८३।

[पूर्ण संख्या ७०३] पत्रांश (४७५)

[पं० मुन्नालाल सं० देशहि० तथा मन्त्री आर्यस० अजमेर[1]]

………पं० सुखदेव, पं० दामोदर और शालिगराम कहां हैं[2] ।………

१५ जून ८३ । जोधपुर[3] दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७०४] पत्र-सूचना (८३)

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा][4]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७०५] पत्र (४७६)

[बाबू विश्वेश्वरसिंह[5]……………]

………खलादेना । और मुझ को दृढ़ निश्चय है कि मुंशी समर्थदान और तुम दोनों मिल कर यन्त्रालय का काम अच्छी प्रका[र] रखोगे । और सब से मेरा आशीर्वाद कह देना । (अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु) । और पंडित सुन्दरलाल जी की भी सम्मति नये काम में सदा लिया करोगे जैसी की मेरी । और यह दोनों पत्र तुम्हारे पास भेजते हैं जो कि शाहपुरे की है । किसी समाचार में छपवा देना ।

मि० ज्ये० शु० १२ सं० १९४०[6] ।

जोधपुर राज मारवाड़ (दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

---

[1] देश हि० के रजिस्टर से ।

[2] यह अभिप्रायमात्र है । इस के उत्तर में १७-६-८३ को लिखा कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] ज्येष्ठ शुक्ल १० शुक्र, सं० १९४० ।

[4] इस पत्र की सूचना भाई जवाहरसिंह के २० जून १८८३ के पत्र में मिलती है । भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[5] यह पत्र बाबू विश्वेश्वरसिंह जी के पास प्रयाग को भेजा गया था । पत्र के पहले ४ पृष्ठ लुप्त है । मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है ।

[6] १७ जून १८८३ ।

[पूर्ण संख्या ७०६]   पत्र-सूचना (८४)

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा]

१. भत्ते के विषय में ।

२. भोजन अलग बनाने के विषय में[1] ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७०७]   पत्र (४७७)

ओ३म्

श्रीयुत माननीयवर शूरवीर महाराजे प्रतापसिंह जी आनन्दित रहो[2] ! यह पत्र बाबा[3] साहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजियेगा ।

(१) मुझ को इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् योधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान, आप और बाबा साहब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं । अब कहिये इस राज़ का कि जिस में १६००००० सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते है । उन की रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं । सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है । तथापि आप लोग अपने शरीर का अरोग्य, संरक्षण और आयु बढ़ाने का काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं। यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है । मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुन के सुधार लेवें। जिस से मारवाड़ तो क्या अपने आर्य्यावर्त्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें । आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्म के भी बहुत कम चिरंजीवी शतायु होते हैं । इस के हुए बिना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनो ही देश की उन्नति होती है । इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिये । आगे जैसी आप लोगों की इच्छा हो वैसे कीजिये ।

(२) आगे जो यह सुना जाता है कि आगामी सोमवार के दिन यहां के

---

[1] इस पत्र की तथा उपरि निर्दिष्ट दो विषयों की सूचना भाई जवाहरसिंह के आषाढ़ वदी ५, सं० १९४० (=२५ जून १८८३) के पत्र में मिलती है । यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] मूल पत्र रावराजा तेजसिंह जी के पास था ।

[3] अर्थात् जोधपुराधीश ।

लालजी आदि की मेरे साथ बात चीत होने वाली है[1]। उस में आप की सम्मति है वा नहीं। यदि सम्मति है तो सायंकाल के सात बजे से साढ़े आठ बजे तक सभा में बराबर उपस्थित होंगे वा नहीं। जो आप और बाबा साहब उचित समय सभा में उपस्थित न रहेंगे तो मैं भी इन स्वार्थी, देश के बिगाड़ने वाले पुरुषों के साथ वाद करने के लिए उपस्थित न होऊंगा। कारण यह कि उन में सभ्यता की रीति बहुत कम देखने में आती है। और पक्षपात भी अधिकतर है। एक आप को छोड़ कर अन्य पुरुष भी समय पर सभा में निष्पक्षपाती होकर सत्य बोलने वाला अब तक मेरी दृष्टि में नहीं आया है। इस से आप का उस सभा में उपस्थित रहना अत्यन्त उचित समझता हूं।

(३) यदि सोमवार को शास्त्रार्थ कराने की इच्छा हो तो कल सायंकाल ७ बजे से साढ़े आठ बजे तक उस के नियम एक दिन पहले बन जाने अवश्य चाहियें कि जिस से दूसरे दिन बराबर शास्त्रार्थ चले। इस लिये लालजी को कल सायंकाल बुलवा लेना चाहिये। और आप भी सभा में उपस्थित हों कि सब के सामने पक्षपात रहित नियम नियत लिखित हो जावें।

(४) इस पोप लीला की निवृत्ति करके यहां से अन्यत्र यात्रा करने का मेरा विचार है। अनुमान है कि बाबा साहब ने आप से कह भी दिया होगा।

इन उपरि लिखित सब बातों का उत्तर लेखपूर्वक आज सायंकाल तक मेरे पास भिजवा देवें। अलमिति विस्तरेण महामान्यवर्य्येषु।

मि० आ० व० ३ शनि सं० १९४०[2]।

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

---

[1] आषाढ़ वदी ५, संवत् १९३९ (४०? सोमवार) को रायजादा सांगी (अग्रवाल वैश्य) नारनौली दामोदरदास जयपुर से राजा दुर्गाप्रसाद, फरुखाबाद को लिखता है—"पुराण पढ़ने वालों ने मुबाहिसा का आज का रोज मुकरर किया था। मगर हस्ब कयास वकू में आया। यानी जुनाब महाराजा श्रीप्रतापसिंह साहब बहादुर प्राइम मिनिस्टर आज तशरीफ लाकर फरमाया कि अभी तो मुबाहिसा नहीं किया चाहते।"

[2] २३ जून १८८३। पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३४ (हिन्दी सं०

[पूर्ण संख्या ७०८] पत्रांश (४७८)

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर][1]

………… दामोदर शास्त्री[2] को भेजदो।

२४ जून १८८३। जोधपुर[3]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७०९] कार्ड (४७९)

ओ३म्[4]

श्रीयुत महाशय श्री रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विज्ञात हो। आगे परमात्मा की कृपा से श्री जगत्गुरु जी के सहित सब लोग आनन्द में हैं। आशा है कि आप भी सकुटुम्ब आनन्द मंगल में होंगे। यह आप का पत्र कई महीनों के पश्चात् आया। मैं तो निरास हो गया था कि अब रूपसिंह जी मुझ को भूल गये हैं। परन्तु अब इस तुम्हारे पत्र से पूर्ण निश्चय हो गया कि किसी कार्य विशेष से अपना कुशल पत्र आप न भेज सके। वर्त्तमान समय में श्री स्वामी जी राज देश मारवाड़ योधपुर में फैजुल्लाखां जी के बाग में ठहरे हैं। यहां के प्रजापुरुष प्रतिदिन आते हैं। दो एक बार व्याख्यान भी हुए। बहुत से श्री स्वामी जी के अनुकूल हैं और यहां के योधपुराधीश भी दो चार दिन के पश्चात् श्री स्वामी जी से मिलने को आने वाले हैं। और महाराजा जी के भाई महाराजा राजाधिराज श्री प्रतापसिंह जी आते जाते हैं। उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। विशेष

पृष्ठ ११४) पर इसी पत्र का (१) संख्यावाला अंश छपा है। वहाँ आश्विन वदी ३ शनिवार अथवा २२ सितम्बर १८८३ छपा है यह भूल है। आश्विन वदी ३ को शनिवार नहीं था, बुधवार था। और २२ सितम्बर को वदी ६ है। वस्तुतः 'आ' से यहाँ आषाढ़ अभिप्रेत है।

[1] देशहि० के रजिस्टर से। इस के उत्तर में ३-७-८३ को लिखा कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] दामोदर शास्त्री हरिश्चन्द्र मोहनचन्द्रिका के सम्पादक थे। देखो देशहितैषी वैशाख १९४०।

[3] आषाढ़ कृष्ण ४ रवि, सं० १८४०।

[4] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

समाचार पश्चात् लिखूंगा। तुम पत्र के देखते ही अपना विस्तारपूर्वक कुशल समाचार का पत्र शीघ्र लिख भेजना।

आषाढ़ बदी ५ सोम संवत् १९४[०][1]

रामानन्द ब्रह्मचारी राज मारवाड़ जोधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७१०] पत्र (४८०)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2]।

पत्र तुम्हारा आया[3] समाचार विदित हुआ। हमारे आशय को तुम नहीं समझते हो। इस लिये एक बात को बहुत बार लिखनी पड़ती[है]। यह समझो कि वेदभाष्य माहवारी ही निकले ऐसा विशेष नेम कभी न रहा है। किन्तु १२ बारह अंक पहुंचने से वर्ष पूरा माना जाता है। इस लिये जब तक टेप न आवे वेदभाष्य का छापना ठीक नहीं। **किन्तु आवश्यक सत्यार्थप्रकाश और धातुपाठ का छापना है, उसको तुमने रोक रखा। दह बड़ी हानि का काम है।** इस लिए चाहे वेदभाष्य एक आध महीना बन्द रहे, पर उनका छपजाना अत्यावश्यक है। और अन्य पत्र भेजे हैं। उनका उत्तर शीघ्र भेजो। और जो तुमने पुस्तकें भेजी, सो वेदभाष्य के सहित पहुंच गई। और यह पत्र बाबू विशेश्वरसिंह जी को भी सुना देना। और उनको मेरा आशीर्वाद भी कह देना। पं० ज्वालादत्त ने ८ दिन ५० मन्त्र की भाषा बनाई कुछ भी नहीं बनाई। काम न करने के लिए चाहे १० अर्जियां दो। हम जानते हैं कि ये सब काम न करने की बातें हैं। हम निश्चय कर कहते हैं कि तुम इसका काम यथातथ्या निकलौ। ज्वालादत्त जो भाषा बनाता है, ऐसा नहीं हो कि कहीं पोपलीला घुसेड़ डाले। जैसी हमारी संस्कृत है उस के अनुकूल [करे] और कुछ न करे। पण्डित शिवदयाल को काम हो तो रहने में कुछ हर्कत नहीं।

---

१. २५ जून १८८३।

२. शताब्दी संस्करण (परो० सभा, सन् १९२५) पृष्ठ १७ पर इसका थोड़ा सा अंश छपा है। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

पुंडरीक शिवशर्मा छीतरदत्त जी से दाम नहीं लिए गये हैं। सर्दार मेहरसिंह जी के पास ≡) आने के पुस्तक भेजदो। उन्होंने ५।।) रु० जिल्द सहित के दिये थे। वेद के मन्त्रों का क्रम तो अच्छा है, परन्तु लागत बढ़ जायगा और कागज भी बहुत खर्च होगा। और अपने कोई समाज होगा तो उसको १०) रु० सैकड़े से अधिक कमीशन नहीं मिलेगा। सत्यार्थप्रकाश शोध कर भेजदें[गे] और जोधपुर का हाल आगे लिखेंगे। निर्णयसागर से १५०)[1] की रसीद आ गई। अच्छा हुआ। अब टेप शीघ्र मंगवालो। जो पहले ही रुपये निर्णयसागर में भेज देते तो इतने दिन क्यों रहते। **संस्कारविधि बना सोधकर भेज देंगे।**

मिति अ० ब० ६ सं० १९४० मंगलवार[2]। हस्ताक्षर

[दयानन्द सरस्वती]

जोधपुर राज मारवाड़ मरुस्थल

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७११] पत्र-सूचना (८५)

[श्री महाराणा सज्जनसिंह जी, उदयपुर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७१२] पत्राशय (४८१)

[श्री मनोहरदास खत्री, सम्पादक भारत मित्र, कलकत्ता]

गोरक्षार्थ अरजी देने का मसौदा वहां के वकील बारिस्टरों पूछ कर लिखो।[4]

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७१३] उर्दू-पत्र (३८२)

बाबू दुर्गाप्रसाद जी[5]

हस्ब-उल-ईमाए [आज्ञा] जनाब स्वामी दयानन्द सरस्वती साहब आप

---

[1] पृष्ठ ७१८ की टि० ३ भी देखें। [2] २६ जून १८८३।

[3] इस पत्र की सूचना बारहट किशनसिंह के आषाढ़ शु० ७, सं० १९३९ (१९४०) के पत्र में है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] इस पत्राशय का निर्देश ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७३७ के पत्र के अन्त में है।

[5] यह पत्र राजा दुर्गाप्रसाद के पत्रों में से म० मामराज जी सन् १९२७ में लाए थे। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

को यहां की कैफियत से इत्तिला देता हूं। चुनाचे **२६ जून सन् हजा को महाराजा महाराजाधिराज राजराजेश्वर वालिए मुल्क मारवाड़ जुनाब स्वामी साहब मौसूफ के दर्शन करने को भैय्या फैजउल्लाखां साहब के बाग में तशरीफ लाए**[1] और २५ रु० और पांच अशरफी नजर गुजरानी। और चन्द लमहा तक महाराजा मौसूफ बख्याल अदब स्वामी साहब कुर्सी नशीनी से बसद अजरूए इनकार फरमाते रहे। मगर जुनाब स्वामी साहब ने जब दूसरी तीसरी मर्तबा फरमाया, तब मजबूरन जनाब मौसूफ के रोबरू कुर्सी नशीन होकर गुफतगू आगाज की और नौह बनौह की गुफतगू अनकरीब दो घण्टे के ६ बजे शाम से ८ बजे शाम के करते रहे। और बसद बशाशत यानी खुशदिली तशरीफ ले गए। और नीज वाएदा फरमा गए कि अब आप की खिदमत में हाजिर होता रहूंगा। चुनाचे महाराजा मौसूफ की ऐन खवाहिश दिली है कि स्वामी साहिब की हदायत यहां बखूबी ले ली जावे। मुकाम जोधपुर।

तारीख २७ जून सन् ८३।[2]

कमतरीन रायजादा सिंगी नारनौली दामोदरदास[3]
बर मकान जनाब जयकिशनदास
अज़ जानिब जुनाब स्वामी साहब आनन्दित रहो पहूंचे।

---

[1] पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८६० (हिन्दी सं० पृष्ठ ९०७) और इस अंश में उन के अनुबादक स्वामी सत्यानन्द (दूसरा संस्करण पृ० ५०२) और पं० घासीराम (पृ० ६९४) लिखते हैं कि २९ मई सन् १८८३ को श्री स्वामी जी जोधपुर पहुंचे। उसके ठीक सतारहवें दिन [१५ जून] महाराज यशवन्तसिंह जी उन से मिलने आए। ये दोनों बातें अशुद्ध हैं। इस पत्र से ज्ञात होता है कि महाराज जोधपुर २६ जून को श्री स्वामी जी से मिले। यही बात श्री स्वामी जी के राजाधिराज शाहपुरा नरेश को लिखे गये एक अगले पत्र (पूर्ण संख्या ७१७) से भी ज्ञात होती है। उस पत्र में श्री स्वामी जी लिखते हैं कि "मिति आषाढ़ वदि ७ मंगलवार के दिन सर्वाधीश महाराजा जोधपुराधीश पधारे थे। मंगलवार को ही २६ जून पड़ती है। इस पक्ष में आषाढ़ वदि १० लुप्त है। विज्ञापन पूर्ण संख्या ६९४ और पत्र पूर्ण संख्या ६८८, ६९० के अनुसार ३१ मई प्रातःकाल को श्री स्वामी जी जोधपुर पहुंचे और पूर्ण संख्या ७१३, ७१७ के अनुसार २६ जून को प्रथम वार महाराज उन से मिले।

[2] आषाढ़ कृष्ण ७ बुध, सं० १९४०।

[3] इसी मुन्शी दामोदरदास के पत्र का संकेत पूर्ण सं० ६६६, पृष्ठ ६९१में देखें।

[पूर्ण संख्या ७१४] पत्र (४८३)

ओ३म्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

मुन्शी समर्थदान को कह देना कि ५० मन्त्र की भाषा का बण्डल भेजा, सो पहुंच गया। अब देखो ज्वालादत्त की बेसमझ का नमूना। हमने यह लिखा था कि जो भाषा बनाने का कागज दूसरे पृष्ठ पर हो और मन्त्र पदार्थ अन्वय भावार्थ दूसरे पर हो। जब ऐसा हो तो भाषा बनाने में विलम्ब होता है। क्योंकि हर वार पत्र उलटाने में देर होती है। और बिना पदार्थ अन्वय देखे भाषा नहीं बन सकती। इस लिये लिखा था कि उसी के सामने कि जिधर की ओर मन्त्र है उसी के सामने नीचे की ओर कागज चेप कर भाषा बनाने से शीघ्र बन सकती है। सो ज्वालादत्त ने उलटा समझ कर सोलह मन्त्र की भाषा दो दो वार लिख दी। यदि ऐसा न करता तो ८ दिन में ७० मन्त्र की भाषा आती। अब देखा जायगा कि अब के अठवाड़े में कितने मन्त्र की भाषा भेजता है। और समर्थदान ने लिखा है कि कुछ ज्वालादत्त नई भाषा बनाता है। यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हो, तो ठीक है। नहीं तो जो पोपलीला की भाषा बना कर वहां ही छपवा दे और हम को मालूम न हो, पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा, तो क्या होगा। हां, अब तक तो इसने कुछ नहीं किया है। परन्तु सम्भव है कि कुछ गड़ बड़ करे, तो हो सकता है। इसलिये जो कुछ वो बनावे उसको समर्थदान देखले। जैसा कि अब की भाषा में एक गोल माल शब्द (देवता) लिख दिया था। सो यह हमारे दृष्टिगोचर होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि का काम है। इस लिये ऐसा न होना चाहिये। और हमने कई बार समर्थदान को लिखा है कि धातुपाठ, गणपाठ, उणादिगण, निघण्टु का सूचीपत्र छपना बाकी है। सो तो नहीं छापते और वेदभाष्य वेदभाष्य करते है। छापना वेदभाष्य का महीनों पर नहीं हैं, किन्तु बारह अंक ग्राहकों के पास पहुंचने पर वर्ष माना जाता है। इस लिये इस में थोड़ा बहुत विलम्ब हो तो कुछ चिन्ता नहीं। किन्तु धातुपाठ आदि और सत्यार्थप्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं

---

[1] मूल पत्र श्री० नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

चाहिये। सो जब लिखा है तब अब तो वेदभाष्य छपता है, यह उत्तर देता है। तुम भी ऐसी सम्मति उनको दो कि जिस में यह ४ पुस्तक शीघ्र छप जायें। अब वेदभाष्य के टाइटल पेज पर किसी ग्राहक का रुपया नहीं लिखा। सो क्या रुपया नहीं आया है वा अन्य कुछ है। इन सब बातों का उत्तर समर्थदान से पूछ कर शीघ्र भेजो[1]।

मि० आ० व० ९ शुक्रवार सम्वत् १९४०[2]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७१५] **पत्र (४८४)**

ओ३म्

बाबू नन्दकिशोरसिंह जी आनन्दित रहो[3]—

विदित हो कि तुम्हारे तीन चार पत्र हमारे पास आये[4]। उनका उत्तर समय पर इस लिये नहीं लिख सके [कि]इस समय वेदभाष्य का अधिक काम कर रहे हैं। तुम ने उदयपुर से लेकर शाहपुरा तक कई पत्र इस विषय में भेजे कि जब आप की यात्रा करने में दश पन्द्रह दिन शेष रहें, तब हम को विदित करना। इस बात का अभिप्राय जो होगा वह तुम जानते हो[5] होगे और कुछ लिखा भी था।

यहां के श्रीयुत महाराजे योधपुराधीश और महाराजे प्रतापसिंह जी तथा रावराजा तेजसिंह जी आदि ने प्रीति के साथ पाली में सवारी भेज कर मुझ को बुलाया। अब यहां श्री योधपुराधीश तथा म[हा]राजे प्रताप सिंह जी आदि प्रेम प्रीति के साथ समागम करते है। और दो एक व्याख्यान भी दिये। और प्रतिदिन राजपुरुष तथा प्रजापुरुष आते जाते हैं। यथाबुद्धि पूछते हैं। हम यहां फैजुल्लाखां जी के बाग में ठहरे हैं। और जो

---

[1] इस पत्र को कई स्थानों पर श्री स्वामी जी ने स्वहस्त से शोधा है।

[2] ३० जून १८८३।

[3] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[4] बा० नन्दकिशोर जी के तीन चार पत्रों में से केवल एक पत्र ज्येष्ठ कृष्णा ३० भौमवार सं० १९४० (५ जून १८८३) का ही उपलब्ध हुआ है। इस पत्र को तीसरे भाग में देखें।

[5] यहां 'तुम ही जानते होगे' ऐसा होना चाहिये।

विशेष लिखने योग्य होगी सो पश्चात् तुम को लिख के विदित करेंगे। **और जो अं[ग]रेजी में बायबिल का पूर्वापर विरुद्ध आयतें लिखी हैं। उस की देवनागरी ठीक ठीक कराके शीघ्र योधपुर में हमारे पास भेज देना**[1]। सब से हमारा आशिष कह देना।

आषाढ़ वदी १० शनि[2] | लिखने योग्य वहां का जो समाचार
संवत् १९४० | हो सो भी लिखना[3]

[दयानन्द सरस्वती] राज मारवाड़ योधपुर

—:o:—

## [पूर्ण संख्या ७१६]		पत्र-सूचना (८६)

[कविराज श्यामलदास, उदयपुर][4]
आषाढ़ वदी ११ [सं० १९४०][5]

—:o:—

---

[1] इन्हीं दिनों अमेरिका से "**सेल्फ कण्ट्रोडिक्शनस् आफ दी बाईबल**" नामक एक अंग्रेजी पुस्तक प्रकाशित हुई थी उसी के देवनागरी अनुवाद की ओर यह संकेत है। बाबू नन्दकिशोरसिंह ने आषाढ़ शु० ३ सं० १९४० (७ जुलाई) तथा २४ जुलाई के पत्रों में इस के भाषानुवाद के विषय में लिखा है (बा० नन्दकिशोर सिंह जी के ये दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें)। बाबू नन्दकिशोरसिंह द्वारा भाषा में अनूदित तथा छपी हुई उक्त पुस्तक का प्रथम संस्करण वैदिक पुस्तकालय (सं० ३१५।२००) अजमेर में तथा द्वि० सं० आर्यसाहित्य मण्डल अजमेर में है। इस विषय में विशेष "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ ४१, ४२ में देखें।

[2] बदी ११ लिखकर १० की गई है। वस्तुतः ११ चाहिये। १० लुप्त है। ३० जून १८८३।

[3] इस पत्र का उत्तर ठा० नन्दकिशोरसिंह ने मिती आषाढ शुक्ल ३ शनि सं० १९४० को दिया। इसे तीसरे भाग में देखें।

[4] इस पत्र का संकेत कविराज श्यामलदास के श्रावण शुक्ल ५ सं० १९४० के पत्र में है। कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[5] ३० जून शनि १८८३।

[पूर्ण संख्या ७१७] पत्र (४८५)

ओ३म्

श्रीयुत मान्यवर श्रीमहाराजाधिराज शाहपुरेश आनन्दित रहो[1]।

मैंने दो पत्र आप के पास भेजे[2]। उस का उत्तर भी आज तक नहीं आया। एक ५०) रु० का मनीआर्डर[3] भेजा था, जो कि शाहपुरे के डाकखाने का था, रजिस्ट्री कराके भेजा था[4]। उस की रसीद आज तक नहीं आयी। इस लिये वहां के डाकखाने से रु० लेकर हुंडी कराकर यहां मेरे नाम भेज दीजिये। और रसीद भी और जो छीतरदत्त जी भी वेदभाष्य के रुपये दें, तो इसी के साथ भेज देवें, क्योंकि वेदभाष्य उन के पास पहुंच गया है। और छा(क्षा)त्रशाला का आरम्भ हुआ कि नहीं। अग्निहोत्र का आरम्भ हो गया, यह बहुत अच्छी बात हुई। मिति आषाढ़ वदी ७ मंगलवार[5] के दिन सर्वाधीश महाराजा योधपुराधीश पधारे थे। दो घंटे तक बात चीत कर और उपदेश सुन कर और प्रसन्न होकर पीछे पधार गये, और महाराजा प्रतापसिंह जी तथा रावराजा तेजसिंह जी नित्य आया करते हैं। जैसा चाहिये वैसा तो बन्दोबस्त नहीं, परन्तु ठीक ठीक है। और ज्वाहरसिंह जी का वर्तमान आपने कुछ नहीं लिखा। और जो बात आपके पूर्व प्रतिज्ञात पत्र से कुछ विरुद्धाचरण हो सो भी मुझको लिखिये। और सब को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० आ० व० ११ सं० १९४०[6]। जोधपुर राज मारवाड़।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

---

[1] मूल पत्र शाहपुरा राज्य में सुरक्षित है।

[2] यह संकेत पूर्ण संख्या ६९०, ६९९ के पत्रों की ओर है।

[3] सम्भवतः 'पोस्टल आर्डर'। क्योंकि अगला लेख इसी सम्बन्ध में सम्भव है; मनियार्डर के सम्बन्ध में नहीं।

[4] इसके साथ भेजा गया पत्र हम उपलब्ध नहीं हुआ।

[5] २६ जून १८८३। देखो पत्र पूर्ण संख्या ७१३। [वस्तुतः यहां आषाढ़ वदी ६ चाहिये।

[6] ३० जून शनिवार १८८३।

[पूर्ण संख्या ७१८] पत्रांश (४८६)

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर][1]

………काशीस्थ पं० से पत्रव्यवहार से पूछो कि मासिक कितने तक आ सकता है।

४ जुलाई १८८३[2] । जोधपुर दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७१९] पत्र (४८७)

ओ३म्[3]

श्रीयुत माननीयवर शुभगुणगणालंकृत श्रीमहाराजा राजाधिराज श्रीशाहपुराधीश आनन्दित रहो।

विदित हो कि हम ने ५०) रुप्या का मनियाडर[4] भेज्या था। सो रुपया ५०) काका साब सबलसिंह जी के हाथ आ पहुंचा। और अग्निहोत्र का आरम्भ हो गया, सुन के अत्यन्त आनन्द हुआ। और क्षात्रशाला का आरम्भ होगा, सुनेंगे जब, अत्यन्त आनन्द होगा।

सम्वत् १९४० मि० असाढ शुक्ल ४ रवि[5]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७२०] पत्रांश (४८८)

[ठाकुर सबलसिंह जी]

अब कुछ दिन यहां ठहरेंगे। तुम्हारे साथ नहीं (कहीं ?) चलेंगे[6]।

—:o:—

---

[1] देशहितैषी के रजिस्टर से।

[2] आषाढ़ कृष्ण ३०, बुध सं० १९४०।

[3] पं० चमूपतिजी सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८ पर छपा है। वहीं से लिया गया है।

[4] देखो पूर्व पृष्ठ ७३२ की टि० ३।

[5] ८ जुलाई १८८३।

[6] इस का संकेत पूर्ण संख्या ७२३ के पत्र में है (द्र० पृष्ठ ७३६, पं० १३)।

[पूर्ण संख्या ७२१] पोस्ट कार्ड-सारांश (४८९)

[श्रीयुत बारट किशनसिंह जी]

पुरोहित उदयलाल को पूछ के लिखो। तुम्हारे पास घड़ी आई कि नहीं[1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२२] पारसल-सूचना (४७)

ईसाई मुसलमान मत के खण्डन विषयक दो पुस्तक[2]।

आषाढ़ शुक्ल १४ सं० १९४०[3] (१९ जुलाई १८८३)।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२३] पत्र (४९०)

श्रीयुत वारट किसनसिंह जी आनन्दित रहो[4]।

पत्र आप का आया[5] समाचार विदित हुआ। श्रीमान् महाशयों के शरीर की आरोग्यता की बात सुन कर अत्यानन्द हुआ। और जो सर्वाधीशों की अनुमति से लिखा है सो ठीक है। अब मैं ने इस का सद्यः उपाय यह निश्चय किया है **कि ईसाई वा मुसलमानों के मत का खण्डन थोड़ा सा कल**

---

१. ऋ० द० के द्वारा भेजे गये एक पोस्ट कार्ड का उल्लेख बारहट किशनसिंह ने अपने श्रावण बदि ५ को लिखे गये पोस्ट कार्ड में किया है। यह पोस्ट कार्ड ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७२३ के पत्र के अन्त (पृष्ठ ७३६) में संकेतित पोस्टकार्ड से भिन्न है अथवा उसी का उत्तर देते समय घड़ी की पहुंच की सूचना देनी रह गई जिसकी सूचना बारहट किशनसिंह ने श्रावण बदी ९ सं० १९४० के पत्र में दी है। बारहट किशनसिंह के श्रावण ब० ५ तथा ९ के पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. इस पारसल का उल्लेख पूर्ण संख्या ७२३ के पत्र तथा पूर्ण संख्या ७३९ के पत्र में है।

३. पूर्ण संख्या ७२३ के आधार पर।

४. पं० चमूपति सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १७५, १७७ पर छपा। मूल पत्र ठा० किशोरसिंह जी के पास है।

५. वारहट किशनसिंह जी का सं० १९३९ (?, १९४०) आषाढ़ शुक्ला ७ का पत्र तीसरे भाग में देखें।

की डाक में तुम्हारे पास रजिष्टरी कराके रवाना किया है ।[1] उसको वहां यन्त्रालय में १००० वा १०००० छपवा कर ५०० वा १००० उदयपुर में बांट देनी चाहिये । और बाकी देश में ठिकाने ठिकाने पर वा अच्छे चतुर स्कूल के माष्टर और तालबिलमों को देनी उचित हैं ।

और वहां राज में दो चार पांच सात पण्डित निकमे बैठे रहते हैं । उन को यह खण्डन देकर बाजार में जहां कि वे[2] खड़े हों वहां जाकर इन्हीं प्रश्नों में से प्रश्नोत्तर करें । और पण्डित अर्थात्—उपदेशक जिन नियमों पर चाहा है वैसा मिलना और उस का इन बातों को स्वीकार करना कठिन पड़ेगा । क्योंकि ईसाई वा मुसलमान लोग तीर्थं मूर्ति मन्दिर इन तीनों बातों पर खण्डन चलाते हैं । यदि जो इन तीनों को स्वीकार करेगा, वह उनके सामने कुछ न कर सकेगा । क्योंकि वे ईसाई मुसलमान लोग इन्हीं के दृष्टान्त दिया करते है । और ये बातें वेद शास्त्र से सिद्ध तो क्या, परन्तु युक्तिसिद्ध भी नहीं हो सकती । इस से चाहे वह भीतर मानता भी हो तो परन्तु उनके सामने तीर्थ मूर्ति मन्दिर और चौथा पुराण, पांचवां माहात्म्य छवां व्रत, सातवां कण्ठी तिलक, आठवां कोई संप्रदायानुकूल और नवां अवतार आदि सिवाय वैदिक मत के जब तक नहीं मानेगा तब तक उनका खण्डन न कर सकेगा । इस लिये यह बात अशक्य होगी । इस कारण उस उपदेशक को समझा दिया जाय कि जब उन के सामने चर्चा की जाय तब जो इन ९ बातों पर शंका अर्थात् तर्क ईसाई लोग करें तब उस समय वह कह दें कि इन बातों को हम नहीं मानते । हम तो केवल एक सच्चिदानन्द परमात्मा को मानते है । तभी उन का विजय कर सकेगा । और जो कोई आर्यसमाज से विद्वान् आवेगा, वह इन प्रतिज्ञाओं को स्वीकार नहीं करेगा । क्योंकि जब तक आप निर्दोषमत को नहीं मानता, स्वयं दोषी होता है । तब तक दूसरे दोषयुक्त मतों को कभी नहीं काट सकेगा । इस लिए उपदेशक तो शुद्ध ही होना जाहिये । और जैसा श्रीमानों का देशकालानुकूल अभिप्राय है उस अभिप्राय कीत से जो उपाय पूर्व मैंने लिखा है, सो ठीक है । यदि जो मैंने लिखा है कि इन नौं बातों का जो खण्डन करेगा तो उन के सामने मानेगा भी नहीं । तभी यह बात पार पड़ेगी । और श्रीमानों का अभि-

---

[1] इस की पहुंच तथा प्रस्तुत पत्र का निर्देश बारहट किशनसिंह जी ने सं० १९४० श्रावण शुक्ला २ के पत्र में किया है । बारहट किशनसिंह जी का यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] अर्थात् पादरी और मौलवी लोग ।

प्राय भी इसी प्रकार सिद्ध होगा। यदि किसी को बुलाने ही की इच्छा हो तो वह नौ बातों को स्वीकार न करे। और अंगरेज इसाईयों को २५०००० ढाई लाख रुपये देते हैं तो हम लोगों में सहायक क्यों न हो? और मिथ्या मत का खण्डन और सत्य मत का प्रचार होना, इस से उत्तम धर्म और क्या होगा।

मिति श्रा० शु० १५ संवत् १९४०[1]।

मेरा यहां से किस स्थान में जाना होगा, जु अब तक निश्चय नहीं किया। और यहां रहने का भी कोई निश्चय समय नहीं है। अनुमान है कुछ यहां रहना होगा। यहां का सुधार कुछ थोड़ा सा हुआ है और बहुत सा बाकी है। संपूर्ण परमात्मा की कृपा से हो सक्ता है। क्योंकि कई प्रकार के रोग लगे हैं। औषधी सेवन और पथ्य बहुत कम है। इस का विस्तार पश्चात् लिखा जायगा। **ठाकर सबल सिंह जी को यही जवाब दिया है कि अब कुछ दिन यहां ठहरेंगे। पश्चात् तुम्हारे साथ नहीं (कहीं?) चलेंगे। और हमने एक कार्ड में तुम को लिखा था। पुरोहित उदयलाल को पूछ के लिखो तुम्हारे पास घड़ी[2] आई कि नहीं।** इसका उत्तर हमारे पास अब तक नहीं आया है। और घड़ी तुम्हारे पास एक आई वा दो। जो एक आई तो कुछ चिन्ता नहीं। और जो दो आई हों तो एक हमारे पास भेज दो।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७२४] पत्र-सूचना (८७)

[पं० गोपालराव हरि देशमुख][3]

—:o:—

---

[1] २० जुलाई १८८३।

[2] इस घड़ी का संकेत पूर्ण संख्या ६४६ (पृ० ६७४) की पत्र सूचना में है। ऊपर संकेतित पोस्ट कार्ड का उल्लेख तथा इस पत्र का उत्तर बारहट किशनसिंह ने श्रावण वदि ९ सं० १९४० के पत्र में दिया है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] इस पत्र का संकेत गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल देशमुख

[पूर्ण संख्या ७२५] पत्र-सूचना (८८)

[स्वामी सहजानन्द सरस्वती][1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२६] पत्र-सूचना (८९)

[स्वामी ईश्वरानन्द][2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२७] पत्र (४९१)

ओ३म्

श्रीयुत भारतमित्र सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम् ।[3]

महाशय, आप के संवत् १९४० आषाढ़ शुदी ८ गुरुवार[4] के छपे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेपपत्र छपवाया है । उस लेखक का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नहीं है। परन्तु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्नमात्र ही किया है । अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने

के ७ अगस्त १८८३ के पत्र में है । उस में दो पत्र पहुंचने का उल्लेख है । एक पत्र की सूचना यहां जोड़ी है तथा दूसरे पत्र की सूचना आगे पूर्ण संख्या ७३१ पर जोड़ी है । लक्ष्मण गोपाल देशमुख का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[1] इस पत्र का निर्देश स्वामी सहजानन्द के २९ जुलाई १८८३ के पत्र में है । स्वामी सहजानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] इस पत्र की सूचना स्वामी ईश्वरानन्द के श्रावण वदी ८ सं० १९४० (२७ जुलाई १८८३) के पत्र में है । स्वामी ईश्वरानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] मूल पत्र म० मामराज जी ने फरवरी १९२७ में फर्रुखाबाद के पत्रों में से खोजा । अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है । इस पत्र पर "भारतमित्र" काटकर "भारतसुदशाप्रवर्तक" बनाया हुआ है ।

[4] १२ जुलाई १८८३ । भारतमित्र का यह अंक कमलनयन शर्मा ने स्वामी जी के पास उत्तर लिखने के लिये भेजा था । देखो कमलनयन शर्मा का २१–७–८३ का पत्र । यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा। अर्थात् उत्तर उस बात का होता है जो किसी वेदवचन मूल पर भ्रांतपन दिखलाता तो उस का उत्तर उस समय दिया जाता। जैसे कोई कहे कि यह १०००) एक हजार रुपयों की थैली सच्ची नहीं। दूसरे ने उस से पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र ही से थैली को झूठी मान सकता हूं। जब तक तुम झूठा रुपया इस में से एक भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते, तब तक मैं थैली को झूठा नहीं मानूंगा। वैसा ही मिष्टर ए० ओ० ह्यूम साहेब और जिस ने आप के पत्र में छपाया है इन दोनों महाशयों का लेख है। यहां उनको योग्य था और है कि किसी एक वा अनेक मन्त्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद, अध्याय, मन्त्र, संख्यापूर्वक लिख कर पश्चात् कहते कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रांत नहीं है, तो प्रत्युत्तर के योग्य प्रश्न होता। अब भी यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें, नहीं तो कुछ भी नहीं है। किन्तु इस में इतनी बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है कि वेदों में मतभेद क्यों है। अब देखिये यह भी इनकी गोलमाल बात है। क्योंकि वेदों में किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मतभेद है। हां, विद्याभेद से कथन का भेद होना तो उचित ही है। जैसे व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प और पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदों में हैं। इन के संकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न भिन्न हैं। जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के संकेत परिभाषा और पदार्थ विज्ञान पृथक् पृथक् होते हैं, वैसे इन सब विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाशक मन्त्र भी पृथक् पृथक् अर्थ के प्रतिपादक हैं। यदि इन्हीं को मतभेद कहते हैं तो प्रश्नकर्त्ता का कथन असंगत है। और जो दूसरे प्रकार मतभेद मानते हैं तो उन का कथन सर्वथा अशुद्ध हैं। इसलिये प्रश्नकर्त्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से जो कोई एक मन्त्र भी भ्रांत प्रतीत होवे, वह आप के पत्र में मिष्टर ए० ओ० ह्यूम साहेब छपवावें। उन का उत्तर भी आप ही के पत्र में उचित समय पर छपवा दिया जायगा। और उन को वेद के निर्भ्रान्त होने के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका को देख लेवें। यदि उन के पास न हो तो वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मंगा कर देवें। और जो उन को आर्यभाषा का पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुनें। इस पर जो उन को शंका रह जाय तो मुझ से समक्ष मिल के जितनी शंका हों उन सब का यथावत् समाधान लेवें। क्योंकि पत्रों से

शंका समाधान होने में विलम्ब होता और अधिक अवकाश की भी अपेक्षा है। और मुझ को वेदभाष्य बनाने के काम से अवकाश न मिलने के कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है। और जो उन्हों ने यह लिखा कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर की प्रेरणायुक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके। मैं ईश्वर नहीं, किन्तु ईश्वर का उपासक हूं। परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं। इस अभिप्राय से कि यहां तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुंच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे। इस लिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं। और वह अर्थ सब सज्जनों के दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगा भी। यदि कहीं भ्रांति हो तो उक्त साहेब प्रकाशित करें। बड़े शोक की बात है कि आज पर्यन्त एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सका है फिर भी इन का भ्रम दूर नहीं हुआ। ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे, इस से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रान्तत्व यथावत् सिद्ध है। यदि इस मेरे बनाए भाष्य में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहेब को भ्रम हो तो इस में से भ्रांतिमत्त्व किसी मन्त्र के भाष्य द्वारा आप के पत्र में छपा देवें। मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा देऊंगा[1]। और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें, इस में क्या आश्चर्य है ?। क्योंकि वे अनीश्वरवादी बौद्धमतावलंबी हो कर भूत, प्रेत और चुटकुलों के मानने वाले हैं। बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्यासिद्ध परमात्मा को न मान कर भूत, प्रेत, मृतकों में फस कर और भोले मनुष्यों को फसा अपने को सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी अनुचित बात है। इन को तो नास्तिकमत जो कि ईश्वर को न मानना है वही प्रिय लगता है। परन्तु इस में इतनी ही न्यूनता है कि भूत प्रेतों ने इन को घेर लिया। सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रम जाल भूत प्रेतों और वन्ध्यापुत्रवत् कुतूहूंबीलालसिंह[2] (?) आदि में क्यों न फसेंगे। बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने हजार मनुष्यों को मिष्टर एच० ए० करनेल ओलकाट साहब ने रोग रहित किया। यदि यह बात सच हो तो मुझ को क्यों नहीं दिखलाते और

---

[1] इस से अगला लेख सम्पादक भारतमित्र ने नहीं छापा। देखो पत्र पूर्ण संख्या ७३७ का आरम्भ।

[2] इस विषय में पूर्ण संख्या ५१७ द्र० ५५३ पृष्ठ की टि० २।

मनवाते। और मेरे सामने कि जिसको मैं कहूं उस एक को भी नीरोग कर दें तो मैं थियोसोफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद देऊं। इस में मुझ को निश्चय है कि जैसे एक थियोसोफिस्ट दंभ के मारे लाहौर में अपनी अंगुली कटवा के अंग भंग हो गया, कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे। और करामात कुछ भी काम न आवेगी। प्रसिद्धी से कहता हूं कि यदि उन में कुछ भी अलौकिक शक्ति वा योगविद्या हो तो मुझ को दिखलावें। मैंने जहां तक इन की लीला सिद्धि और योगविषयक देखी हैं कि वह मानने के योग्य नहीं थी। अब क्या नई विद्या कहीं से सीख आए? मुझ को तो यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दीखता है। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

मिति श्रावण वदी ४ संवत १९४०। दयानन्द सरस्वती[1]
तदनुसार २३ जुलाई सन् १८८३। जोधपुर।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२८] पत्र (४९२)

श्रीयुत भारतसुदशाप्रवर्तक सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम्[2]।
[पूर्ण संख्या ७२७ का पत्र]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७२९] पत्र (४९३)

श्रीमान् देशहितैषी सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम्[3]।
[पूर्ण संख्या ७२७ का पत्र]

—:०:—

---

[1] यह भारतमित्र सम्पादक के नाम का पत्र मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ ६८-७३ पर छपा है। इस में हस्ताक्षर और तिथि नही है। अगले भारतसुदशाप्रवर्तक और देशहितैषी वाले में है।

[2] देखो पूर्व पृष्ठ ७३७ की टिप्पणी ३ तथा पूर्ण संख्या ७३३ के पत्र का अन्त (पृष्ठ ७४२)।

[3] देशहितैषी के सम्पादक और आर्यसमाज अजमेर के मन्त्री कमलनयन शर्मा को यह पत्र २५–७–८३ को भेजा गया। देखो कमलनयन शर्मा का २९–७–८३ का पत्र। कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

इस विषय में अगला पूर्ण संख्या ७३० का पत्र और उस की टिप्पणी भी देखें।

[पूर्ण संख्या ७३०] पत्रांश (४९५)

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर]
………पत्र छापने को भेजते हैं[1]।……
२५ जुलाई १८८३[2] जोधपुर। दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७३१] पत्र-सारांश (४९५)

[पं० गोपालराव हरि देशमुख]
घड़ी पहुंची, घड़ी के मूल्य के विषय में……।[3]
श्रावण वदी १० रवि सं० १९४०

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७३२] पत्र--सूचना (८२)

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]
घड़ी पहुंचने के विषय में।[4]

—:०:—

---

[1] देशहि० के रजिस्टर से। पूर्ण संख्या ७२७ वाला पत्र।

इस का उत्तर कमलनयन शर्मा ने २९-७-८३ को लिखा। उसे तीसरे भाग में देखें। उसमें लिखा है—"मिस्टर ए० यू० होम (ह्यूम) साहब के कथन का खण्डन जो आपने देशहि० में छपने को भेजा है सो पहुंचा। ··· कमलनयन"

[2] श्रावण कृष्ण ६ बुध सं० १९४०।

[3] इस पत्र की सूचना लक्ष्मण गोपाल देशमुख के ७ अगस्त १८८३ के पत्र में है। वहां लिखा है – 'आप का श्रावण वध १० का पत्र है सो आषाढ़ वद्य १० होना चाहिये।' महाराष्ट्र में अमावास्यान्त मास होता है। उत्तर भारत में पूर्णिमा पर मास समाप्त हो जाता है। उत्तरभारतीय पञ्चाङ्ग की पद्धति का ज्ञान न होने से लक्ष्मण गोपाल ने उक्त पङ्क्ति लिखी है। उत्तर भारत में कृष्णपक्ष जिस मास में गिना जाता है वह दक्षिण में अमान्त मास मानने से उस से पूर्व मास का कृष्ण पक्ष होता है।

[4] इस का निर्देश भी लक्ष्मण गोपाल देशमुख को ७ अगस्त १८८३ के ही पत्र में ही है। देखो तीसरा भाग।

[पूर्ण संख्या ७३३] कार्ड (४९७)

ओ३म् जोधपुर
श्रावण वदी १० रवि सं० १९४०[1]।

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो।

आपने १२५ आम भेजे सो पहुंचे। उन में से ८० आम अच्छे रहे और बाकी बिगड़ गये। परन्तु आम बहुत अच्छे थे। और उदयपुर और साहपुरे की रसीद के लिये लिख भेजेंगे, पहुंच जायंगी। आप अपने २००) रुपये लेके बाकी रुपये लाला निर्भैराम की दूकान पर जमा करा दीजिये। क्योंकि आज कल वैदिक यन्त्रालय की दशा जब से समर्थदान आया है तब से अच्छी है। और पण्डित सुन्दरलाल प्रबन्ध भी अच्छा करते हैं। यहां का समाचार अच्छा है, पश्चात् लिखेंगे।

लाला कालीचरण जी के पास मिष्टर ऐ० ओ ह्यूम साहब के प्रश्नोत्तर का पत्र छापने के लिए भेजा है, पहुंचा होगा[2]।

सब से हमारा आशीर्वाद कह देना[3]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७३४] पत्र (४९८)

ओ३म्

श्रीयुत बहारट किशन जी आनन्दित रहो[4]—

कार्ड तुमारा आया[5], समाचार विदित हुआ। हमने मुसलमान और ईसाई के मतविषयक दो पुस्तक रजष्टरी कराके भेजे थे,[6] अवश्य पहुंचे होंगे। उसका उत्तर अब तक क्यों नहीं भेजा[7]। पहुंचे वा नहीं। और उस के

---

[1] २९ जुलाई १८८३।

[2] देखो पूर्ण संख्या ७२८ का पत्र तथा पृष्ठ ४४० की टि० २।

[3] मूल कार्ड हमारे संग्रह में सुरक्षित है। म० मामराज जी ने आर्यसमाज फरुखाबाद के पत्रों में फरवरी सन् १९२७ में खोजा।

[4] मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह के संग्रह सुरक्षित था।

[5] यह कार्ड बारहट किशनसिंह ने श्रावण वदी ५ मंगलवार सं० १९४० को भेजा था। यह कार्ड तीसरे भाग में देखें।

[6] पूर्ण संख्या ७२२, पृष्ठ ७३४।

साथ एक पत्र भेजा था[1]। वह पहुंचा होगा। सर्वाधीशों के दृष्टिगोचर भी कराया होगा। अब मेरी चिट्ठी और वे दोनों पुस्तक पहुंचने के पश्चात् क्या निश्चय किया गया। क्या जो मैंने लिखा वही ठीक माना गया वा कुछ विचारांतर किया। इन सब बातों का उत्तर शीघ्र भेजना। यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे।

और जो एक पत्र लाहौर का श्रीमानों के अवलोकन और संमत्यर्थ भेजा था, उस का क्या विचार ठहरा। जो कि लाला साईंदास प्रधान आर्यसमाज लाहौर ने भेजा था। उस का भी उत्तर श्रीमानों से पूछ के भेजो। तथा श्रीमान् महाशयों के आरोग्यता का वर्तमान और वर्षा का भी वर्तमान लिखो।

और जैकर्ण जी से कहना कि तुमारे पिता जी की मित्रता श्रीमान् योधपुराधीश प्रतापसिंह जी और रावराजा तेजसिंह जी से अच्छी प्रकार करा दी है[2]। और पूर्व जो उन के हृदय में भ्रांति थी वह भी निकाल दी। और श्रीमानों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

संवत् १९४० मिति श्रावण वदी ११[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७३५] पत्र-सारांश (४९९)

[पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा राज्य]

[पारस्कर गृह्यसूत्र की भाष्य सहित पुस्तक कहीं से ढूंढ कर भेजो][4]

—:o:—

---

[1] पूर्ण संख्या ७२३ का पृष्ठ ७३४ पर छपा।

[2] इस बात का उल्लेख श्री जयकर्ण जी के पत्र में है। जयकर्ण का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] ३० जुलाई १८८३। इस पत्र का उत्तर बारहट किशनसिंह ने सं० १९४० श्रावण शुक्ला २ के पत्र में दिया है। यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] यह पत्र-सारांश पं० छगनलाल द्विवेदी के श्रा० शु० १५ सं० १९४० के संस्कृत पत्र के अनुसार बनाया है। इन दिनों ऋ० द० संस्कारविधि का संशोधन कर रहे थे। उसी के लिये पारस्करगृह्य-भाष्य की आवश्यकता हुई होगी। छगनलाल द्विवेदी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ७३६] पत्र (५००)

ओ३म्[1]

स्वस्ति श्रीमद्राजराजेश्वर महाराजाऽधिराजवर्य्येभ्यः श्रीमद्योधपुराऽधिपतिभ्यो मत्प्रेरिता आशिषः सन्तु ।

(गुप्तसमाचार)

पुरुषाः सुलभा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्ल्लभः ॥ १ ॥[2]

हे धृतराष्ट्र ! इस जगह में बहुत पुरुष सुलभ अर्थात् सुख से प्राप्त होते हैं जो सदा दूसरे की खुशामद की बातें करके अपना मत(ल)व सिद्ध करते। परन्तु सुनने में अप्रिय और परिणाम में कल्याणकारी वचन का उपदेष्टा और सुनने वाला ये दोनों पुरुष अति दुर्लभ हैं। १।

यथा योधृषु वर्त्तमानो जयः पराजयश्च राजनि व्यपदिष्यते । महाभाष्य[3]—

जैसे सेना की हार वा जीत राजा की ही हार और जीत मानी जाती है वैसा ही श्रीमानों को अवश्य चाहिये।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तद्राजसमुदाहृतम् ॥ गीता [१८ । ३८][4]

जो विषय और इन्द्रियों के संयोग से आदि में अमृतरूप सुख प्रतीत होता है, वही परिणाम अर्थात् पश्चात् विष के तुल्य होकर महादुःखदायक हो जाता हैं।

---

[1] पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ ९८ पर छपा है। मूल लेख कई स्थानों पर श्री स्वामी जी का शोधा हुआ है। मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है। प्रतीत होता है कि इसी की शोधित प्रतिलिपि महाराज योधपुर को भेजी गई होगी।

[2] महाभारत उद्योगपर्व अ० ३६, श्लोक १५, विदुर का उपदेश। वहां 'सुलभाः पुरुषा राजन्' पाठ है।

[3] महाभाष्य में यह पाठ नहीं है। योग व्यासभाष्य १।२४ में इस प्रकार पाठ है—"यथा जयः पराजयो वा योधृषु वर्तमान स्वामिनि व्यपदिश्यते"।

[4] गीता में 'तत्सुखं राजसं स्मृतम्' पाठ है।

आप स्वयं बुद्धिमान् हैं । इतने ही से बहुत समझ लेंगे । सौभाग्य की बात है कि आप में अनेक प्रशंसनीय शुभगुण आरोग्य और राज्यैश्वर्य्य सम्पन्नता वर्त्तमान है । परन्तु शोक की बात है कि ऐसे आप बुद्धिमान् होके नीचे-लिखी हुई थोड़ी सी बातों में न जाने क्योंकर प्रवर्त्तमान रहते हैं । वे ये हैं—यदि आप मद्यपान, वेश्यासंग, पतंग उड़ाना, घुड़दौड़ आदि द्यूत नहीं छोड़ते और राज्यपालन कर्म में कम से कम छः घंटा परिश्रम और महालक्ष्मीरूप राजकन्या स्वपत्नियों से अधिक प्रेम नहीं करते हैं इत्यादि शोचनीय बातें आप में हैं । आप निश्चय समझिये कि जितने आप के आधीन-पुरुष कीर्ति वा निन्दा का काम करेंगे, वह सब आप की ही पर गिने जायेंगे । यदि आप स्वयं मद्यपानादि में प्रवृत्त न हों तो क्या कोई भी इन में आपको प्रवृत्त कर सकता है । जो स्वार्थी खुशामदी हैं वे तो सदा यही चाहते हैं कि राजा प्रमाद में लगें तो हमारे सब प्रयोजन सिद्ध हो जायें । परन्तु संसार में इन का नाम कोई भी न लेगा, किन्तु—

(प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य्ये संप्रत्ययः) महाभाष्य[1]—

भलाई और बुराई प्रधान पुरुष के साथ लगती है, गौण अर्थात् अप्रधान के साथ नहीं ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त[द्]देवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।। [गीता ३।२१] ।।

जैसा अच्छा वा बुरा आचरण श्रेष्ठ पुरुष कर्त्ता है वैसा ही इतरजन करने लग जाते हैं । और जिसका प्रमाण उत्तम पुरुष कर्त्ता है उसी का प्रमाण सब लोग करने लगते हैं । अर्थात् (**यथा राजा तथा प्रजाः**) जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है । इस लिये प्रधान पुरुष बहुत विचार से उत्तम आचरण करे कि जिससे उसको संसार के बिगड़ने का अपराध न लगे । बुद्धिमानों के सामने विशेष लेख करना उचित नहीं होता ।

---

[1] महाभाष्य के नाम से यही वचन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषय-विचार पृष्ठ ५१ (रा० ला० क० ट्र० संस्क०) में भी पढ़ा है । परन्तु महाभाष्य में 'प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययात्' (२।१।१) इतना ही पाठ है । पारिभाषिक (परि० ८५) में 'प्राधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसंप्रत्ययः यही पाठ है ।

अब मुझको यह बड़ा सन्देह है कि जो आप जैसे दीर्घजीवी न्यायकारी राजा बने रहैं तो सब प्रजा का कल्याण होवे। और जो मद्यपानादि कर्म हैं वे अवश्य आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम, आरोग्यता, कीर्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा प्रजा के पुत्रवत्पालना करने में विघ्नकारी हैं। इस लिये मुझको निश्चय है कि आप मद्यपानादि दुष्कर्मों से पृथक् होके अपने समीपस्थों का भी यथावत् कल्याण करेंगे। (इसका उत्तर आप जैसी इच्छा हो वैसे दीजिये। मैं कड़ा उत्तर दूंगा तो स्वामी जी अप्रसन्न हो जायेंगे ऐसा ध्यान मत कीजिये। मुझको निश्चय है कि आप निष्कपट और सत्यवादी हैं। इस पर जैसा विचार होगा उत्तर यथावत् शीघ्र लिखेंगे। यद्यपि यह प्रथम ही पत्र आपके समीप भेजा जाता है तदपि यदि आगे आवश्यकता होगी तो मैं और आप जब समक्ष न हो सकेंगे, तब पत्रों ही से यथोचित बात होगी। जैसा मैं आवश्यक कार्य करने वा पत्र के उत्तर देने में क्षण मात्र विलंब नहीं कर्त्ता, वैसे श्रीमान् भी करेंगे)। यदि आप ही पूर्वोक्त निषिद्ध कर्म करने और विहित न करने में प्रवृत्त रहैंगे तो अन्य पुरुष सब आपके दृष्टान्त से वर्त्तेंगे। जब तक मनुष्य के हाथ में सर्वाधिकार, आरोग्यता, उत्तम संग, शुभगुण-कर्म-स्वभाव होता है तब तक कोई भी विघ्न सुखनाशक नहीं खड़ा होता। विघ्नों का निवारण बुद्धिमान् प्रथम ही करते हैं कि जब तक वे प्राप्त न हों। नहीं तो बुद्धिमान् और निर्बुद्धि में दूसरा क्या भेद है। निर्बुद्धि लोग विघ्न के पूर्व कुछ भी ध्यान नहीं देते और विघ्न आये पश्चात् गभरा भी जाते हैं। विद्वान् लोग वैसे नहीं होते।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥ गीता [१८।३७]-

जो ब्रह्मचर्यादि कर्मों का आचरण आदि में विषतुल्य दुःख प्रतीत होता है वही पश्चात अमृत के सदृश विदित होता है। वही आत्मा और बुद्धि को प्रसन्न करने वाला सुख है कि जो विद्या सुविचार सत्संग और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से प्राप्त होता है।

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥१॥ मनुस्मृतौ [३।५८]।

जो विवाहित स्त्रियां पति माता पिता बन्धु और देवर आदि से दुःखित होके जिन घर वालों को शाप देती हैं वे जैसे किसी कुटुम्ब भर को विष देके मारने से एक वार सब के सब मर जाते हैं वैसे उनके पति आदि सब ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। और

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥१॥ मनुस्मृतौ [३।६०]

अर्थ०—जिस कुल में स्त्री से पति और पति से स्त्री अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है उस कुल में निश्चय कल्याण अर्थात् आनन्द बढ़ता है ॥१॥

देखिये जैसे किसी की स्त्री उपपति अर्थात् दूसरे पुरुष से प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध प्रीति करे तो उसके पति को कितना बड़ा क्लेश होता है। इसी प्रकार पति के परस्त्री वा वेश्या-गमन से पत्नी को महा दुःख होता है। और वह उनका क्लेश कुटुम्ब भर का नाशक और उनकी प्रसन्नता सब कुटुम्ब को आनन्द देने वाली है। इस लिये आप अपने अमूल्य समय मद्य वेश्या-संग आदि में न लगा के न्याय धर्म से प्रजापालनादि शुभ कर्मों में व्यय करके धन्यवादार्थ सर्वत्र सत्कीर्ति हूजिये।

किमधिकलेखेन महामान्यवर्यतमेषु[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७३७] पत्र (५०१)

ओ३म्

श्रीयुत मनोहरदास जी सम्पादक भारतमित्र आनन्दित रहो।

आप ने मेरे भेजे पत्र[2] को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया, उसका उपकार मानता हूँ। परन्तु शेष विषय[3] भी छापने योग्य जानकर मैंने लिखा था, क्योंकि इस पूर्वपक्ष के सम्बन्धी थियोसोफिकल सुसायटी के प्रधान हैं। इस लिए यह विषय लिखा था। और मैं आप को सुहृद्भाव से लिखता हूं कि यदि आप अपने भारतमित्र समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करनल ओलकाट आदि के करामात वा मिसमिरेजम से अनेकों रोग निवारण आदि नितान्त मिथ्या विषय कभी न छापें। नहीं तो समाचार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। अब थोड़े समय में करनेल ओलकाट लाहौर गये थे। उन का रोगनिवारणादि सामर्थ्य अत्यन्त झूठ बड़े बड़े बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा कि यह सब ऊपर का

---

[1] अनुमानतः जुलाई सन् १८८३ का अन्त।

[2] यह संकेत पूर्ण संख्या ७२७ पृष्ठ ७३७ पर छपे पत्र की ओर है।

[3] देखो पत्र पूर्ण संख्या ७२७ पृ० ७३९ पर टि० १।

ढोंग है। और जितना व्यवहार बाहर वा भीतर का थियासोफिस्टों का मैं जानता हूं, इतना आर्य्यावर्त्तीय लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जब इन लोगों ने झूठ दांभिक मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही, मैंने नहीं दी, तभी से वे अपना प्रपंच पृथक् करने लगे। और मैं उन से पृथक् हो गया। अस्तु, थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे।

एक [पत्र] श्रीकृष्ण खत्री ने ता० २८ वीं जुलाई सन् १८८३ को लिखकर हमारे पास भेजा है[1]। और उन्होंने बहुत से सनातन आर्यधर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पंचांग बनाने के लिये मुझ से सहायता चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी। जिस पत्र पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है। इस लिये मैं आप से पूछता हूं कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव वाले हैं। और जैसा उन ने लिखा है कि इस में भारतमित्र सम्पादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इन को योग्य समझते हैं। यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझ को प्रत्युत्तर लिखिये। तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जायगा। और जो एक पत्र बहुत दिन हुये मैंने लिखा था[2], जिस में गोरक्षार्थ अर्जी देने का मसोदा वहां के वकील बारिस्टरों से पूंछ के आप लिखें, उसका क्या हुआ, अब उस में अधिक विलम्ब करना उचित मैं नहीं समझता। यहां जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जायगा[3]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७३८] पत्र-सूचना (९०)

[स्वामी सहजानन्द सरस्वती][4]

—:०:—

---

[1] श्री कृष्ण खत्री का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

[3] अगस्त के आरम्भ में लिखा गया। म० मुन्शीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० ७८ पर छपा है।

[4] इस पत्र की सूचना स्वा० सहजानन्द के १२ अगस्त १९४० के पत्र में मिलती है। स्वा० सहजानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ७३९] पत्र (५०२)

ओम्

श्रीयुत बहारट किसन जी आनन्दित रहो[1]।

पत्र आप का आया[2], समाचार विदित हुआ। यह पत्र सर्वाधीशों[3] के दृष्टिगोचर करा देना।

१—मेरी भी यह मनसा नहीं है न थी कि पादरियों के सामने शास्त्रार्थ ही किया जाय। किन्तु जिस से कोई अपनी प्रजा का पुरुष उन के मझव में न फसे वैसा उपदेश किया जाय। इस लिये वे छोटे छोटे खंडन जो कि मैंने भेजे हैं[4] वे छपवा के योग्य योग्य पुरुषों को चाहे वे पंडित हों वा बुद्धिमान् हों, बांट कर प्रचार करने से उन के फन्दे में कोई भी न फसेगा। आप से आप बहुत से उपदेशक उसी राज्य के पुरुष हो जांयगे। इस का बांटना विशेष कर सरदार, हाकम, भूमिये थाने वा अच्छे अच्छे गामों में अथवा जहां कहीं कोई बुद्धिमान् हो इस को देखकर उन ईसाइयों को हटा दे सकेंगे। और यदि श्रीमानों के नियमानुसार उपदेश कहीं करना हो तो वहां राज के नौकर बहुत से पण्डित हैं जिस को योग्य समझें उस को यह दोनों पुस्तक दे के उपदेशक कर देवें।

२—जैसा श्रीमान् महाशयों ने लिखा है, वैसा उपदेशक आर्यसमाज से आने में असक्य नहीं है। किन्तु जो उस पत्र में नियम लिखे हैं उन के अनुसार और ईसाई मत का खंडन होना असक्य है। क्योंकि जब तक उपदेशक झूठ मत को मानेगा और दूसरे झूठ मत के खण्डन में प्रवृत्त होगा, कुछ भी न कर सकेगा। जब तक मनुष्य स्वयं झूठी बातों का त्याग करके सत्य बातों में निश्चित प्रवृत्त नहीं होता, तब तक वह अलौकिक शक्ति परमात्मा की ओर से नहीं मिलती। और न दृढ़ोत्साही वह हो सकता है। यावत् इन ईसाई आदि के सामने वैदिक मतानुसार ईश्वर धर्म आदि को नहीं मानता और मूर्तिपूजा आदि को मानता है, तब तक वह जायगा खंडन करने को, आप ही खंडित हो रहेगा। जैसे कोई किसी को दुर्व्यसन छुड़ाने

---

[1] मूल पत्र ठा० किशोरसिंह जी के संग्रह में है।

[2] यह संकेत बारहट किशनसिंह जी के श्रावण बदि ९ शनिवार सं० १९४० को लिखे पत्र की ओर है। किशनसिंह जी का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] अर्थात् उदयपुराधीशों।

[4] देखो पूर्ण संख्या ७२३ का पत्र पृष्ठ ७३४ पं० १३।

का उपदेश करता और आप उसी दुर्व्यसन में फंसा है उस का उपदेश कोई भी न मानेगा। इस लिए असक्यता लिखी थी। नहीं तों पण्डित तो क्या किन्तु एक कोई साधारण उपदेशक भी आर्यसमाज का आवे तो इन का कुछ भी बल न चले। इस लिए जो उपाय मैंने उन के निवारण के लिये लिखा है वह अच्छा है। परन्तु ईसाई आदि के सामने जब कभी बात चीत हो, तब उस को अति उचित है कि उस समय मूर्ति और पुराण आदि का पक्ष छोड़ ही के बोले, तभी कृतकारी होगा।

३—यहां जयकरण के पिता नाथूराम जी का श्रीमान् जोधपुराधीश महाराजे प्रतापसिंह जी और बाबा साहब से कहकर मैंने मिलाप करा, इन की ओर से जो शंका थी सो दूर करा दी है[1]। अब तीनों महाशय उनसे प्रसन्न हैं। और अब श्रीमान् योधपुराधीश भो कुछ मेरे उपदेश सुनने में प्रवृत्त हुए हैं। अनुमान है कि कुछ सुधार हो। परन्तु अब तक मद्यपानदि दुष्कर्मों से कुछ कम हटे हैं। आज तक लोगों ने बहुत सी बहकावट की थी, परन्तु (**सत्यमेव जयति नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्**[2]॥ **सत्ये नास्ति भयं क्वचित्।**) सत्य के सामने झूठ कभी नहीं ठहर सकता। महाराज का स्वभाव अत्युत्तम है, परन्तु संगदोष ने कुछ का कुछ स्वभाव को कर रक्खा है। अब तक मद्यपान वेश्यासंग खेल हांसी ठट्ठा छुकरपन संपूर्ण नहीं छूटे हैं। परमेश्वर अंतर्यामी पूर्ण कृपा करें, जिससे ये महाशय अपने राजधर्म में प्रवृत्त हो प्रजा को पुत्रवत् न्याय से पालन करं कीर्तिमान् होवें। महाराजे प्रतापसिंह जी और बाबा साहब भी अति प्रसन्न हैं। जो यह यहां मेरा आना, इन लोगों का मेरी ओर इतना प्रेम होना, सब आर्यकुलदिवाकरों के प्रताप से हुआ है, ऐसा मैं समझता हूं। जैपुर का कृत्य[3] शीघ्र करा लेना चाहिये। श्रीमानों के शरीर की आरोग्यता सुन कर बड़ा आनन्द हुआ। सबसे मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। और इस पत्र का उत्तर शीघ्र देना।

मि० श्रावण शुक्ल ३ रविवार सम्वत् १९४०[4]। [दयानन्द सरस्वती]
ठाक[र] सबलसिंह जी अब यहीं है॥ जोधपुर मारवाड़।

---

[1] इस विषय में पूर्ण संख्या ७३४ का पत्र (पृष्ठ ७४३, पं० १२-१३) भी देखें।

[2] ये ही वचन सत्यार्थप्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य के आरम्भ में दिये गए हैं। प्रतीत होता है कि उन्हीं दोनों सत्यार्थप्रकाश का वह अन्तिम प्रकरण भी शोधा गया था।

[3] सम्भवतः गोरक्षा सम्बन्धी।

[4] ५ अगस्त १८८३ रविवार। परन्तु उस दिन शुक्ल २ है।

[पूर्ण संख्या ७४०] पारसल-सूचना (४८)

मन्त्रों के भाष्य के पत्रे ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४१] पारसल-सूचना (४९)

धातुपाठ की सूची ।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४२] पत्र (५०३)

ओ३म्[3]

श्रीयुत भारतमित्र संपादक समीपेषु ।

महाशय, आप के संवत् १९४० मिति श्रावण शुदी ६ गुरुवार[4] के दिन के छपे हुए पत्र में जो विविध समाचार के दूसरे कोष्ठ में यह छपा है कि मुसलमानों के मझब का मूल अथर्ववेद है, सो बात [असत्य] है। क्योंकि उस के नाम निशान का एक अक्षर अथर्ववेद में नहीं है। जो शब्द कर्तृम अल्लोपनिषद् नामक जो कि मुसलमानों की पादशाही के समय किसी थोड़ा सा संस्कृत और अरबी फारसी के पढ़ने वाले ने छोटा सा ग्रन्थ बनाया है वह वेद, व्याकरण, निरुक्त के नियमानुसार शब्द अर्थ और संबंध के अनुकूल नहीं है। और अल्ला, रसूल, अकबर आदि शब्द चारों वेदों में नहीं है। किन्तु जो अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है, उस में भी यह उपनिषद् तो क्या किन्तु पूर्वोक्त शब्दमात्र भी नहीं है। पुन: जो कोई इस बात का दावा करता है, वह अथर्ववेद की संहिता जो कि बीस काण्डों से पूर्ण है, अथवा उसके

---

[1] इस पारसल की सूचना मुंशी समर्थदान के १५ अगस्त १८८३ के पत्र के अन्त में है। ये मन्त्र भाष्य के पत्रे संभवत: ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ १६९८–१७६८ तक रहे होंगे। क्योंकि पृष्ठ १६९७ तक के पृष्ठ भेजने का निर्देश पूर्ण संख्या ६९९ में है। पृष्ठ १७६८ से आगे के पृष्ठ भेजने का उल्लेख पूर्ण संख्या ७४४ में आगे होगा। समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] इस का उल्लेख भी मुंशी समर्थदान के १५ असगत १८८३ के ही पत्र के आरम्भ में मिलता है। समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] म० मुंशीराम सम्पादित पत्र व्यवहार पृ० ७३-७४ से लिया।

[4] ९ अगस्त बृहस्पति, १८८३।

गोपथ ब्राह्मण में एक शब्द भी दिखला देवें, वह कभी नहीं दिखला सकेगा[1]। यदि ऐसा होता तो उस पुरुष का कहना भी सत्य होता। अन्यथा कथन सच क्योंकर हो सकता है? कहां राजा भोज कहां गांगा तेली? वेदों के आगे यह ग्रन्थ ऐसा है कि जैसे अमूल्य रत्न के सामने भूड़ा। यही एक बात नई नहीं है। किन्तु स्वार्थी लोगों ने वेदों के नाम पर ऐसे ऐसे निकम्मे बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जिन का मिथ्यात्व वेद के देखने से यथावत् विदित होता है। यदि बालादत्त शर्मा हेडमास्टर रियास्त टिहरी गढवाल की इच्छा……… जाने वा शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो तो इस बात के लिये यहां सब दिशाओं के दरवाजे खुले हैं। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४३] पत्रांश (५०४)

[कमलनयन मन्त्री आर्य स० अजमेर[3]]

---

[1] अज्ञानी लोगों की इस मूर्खता को देख कर ही श्री स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास के अन्त में इस अल्लोपनिषद् की कड़ी समीक्षा की। प्रतीत होता है कि वर्तमान सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास की प्रेस कापी भी उसी समय संशोधित हो रही थी। उसी के अन्त में इस के मिथ्यात्व का भी खण्डन भी निविष्ट कर दिया गया। इस विषय में 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ (पृष्ठ ३२, ३३) भी देखें।

[2] अगस्त १८८३ के उत्तरार्ध में लिखा गया प्रतीत होता है। [इस पर म० मुन्शीराम जी का नोट इस प्रकार है—"इस पत्र के अन्त में महर्षि दयानन्द का हस्ताक्षर नहीं है और न इस से पूर्व पृ० ५३२—५३३ पर मुद्रित पत्र पर उन का हस्ताक्षर है। परन्तु इन दोनों पत्रों के साथ एक और सादा कागज नत्थी है, जिस पर लिखा हुआ है ',भारतमित्र कलकत्ते वाले के नाम जो पत्रादि स्वामी जी की ओर से लिखे गये उनकी प्रती"] म० मुंशीराम की टिप्पणी में निर्दिष्ट 'पूर्व पत्र' इस संस्करण में पृष्ठ ७३७-७४० तक छपा है। उसके विषय में पृष्ठ ७३७ की टि० ३ भी देखें।

[3] देशहि० के रजिस्टर से। बालकराम वाजपेयी ने १—८—१८८३ को एक पोस्ट कार्ड ऋ० द० के नाम लिखा था। उसमें उसने अपने पास कार्य देने का निवेदन किया था। बालकराम वाजपेयी का पत्र तीसरे भाग में देखें। बालकराम के इसी पत्र के उत्तर में ऋ० द० ने १० अगस्त १८८३ को जो पत्र कमलनयन शर्मा मन्त्री

बालकराम बाजपई कौन है।[1]
१० अगस्त १८८३[2] जोधपुर।

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४४] पत्राशय (९०९)

[रमादत्त त्रिपाठी, नैनीताल]

'विश्वारूपाणि' मन्त्र यजुर्वेद अ० १२ का तीसरा है। तुम क्या करते हो............।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४५] पत्र (५०६)

ओ३म्

श्रीयुत महिमहेन्द्र महामान्यार्यकुलदिवाकर आनन्दित रहो।

श्रीमानों को विदित हो कि मैं जोधपुर में भाद्र पौर्णमासी[4] तक रहना चाहता हूं। पश्चात् कहां जाना होगा, इस का निश्चय अब तक नहीं किया है। जब निश्चय हो जायगा तब श्रीमानों को विदित कर दिया जायगा।

महाराजे प्रतापसिंह जी और रावराजा तेजसिंह जी उदयपुर में श्रीमन्महोदयों को मिलने के लिए आने को कहते थे। अनुमान है कि पूने से वहीं आवेंगे। यदि आवें तो अच्छे प्रकार आप शिक्षा करेंगे। इस में कहना वा लिखना क्या है। किन्तु **आर्यराजोत्कर्ष, वैदिकधर्म की उन्नति** करने आदि

अ० स० अजमेर को लिखा था उसका अभिप्राय मात्र यहां देशहितैषि के रजिस्टर से दिया गया है।

[1] यह अभिप्राय मात्र है।

[2] श्रा० शु० ७ शुक्र, सं० १९४०।

[3] इस पत्राशय की सूचना रमादत्त त्रिपाठी के २० अगस्त १८८३ के पत्र में है। रमादत्त त्रिपाठी ने ७ अगस्त के पत्र में इस मन्त्र का पता और अर्थ पूछा था। ऋ० द० ने प्रश्न के अनुसारमन्त्र का अर्थ भी लिखा होगा। रमादत्त त्रिपाठी के पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] १६ सितम्बर १८८३।

का उपदेश यथायोग्य कीजियेगा। कुछ औषधि लिखके भेजी जाती हैं[1]। इन को यथायोग्य उपयोग में लावें।

॥ उपदेश ॥

१–कभी साहित्य जो नायका आदि भ्रष्ट रीति है उस का स्मरण श्रवण और वैसे गणेशपुरी से मनुष्यों का संग भी कभी मत कीजियेगा। और न मद्यपान, न वेश्या का दर्शन, नृत्यगान आदि प्रसंग करना।

२–जैसी दिनचर्या[2] मैं लिख आया हूं उस से विपरीत आचरण न कभी करना। किन्तु वही रात्रि के प्रातः ४ चार बजे उठना। दिन और रात में १० बजे[3] भोजन करना, दिन में निद्रा न लेनी और रात्रि १०, १०॥ साढ़े दश वा ११ बजे तक शयन सदा कीजियेगा।

३–सदा छः घण्टे तक समय राजकार्य में लगाया कीजियेगा। और जब कभी राजकार्य से अवकाश मिले, तभी व्याकरणादि शास्त्र और मनुस्मृति के ३ अध्यायों का अभ्यास कीजियेगा। और व्यर्थ समय एक क्षणमात्र भी मत गमाइयेगा। जैसा कि सतरंज, हास्य और विनोद आदि में मूर्ख लोग अपना अमूल्य समय खोते हैं–वैसा करना सर्वथा अनुचित है।

४–प्रातः समय योगाभ्यास की रीति से ध्यान करना। और नाम लेना आदि पुरोहित के आधीन कर दीजियेगा, जिस से ध्यान करने और राज्य-

---

[1] इन औषधों का संकेत बारहट कृष्णसिंह जी के पत्र में है—

"और येक पत्र आप का श्रीमान् के पास आया था जिस में सर्प, बिच्छु, ज्वर, विषम ज्वर, मन्दाग्नि बुद्धिवर्धक आदि परीक्षित औषधिए लिखीं थीं।··· ···—························सम्वत् १९४० आश्विन कृष्ण १० तारीख २९ सितम्बर" बारहट कृष्णसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

एक औषधिपत्र का निर्देश आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सं० १९४० (२७ सितम्बर १८८३) के पूर्ण संख्या ८०० के पत्र के आदि और अन्त में भी है। उसे हम उक्त पत्र के आगे ही छापेंगे। हमारा विचार है कि यहां भी उसी औषधिपत्र से अभिप्राय है, क्योंकि उस में भी बारहट किशनसिंह जी द्वारा लिखित सर्प, बिच्छू, ज्वर, विषम ज्वर आदि सभी की औषधियां हैं।

[2] दिनचर्या के ५१ नियम, देखो पूर्ण संख्या ५९८।

[3] यहां पाठ अशुद्ध है। 'दिन में १० और रात में ९ बजे' ऐसा होना चाहिये। देखो पृष्ठ ६२७, पं० १८-१९।

पालन में समय यथोचित श्रीमानों को मिले। बुद्धि, बल, पराक्रम, आयु, प्रताप बढ़ता रहे।

५–निरामय महोत्सव[1] में निम्नलिखित कार्य अवश्य कीजियेगा। एक वेदमन्त्रों से होम। दूसरा १२५०००) सवा लाख रुपये क्षात्रशाला और २५०००) पच्चीस हजार रुपये स्वराज्य में अनाथ, वृद्ध, विधवा और रोगियों के पालन के लिये। और १००००) मेवाड़ में वैदिक धर्म-प्रचार और **प्राचीन आर्षग्रन्थों के छपवाने [तथा] प्रदान करने के लिये।** और २०००००) दो लाख वहां के क्षत्रिय सरदारों से लेकर क्षात्रशाला स्थापन शीघ्र कीजियेगा। इस में ऐसा समझिये कि जानो एक गवर्नर जनरल साहेब और आये थे।

६–सदा बलवान् और राजपुरुषों से सताए हुओं की पुकार यदि भोजन पर भी बैठे हो तो भोजन को भी छोड़ के उनकी बात सुननी और यथोचित उन का न्याय करना। ऐसा न होवे कि निर्बल अनाथ लोग बलवान् और राजपुरुषों से पीड़ित होके रुदन करें और अश्रुपात भूमी पर गिरे कि जिस से सर्वनाश हो जावे। और इनको रक्षा से सब प्रकार की उन्नति अर्थात् शरीरारोग्य आयुवृद्धि धनवृद्धि राजवृद्धि, धर्मवृद्धि और प्रतापवृद्धि को सदा करते रहिये।

७–अब परमात्मा की कृपा से महाशयों का शरीर निरामय हुआ है। अब इस को वीर्यरक्षणादि से सदा रोग रहित रखियेगा कि जिस से ऐहिक और पारमार्थिक सुख की सिद्धि करना सुगम होवे। और श्रीमानों के दीर्घायु होने से स्वराज्य और समस्त आर्यावर्त देश का सौभाग्य बढ़े।

८– कभी सत्य बात के करने और झूठ बात के छोड़ने में भय न करें, किन्तु युक्तिपूर्वक इस बात को पूरी करें। और अपने राज्य में २५ वर्ष का पुरुष और १६ सोलह वर्ष की कन्या का विवाह करने के लिये दृढ़तापूर्वक आज्ञा दीजिए[2]। कुमार और कुमारी का यह समय सनातन आर्ष ग्रन्थस्थ

---

[1] १. बार्हट कृष्णसिंह जी अपने श्रावण शुक्ल २ सम्वत् १९४०(५ अगस्त १८८३) के पत्र में इस महोत्सव के होने की सूचना श्री स्वामी जी को दे रहें हैं (बारहट कृष्णसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें)। प्रतीत होता कि श्री स्वामी जी का ऊपर मुद्रित पत्र महाराणा उदयपुर को १० से १५ अगस्त तक किसी तिथि को लिखा गया होगा।

[2] २. श्री स्वामी जी का लगभग यही अभिप्राय चिरकाल के पश्चात् भारत सर=

विद्याओं के ग्रहण करने में व्यतीत होवे, जिस से सब मनुष्यजाति की सत्य उन्नति होवे।

९–एक विवाह से अधिक दूसरा भी विवाह कोई न करने पावे। परन्तु यह विवाह दोनों की प्रसन्नतापूर्वक होवे, जिस से अत्युत्तम सन्तान उत्पन्न हों।

१०–स्वराज्य और प[र]राज्य का जो चिकीर्षित और अच्छे बुरे काम होते है उन को दूत द्वारा यथावत् जान कर दुष्ट कार्यकर्त्ताओं को दण्ड और उत्तम कार्य करने हारों का सत्कार यथायोग्य कीजिये, जिस से उत्तम कार्य बढ़ें और दुष्ट कर्म घट जायें।

११–जो जितना अपराध करे, उसी को उतना दण्ड और जो जितना अच्छा काम करे, उस को उतना ही पारितोषिक देना, अधिक वा न्यून नहीं, चाहे माता पिता भी क्यों न हों।

१२–जैसा कुत्तों पर अन्याय अर्थात् एक के हड़के होने और अपराध करने में सब जाति को दण्ड देना अन्याय है, इस के लिये जितना धन व्यय इस प्रबन्ध में होता है उतने धन से जितनों से प्रबन्ध हो सके उतने पुरुष हड़के कुत्ते को मारने के लिये नौकर रखिये। वे रात दिन इसी कार्य करने में तत्पर रहें। और बिना अपराधियों को दण्ड मत दिलाइये।

१३–अब दशहरा निकट आया। उस में अनपराधी भैंसे बकरों का प्राण न लेकर उस के स्थान में सिरनी मिठाई मोहनभोग लपसी आदी [की] बलि प्रदान कीजिए। और क्षत्रियों को जो कि शस्त्र चलाना जानते हैं उन के उत्साह शौर्य धैर्य बल और पराक्रम की परीक्षा करने के लिये जंगली सुअरों को वा सिंह को प्रथम पकड़ा रख के उस दिन मैदान में छोड़ शस्त्रप्रहार करने की आज्ञा दीजिये। इन को विदित तो होवे कि शस्त्र चलाना ऐसा होता है।

१४–आरोग्य और अधिक वर्षा होने के लिए एक वर्ष में १००००) दश हजार रुपये के घृतादि का जिस रीति से होम हुवा था उसी रीति से प्रति वर्ष होम कराइये। परन्तु उन में से ५०००) पांच हजार रुपयों के सुगन्धित घृत मोहनभोग का होम वर्षा ही में कि जिस दिन वर्षा का आरद्रा नक्षत्र

कार ने परोपकारिणी सभा के मन्त्री महोदय श्री हरविलास सारदा जी द्वारा प्रस्तावित सारदा एक्ट के नाम से प्रचलित किया।

लगे उस दिन से लेके विजयदशमी तक चारों वेदों के ब्राह्मणों का वरण करा एक सुपरीक्षित धार्मिक पुरुष उन पर रख के होम कराइयेगा।

सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा। और इस लेख को यथावत् सफल कीजियेगा। और इस का प्रत्युत्तर शीघ्र भिजवा दीजिए। किमधिकलेखेन महामान्यवर्यतमेषु।

१५–अब कविराज जी आ गए होगे[1]। गोरक्षा के अर्थ अर्जी शीघ्र देनी चाहिए। जितनी आशा लार्ड रिपन साहेब के ही समय में इस कार्य की सिद्धि होने की हैं उतनी दूसरे गवर्नर के समय में अनुमित नहीं है। इस कार्य की सिद्धी करने का यत्न शीघ्र होना चाहिए ऐसी सब आर्यवरों की सम्मति है तथा मेरी भी यही सम्मति है कि यह कार्य अब शीघ्र होना चाहिए, क्योंकि शुभ कार्य करने में विलम्ब होना उचित नहीं। जितनी शीघ्रता हो उतना ही अच्छा है।

रहस्य नियम

१–स्वयंवर विवाह के पश्चात् कम से कम एक महीने और अधिक से अधिक ३ महीने तक ऋतुदान से पूर्व ब्रह्मचर्य सेवन पूर्वक पत्नी और पति भोजन का प्रबन्ध रक्खें। अर्थात् अतिशीत, अत्युष्ण, अतिरुक्ष, मादक द्रव्यों का भोजन पान छोड़ तरोष्ण मध्यस्थ गुण युक्त दुग्ध मिष्ट सुगन्ध तण्डुल गोधूम मूंग उड़द दधि सद्योघृत सुसंस्कृत सुगन्धियुक्त बुद्धिवर्धक हृद्य पदार्थों का भोजन पान किया करें कि जब तक ऋतुदान समय न आवे।

२–ऋतुकाल प्रतिमास षोड़श रात्रि पर्यन्त होता है। उन में से रजोदर्शन दिन को लेके चतुर्थ दिन पर्यन्त स्पर्श दर्शन भी परस्पर न करें। जब पांचवें दिन शुद्ध हो जावे तब यदि पुत्रेच्छा हो तो समाङ्क अर्थात् छठीं आठवीं दशवी द्वादशी चतुर्दशी और सोलहवीं रात्रि ऋतुदान के लिए उत्तम हैं। और जो कन्योत्पत्ति की इच्छा हो तो पांचवीं सातवीं नवमी एकादशी

---

[1] संख्या १५ का लेख मासिक पत्र आर्य, भाग १३ अंक ९ जनवरी १९३२ पृ० ३८९ पर छपा था। पीछे से यह अंश खोया गया। पं० चमूपति जी के आर्य-पत्रस्थ लेखानुसार इतना अंश ऋषि ने स्वहस्त से एक कागज के टुकड़े पर लिखा हुआ था। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार में यह अंश नहीं छपा। म० मामराज जी ने सम्वत् १९९० में ठा० किशोरसिंह जी के संग्रह की प्रतिलिपि की थी। अतः हमारे पास और आर्य में यह लेख सुरक्षित रहा।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

त्रयोदशी और पंचदशी तिथि[1] प्रशस्त हैं। परन्तु इन्हीं सोलह रात्रियों में दोनों पक्ष की अष्टमी चतुर्दशी पौर्णमासी और अमावास्या तिथि आवे तो उस रात्रि में भी ऋतुदान न देना चाहिये।

३–जिस रात्रि में शरीर आत्मा प्रसन्न हो उसी में १० बजे के उपरान्त २ बजे से पूर्व ऋतु दान देके पश्चात् किंचित् ठहर स्नान कर शालम मिश्री और केशर आदि सुगन्धियुक्त परिपक्व दूध शीतल यथारुचि पी के तांबूल भक्षण कर मुख प्रक्षाल[न] करके पृथक् पृथक् शयन करें।

४—यदि पत्नी विदुषी चतुर हो तो उसी समय गर्भस्थित हुआ वा न हुआ जान लेवेगी। नहीं तो जब पुनः द्वितीय मास में रजस्वला न हो तब जानना कि गर्भ रहा। उस समय से आगे यावत् बालक के जन्म होने के पश्चात् दो महीने अर्थात् वर्ष व्यतीत न हो तब तक दोनों सिवाय सुभाषणादि व्यवहार के मध्य में समागम (न) करें किन्तु पति पत्नी पूर्वोक्त प्रकार युक्ताहारविहार करते हुए ब्रह्मचारी रहैं, जिस से अग्रिम सन्तान भी उत्तम होवें।

५—दोनों मन कर्म वचन से व्यभिचार अर्थात् अन्य स्त्री अन्य पुरुष से समागम छोड़ पातिव्रत्य और स्त्रीव्रत रह के धर्मार्थकाममोक्षों को सिद्ध कर के आनन्दित और दीर्घायु होवें।

यदि इतने पर भी गर्भ स्थित न हो तो पत्नी एक यति वा बाल चान्द्रायण अर्थात् मध्यान्हदि[न] में नित्य प्रति तीन तीन तोले या ३६ मासे का ग्रास एकान्न के आठ ग्रास खावे। एक महीने अर्थात् पौर्णमासी से द्वितीय पौर्णमासी, अमावस्या से २[री] अमावस्या और संक्राति से २[री] संक्रान्ति तक व्रत करे। नित्य होम और भूमि शयन करे और पति ब्रह्मचारी होकर वीर्य की रक्षा वृद्धि करे। पुनः पूर्वोक्त समय और रीति से वीर्य स्थापन करें तो संभव हैं कि सन्तानोत्पत्ति होवे[2]।

—:०:—

---

[1] तिथि से अभिप्राय रजोदर्शन काल से गिनी गई रात्रि से है। जैसा पूर्व वाक्य में लिखा है।

[2] यह पत्र १०-१५ अगस्त के मध्य में लिखा गया। देखो पृष्ठ ७५५ टि० १।

[पूर्ण संख्या ७४६] पत्र-सूचना (९१)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
[समर्थदान के निजी पत्र का उत्तर][1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४७] पत्र-सारांश (५०७)

[बिहारीलाल..............]
कविराज श्यामलदास जी का समाचार लिखो।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४८] पारसल-सूचना (५०)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १७६८ से १८०९ तक।[3]
श्रावण सुदि ११, सं० १९४० [१४ अगस्त १८८३]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७४९] पत्र (५०८)

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

कल ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १७६८ से पृष्ठ १८०९ तक का पाकट रजस्टरी

---

[1] इस पत्र की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७४९, ७५४ के पत्रों में है।

[2] इस पत्र और आशय की सूचना श्री बिहारी लाल जी (अमझेरा) के बिना तारीख के पत्र में है। कवि० श्यामलदास जी सं० १९४० के श्रावण और भाद्र मास में दो बार आँखों की चिकित्सा कराने इन्दौर गये थे (द्र० कविराज श्यामल दास का सं० १९४० श्रावण शुक्ला ५ तथा भाद्र शुक्ला ६ को इन्दौर से लिखे गये पत्र। ये पत्र तीसरे भाग में देखें)। उसी समय कविराज श्यामलदास का समाचार जानने के लिये ऋ० द० ने पत्र लिखा होगा। बिहारीलाल जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] इस पारसल की सूचना और तिथि का निर्देश ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७४९ के पत्रानुसार किया है।

कराके भेजा है, पहुंचेगा। यदि उनमें से पांच ५ वा १० दश मन्त्र शिवदयाल को भाषा बनाने के लिए दे देना और पत्र में लिख देना कि फलाने मन्त्र से फलाने मंत्र तक शिवदयाल की बनाई भाषा है। परन्तु उन्हीं मन्त्रों की भाषा को जिन की शिवदयाल बनावे ज्वालदत्त से भी बनवा के भेजना। अच्छी भाषा बनावेगा तो उनके पास भी भाषा बनवाया करेंगे। अब तक किसी का सूची छपकर तैयार हुआ वा नहीं। और आज कल क्या छपता है। सत्यार्थप्रकाश छपता है वा और कुछ। प्रयाग समाजार का छपना दो सप्ताह के लिए था, पश्चात् बन्द हो ही गया होगा। अब टेप आने में कितनी देर है। जहां तक जल्दी आवे तो अच्छा है। बीच बीच में उनको चिट्ठी भेजकर तकादा किया करो। और कलकत्ते में जो छोटे टेप हैं जिन में भाषा छपती है वे बहुत अच्छे छपते हैं। यदि उनमें से भी दो चार फर्म[ों] के टेप आ जाय तो अच्छा है। जो हमने तुम्हारे निजपत्र[1] के उत्तर में पत्र भेजा है[2] उसके सकारण हेतु लिख कर शीघ्र भेजो।[3]

मिति श्रावण सुदि १२ सं० १९४०।[4]

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७५०] पत्र (५०९)

ओम्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[5]।

उस बात का स्मरण होगा कि जो तुम ने काशी में मुझ से कहा था कि आप यंत्रालय कीजिये, दो एक वर्ष में पेंशन लेलूंगा, पश्चात् वैदिक यंत्रालय का ही काम करूंगा। क्योंकि यह आर्यावर्त देश भर का उपकार

---

[1] समर्थदान ने निजपत्र १३-७-८३ को श्री स्वामी जी को भेजा गया। उस में अनार्य नौकरों का विषय है।

[2] यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

[3] इस पत्र का मुंशी समर्थदान का २०-८-८३ का लिखा उत्तर तीसरे भाग में देखें।

[4] १५ अगस्त १८८३।

[5] मूल पत्र श्री नारायण स्वामी के संग्रह में सुरक्षित है।

है। अब भी वही निश्चय है वा कोई दूसरा हो गया है। प्रयाग समाचार छपना बंद हो गया वा नहीं। क्योंकि दो सप्ताह की प्रतिज्ञा थी। कभी की हो चुकी है। बन्द कर ही दिया होगा। टेप आने की अवधी हो चुकी वा नहीं। अब कब तक आवेगा।

और हमें आज मुंशी समर्थदान जी को भी लिखा है[1] कि जिन अक्षरों में भाषा छपती है वे कलकत्ते के ६ टेप[2] बहुत अच्छे हैं। यदि वे भी कुछ मंगवाये जांय तो ठीक है वा नहीं? और वहां किसी वकील से पूछ निश्चय कर लिखना कि मुंशी बख्तावरसिंह पर नालिश की जाय [तो] प्रयाग में हो सकती है वा नहीं। क्योंकि दो ही ठिकाने हो सकती है। एक जहां बात हुई हो वहां और दूसरे जहां मुद्द[इलेह] होवे। जब वह बात हुई थी तब यंत्रालय काशी में था, अब प्रयाग में है। सो किसी अच्छे वकील से पूछ के लिखो। और यह भी पूछ के लिखो कि नालिश फौजदारी में करना चाहिये वा दीवानी में। मेरी समझ में और अन्य वकीलों की भी सम्मति है कि दीवानी में करना अच्छा है। सब से मेरा आशीर्वाद कह देना।

इन सब बातों का प्रत्युत्तर लिखो। श्राव० सु० १२ सं० १९४०[3]।

(दयानन्द सरस्वती)
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७५१]   पत्र-सारांश (५१०)

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा]

मासिक के हिसाब में गड़बड़ मत किया करो।[4]

—:o:—

---

[1] द्र० पूर्णसंख्या ७४९ का पत्र।

[2] सम्भवतः यहाँ '६ टेप' के स्थान में 'छोटे टेप' चाहिये। देखो पूर्व पृष्ठ ७६० की १०–११ दो पंक्तियां।

[3] १५ अगस्त १८८३।

[4] ऋ० द० के सं० १९४० भाद्र शु० ५ (६ सितम्बर १८८३) के पूर्ण संख्या

[पूर्ण संख्या ७५२] पत्र (५११)

ओ३म्[1]

ठाकुर नन्दकिशोर जी आनन्दित रहो—

पत्र तुम्हारा श्रावण सुदी १० का लिखा आया,[2] समाचार विदित हुआ। मुंशी गंगाप्रसाद बुद्धिमान् दृढोत्साही निर्भय धार्मिक निःशंक था। ऐसे पुरुष का मृत्यु सुन कर जो कि उन को जानते थे, शोक किस को न होगा—

(एति जीवन्तमानन्दः) यह महाभाष्यकार [२।३।१२] का वचन है, कि जीते हुए पुरुष को आनन्द प्राप्त होता है। इस लिये अशोचनीय बात पर शोक करना किसी को उचित नहीं। जो एक अशक्य बात है उस के शोक में वर्तमान और भविष्यत् में हानि के सिवाय दूसरा कुछ भी फल नहीं होता। अस्तु जो हुआ सो हुआ। रहे को सम्भालो। और बड़े प्रयत्न प्रीति और दृढ़ोत्साह से आर्यावर्त देश के परम हितकारक सभा के उद्देशों को अपने तन मन धन से पूरे करने के लिये सर्वदा उद्यत रहो। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सब बातें अच्छी करेगा। **(सत्यमेव जयति नानृतम्।)** सत्य ही सर्वदा विजयी होता है, झूठ कभी नहीं। इस लिये सर्वदा सत्य की उन्नति में सब जने उद्यत रहें। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिती श्रावण शुक्ला १४ शुक्रे संवत् १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७५३] पत्र-सूचना (९२)

[श्रीमद्राजराजेश्वर महाराजाधिराज जोधपुरेश आनन्दित रहो[4]]

—:o:—

के पत्र में इस आशय के कई पत्र लिखने का उल्लेख है। हम यहाँ एक पत्र सूचना दे रहे हैं।

[1] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[2] ठा० नन्दकिशोर का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] १७ अगस्त १८८३।

[4] इस के लिये पूर्ण संख्या ७७५ का पत्र और पृष्ठ ७७९ की टि० ३ देख।

[पूर्ण संख्या ७५४]   पत्र (५१२)

ओ३म्[1]

भादवा बदी १—४०[2]

(१)

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

धातुपाठ का सुचि जैसा तुम ने भेजा है वैसा ही छाप दो। उस से बड़ा लाभ है[3]। और गौवध का उपाय हो रहा है। निश्चय है कि लार्ड रिपन साहिब के समय ही में यह काम किया जायगा। और इसके फार्म नये छापने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमारे पास बहुत पड़े हैं। तुम को चाहिये तो मंगवा लो। और तुम ग्राहकों का रजष्टर क्यों नहीं भेजते। क्या अब तक मिलान नहीं हुआ। शीघ्र भेज दो। मुन्शी इन्द्रमणी जी [ने] जो बी दिया है वह टाइटल पेज पर छप गया है। उस में देख लो। यदि अधिक निकले तो ले लो। न दे तो उस के नाम पर धूल डालो। यह वर्तमान महीने की १५ तारीख के पत्र का उत्तर हुआ।

और ऊपर लिखा ज्वालादत्त हमारे पास पन्द्रह दिन पहले पत्र क्यों नहीं भेजता, जो कि पत्र[4] हम बराबर भेज दें। और अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, जैसी कि पहले बनाता था। जैसी कि प्रति दिन उन्नति करनी चाहिये, यह प्रति [दिन] गिरता जाता है। **अब के भाषा में कई पद छोड़ दिये हैं। कहीं अपनी ग्रामणी भाषा लिख देता है। और (च) का अर्थ भी और करना चाहिये। यह (भी) कर देता है**[5]।

---

[1] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[2] १९ अगस्त १८८३।

[3] मुंशी समर्थदान ने १५–८–८३ के पत्र में धातुपाठ की सूची छापने के विषय में सुझाव दिया था। उस के उत्तर में ऋ० द० ने यह निर्देश किया है। समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] यहां 'पत्रे' पाठ चाहिये। अभिप्राय वेदभाष्य के भाषा बनाने वाले पत्रों से है।

[5] इन बातों का उत्तर ज्वालादत्त ने भाद्र कृष्ण ६ सं० १९४० (२३ अगस्त १८८३) के पत्र में दिया है। ५ और ६ तिथि सम्मिलित हैं। ज्वालादत्त का पत्र तीसरे भाग में देखें।

अब १४ अगष्ट के पत्र का उत्तर[1]। श्रीमान् महाराणा जी ने धन्यवाद[2] पत्र के प्रत्युत्तर में लिखा[3] सो बहुत अच्छी बात हुई। जो जो छपता जाय सो सो बराबर हमारे [पास] भेजते जाओ। सत्यार्थप्रकाश में जो कोई ऐसा अनुचित शब्द[1] हो निकाल कर जो हमारे आशय से विरुद्ध न हो वह शब्द उस के स्थान में धरना और हम को लिख कर सुचित करना कि यह यह शब्द धरे हैं। साहपुरे का जो वर्तमान हुआ था सो तुम्हारे पास लिख भेजा था। और मान्यपत्र की नक़ल[4] भेज देंगे। और संस्कृत में जो पत्र आया है[5] उस साधु को हम नहीं जानते कि वह कैसा है। और पहले तुम्हारे निज पत्र के विषय में लिखा था[6] उस का उत्तर भेजो। और ग्राहकों का रजष्टर भेजो तथा जो जो पुस्तक छपे सो सो शीघ्र भेजो। और प्रयागसमाचार बन्द हो गया वा नहीं। और भूपालसिंह का भी जो कुछ आया है वह सब टाइटल पेज पर छपवा दिया गया है।

मिति भाद्रपद वदी १ सं० १६४०[7]।

दयानन्द सरस्वती[8]
जोधपुर राज्य मारवाड़

---

[1] इस पत्र का उत्तर उक्त मुन्शी जी ने ता० २४-८-८३ को पत्र नं० ६३७ द्वारा दिया है। उसमें अनुचित शब्द का अभिप्राय कड़ा लिखा है। मुन्शी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] पूर्ण संख्या ६२८ के पत्र में (पृष्ठ ६६०, पं० २४, से पृष्ठ ६६१, पं० ३ तक जिस पत्र को छपवा कर महाराणा सज्जनसिंह जी को भेजने का उल्लेख है वह **'आर्यसमाज समर्पित धन्यवाद पत्र'** शीर्षक से छपा था। उस की ओर यह संकेत है। इसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

[3] महाराणा सज्जनसिंह जी ने इस का जो उत्तर दिया उसकी ओर यह संकेत है। महाराणा जी के प्रत्युत्तर की प्रति 'श्रीमान् उदयपुराधीश के आज्ञापत्र की प्रति' शीर्षक से दयानन्ददिग्विजयार्क के भाग ३ में पृष्ठ १५२-१५३ पर छपा है। इसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

[4] मान्यपत्र की प्रतिलिपि तीसरे परिशिष्ट में देखें।

[5] यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। तीसरे भाग में भाद्र शु० २ सं० १६४० का पत्र देखें।

[6] इस का संकेत पूर्ण संख्या ७४६ पृष्ठ ७६० पं० १२ में भी है।

[7] १६ अगस्त १८८३।

[8] इस पत्र का थोड़ा भाग दयानन्द ग्रन्थमाला, भूमिका—पृ० १७ पर भी छपा है।

[पूर्ण संख्या ७८८] पोस्ट कार्ड-सारांश (५१३)

[बालकराम वाजपेई अजमेर]

....क्या क्या पढ़े हो और लेख कैसा है ।...........

भाद्रपद कृष्ण ५ सं० १९४०[1] ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८९] पत्र-सूचना (९३)

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

[पं० शुकदेव जी, अजमेर]

पं० शिवकुमार जी शास्त्री[2] (काशी) के लिखे हुए पण्डितों के विषय में ।[3]

—:०:—

इस पत्र का उत्तर मुंशी समर्थदान ने २७–८–८३ को दिया । समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[1] २३ अगस्त १८८३, गुरुवार । इस पत्र का संकेत इस पत्र के उत्तर में लिखे गये बालकराम वाजपेयी के ३१ अगस्त १८८३ के पत्र में है । बालकराम वाजपेयी का पत्र तीसरे भाग में देखें । ऋ० द० ने उपरि निर्दिष्ट पत्र में जो 'लेख कैसा है' पूछा है । इस के निर्देश के लिये आठ मन्त्रों का बालकराम वाजपेयी द्वारा लिखा पाठ कमलनयन शर्मा ने अपने ३१–८–१८८३ के पत्र के साथ भेजा था । इसे तीसरे भाग में कमलनयन शर्मा के पत्र के साथ देखें ।

[2] पं० शिव कुमार शास्त्री जी (काशी) का एक विना तिथि संस्कृत पत्र पं० शालग्राम शर्मा (अजमेर) के नाम लिखा उपलब्ध है । इस में ऋ० द० के समीप कार्य करने योग्य दो पण्डितों का उल्लेख है । पं० शिवकुमार शास्त्री अपने समय के काशी के विशिष्ट विद्वान् माने जाते थे । इन की विद्वत्ता की धाक अभी तक काशी पण्डित मण्डली पर विद्यमान है । पं० शिवकुमार शास्त्री का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[3] इस पत्र का उल्लेख पं० शुकदेव शर्मा के १९ सितम्बर १८८३ के पत्र में मिलता है । पं० शुकदेव शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[पूर्ण संख्या ७८७] पत्र (५१४)

ओ३म्

मुन्शी समथदान जी आनन्दित रहो[1]।

इसके पूर्व तुम्हारे दोनों पत्रों का उत्तर भेज चुके हैं[2]। और जो गणपाठ के १० पुस्तक और उसके साथ भाषा भेजी सो पहुंचेगी। तुम थोड़ी सी भाषा देख लिया करो। **यह ज्वालादत्त तो विक्षिप्त पुरुष है**। इस का ध्यान सदा मासिक बढ़ाने पर रहता है, काम बढ़ाने पर नहीं। यद्यपि मैंने सब पुस्तक गणपाठ का नहीं देखा, परन्तु भूमिका के पहले पृष्ठ में दृष्टी पड़ी तो दूर दूर के स्थान में (दर २) अशुद्ध छपा है। ऐसी भाषा को तुम भी देख सकते हो। और अब **यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, किन्तु घास सी काटता है**। इस के नमूने के लिये एक पत्र भेजते हैं जिस की उसने भाषा बनाई है। और बड़ी भूल करी है कि **जिस का पदार्थ है कुछ, और भाषा कुछ बनाई है। और भावार्थ संस्कृत के अनुसार और पूरी भाषा भी नहीं बनाई है**। तुम प्रत्यक्ष देख लो और उसके सामने दिखला दो। और छः मन्त्र की भाषा भी रोज नहीं बनाता। और उस पर भी यह हाल है। यदि यह प्रीति और परिश्रम से काम करता तो इस की उन्नती और हमारी प्रीति क्यों न होती। और अब भी जो अच्छा काम करेगा तो उसके लिये अच्छा होगा। यह तो एक नमूना भेजते हैं। थोड़े दिन के पश्चात् पुराणे बहुत से पत्र इसके भाषा बनाये भेजेंगे। उस में इस के दोष सैंकड़ों दीख पड़ेंगे। बाबू विशेश्वरसिंह ने भी इस के लिये लिखा था कि इस के तीन रुपये मासिक बढ़ा दिया जाय, परन्तु यह काम भी करे। ऐसे पुरुष हमारे सामने ही काम दे सकते हैं। और यह भी है कि ऐसे पुरुष हमारे पास रह नहीं सकते। यह पत्र बाबू विशेश्वरसिंह जी को भी दिखला देना। और इस विषय में तुम दोनों जने सम्मिति करके लिखो, वैसा किया जाय। इस से जो एक साधारण पुरुष जिस की दृष्टी सच्ची हो वह भी इस से अच्छा छपवा सकता है। और एक तुम को यह लिखते हैं कि जैसा कागज गणपाठ में लगाया है वैसा ही सब साधारण पुस्तकों में लगाया करोगे तो

---

[1] मूल पत्र परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है।

[2] १४ और १५ अगस्त के पत्रों का उत्तर पूर्ण संख्या ७५४ के पत्र में दिया है। ऋ०द० ने यह पत्र मुंशी समर्थदान के २० अगस्त १९४० के पत्र के उत्तर में लिखा है। मुंशी समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

आगे जाकर खर्च की तंगी पड़ जायगी। इससे जैसा प्रथम लगता था, उसी प्रकार का लगाना चाहिये। न अति उत्तम और न अति उत्कृष्ट [निकृष्ट ?]। और धातुपाठ तथा निघण्टु उणादिगण की सुचि भी बराबर उस के साथ छपे। और जो तुम पत्र लिखते हो उस में एक महीने में इतने फार्म फलाने फलाने पुस्तक के छपे अवश्य लिखा करो। और आज कल वेदभाष्य भी नहीं छपता। सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी शीघ्र शीघ्र नहीं मंगाते हो, जितना कि हम अनुमान करते हैं। इस लिये हर महीनों के फर्मों का हिसाब लिखा करो। बाहर का कुछ काम भी मत लो। हमारे पास छपने को बहुत सी पुस्तकें हैं तुम छापते छापते थक जाओगे, तो भी न चुकेगा।

ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पांचवे अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छटा मंडल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में सब ऋग्वेदभाष्य पूरा हो जायगा[1]। और एक वा डेढ़ वर्ष साम, और अथर्व में लगेगा। और अब के संस्कारविधि बहुत अच्छी बनाई गई है। और अमावस्या तक बन चुकेगी[2]।

और हम ने कब कहा था कि निघण्टु व्याकरण के पुस्तकों में गिना जाय। वह वेदाङ्गप्रकाश में गिना जायगा। क्योंकि निघण्टु मूल और निरुक्त व्याख्यान [वेदाङ्ग] है। इस लिये वेदाङ्गप्रकाश में अवश्य गिणना होगा। और पठन पाठन की व्यवस्था में जो इस का संख्यांक हो वही टाइटल पेज और भूमिका के एक पृष्ट में धरना। [दयानन्द सरस्वती]

मिती भाद्र बदी ५ सं० ४०[3]। जोधपुर राज मारवाड़।

---

[1] यह पत्र भाद्र बदी ५ सं० १९४० (२१ अगस्त १८८३) को लिखा गया था। इस के २ मास ९ दिन पश्चात् (कार्तिक बदी ३० सं० १९४० = ३० अक्तूबर १८८३) श्री स्वामी जी महाराज ने भौतिक शरीर छोड़ा। मृत्यु से पूर्व ऋग्वेद अष्टक ५ अ० ५ वर्ग ४ मंत्र २ (मं० ७ सू० ६२ मं० २) तक भाष्य कर पाये थे। देखो "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" परिशिष्ट १ पृ० ४–६ पर रामानन्द ब्रह्मचारी का पत्र। रामानन्द ब्रह्मचारी का यह पत्र इस ग्रन्थ के अन्त में भी तीसरे परिशिष्ट में दे रहे हैं।

[2] संस्कारविधि का संशोधन आषाढ़ वदी १३ रविवार संवत् १९४० का प्रारम्भ हुआ और लगभग दो मास में समाप्त हुआ। इस विषय में ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ ८४–८९ तक देखें।

[3] २३ अगस्त १८८३। दयानन्द ग्रन्थमाला शताब्दी संस्करण भूमिका पृ० १७

[पूर्ण संख्या ७५८] पत्र-सूचना (९४)

[भीमसेन शर्मा][1]

रामानन्द ब्रह्मचारी

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७५९] अशुद्ध भाषा का नमूना-सूचना(९०)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

ज्वालादत्त के द्वारा बनाई गई अशुद्धभाषा का नमूना।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७६०] पत्र-सारांश (५१५)

[कविराज श्यामलदास]

महाराजा हुलकर से गोरक्षार्थ सही कराओ।[3]

भाद्र वदी ९ सं० १९४०

—:o:—

---

१८ पर इस पत्र का किंचित् अंश मुद्रित हुआ है। वहां भाद्र बदी ६ छपा है। यह अशुद्ध है। मु० समर्थदान के उत्तर में इस पत्र की तिथि भाद्र बदी ५ ही लिखी है। इसका उत्तर मुन्शी समर्थदान जी ने ता० २७–८–८३ पत्र नं० ९४९ द्वारा दिया। सत्यार्थप्रकाश के ३२० पृ० तक छपने की सूचना इसी पत्र में है। मुन्शी समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[1] इस पत्र की सूचना पं० भीमसेन शर्मा के भाद्र वदी १२ [सं० १९४०] (२९ अगस्त १८८३) के पत्र में मिलती है। भीमसेन का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] इस पत्र की सूचना पूर्ण संख्या ७५७ के पत्र में पृष्ठ ७६६ पर है।

[3] यह पत्र सारांश तथा तिथि का निर्देश कविराज श्यामलदास के इन्दौर से लिखे सं० १९४० भाद्र शुक्ला ६ ता० ७ सितम्बर १८८३ के पत्र में है। कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ७६१] पत्र--सूचना (९५)

[पं० गोपालराव हरि देशमुख][1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६२] पारसल-सूचना (५१)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
१० गणपाठ, वेदभाष्य की भाषा।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६३] पत्र (५१६)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[3] !

पत्र तुम्हारा २९ अगस्त का लिखा आया,[4] समाचार विदित हुआ। और जो तुमने रजिष्टर और दोनों की भाषा और सभा का कृत्य भेजा सो पहुंचा। इस भाषा को देखकर जैसा होगा वैसा लिखा जायगा। बाबू विशेश्वरसिंह सुख से यन्त्रालय में रहैं, उनका घर है। आज यहां से २४८ से लेके २७८[5] तक सत्यार्थप्रकाश और १८१० से लेके १८९५ तक ऋग्वेद के पत्रे भाषा बनाने के लिये भेजे हैं। पहुंचने पर ज्वालादत्त को दे देना और रसीद भेज देना। प्रथम सत्यार्थप्रकाश के पत्रे २५० तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ

---

[1] इस पत्र की सूचना गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल देशमुख के सं० १९४० श्रावण वदी १३ (दक्षिण भारतीय पञ्चाङ्गानुसार, उत्तर भारतीय भाद्र वदी १३) = ३० अगस्त १८८३ के पत्र में है। लक्ष्मण गोपाल देशमुख का पत्र तासरे भाग में देखें।

[2] इस पारसल की तथा तिथि की सूचना पूर्ण संख्या ७५७ के पत्र में है।

[3] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[4] मुन्शी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[5] अगले आश्विन वदी १ सं० १९४० (=१७ सितम्बर १८८३) के पत्र में पृष्ठ २७२ से ३१९ तक भेजना लिखा है।

रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं। सो ४८-४९-५० अंक घटे हैं। तुमको भ्रम न हो। परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहां २५० पृष्ठ हैं उसके अंत और २४८ पृष्ठ के आदि की संगति तुम मिला देना। और २५१ के पृष्ट के आदि और जो अब २५० वा भेजा है उस की सभी संगति मिला लेना। और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं[1]। **और इसके अन्त में महाराजे युधिष्ठर से लेके यशपाल तक आर्य राजाओं की वंशावली पीछे से लिखी है**। और उसके पृष्ठों के अंक ठीक ठीक हैं। वैसे ही छाप देना।

और प्रथम तुम जो काम अकेले करते थे उसके लिये अब तीन हो, सो उगाही और तकाजे में आलस्य नहीं करना, परन्तु स्मरणार्थ लिखा है। और जो ठाकुर भूपालसिंह ६ अंक बिना मूल्य ले गये हैं और तुम्हारे नोटिस के पहुंचने पर तुमको इतना भी नहीं की[2] फिर उनका मूल्य न देना वा तुम न लो तो नियम टूटता है। और उन्होंने जो जो रुपये जब जब दिये हैं, टाटल पेज पर बराबर छप गये हैं। उस से अधिक न दिये न छपे हैं। और अगष्ट महीने में कितने फार्म छपे सो लिख भेजो। यहां वर्षा हो रही है और दो तीन दिन से यहां वर्षा अच्छी होती है। अनुमान है कि यह प्रयाग आदि में भी हुई होगी। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

भाद्र वदी ३० सम्वत् १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर (मारवाड़)

मैनेजर भारतमित्र श्रीकृष्ण खत्री ने एक आर्य पंचांग नामक ग्रन्थ बनाना चाहा है।[4] उस में आर्यधर्म के प्रयोजन, जिस जिस स्थान पर समाज है, जिस दिन आरंभ हुआ, और जिस दिन वार्षिक उत्सव होता है, और मंत्री का नाम उसमें लिखाना चाहते है। सो हमने तुम्हारा नाम लिख दिया है। यदि वह तुम्हारे पास पत्र भेजे तो जहां तक तुम जानते हो पूर्वोक्त विषयों में

---

[1] यहां तक का भाग Works of Maharshi Dayanand पृ० १२९ पर छपा है।

[2] यहां कुछ पाठ खण्डित प्रतीत होता है।

[3] १ सितम्बर १८८३।

[4] इस का उल्लेख श्री कृष्ण खत्री ने अपने १८ अगस्त १८८३ के पत्र में किया है। श्री कृष्ण खत्री का पत्र तीसरे भाग में देखें।

सहाय देना। और जो उन्होंने समाजस्थ पुरुषों की संख्या और हमारा इतिहास भी लिखना चाहा है, सो तो अब इस समय उनको नहीं मिल सकता। और समाजस्थ पुरुषों की संख्या बतलाने में कुछ लाभ नहीं। इसलिये पूर्वोक्त विषयों में जो सहाय मांगे तो दे देना, क्योंकि वह प्रसिद्ध समाचार का सम्पादक है और उसकी प्रीति भी अधिक दीखती है, चाहैं स्वार्थ वा परमार्थ से।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६४] पारसल-सूचना (५२)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
१. सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २४८—२७८ तक।
२. ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १८१०—१८६५ तक।[1]
भाद्र सुदी ३० सं० १६४० [१ सितम्बर १८८३]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६५] पत्र-सारांश (५१७)

[लाल जी बैजनाथ, मुंबई]
बिट्ठल भाणा को भेज दो।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६६] पत्र-ओषधिपत्र-सूचना (६६)

[महाराणा सज्जनसिंह, उदयपुर][3]

—:०:—

---

[1] इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ७६३ में मिलती है।

[2] इस पत्राशय की सूचना लाल जी बैजनाथ (मुम्बई) के सं० १६४० भाद्र शु० ७ (६ सितम्बर १८८३) के पत्र में मिलती है। इस विषय में सेवकलाल कृष्णदास का २५ जून १८८३ का तथा बिट्ठल भाणा का सं० १६४० ज्येष्ठ शु० १३ (३० मई १८८३) का पत्र भी द्रष्टव्य है। इन सभी पत्रों को तीसरे भाग में देखें।

[3] इस पत्र का तथा साथ में ओषधि पत्र भेजने का निर्देश बारहट किशनसिंह

[पूर्ण संख्या ७६७] पत्र (५१८)

ओ३म्

श्रीयुत बिहारीलाल जी आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि भाद्र कृष्ण १२ द्वादशी बुधवार[2] के दिन का लिखा तुमारा पत्र आया, समाचार विदित हुआ।

इस विषय के नियम

१–वहां पं० गौरीशंकर जी का १ प्रथम माहवारी मासिक क्या था–और जब राज में नौकरी थी तब क्या मासिक था। जब अंगरेज में नौकरी थी तब क्या मासिक नियत था।

२–और अब कितना मासिक उन को देना चाहिये और कितने मासिक में उन का निर्वाह हो सकेगा।

३–और जितना मासिक उन को देना होगा, जिस में तुम कितना दोगे और कितने महीने वे अन्यत्र घूमेंगे और कितने महीने वहां रखना चाहते हो।

४–और जब वे बाहर घूमेंगे, वह रेल का भाड़ा और खाने पीने का खरच समाज से मिलेगा। और जैपुर में रहेंगे, तो अपना मासिक में से खावेंगे। जब बाहर घूमेंगे तब समाज से रेल का भाड़ा खाने पीने का खरच मिलेगा।

५–इस में हमारा विचार यह है कि ८ आठ महीने बाहर घूमें और ४ चार महीने जैपुर में रहा करें। इस में तुमारी क्या सम्मति है। इन सब का प्रत्युत्तर शीघ्र भेजो। जब भेजोगे उस के पश्चात् हम उसका प्रबन्ध

के सं० १९४० आश्विन कृष्णा १०=२६ सितम्बर १८८३ के पत्र में है। बारहट किशनसिंह ने अपने पत्र में जिन औषधियों का संकेत किया है, वे प्रायः आगे रावराजा तेजसिंह को आश्विन वदी ११ सं० १९४० (२६ सितम्बर १८८३) को लिखे पूर्ण संख्या ८०० पत्र के साथ जो औषधिपत्र भेजा था उससे समानता रखती हैं। अतः सम्भव है आगे मुद्र्यमाण औषधिपत्र की ही प्रतिलिपि महाराणा उदयपुर को भेजी गई होगी। तिथि का निश्चय न होने से अनुमान से यह सूचना यहां जोड़ी है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[1] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

[2] २९ अगस्त १८८३। बिहारीलाल जीं का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

ठीक ठीक करेंगे। और हम अपनी सम्मति भी लिखेंगे। पश्चात् और इस प्रबन्ध के समय के प्रथम पं० गौरीशंकर जी को २०।१५ दिन हम अपने पास बुलावेंगे, जब कि जोधपुर से अजमेर को आवेंगे। इस लिये इस पत्र का उत्तर पं० गौरीशंकर से और सभासदों से सम्मति लेकर शीघ्र भेजो[1]। और सब से मेरा आशीर्वाद कह देना।

यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे। और यहां वर्षा बहुत अच्छी हो गई और हो रही है।

संवत् १९४[०] मि० भा० शु० १[2]। [दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७६८] पत्र (५१९)

ओ३म्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[3]–

वख्तावरसिंह के समय के रजिस्टर सब प्रयाग में हैं। और चिट्ठी पत्र तथा हिसाब किताब कुछ मेरठ में भी है। यदि अब तक न आया हो तो मंत्री आर्यसमाज मेरठ बाबू आनन्दीलाल से मंगा कर वकीलों को दिखला देओ। और प्रबन्ध शीघ्र करो। कलकत्ते के टेप कितने मंगाना चाहते हो। और उसके कितने रुपये मन लगेंगे। जब कि प्रथम आये थे तब ४०) रुपये मन के दाम लगे थे। इस विषय का सब हाल लिखो। यदि मुंबई के टेपों से कार्य निकल सके तो फिर मंगाना कुछ आवश्यक नहीं।

और यह जो सभा का प्रबन्ध हुआ है सो बहुत अच्छा है। एक को अधिकार देने में खराबी होती है। और एक को अधिकार न देना। इस सभा में तुम लोग तथा सुन्दरलाल जी और हमारी भी पूर्ण सम्मति है। इसलिए जो प्रबन्ध इसका तुम विचारते हो वही हमने विचारा है। क्यों-

---

१. इस पत्र का उत्तर श्यामसुन्दरलाल जी मंत्री वैदिक धर्म सभा सवाई जयपुर ने भाद्र शुक्ला ९, सं० १९४० (११ सितम्बर १८८३) के पत्र में दिया था। श्यामसुन्दरलाल जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. २ सितम्बर १८८३।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

कि स्वतन्त्र अधिकार देने में हानि ही हानि होती है । और लाभ कुछ भी नहीं होता । और तुमने लिखा कि धन के कार्य में किसी को स्वतन्त्रता न देनी चाहिये, वह सच है । क्योंकि धन के काम में स्वतन्त्रता से लाखों आदमियों में से कोई ही रह सकता है । और यहां धन का ही केवल काम नहीं किन्तु पुस्तकों का ही बड़ा भारी माल है । जैसे हरिश्चन्द्र ने और बख्तावरसिंह ने चोरी से वेदभाष्य के ग्राहक कर लिये थे । और छापेखाने में भी हम को प्रसिद्धि करता था १००० हजार और छपवाता था २००० तथा १५०० डेढ़ हजार । और बाहर का चोरी से छपवा लेना । उस का हिसाब कुछ न देना । यदि दिया तो हिसाब में लिया १०० सौ और लिखा २० बीस । इत्यादि वहुत प्रकार के छापेखाने में काम रहते हैं । दो मनुष्यों को जो तुम सभा में बढ़ाना चाहो, हमारी ओर से बढ़ा दो । और पंडित जी की भी सम्मति लेलो । और तुम प्रसन्नता से यन्त्रालय में रहो, तुमारा घर है । और मुन्शी समर्थदान ने भी हम को लिख भेजा है, वह भी तुमारे रहने से राजी है ।

जो पिछला रुपया बाकी है उसका तगादा करना विचारा है, सो अच्छी बात हैं । परन्तु मैं शोक करता हूं कि जिस काम में मुन्शी समर्थदान अकेले रहते थे, तब वसूल और तगादा भी होता था । और जब से पं० शिवदयाल और रामचन्द्र रक्खे हैं, तो भी तगादा और वसूल अच्छा नहीं होता । यह अपने देश का अभाग्य है, क्योंकि जितने अधिक होंगे, उतना विरोध करेंगे । और काम ठीक ठीक नहीं करते । इस लिये इन तीनों को समझा दो कि अपना अपना काम प्रीति और उत्साह से करें । विशेष कर पं० शिवदयाल और रामचन्द्र को समझाना । समर्थदान तो समझा ही हुआ है । इस कमेटी के विषय में कोई निन्दा लिखे, हम कभी नहीं सुनेंगे । हां, जो कुछ हमको लिखितव्य[1] होगा, सो पं० सुन्दरलाल जी को लिखा करेंगे । ऐसा विचार मत रक्खो कि इस प्रेस से मैं कुछ न लूं । क्या घर के माल में से घर के आदमी यथोचित नहीं लेते । जो काम धार्मिक उत्तम मनुष्य से बनता है, वह धन से कभी नहीं होता । जो तुम से यन्त्रालय की उन्नति होगी, वह निश्चय है कि लाखों रुपये खर्च करने से भी न होगी । क्योंकि सब पदार्थ संसार में

---

[1] जो आधुनिक वैयाकरण लिख धातु में गुण का निषेध मानते हैं वे **गाङ्कुटादिभ्यो ऽञ्णिन् ङित्** (अष्टा० १।२।१) सूत्र में **'कुटस्य आदिः कुटादिः'** ऐसा समास भी स्वीकार करते हैं ।

सुलभ हैं, परन्तु शुद्ध मनुष्य का मिलना दुर्लभ है। क्या तुम इस द्रव्य को बुरा और अधर्म का समझते हो, जो नहीं लेओ। यह सब उत्तर लिखो। बड़ों बड़ों और छोटों छोटों का कुछ नियम नहीं है। यह तो अपने आत्मा के साथ है। क्योंकि बड़े बड़े तो बिगड़ कर तेल के बड़े हो जायं और छोटे छोटे सुधर कर बड़े हो जाते हैं।

अब बाकी का तगादा कर जहां तक हो सके धन इकट्ठा करो। और पश्चात् २०००) का सामग्री मंगवाओ। यदि उस में कुछ न्यूनता होगी, तो हम दे देगे। यदि यह सब प्रबन्ध हो जाय तो पेन्शन लेकर यहीं तुम रहना। और जो मासिक पाते हो वही यहां मिले। और १०) रुपये वे भी लिये जायं तो उस में से प्रति मास बचाते बचाते बहुत सा धन हो जायगा। और यह निश्चय है कि जहां जहां जिस जिस की उन्नति हुई है वह सब सभा ही से हुई है। इस लिए इस की भी उन्नति सभा ही से होगी। इस से यह बहुत अच्छा प्रबन्ध है। और सबसे हमारा आशीर्वाद कह देना। यहां वर्षा बहुत हुई और हो रही है। निश्चय है कि वहां भी हुई होगी।

मिति भाद्र सुदी २ संवत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६९] पत्राशय (५२०)

[कमलनयन शर्मा, मन्त्री आ० स० अजमेर[2]]

ईसाई स्त्री[3] के विषय में पूरी तरह लिखो।

[4]सितम्बर १८८३ जोधपुर दयानन्द सरस्वती

---

[1] ३ सितम्बर १८८३।

[2] देशहितैषी के रजिस्टर से। इस पत्र की पहुंच कमलनयन शर्मा ने भाद्रसुदी ५ सं० १९४०, ६ सितम्बर १८८३ के पत्र में दी है। कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] इस का नाम सीताबाई था। यह ईसाई हो गई थी। इस को आर्य समाज अजमेर ने शुद्ध किया था। इस विषय में कमलनयन शर्मा के ३१-८-१८८३; ६-९-१८८३ तथा १६-९-१८८३ के पत्र देखें। ये सभी पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] सम्भवतः ३ सितम्बर को यह पत्र लिखा होगा। कमलनयन शर्मा ने इस का उत्तर ६ सितम्बर को दिया है।

[पूर्ण संख्या ७७०] पत्राशय (८२१)

[पं० मुन्नालाल जी, अजमेर]

............आपने मन्त्री का पद क्यों त्याग दिया । क्या फिर इसे ग्रहण नहीं कर सकते ?[१]

[२]सितम्बर १८८३ जोधपुर

दयानन्द सरस्ती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७१] पत्राशय (८२२)

[............झालावाड़]

झालावाड़ के————————— अतालीक (लैफ्टेण्ट लौंग) का हाल लिखो ।[३]

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७२] पत्र (५२३)

ओ३म्

चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो[४] ।

भीमसेन के दो पत्र[५] आजकल हमारे पास यहां आये हैं। विदित होता है कि

---

[१] यह पत्राशय पं० मुन्नालाल के ७-९-१८८३ के लम्बे पत्र के आधार पर बनाया है । इसी पत्र में ऋ० द० के पत्र की प्राप्ति का निर्देश भी किया है । मुन्नालाल का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[२] संभवतः ३ सितम्बर को यह पत्र लिखा होगा। द्र० मुन्लालाल का ७-९-८३ का पत्र ।

[३] यह पत्राशय आगे विना मिति के पूर्ण संख्या ७९६ के पत्र के अनुसार बनाया है । पूर्ण संख्या ७९६ का पत्र विना मिति का होने से वह और यह दोनों पत्र अनुमान से जोड़े गये हैं । विशेष पूर्ण संख्या ७९६ के पत्र की टिप्पणी में देखें ।

[४] मूल पत्र श्री विष्णुलाल एम० ए० के पास बरेली में था। वहीं से हम ने इस की प्रतिलिपि ली ।

[५] भीमसेन का एक पत्र विना तिथि का है इसे तीसरे भाग में तारादत्त शर्मा

धक्का खाने पर इस को कुछ बुद्धि आई है। अब आप लिखिये कि जब से यह वहां आया, तब से उसका वर्त्तमान पोपलीला का हुआ वा अच्छा। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि फिर भी वह हमारे पास नौकरी करना चाहता है। और हम को उस के पूर्व चरित्रों से पूरा विश्वास नहीं होता कि यह जैसा लिखता है कि अब मैं सब बात समझ गया। आप से विरोध कभी नहीं करूंगा। आप की सब बातों में मेरा दृढ़ विश्वास हो गया, अब मैं आप की आज्ञानुसार सदा चलूंगा इत्यादि। परन्तु वह छोकरबुद्धि है। यदि उस को रखलें पुनः अनुचित काम करे, निकालना हो तो अच्छी बात नहीं। अब आप लिखिये इस में आप की क्या सम्मति है। क्योंकि मैंने उस के बहुत से उल्टे चरित्र देखे हैं। और इस में अच्छे भी गुण हैं परन्तु बुरे गुण ऐसे प्रबल हैं कि अच्छे गुणों को मात कर देते हैं। यदि परमेश्वर की कृपा से उस का स्वभाव सुधर गया हो तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु जब तक इस पत्र का उत्तर आप भेजेंगे तिस पश्चात् मेरी जैसी सम्मति होगी, वैसी आप को और भीमसेन को लिख दूंगा। देखिए कि बदरी[१] आप को और मुझ को कैसा भलामानस दीखता था। और कैसा दुष्ट निकला। इस लिये उत्तम धार्मिक पुरुषार्थी मनुष्य का सहसा मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। बड़े भाग्य और परमेश्वर की कृपा से उत्तम पुरुष को उत्तम पुरुष मिलता है। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। मुझ को निश्चय है कि आप पक्षपात रहित यथार्थ लिखेंगे।

मिति भाद्र शुदी ४ संवत् १९४०[२]।

दयानन्द सरस्वती[३]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

फर्रुखाबाद के २१ अगस्त १८८३ के पत्र के आगे देखें। दूसरा पत्र भाद्र कृष्णा १२ सं० १९४० (२९ अगस्त १८८३) का है। इसे भी तीसरे भाग में देखें।

[१] इस बदरी का उल्लेख पूर्ण संख्या ६४५ पृष्ठ ६७३ में भी है।

[२] ५ सितम्बर १८८३।

[३] इस पत्र के उत्तर में चौ० जालिमसिंह जी ने भाद्र सुदी १० सं० १९४० (१२ सितम्बर १८८३) को पत्र लिखा था उसे तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ७७३] पत्र (५२४)

ओ३म्[1]

श्रीमन्माननीयवर श्रीयुत महाराज राजाधिराज शाहपुरेश आनन्दित रहो।

रजिस्ट्री पत्र आप का गत दिन आया[2], समाचार विदित हुआ। सरदार जवाहरसिंह जी के विषय में आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये। मैंने भी उनको कई बार मासिक के गड़ बड़ न करने के विषय में लिखा था कि ऐसा न करना चाहिये, परन्तु ऐसा ही हुआ। इस में [१] एक बात विचारणीय है कि सरदार जवाहरसिंह जी मेरे सम्बन्ध से बुलाये आए हैं। यह प्रथम कार्य हुआ है। यह [आगे] आप लोगों और जिसको [मैं] बुलाना चाहूंगा उन दोनों को अविश्वास का कारण होगा। अस्तु जैसा हुआ वैसा ही हो। और क्षात्रशाला का उद्योग निष्फल हुआ, यह शोक की बात है। यहां [७] सात दिन से वर्षा होती है सब मारवाड़ में। फिर भी होने का संभव है। और अकाल का नाम उड़ गया। यहां सब प्रकार से प्रसन्नता है। यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे।

छीतरदत्त जी आदि और स० जवाहरसिंह जी को भी मेरा आशीर्वाद कहियेगा। वहां वर्षा हुई वा नहीं। सो समाचार लिखियेगा।

दयानन्द सरस्वती

सं० १९४० मि० भादवा शु० ५ गुरु दिन[4]।

—:o:—

---

१. मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

२. यह रजिस्ट्री द्वारा भेजा गया श्री शाहपुराधीश का पत्र सम्भवतः भादवा वदी १४ सं० १९३९ (१९४०) ता० १ सितम्बर १८८३ का प्रतीत होता है। यह शाहपुराधीश और ऋ० द० दोनों के पत्रों की तुलना से स्पष्ट है। शाहपुराधीश का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. शाहपुरा से हमारे पास आई मूल पत्र की प्रतिलिपि में यह अंक नहीं है।

४. यह तिथि पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० ३९ में नहीं है। वह उस प्रतिलिपिमात्र से छापा गया है, जो ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में थी। ६ सितम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ७७४] पत्रांश (५२५)

[श्रीयुत महाराजाधिराज शाहपुरेश………][1]

…………………………………………

सब बातें संसार में मिल जाती हैं, परन्तु ऐसे मनुष्य का मिलना असम्भव नहीं तो अति कठिन तो अवश्य है ।…………

मिति भाद्रपद सुदी ६ बृहस्पतिवार संवत् १९४०[2] ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७७५] पत्र (५२६)

ओम्

॥ प्रसिद्ध समाचार ॥

श्री मद्राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री जोधपुरेश आनन्दित रहो ।

अब मैं यहां बीस पच्चीस दिन रहना चाहता हूं, यदि कोई नैमित्तिक प्रतिबन्ध न होगा । मैंने यह समझा है कि यहां आकर आपका धन व्यय व्यर्थ कराया, क्योंकि मुझ से आप का उपकार कुछ भी नहीं हुआ । और आप की ओर से मेरी सेवा यथोचित होती रही । जब श्रीमान् गुण-ज्ञाता हैं इस लिये जब जब मुझ को अवकाश मिलता है । तब तब पत्र द्वारा कुछ निवेदन कर देता हूं । उस मेरे निवेदन को देख सुन कर आप प्रसन्न होते हैं इस लिये **तीसरी बार लेख करने के लिये मुझ को समय मिला** ।[3]

१–जैसा राजकार्य आजकल आप कर रहे हैं वैसा ही यावत् शरीर रहे

---

[1] यह पत्र राजाधिराज श्री शाहपुराधीश को लिखा गया होगा । भाई जवाहरसिंह उन दिनों श्री शाहपुराधीश के प्राईवेट सैक्रेटरी थे । प्रतीत होता है, नौकरी छोड़ते समय वह इस पत्र की नकल अपने साथ ले आए । ऊपर मुद्रित अंश भाई जवाहरसिंह ने "रद्दे बुतलान" के पृ० ६८, ६९ पर छापा है ।

[2] ६ सितम्बर १८८३ । शाहपुराधीश ही के नाम का इसी तिथि का पत्र पूर्ण सं० ७७३ पर छपा है । उसमें यह अंश नहीं है । कदाचित् यह दूसरा पत्र होगा । अथवा क्या भाई जवाहर सिंह ने इसे स्वयं बना लिया ?

[3] पहला पत्र पूर्ण संख्या ७३६ (पृष्ठ ७४४) पर छपा है । यह तीसरा पत्र है । दूसरा पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ ।

तावत् करते रहियेगा। इस को जहां तक हो सके वहां तक अधिक अधिक करते जावें, कभी न छोड़े। क्योंकि न्याय से राज्य का पालन करना ही आप लोगों का परम धर्म है।

२–आप आपने पुत्र जो कि महाराजकुमार हैं, उन को खाने-पीने आदि से संकोचित मत रखियेगा। सदा पाव भर गाय के दूध में मासा भर सोंठ को मिला छान थोड़ा सा गरम कर ठंढा करके ब्राह्मी औषधी के साथ पिलवाते रहिये, जिस से महाराजकुमार के बुद्धि बल पराक्रम आयु और विद्या बढ़ती रहे।

३–जो एक रत्न आप के बन्धु महाराजे प्रतापसिंह जी हैं, उन को कभी राज्यकार्य से पृथक् मत कीजियेगा। क्योंकि ऐसा पुरुष आप और राज का हितैषी दूसरा कोई नहीं दीखता।

४–इस देश में वर्षा प्रायः न्यून होती है। इस के लिये यदि मेरे कहे अनुसार एक एक वर्ष में १००००) दश हजार रुपयों का घृतादि का नित्य-प्रति और वर्षा काल में चार महीने तक अधिक होम करावेंगे वैसे प्रति वर्ष होता रहै तो सम्भव है कि देश में रोग न्यून और वर्षा अधिक हुआ करै।

५–आप में औदार्यादि प्रशंसनीय बहुत गुण हैं। इन को यदि राजनीति में प्रवर्त रक्खें तो देश का सौभाग्य और श्रीमन्महाशयों की पृथिवी भर में उत्तम कीर्ति फैल जावे।

॥ गुप्त समाचार ॥

१–जो जो श्रीमानों के प्रशंसनीय गुण-कर्म स्वभाव हैं उन के कलंक नीचे लिखे हुए काम हैं।

२–एक वेश्या से जो कि नन्नी' कहाती है। उस से प्रेम। उसका अधिक संग और अनेक पत्नियों से न्यून प्रेम रखना आप जैसे महाराजों को सर्वथा अयोग्य हैं।

---

१. जोधपुर में 'नन्ही' नाम की दो वेश्याएं थीं। एक 'नन्ही जान'। मुसलमान) और दूसरी 'नन्ही भगतन' (हिन्दू)। प्रायः सभी जीवन-चरित्र लेखकों ने 'नन्ही जान' का उल्लेख किया है। यह ठीक नहीं है। जोधपुराधीश की कृपा-पात्र नन्ही भगतन थी। देखो इस भाग के अन्त में छापा जा रहा 'ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय व्यक्तियों का 'संक्षिप्त परिचय' शीर्षक परिशिष्ट।

३–जैसे हड़के कुत्ते के दांत वा लाल लगने से उस का दोष छूटना अति कठिन है। वैसे ही वेश्या मद्यपान चौपड़ कनकौवे आदि में व्यर्थ काल खोना और खुशामदी लोगों का संग राजाओं के लिये महा विघ्नकारक, धन आयु कीर्ति और राज्य के नाश करने वाले होते हैं। मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि आप बड़े बुद्धिमान् और शौर्यादि गुण युक्त होकर इन से पृथक् क्यों नहीं होते।

४–जैसे आप नन्नी रंडी के घर को जाते, उस की माता आदि रोगिणी को देखते हैं और जैसे एक किसी अपने नौकर मुसलमान के लड़के के विवाह में घोड़े की लगाम पकड़ के पैदल चले थे, वैसा निन्दाकारक काम करना आपको शोभा कभी नहीं देता। किन्तु इन के वदले जैसे महता विजयसिंह जो बिमार थे, जाकर देखते और जो अपने मारवाड़ के सरदार और बेटे हैं जो कि राजा और राज्य की उन्नति चाहने वाले हों उन के पुत्रों के विवाह में पैदल चलना आदि करते रहैं तो सर्वदा प्रशंसा लाभ और उन्नती होती रहै।

५—जब जब मैं किसी के मुख से अथवा समाचार पत्रों में आप लोगों को निन्दा सुनता या देखता हूं तब तब मुझ को बड़ा शोक होता है। यदि आप लोग ऐसे निन्दा के काम न करें तो क्यों निन्दा होवे। हम लोगों को अंगरेज आदि के सामने शरमिन्दा क्यों होना पड़े। बड़े महाराज जो कि श्रीमानों के पिता जी थे, यदि वे बहुविवाह पासवान् और वेश्या आदि को न रखते तो आप लोग भी कभी ऐसा काम न करते। ऐसे ही जैसे आप लोगों का व्यवहार महाजकुमार आदि देखेंगे इनहीं में झुकेंगे। क्योंकि मनुष्य को दूसरे का गुण लेना कठिन और दोष लेना सहज है।

६–आप महाराजकुमार की शिक्षा के लिये किसी मुसलमान वा ईसाई को मत रखियेगा। नहीं तो महाराजकुमार भी इन के दोष सीख लेंगे। और आप के सनातन राजनीति को न सीखेंगे। न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है वही दृढ़ हो जाता है। उस का छूटना दुर्घट है।

७–महाराजकुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के **प्रथम देवनागरी भाषा और** पुनः **संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्ष** ग्रन्थ **है** जिनके पढ़ने मैं परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो, इन दोनों को पढ़े। पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेरेजी भी, जो कि ग्रामर और फिलासफी के ग्रन्थ हैं पढ़ने चाहियें।

८—**जैसे आपने गणेशपुरी[1] आदि जो कि केवल बुरी चाल-चलन सिखलाने हारे हैं** उनका दुराचार देखके उन का सदा त्याग रक्खा है, वैसे वेश्या आदि मीठे ठगों से भी पृथक् आप क्यों नहीं रहते। जैसे मुसलमान और ईसाई आदि के टोपी पैंजामा मुंडे जूते कोट पतलून टोपी आदि के धारण से आप अपने उत्तम विचार से पृथक् रहे हैं, वैसे ही हजारह गुणों में वेश्यासंग आदि में आप अपने अमूल्य समय को मत खोवें। आप का शरीर ऐसे क्षुद्र काम और विषयासक्ति और आराम के लिये नहीं हैं, किन्तु बड़े परिश्रम न्याय पुरुषार्थ से लाखह मनुष्यों के हितार्थ आप लोगों का शरीर है। देखिये आप मनुस्मृति के सप्तम अष्टम और नवम अध्यायों में कि राजाओं के लिये क्या क्या कर्तव्य और अकर्तव्य लिखा है। मुझ को निश्चय है कि आप इन करड़ी और कल्याणकारक बातों को सुन कर प्रसन्न होंगे। अलमतिविस्तरेण महामान्यवर्येषु[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७६] पत्र (५२७)

ओ३म्

श्रीयुत बहारट कृष्ण जी आनन्दित रहो[3]।

जयकर्ण जोधपुर में आये। उन से वहां का सब वर्त्तमान सुन के अत्या-

---

[1] गणेशपुरी शाक्त-मतानुयायी तथा नन्ही भगतन का गुरु था, और विष सम्बन्धी षड्यन्त्र में भी सम्मिलित था।

[2] अनुमान से ८ सितम्बर १८८३ को यह पत्र भेजा गया होगा। मूल पत्र की प्रतिलिपि ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में थी। उसे ऋषि ने स्वहस्त से शोधा हुआ है। उसी से म० मामराज जी ने ३० दिसम्बर १९३२ को गुरुकुल काङ्गड़ी में जाकर प्रतिलिपि की। पं० चमूपति जी सम्पादित पत्रव्यवहार के पृ० ९२–९७ तक भी छपा है।

[3] मूल पत्र ठाकुर किशोसिंह जी के संग्रह में था। इस की लिपि को ऋषि ने स्वहस्त से शोधा है। उस की प्रतिलिपि म० मामराज जी ने ५ जनवरी १९३३ को की। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १२२-१२३ तथा १७३ पर भी छपा है।

नन्द हुआ। परन्तु थोड़ी सी बातें लिखता हूं। अब निम्नलिखित बातें श्रीमान् महाशयों[१] के दृष्टिगोचर करा देना। अन्य किसी को नहीं।

१—प्रातःकाल का भ्रमण करना सदैव हुआ करे। उसमें विच्छेद कभी न किया जाय।

२—भोजन का जो समय दिनचर्या[२] में १० दश बजे से लेके ११ ग्यारह बजे के पूर्व पूर्व करना लिखा है, वैसा ही सदा रखना चाहिये।

३—सभा में बैठ कर जैसे दिनचर्या[२] में लिखा है वैसे बराबर न्याय करना चाहिये। उस में आलस्य कुछ भी न हो।

४—जो उस रोग को निःशेष होने में श्रीमानों को कुछ भी सन्देह रहा हो तो जो इन्दोर के डाकतर साहब का विचार किया है, वह उत्तम है। वह डाकतर अनुमान से विदित होता है कि अच्छा है। परन्तु औषधी करते समय जो उन के नीचे डाकतर गणपतराव जी और डाकतर भवानीसिंह जी भी दोनों साथ रहें।

५—मुझ को निश्चय है कि यदि सर्वाधीश वाल्टर साहब से इस बात की संमति के लिये पूछेंगे तो वे संमति अवश्य दे देंगे। पूछने की रीति यह है—(अब औषध हो गया और रोग भी निवृत्त हो गया, परन्तु इस की परीक्षा के लिये अर्थात् अब यह रोग निशेष हो गया वा नहीं, इन्दोर के डाकतर को बुलाकर परीक्षा कराना मैं चाहता हूं। इस में आपकी क्या अनुमति है)। पूछते ही वे संमति दे देंगे। जब उन की संमति हो जाय तब उसी समय उस डाकतर साहिब गणपतराव और कविराज जी को उदयपुर में शीघ्र बुला लेना चाहिये।

६—यदि अब तक किंचित उस रोग के निःशेष होने में शंका है तो उस का पथ्य थोड़ा समय पूर्ण रीति से रखना चाहिये, विशेष कर ब्रह्मचर्य। और आगे के लिये भी सदा ऋतुगामी रहैं कि जिस से न कोई रोग आवै। और निरन्तर धर्मार्थ काम मोक्ष राजकार्य की उन्नति होकर आर्यावर्त देश की उन्न[ति] होकर सदा आनन्द बढ़ता रहे। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से ऐसा ही होवे।

भाद्रपद शुक्ला ८ संवत् १९४०[३]।

—:o:—

---

[१] अर्थात् उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह जी।

[२] दिनचर्या पूर्ण संख्या ५९८ पृष्ठ ६२५–६३३ पर छपी है।

[३] १० सितम्बर १८८३। जोधपुर से भेजा गया। बारहट किशनसिंह ने सं०

[पूर्ण संख्या ७७७] पत्रांश (५२८)

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर[1]]

………एक कहार ५५०) का असबाब लेकर भाग गया[2]।

१३ सितम्बर ८३[3]। जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७८] पत्र-सूचना (६७)

[श्री पं० भागराम जी, अजमेर[4]]

चोरी के सम्बन्ध में।

१३ सितम्बर[5] १८८३। जोधपुर

—:०:—

१९४० आश्विन कृष्णा १० (२६ सितम्बर १८८३) के पत्र के आरम्भ में ऋ० द० के जिस पत्र का उल्लेख किया है, वह सम्भवतः यही पत्र है। बारहट किशनसिंह जी का पत्र तीसरे में देखें।

[1] देशहितैषी के रजिस्टर से।

[2] यह अभिप्रायमात्र है। चोरी के सम्बन्ध का एक पत्र आगे पूर्ण संख्या ७८७ पर भी निर्दिष्ट है। कमलनयन शर्मा के २५–९–१८८३ के पत्र में जिस 'रजिस्ट्री चिट्ठी' का उल्लेख है वह सम्भवतः पूर्ण संख्या का ७८७ का पत्र है। चोरी ता० १२–१३ की मध्य रात्रि में हुई थी। यह इस पत्र (सं० ७७७) से स्पष्ट है। पं० लेखराम जी ने जीवन चरित में चोरी की तारीख नहीं दी है। श्री देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित भाग २' पृष्ठ ७०३ पर २५ वा २६ सितम्बर को चोरी होना लिखा है। यह इस पत्रांश में दी गई तारीख के विपरीत है।

[3] भाद्र शुक्ल ११ सं० १९४०।

[4] इस पत्र का संकेत कमलनयन शर्मा ने अपने २५–९–१८८३ के पत्र में किया है। यह पत्र आध आने के लिफाफे में भेजा गया था। (उस समय पोस्टकार्ड १ पैसे का और लिफाफा २ पैसे का था)। पं० भागराम अजमेर में जज थे। संभव है पं० भागराम जी को भी पत्र १३ ता० को न लिखकर आगे पूर्ण संख्या ७८७ के चोरी विषयक पत्र के साथ लिखा गया हो।

[5] यह तिथि आनुमानिक है।

[पूर्ण संख्या ७७९]   पत्राभिप्राय (५२९)

[कमलनयन मन्त्री आ० स० अजमेर[1]]
सीता स्त्री के विषय में लिखते हैं[2]।
१५ सितम्बर १८८३[3]। जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८०]   पत्र (५३०)

॥ ओ३म् ॥

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनंदित रहो[4]!

तुमने लिखा[5] सो ठीक है। इस में चार समाज जो कि प्रयाग के निकट हैं उन से इस बात का नियम कराना चाहिये। हां, मेरठ समाज कुछ उन तीन समाजों से दूर है। तथापि रेल से कुछ दूर नहीं। एक फरक्काबाद, दूसरा मेरठ, तीसरा दानापुर और चौथा लखनऊ। इन चार समाजों के मन्त्रियों को इस हमारे पत्र की नकल के साथ लिख भेजो। दो वर्ष में एक वार पारी आवेगी। क्योंकि छः छः महीने के पश्चात् किसी चार समाजों में से जिसकी पारी हो, वहां से धार्मिक उत्तम पुरुष आया करें। वह अन्तरङ्ग सभा की सम्मति से आवे। और वह हिसाब में [भी ?] अच्छी तरह से समझता हो। तथापि धार्मिक और देशोन्नति में प्रीति रखने वाला हो। चाहे समाज धर्मार्थ वैदिक यन्त्रालय का कितना ही सहाय करे और वास्तव में समाजों ही के प्रताप से वैदिक यन्त्रालय बना है तथापि समाज से जो कोई पुरुष आवे उसके आने जाने और जब तक वहां रहे तबतक खाने

---

[1] देशहितैषी के रजिस्टर से।

[2] इस के विषय में पूर्ण संख्या ७६९, पृष्ठ ७७५ टि० ३ देखें। इस स्त्री के शुद्ध होने पर अजमेर के ईसाईयों में बहुत विप्लव हुआ था।

[3] भाद्र शु० १३ सं० १९४०।

[4] यह पत्र फर्रुखाबाद का इतिहास नामक ग्रन्थ के पृ० २०४ पर भी छपी हुई प्रतिलिपि से छापा गया है। मूल पत्र श्री० नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

[5] श्री बाबू विश्वेश्वरसिंह जी का यह पत्र नहीं मिला।

पीने का खरच भी वैदिक यन्त्रालय से दिया जाय। और वर्ष वर्ष में वैदिक यन्त्रालय का आय व्यय और पुस्तकों का जमा खर्च भी एक छोटे से पुस्तकाकार में छप के स्वीकार पत्र के [साथ] सब सभासदों और सब आर्यसमाजों में भी भेजा जावे। इस से बहुत अच्छी बात रहेगी। और जो कुछ हिसाब में गलती दीखे, वह वैदिक यन्त्रालय की प्रबन्धकर्तृ प्रयाग सभा को तद्द्वारा मुझको और पंडित सुन्दरलाल जी को और उन चार समाजों को विदित किया जाय। उसका उचित प्रबन्ध करने के लिये प्रयाग की सभा को अपनी सम्मति पूर्वक मैं वा अन्य सब लिख भेजें। और वह सभा यथावत् प्रबन्ध किया करे। इससे निश्चय है कि प्रबन्ध अच्छे प्रकार चलेगा। और मुन्शी समर्थदान के २७ सत्ताईस तारीख अगष्ठ[1] का उत्तर यही है कि उन्होंने कापी मांगी है और भीमसेन के पत्र की नकल भेजी थी और कापी आज ही भेजते। आज रविवार है रजिस्ष्टरी नहीं होती। इसलिये कल भेजेंगे।

मिति भाद्र सुदी १५ रविवार सम्वत् १९४०[2]।
जोधपुर राज मारवाड़। दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८१] पत्र--सूचना (९८)

[लाला साईंदास, लाहौर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८२] पत्र (५३१)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[4]!

आर्यराज वंशावली के पत्र तुमने भेजे सो पहुंचे। उसी समय हम

---

[1] मुंशी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] १६ सितम्बर १८८३।

[3] इस पत्र का संकेत भाई जवाहरसिंह के १३ अक्तूबर १८८३ के पत्र में मिलता है। भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[4] मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा। हमने यह पत्र आर्यधर्मेंद्र जीवन से लेकर छापा है।

सत्यार्थप्रकाश १२ समुल्लास को भेजना चाहते थे । इस लिये हम शोध नहीं सके। और तुम इसका जोड़मात्र शोध लेना। जो राजाओं के आयु के वर्ष, मास, दिन हैं उन को वैसे ही रखना। क्योंकि अन्य पुस्तक से भी हमने इसको मिलाया है जो कि यहां जोधपुर में एक मुन्शी के पास था। और इसके साथ मोहन चन्द्रिका १९-२० किरण भेजते हैं। परन्तु यह भी अशुद्ध छपा है। इस लिए नीचे और ऊपर के जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना, आयु के वर्ष, मास, दिन नहीं। दिन वैसे ही रहने देना, जैसे कि हैं। **२७२[1] से ले के ३१९ तक १२ समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिये भेजते हैं। जो** जोधपुर के मुन्शी की पुस्तक से मिलाई है वह भी भेजते हैं।

मिती आ० वदी १ सं० १९४०[2]।

जोधपुर राज मारवाड़

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८३]   पारसल-सूचना (५३)

[मुन्शी समर्थदान, प्रयाग][3]

१– आर्यराजवंशावली के पत्रे।

२– सत्यार्थकाश के पृष्ठ २७२ से लेकर ३१९ तक तथा १२ वां समुल्लास।

३– मोहन चन्द्रिका किरण १९–२०।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८४]   पत्र (५३२)

ओ३म्

चौधरी जालिम सिंह जी आनन्दित रहो[4]।

---

[1] पूर्णसंख्या ७६३ (पृष्ठ ७६९) के पत्र में २७८ तक पृष्ठ भेजने का उल्लेख है। तदनुसार यहां २७९ चाहिये।

[2] १७ सितम्बर १८८३, सोमवार

[3] इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ७८२ के पत्र में है। पूर्ण संख्या ७८० के पत्र में भी संकेत है।

[4] इस पत्र की प्रतिलिपि हम ने बरेली से ली।

पत्र आपका आया[1], समाचार विदित हुआ । आप के लिखने अनुसार उस का अपराध क्षमा करके बुला लेंगे वा कहीं अन्यत्र भेज देंगे[2] । परन्तु उस को आप भी समझा देना । और एक कहार की हम को जरूरी है। यदि मिल सके तो लिखिये । और आज भीमसेन के पास भी पत्र भेज दिया है। और अब हम यहां से शीघ्र अन्यत्र जावेंगे। और जब निश्चित जाने का दिन होगा तब आप के पास पत्र भेज देंगे[3] ।

सम्वत् १९४० मि० आश्विन कृ० ४ गुरुवार[4]—।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८५] पत्र-सूचना (९९)

[पं० भीमसेन············—][5]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८६] पत्र (५३३)

ओ३म्

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो ।[6]

विदित हो कि आप को मैंने बहुत बहुत बार कहार के लिये लिखा था । तुम ने कुछ ध्यान नहीं दिया । उस का फल यह हुआ कि एक जाट जिले भरतपुर से दो कोश पूर्व की ओर ग्राम विरोना साहबराम पोजदार

---

[1] यह भाद्र सुदी १० सं० १९४० (१२ सितम्बर १८८३) का चौ० जालिमसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

[2] भीमसेन को ।

[3] यह पत्र इस पते पर भेजा गया चौधरी जालिमसिंह जी ग्राम रूपधनी, जिले एटा थाने धूमरी एटा० ।' इस पत्र का उत्तर चौ० जालिमसिंह जी ने आश्विन सुदी १ सं० १९४०(२ अक्टूबर १८८३) के पत्र में दिया है । इसे तीसरे भाग में देखें ।

[4] २० सितम्बर १८८३ ।

[5] इस पत्र की सूचना पूर्व निर्दिष्ट पूर्ण संख्या ७८४ के पत्र में मिलती है ।

[6] मूल पत्र लिफाफे सहित हमारे संग्रह में सुरक्षित है। सन् १९२७ में म० मामराज फरुखाबाद से खोज कर लाये थे ।

का बेटा और कुन्दन का छोटा भाई कल्लू नाम वाला शाहपुरे में ऐसे ही रख लिया था। वह चोरी कर के भाग गया है।[1] यदि भरतपुर में आपका विशेष संवन्ध हो तो उस के द्वारा उस चोर का निश्चय करवायिये ! और फिर भी लिखते हैं कि कोई कहार तलाश करके भेजोगे तो अच्छा होगा।

१–आवश्यक बात जिस पर आप को अवश्य ध्यान देना है सो यह कि जो कुछ नगद रुपये पास वा वैदिक यंत्रालय में वर्तमान खर्च से अधिक रहे। वह आप लोग निम्नलिखित छः महाशयों की सभा के प्रबन्ध में रहें। और जब जब उस में से खर्च करने का आवश्यक होवे तब तब मैं वा वैदिक यन्त्रालय के लिये वहीं से खर्च के लिये जाया करे। और इस धन को ।।) सैकड़े व्याज पर जहां कि आप लोगों की सभा की और मेरी सम्मति हो, वहीं रखा जावे। यदि आप लोग निम्नलिखित सब सभासद उचित समझें तो सेठ निर्भैराम जी के दुकान में जमा रहे। और वे ।।) आना सैकड़े व्याज भी देते हैं। परन्तु इस की सम्भाल [करने वाला] सभा की ओर से एक मन्त्री और एक प्रधान होवे। और सभा उस धन की रक्षा और उन्नती में सदा ध्यान रक्खे। क्योंकि मैं अपने पास शिवाय एक महीना भर के खर्च के अधिक नहीं रखना चाहता। जो अधिक हो वह सभा की सम्मति से लाला निर्भयराम जी के यहां जमा हुवा करे और खरच भी वहां ही से उठा करे। **जब तक तो मेरा शरीर है तब तक तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु पश्चात् आप लोगों को अर्थात् सभा को परमार्थ के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना होगा।** कि जिस से आर्यावर्त की उन्नति में ये सब पदार्थ लगा करें। और मेरे पश्चात् जो स्वीकारपत्र[2] में प्रधान और सभासद हैं वे सब इस सभा के सभासद गिने जांयगे। और उसी स्वीकार पत्र के नियम के अनुसार व्यय भी किया जायगा।

।। सभा का नाम ।।

आर्यहितैषिणी--

इस के सभासद

१–एक आप
२–दूसरा लाला जगन्नाथप्रसाद
३–लाला निर्भयराम

---

[1] देखो पूर्ण संख्या ७७७, ७७८ का पत्र।

[2] देखो पूर्ण संख्या ६२५ (पृष्ठ ६५३)।

४—लाला कालीचरण
५—राव बहादुर पं० सुन्दरलाल
६—बाबू आनन्दी लाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ
७—सातवां मैं।

इस सभा का दूसरा काम यह भी रहे कि छटे छटे महीने कोई प्रतिष्ठित सभासद वा कोई योग्य पुरुष सभा की सम्मति से भेजा जावे। वह वैदिक यन्त्रालय के धन पुस्तक आदि की जांच पड़ताल करे। उस का सब हिसाब छोटे पुस्तकाकार में छपवा के स्वीकारपत्र के सभापति आदि और मुख्य मुख्य समाज के पास भेज दिया जावे। और मध्य में भी वैदिक यन्त्रालय की सभा से जो कि सात पुरुषों की वहां नियत हुई है पत्र द्वारा भी पूछ सके। इसके विना देखिये अभी च०[1] ४००–५००) रुपयों की हानि हुई है। और कुछ इधर उधर से ११५) और ३००) मैंने अपने हाथ से लाला रामसरणदास मेरठ में जमा किये थे, वे गड़बड़ में रहे। इसी प्रकार ऐसे बहुत से व्यवहार हैं कि जिन के लिये यह सभा का प्रबन्ध होना आवश्यक है। और शरीर सब के अनित्य हैं। इस से यह काम शीघ्र होना चाहिये। पत्र पहुंचते ही इस का प्रत्युत्तर लिखें, क्योंकि मैं यहां से अब शीघ्र जाने वाला हूं। परन्तु पांच ५ दिन पहले एक पत्र और भेजूंगा[2]। यदि इतने में उत्तर यहां आ जाय तो अच्छा है। और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति आश्विन कृष्ण ४ सं० १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

---

[1] 'अभी च०' का क्या अभिप्राय है, समझ में नहीं आया। सम्भव है यहाँ 'अभी तक' पाठ अपेक्षित हो।

[2] सम्भव है दूसरा पत्र ऋ० द० भेज नहीं सके। इस का कारण २९ सितम्बर की रात में ऋषि दयानन्द को विष देने से अस्वस्थ हो जाना है। ऋ० द० का अन्तिम पत्र भी २९ सितम्बर १८८३ का मिलता है। इस के अनन्तर ३० सित० तथा १ अक्टू० के पत्रों की सूचना मिलती हैं।

[3] २० सितम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ७८७] पत्र-सूचना (१००)

[कमलनयन मन्त्री आ० स० अजमेर]
कहार की चोरी के विषय में[1]।
२१ सितम्बर १८८३। जोधपुर[2]

71886

ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८८] पत्र-सूचना (१०१)

[श्रीमान् महाराजा जोधपुराधीश[3]]
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८९] पत्र-सूचना (१०२)

[श्री महाराज प्रतापसिंह जी[3]]
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९०] पत्र-सूचना (१०३)

[रावराजा तेजसिंह जी[1]]
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:o:—

---

१. देशहि० के रजिस्टर से। इस विषय की एक पत्र-सूचना पूर्ण संख्या ७७७ (पृष्ठ ७८४) पर छपी है, उसी विषय में यह दूसरी पत्र-सूचना है। कमलनयन शर्मा का एक पत्र २५–९–८३ का है। क्या उस में उल्लिखित रजिस्ट्री चिट्ठी' यही है। कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. आश्विन कृष्ण ५ शुक्र, सं० १९४०।

३. इन पत्रों की सूचना आश्विन वदी १३ शनि सं० १९४० (२२ सित० १८८३) को रावराजा तेजसिंह के नाम वाले पूर्ण संख्या ८०० के पत्र में हैं।

४. २३ सितम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ७६१] पत्र (५३४)

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो[1]।

आज संस्कार विधि के पृष्ठ १ से ले के ४७ तक भेजते हैं[2] । सम्भाल के छपवाना । और एक तीन पत्र का एक पत्र है। वह जिस प्रकार जोड़ा है उसी प्रकार छपेगा। वह गड़बड़ न हो, इस लिए जोड़ा है। इसीलिए तीनों का एक अंक रक्खा। और हम ने भीतर प्रतीक के अंक पृष्ठांक अर्थात् फलाना मंत्र वा फलाने कर्म फलाने पृष्ठ में करना, अपने लिखे पृष्ठों के अनुसार अंक लिखे हैं। परन्तु लिखे और छपे एक से पृष्ठांक नहीं होंगे। इसलिये छपे पृष्ठों के अनुसार वे पृष्ठांक बना लेने। और विषय सूचीपत्र भी छपे पीछे बनेगा। और एक सामग्री सूचीपत्र अर्थात् फलाने संस्कार में फलानी फलानी सामग्री संग्रह की जायगी, जैसा कि इस संस्कारविधि में लिखा है। और अवकाश मिला तो **सामग्री सूचीपत्र तो हम ही यहां से लिख भेजेंगे[3]** । अब हम यहां से अमावस्या[4] के दिन रवाना हो के आश्विन सुदी ४ चौथ[5] को मसूदे में पहुंच जायंगे, यदि वर्षा का प्रतिबन्ध नहीं हुआ। और जो प्रतिबन्ध हुआ तो तुमको चिट्ठी लिख देंगे। और सत्यार्थप्रकाश जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुंचते समय भेज देंगे। और मुम्बई से टैप आया वा नहीं । और यदि नहीं आया तो प्रत्युत्तर भी आया वा नहीं।

मिति आश्विन बदी ८ सोमवार सम्वत् १९४०[6]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़।

—:०:—

---

[1] मूल पत्र परोपकारिणी सभा में होगा।

[2] संस्कारविधि के १–४७ तक के पृष्ठ सामान्य प्रकरण के हैं। इस से आगे का संस्कारविधि का भाग पाण्डुलिपि (रफ कापी) से छपा है। इस पाण्डुलिपि पर ऋ० द० के हाथ के संशोधन हैं।

[3] यदि प्रतिसंस्कार सामग्री की सूची ऋषि दयानन्द लिख देते तो अनेक विवाद उत्पन्न न होते।

[4] १ अक्टूबर १८८३।

[5] ५ अक्टूबर १८८३।

[6] २४ अक्टूबर १८८३।

[पूर्ण संख्या ७९२] पारसल-सूचना (५४)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
संस्कारविधि के पृष्ठ १–४७ तक ।[1]
आश्विन वदी ८ सोमवार, सं० १९४० [२४ सितम्बर १८८३] ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९३] पत्र (५३५)

ओ३म्

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह जी आनन्दित रहो[2] ।

पत्र आपका सभा की ओर से पंडित नंदकिशोर जी[3] के विषय का मिति भा० सु० ९ लिखा आया, समाचार विदित हुआ। पत्र के उत्तर में विलंब इस लिये हुआ कि कुछ समाजों का अभिप्राय विचारणीय विशेष था, इस लिये शीघ्रोत्तर नहीं दिया गया। इतने में आर्य स० अजमेर की जैसी संमति आई है कि उक्त पंडित जी को सब समाजों के उपदेशक नियत करना चाहिये, वैसी ही सब समाजों की संमति निश्चय जानों। मेरी भी संमति यही है कि किसी एक समाज पर इनके मासिक का भार नहीं दिया जायगा। और यदि तुमारी सभा में उनके सहाय करने का समय (सामर्थ्य?) न हो तो कुछ चिंता नहीं। तुमारे समाज को इतना ही भार रहेगा कि जिस समय जैपुर से अन्य समाज को पंडित जी जायेंगे तब रेल का खरच दूसरे समा[ज] तक का देना होगा। और जिस जिस समाज में जायेंगे और जितने दिन रहना होगा, व्याख्यान देंगे और सभासदों को उचित समय में पढ़ावेंगे भी, और मासिक इनका २०) रुपये रहेगा। क्योंकि २ महीने तक अपने घर का खरच खायेंगे। दश महीने घूमने में उन का खरच खाने पीने

---

[1] इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ७९१ के पत्रानुसार दी है। तिथि का निर्देश भी उसी पत्र के अनुसार दिया है।

[2] मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित हैं।

[3] भाद्र सुदी ९ के जिस पत्र की ओर संकेत है उसमें पण्डित का नाम गौरीशंकर लिखा है। इस पत्र के अन्त में भी गौरीशंकर नाम है। अतः यहां 'पण्डित गौरीशंकर जी' पाठ चाहिये। ठाकुर नन्दकिशोर का पत्र तीसरे भाग में देखें।

में समाज की ओर का लगेगा। इनके मासिक में से कुछ खरच न होगा किन्तु २२०) रुपये उन के घर के खर्च के लिये समझना चाहिये। और एक वर्ष में दो महीने की छुट्टी अर्थात् तुम्हारे समाज में और अपने घर में रह के उपदेश वा पढ़ाया करें। छुट्टी चाहे तो दो महीने की इकट्ठी ले ले अथवा छः छः महीने में एक एक महीने की। और इनके मासिक के लिये ऐसा प्रबन्ध किया जायगा कि प्रति मास उनके घर पे २०) रुपये पहुंचा करेंगे। चाहे किसी समाज की ओर से जाय वा हमारे पास से। इस का प्रबन्ध हम कर देंगे, जैसा उचित समझेंगे। फिर इसमें कुछ शंका न रहेगी। जिस समाज से जिस समाज तक जाना होगा, वह समाज रेल का व्यय और मार्ग में खाने पीने का भी वही समाज दे दिया करेगा। इतना खरच उठाने में समाज कोई भी निर्बल नहीं है, प्रत्युत सैकड़ों रुपयों का खरच यदि ऐसे ऐसे दश पंडित भी हों तो भी समाज प्रबन्ध कर सकते हैं, परन्तु जब समाज स्वयं समझ लेवेंगे कि पंडित जी एक वर्ष में सब समाजों में एक फेरा लगा आवेंगे। पश्चात् चाहे छोटे से छोटा समाज क्यों न हो, इन का सत्य उत्साह और वक्तृत्व ऐसा है कि बड़े प्रसन्नता के साथ इनका खरच उठा लेंगे। और यदि ऐसे ऐसे पंडित और जैसे स्वामी सहजानन्द तथा आत्मानन्द सरस्वती जहां जाते हैं वहां प्राचीन समाज को आनन्द और नूतन समाज नित्य होते जाते हैं। उपदेशक मंडली के लिये मेरठ समाज तथा लाहौर समाज ने भी कुछ धन संचय किया है और महाराज राजाधिराज शाहपुरेश ने भी ३०) महावारी नियत किये हैं, परन्तु उस में यह नियम किया गया है कि दो उपदेशक हमारी ओर से रक्खे जायं। चाहे १५) १५) के दो चाहे एक २०) का वा १ एक १०) का रक्खा जावे। यह नियम भी पालन करना आवश्यक है। इसलिये इस पत्र को देखते ही इन सब बातों का स्वीकार हो तो प्रत्युत्तर शीघ्र भेजो। अब हम जहां से संवत् १९४० आश्विन वदी ३० अमावश्या[1] के दिन चलके आश्विन सुदी ४ चौथ को अर्थात् ५ अक्तूबर सन् १८८३ को मसूदे पहुंच जायंगे[2]। यदि पंडित जी को स्वीकार होगा तो मसूदे में उन को बुला लेंगे। और सब समाजों में विदित कर दिया जायगा कि पं० गौरीशंकर जी को वैदिक मत का उपदेशक नियत किया है। उस के सब नियमपूर्वक हो जायगा और दो महीने जैपुर के समाज में रहेंगे। उन दो महीनों के

---

[1] १ अक्तूबर १८८३।

[2] इस यात्रा का निर्देश पूर्ण संख्या ७६१ के पत्र में भी है।

दश १०) रुपये जैपुर का समाज दिया करे अर्थात् उन का २५) पच्चीस रुपये महावारी बना रहेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

संवत् १९४० मिति आ० बदी ८[1]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९४] पत्र-सूचना (१०४)

[श्री बहादुर्सिंह जी रावसाहब मसूदा]
मसूदा पहुंचने कि सूचना तथा प्रबन्ध विषय में[2]।
आश्विन वदी ८ सोमवार सं० १९४०[3]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९५] पत्र (५३६)

ओ३म्[4]

श्रीयुत शास्त्री छगनलाल जी तथा वृ[द्धिचन्द जी] आनन्दित रहो।

आज एक रजिस्ट्री पत्र श्री [राव सहाब के] पास भी भेजा है। निश्चय है कि समय पर दोनों पहुंच जायेगा। आप को विदित किया जाता है कि हम यहां से संवत् १९४० आश्विन वदी ३० अम्मावस्या सोमवार के दिन अर्थात् अक्टूबर तारीख १ को इहां जोधपुर से चलकर बुद्ध अर्थात् आश्विन सुदी २ तदनुसार अक्टूबर तारीख ३ को मुम्बई से नयेनगर[5] को रात्री में मेल आती है उसी में आयेंगे। नयेनगर के स्टेशन पर उतरेंगे। इस लिये आप लोग नयेनगर को प्रतिपदा के दिन एक रथ, एक्का और एक असबाब

---

[1] २४ सितम्बर १८८३।

[2] इस पत्र की सूचना अगले पूर्ण संख्या ७९५ के पत्र में है। उसी पत्र के अनुसार यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा गया था।

[3] २४ सितम्बर १८८३। यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा गया था।

[4] मूल पत्र अथवा उसकी प्रतिलिपि परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

[5] नयेनगर अर्थात् ब्यावर। मुम्बई से नयेनगर (ब्यावर) को एक्सप्रेस आती थी। उसे ही मेल लिखा है।

की गाड़ी और जो हाथी अच्छा चलता हो तो हाथी भी भेज देना। और यदि हाथी भेजो तो एक्का मत भेजना। और घाटो के नीचे कि जहां तक बग्गी आती है वहां बग्गी भेज देना। [पहले] का सा प्रबन्ध न हो[1]। किन्तु रेल आने के स[मय से] घंटा दो घंटा पहले से सवारी आके रतु ……
…और साथ दो सवार और दो चार आदमी पहरे वाले भेज देना। हम नयेनगर से सीधे मसूदे चले जावेंगे। और जिस मकान में हमारा ठहरना हो वह भी शुद्ध कर और सब सामग्री कर रखना। और दो चतुर पुरुष सवारी के साथ नयेनगर में भेजना। उन में से एक सवारी के पास रहे कि जो उक्त मिति को मुम्बई से आने वालो रेल के समय स्टेशन पर सवारी ले के खड़ा रह। और एक…… ……मुगु की तत की[2] रेल में नयेनगर से रात्री की रेल में बंठा और प्रातःकाल खार्ची[3] स्टेशन पर आके स्टेशन मास्टर जो जोधपुर के सरदारमल मास्टर का भाई है उनसे कहदे कि आज स्वामी जीं आवेंगे। और उन को लेने के लिये [हम आये हैं।] इतना कहते ही उनको प्रीति में रख लेगा।……–……………वाके दिन उपस्थित रखा।

मिति आश्विन वदी ९ सोमवार संवत् १९४०[4]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़[5]

—:०:—

---

[1] शाहपुरा से लौटने समय मसूदा जाने का निश्चय था। परन्तु प्रबन्ध की अव्यवस्था के कारण बरल (षीरल) स्टेशन पर कोई सवारी नहीं पहुंची (देखो पूर्ण सं० ६८६, ६८७) उसी की ओर यह संकेत है।

[2] सम्भवतः 'मुंबई की तरफ की'।

[3] खार्ची अर्थात् मारवाड़ जंक्शन।

[4] २४ सितम्बर १८८३। वदी ८ चाहिये वदी ९ को मंगलवार और २५ सि० है।

[5] कोष्ठों और बिन्दुओं वाला स्थान फट चुका है। इस पत्र का उत्तर पं० छगनलाल ने आश्विन कृष्णा ११ संवत् १९४० को दिया। पं० छगनलाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ७९६] पत्र (५३७)

अजमेर

मास्तर झालावाड़ के राजराणा जो[1]

झालावाड़ के अतालीक जो भाग गये उसका हाल संक्षेप से झालावाड़ से समाचार मंगवाया था सो हाल यह है कि लफटंट लौंग[2] साहेब ३॥ साढ़े तीन वर्ष तक अतालीक रहै । जीती खर्च वा अजमेर खर्च श्री राजराणा साहेब बहादुर का अताली[क] के सुपुर्द रहता था किन्तु नित्यप्रति के व्यय के लिये नगद रुपैये १७०००) राज की उसके पास था और रुपये १२०००) सेठ मूलचन्द्रजी वा गणे[श]दास आदि साहुकारों का पहिले से लेना था । और रुपये २०००) हजार का जेवर श्री राजराणा साहेब का जो उसी रात धावाई हरलाल की मार्फत वास्ते देखने के मंगाया, वह सब लेकर अकेला रात की रेल में अजमेर से चला गया । साहब लोगों का कहना है कि उसका पता नहीं है कि कहां गया और अब वह कहां है ।

उपदेश[3]

१ - सदा पक्षपात छोड़ के अभ·······के सामने उपदान लेने की चेष्टा कभी न करनी चाहिये ।

२—सेना में सुरक्षित अधिष्ठाता आर्य जनो को रखना ।

३—क्षात्रशाला ।

४—हास्य और वेश्यानृत्य पासबान् आदि से समागम कभी न करना ।

---

[1] मूल लेख ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था, उसमें तिथि आदि नहीं लिखी है । (पं० चमूपति जी सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १४४ पर छपा है) । यहां हमने अनुमान से जोड़ा है ।

[2] लौंग साहब का कुछ वृत्तान्त पं० कमलनयन शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर ने अपने पत्र ता० १७ जून १८८३ में श्री स्वामी जी को लिखा है । इसे तीसरे भाग में देखें ।

[3] यह उपदेश श्री स्वामी जी ने पेन्सिल से लिखा है । प्रतीत होता है कि यह पहले पत्र (झालावाड़ वाले) के साथ सम्बद्ध है । मूल लेख ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था । म० मामराज जी ने ता० ३ जनवरी सन् १९३३ में प्रतिलिपि की । हमने उसी से शुद्ध छापा है । पं० चमूपति जी सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १४५-१४७ पर कुछ अशुद्ध छपा है ।

५—आबू एजंट और सीमा के व्यवहार में को गोल पासवान् स्वार्थी राजद्रोही मूर्ख को न रखना, किन्तु बड़े विद्वान् धार्मिकों को रक्खे।

६—सर्वदा उद्युक्त आलस्य रहित [रहो] दीर्घसूत्री कभी न हो।

७—कभी अर्थी प्रत्यर्थी से लोभादि में फंस कर अन्याय न करे न करावे। यदि जिसका सत्य न्याय हो वह बिना प्रसंग भेंट करे तो भी उन से कहे कि न्याय करना हमारा निज काम है, इतने [पर] भो प्रसन्नता से देवें तो लेवे।

८—वेदविरोधी की जाल से प्रजा को बचावे।

९—सदा ऋतुगामी स्वदाररत हो, इस से भिन्नों को मा बहिन और कन्या के सदृश माने।

१०—शरीर राज्य ऐश्वर्य विद्या धर्म को सर्वदा बढ़ा[या करे]

११—वेश्यागामी दुर्व्यसनी, दुष्ट-व्यसनों का संग कभी न करे। सदा भ्रमण के लिए एक पुरुष और दूत

१२—धर्मार्थोपरि

१३—गोविषय

१४—छापाखानादि

१५—किसी को अपना भेद, कोई अपना छिद्र न जाने।

१६—जो धर्मदाय वा पारितोषिक दिया हो, जिस लिये उसका उसी के अर्थ नियुक्त रखना

१७—किसी की अर्जी सुन कर निष्फल न करनी, किन्तु उसका यथावत् विचार करके जीत हार तय करना ही चाहिये।

१८—सरदार और पण्डित व्रजनाथ वा अन्य कोई योग्य पुरुषों को सीमा प्रबन्ध[क] करना चाहिये।

१९—जितनी पृथ्वी स्वराज्य की दूसरे राज्य में दबी है, उस के लिये अपील शीघ्र अवश्य होनी चाहिये।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७९७] **पत्र (५३८)**

ओ३म्

श्रीयुत बहारट किसन जो आनन्दित रहो[१]।

अब हम यहां जोधपुर से सम्वत् १९४० मिति आश्विन वदी ३० अमा-

---

[१] मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। पं० चमूपति सम्पादित

वस्या सोमवार को अर्थात् सन् १८८३ तारीख १ अकतूबर को रवाना होके जिले अजमेर राज मसूदा—में तारीख ४ अक्तूबर आश्विन शुदि ३ तृतीया बृहस्पतिवार को पहुंचेंगे। और यही **समाचार कविराज श्यामलदास जी** को भी लिख भेजा है[१]। और यहां का समाचार बहुत सा आप को पहुंच भी गया होगा। और पश्चात् मसूदे से लिखेंगे। और इस पत्र का उत्तर ठिकाना मसूदा जिले अजमेर राजपूताने भेजियेगा।

मि[ति] आश्विन वदी १० बुध सम्वत् १९४०[२]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९८]   पत्र (५३९)

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत कविराज स्यामलदास जी आनन्दित रहो[३]—

अब हम यहां जोधपुर से संवत् १९४० मिति आश्विन वदी ३० अमावस्या सोमवार को अर्थात् सन् १८८३ तारीख १ अक्तूबर को रवाना होके जिले अजमेर राज मसूदा में तारीख ४ अक्तूबर आश्विन सुदि ३ तृतीया बृहस्पतिवार को पहुंचेंगे। और यही समाचार श्रीमानों के पास भी बाहरट किसन जी के द्वारा भेज दिया है[४]। और यहां का समाचार आप को भी बहुत सा पहुंच गया होगा। और पश्चात् मसूदे से लिखेंगे। और (जयपत्तनस्य कार्यस्मरणं वर्तते न वास्मिन्कार्यसिद्धिकरणे विलंबो नैव कर्तव्य इति।)और नेत्र अरुग्ण हो गये वा नहीं? क्या श्रीमान् भी चित्तौड़गढ़ में पधारेंगे वा नहीं। और इस पत्र का उत्तर ठिकाना मसूदा जिले अजमेर राजपूताने में भेजियेगा—

मिति आश्विन वदी १० सम्वत् १९४०[५]।

[—————]
जोधपुर राज माराड़

पत्रव्यवहार पृ० १७८ से लिखा गया।

[१] देखो पूर्ण संख्या ७९८ का पत्र।

[२] ता० २६ सितम्बर १८८३।

[३] मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। पं० चमूपति सम्पादित पत्र व्यवहार पृ० ४९ पर छपा है।

[४] देखो पूर्ण संख्या ७९७ का पत्र।

[५] २६ सितम्बर सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ७९९] **पत्रांश (५४०)**

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर[1]]

पहली अकटूबर को जोधपुर से मसूदे जावेंगे।

२७ सितम्बर १८८३[2]। जोधपुर दयानन्द सरस्वती

--:o:--

[पूर्ण संख्या ८००] **पत्र (५४१)**

ओ३म्[3]

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।

(१) यहां ओषधी का एक पत्र जिस में चौंतिस ओषधियां हैं[4], जिस में से कई परीक्षित हैं, सो भेजते हैं। आप सम्भाल लीजिये और जो किसी में शंका रहे तो पूछ लीजिये।

(२) आज सन्ध्या को उसी पूर्वोक्त काम के लिये मुन्शी जी को भेज दीजिए।

(३) एक चमड़े की बेग जो कि उस चोर ने दो ठिकाने से काट दी है, यदि किसी कारीगर से एक दिन में सुधरवा दें तो आप के पास भेज देवें। परन्तु विलम्ब एक दिन के सिवाय न हो तो, अर्थात् शनिवार को अवश्य मिल जाय। यदि ऐसा न हो सके तो आगे बनवा लेंगे।

(४) यहां से पाली तक सवारी का प्रबन्ध जैसा आप ने किया हो वैसा किसी पुरुष द्वारा वा पत्र लेख से मुझ को आज विदित कर दें। सवारी का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जैसे पहिले और तो सब सवारी ठीक थी, परन्तु असबाब की गाड़ी के बैल बिगार के थे, बहुत पीछे रह जाती थी। अब के ऐसा न होना चाहिये, किन्तु सवारी और असबाब की गाड़ी बराबर चलें और बैल अच्छे जुतवाने चाहियें कि सवारी के बराबर चले जायें।

---

[1] देशहि० के रजिस्टर से।

[2] आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सं० १९४०।

[3] मूल पत्र रावराजा जी के पास था। वहीं से इस की प्रतिलिपि प्राप्त हुई।

[4] यह ओषधिपत्र हम अगली पूर्ण संख्या ८०१ पर छाप रहे हैं। इस विषय में पृष्ठ ८०१ की टि० २, ३ भी देखें।

(५) अमरदान जी के मुख से सुना कि महाराजे प्रतापसिंह जी ने अमरदान जी से कहा कि हम बारह घण्टों में पाली को पहुंचा देंगे सो आप पूछ के उत्तर लिखिये कि वह क्या सवारी होगी।

(६) जो मेरे साथ के मनुष्य और पुस्तकादि असबाब जावेंगे, उस के साथ आप सुपरीक्षित दो सवार और एक वा दो मेरे साथ। तथा असबाब के साथ पहरा अच्छा भेजना चाहिये। जैसा कि आप के पूना जाने के पश्चात् मुरदावजी और एक दो अच्छे सिपाही का पहरा यहां बिना आठ दिन की बदली के रक्खा था, उस का प्रतिफल चोरी हुआ, इसलिए पहरा और सवार [ऐसा] भेजना चाहिए, जो की होशियारी से पाली तक अच्छे प्रकार पहुंचाए। यह मैंने आपको स्मरण दिलाने के लिए लिखा है। निश्चय है कि आप स्वयं अच्छा प्रबन्ध करेंगे। इन सब बातों का प्रत्युत्तर आज ही मेरे पास भेज दीजिए॥

(७) और **जो सन्ध्या का अनुवाद अंग्रेजी का गुटका** आप ले गये थे, वह भिजवा ही दीजिए। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

मिति आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सम्वत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

यह ओषधियों का खरड़ा[2] श्रीमान् योधपुराधीश और महाराजे प्रतापसिंह जी को भी दिखला देना।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८०१] [ओषधि-पत्र[3]]

१ सर्पोषधी—जमालगोटे की गिरि को नींबू के रस में एक दिन रात

---

[1] २७ सितम्बर १८८३।

[2] इस पत्र की प्रतिलिपि ठाकुर किशोरसिंह के संग्रह में थी। उसी से पं० चमूपति जी ने पृ० १०३-४ तक यह पत्र छापा है। उस में तेतीस ओषधियों का ही उल्लेख हैं। हस्ताक्षर से नीचे का लेख तथा तिथि उस में नहीं है। परन्तु रावराजा तेजसिंह जी से हमें प्राप्त हुई प्रतिलिपि में ३४ ओषधियों का निर्देश है। ये ३४ ओषधियां हम अगली पूर्ण संख्या ८०१ पर छाप रहे हैं।

[3] इन ३४ ओषधियों के पत्र का उल्लेख पिछले पूर्ण संख्या ८०० के पत्र के

भिगोय, पुनः एक दिन रात सुखावे। इस रीति २१ इक्कीस पुट अर्थात् बयालीस दिन रात में करके रख ले, जब किसी को सांप काटै तब पत्थर पर घिस के जिस जगह काटा हो लगादे, यदि मूर्छित हो गया हो तो सलाई से थोड़ा सा आंख के ऊपर लगादे और त्रिफला के जल को उपस्थित रक्खे, मूर्छा उतर जाने पर त्रिफला के जल से आंखें धोवे वैसे कई दिन धोवै, त्रिफला को रात्रि के समय मट्टी के पात्र में भिगोवे और कण्ठ तक ठण्डा जल पिला कै दो चार बार कय करावै, तो सर्प के विष से बच जाय ।।१।।

२ **द्वितीय ओषधी**–जिस किसी को सांप काटे, उस को तुरन्त ही एक रीठा कुछ पानी में घिस कर पिलाना चाहिये, तुरन्त ही विष जाता रहैगा ।।२।।

३ **तथा तृतीय**–नीवगिलोय को वांट के पीवै, यदि मूर्छा आगइ हो तो जहां तक हो सकै वहां तक पिचकारी से नीबगिलोय को पेट में पहुंचावै, तो वह बच जाय, ।।३।।

४ **ओषध गोहरे के विष की**–दोनामरवा पैसे भर पानी में पीस कर मिला दे, यदि मूर्छित होय गया हो तो पिचकारी से पेट में पहुंचावे, तो अच्छा हो जाय ।।४।।

५ **बाला की ओषधी**–छः मासे आक का दूध और बारह मासे गुड़, दोनों को मिलाकर टिकड़ी कर के एक दो अथवा तीन बार बाले पर लगा दे तो बाला जाय ।।५।।

६ **हड़के कुत्ते की औषधी**–सफेद तिल का तेल और आकरा दूध बराबर मिला के कुत्ता के काटे हुए घाव में लगादे, इस से अच्छा हो जायगा।।६।।

७ **तथा द्वितीय औषधी**—पुराना घृत धतूरे के बीज और आक का दूध अथवा घृत आक का दूध और गुड इनको जल में पीसकर घाव में लगा देने से अच्छा हो जाता है ।।७।।

आदि और अन्त में है। एक ओषधि पत्र का निर्देश पूर्ण संख्या ७४५ (पृ० ७५३) में भी है। उस के विषय में पृष्ठ ७५४ की टिप्पणी संख्या १ भी देखें। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया उपमन्त्री परोपकारिणी सभा द्वारा संवत् १९४२ (सन् १८८५) में मुद्रापित 'आवेदन-पत्र' में श्री स्वामी जी महाराज की संगृहीत पुस्तक सूची की संख्या ८१ पर भी "औषधियों का यादि-पत्र स्वामी जी के लिखे हुये" निर्दिष्ट है सम्भव है। वह इसी की प्रतिलिपि हो।

८ **वीर्य पुष्ट होने का साधन**–सूखे आंवलों को कूट छान उसके बराबर मिश्रि मिला कर गौ के दूध के साथ प्रातः सायं १) तोले भर की फकी लेवे तो प्रमेह आदि के रोग जायं ।।८।।

९ **पेटपीड़ा की औषधी**–सोंठ, सुहागा, हींग इनको बराबर लेकर सहजने की छाल अर्क में घोट कर गोली बांध लेवै, एक गोली गर्म जल के साथ खिला देवै तो पेट पीड़ा जाय ।।९।।

१० **रुधिर शोधक की औषधी**–फिटकड़ी के फूले कर पीस कै उस को १ मासे वा जितनी पचे अथवा जो रुचि होवै तो पाव भर छास। अथवा जितनो छास की रुचि हो उतनी में मिलाय कर पीवै, तो सब प्रकार की रुधिर विकार व्याधी छूट जावै तथा खांसी बवासीर आदि में भी गुण करे ।।१०।।

११ **मुत्रकृच्छ्र और पथरी की औषधी-अपरिक्षितः**—एक लाल मिरच मीठा छास में आठ पहर भिजो कर निकाल लेवे फिर उस छास को फेंक और दूसरी छास में पीस कर जितनी छास पीवै की इच्छा हो उतनी में छान कर पीवै, इसी प्रकार दूसरे दिन दो मिरची और तीसरे दिन तीन, ऐसे ही सात दिन तक चढ़ता उतरता जाय। इस समय खट्टा, गुड़, तेल और नोंन को न खाय तो मुत्रकृच्छ्र और पथरी रोग छुट जाय ।।११।।

२२ **गर्भस्राव की सम्भावित औषधी**–जड़ सहित दूब एक पैसे भर ११ काली मिरचों को पीस छान के ७ सात दिन गर्भाधान के पूर्व और सात दिन गर्भाधान के पश्चात् तथा चौथे महीने में भी ७ दिन पीवै तो गर्भस्रवित न हो ।।१२।।

१३ **काली फुनसी का औषध**–काली फुनसी पर सोने की शलाका का चारों ओर दाह देवै तो वह अच्छा होय ।।१३।।

१४ **गर्भस्थिरौषधी**–शंखावली को दूध में पका के जब दूध ठंडा हो जावै, तब स्त्री पीवे और गर्भस्थापन समय स्त्री को शंखावली पीस के सुंगावै तो गर्भस्थित होवै और बड़ वा पीपल की जटा को पांच दिन तक पीस के पिलावै तो भी गर्भस्थिति हो जाय ।।१४।।

१५ **जो सुजाक से सुजाक हो जाता है उसकी** परिक्षितव्यौषधी—सुदर्शन के पत्तों का अर्क निकाल उस की पिचकारी भर लगावै और पत्तों को पीस कर घाव पर लगा देवे तो सात रोज में व्रण सूख जावे और उसी

के पत्ते को ६ छः मासे मिश्री के साथ जो षा[खा]वै तो इक्कीस दिन के परंत, सुजाक वै फिर कभी नहीं होवै ॥१५॥

१६ **तथा द्वितीय**–नीबु को लेकर दो फांक बना उन में चावल [भर] फिटकड़ी पीस कै भर रात कौ ओस में रख दे और सात दिन तक चूसने में सुजाक जाता रहै ॥१६॥

१७ **प्रमेह का औषध**–बंबूल की फली पत्ती गोंद छाल और गूदा सब चीज बराबर ले पीस कर पूर्व रख ले फिर बराबर की मिश्री के साथ मिला कर तोले १) तोले भर खा ऊपर से ऽ।। आध सेर दूध में ऽ।। आध सेर जल और सक्कर मिला पीवै तो अठारह प्रकार का प्रमेह जाय ॥१७॥

१८ **पुनस्तथा**–गुलखैर के फूल को पीस सहत मिलाय पानी में छान ठंडाई बना ४१ दिन तक पीवै तो वीर्य पुष्ट हो जाय ॥१८॥

१९ **रक्तविकार की औषधी**–दो पैसे भर महंदी और मधु मिला पीस के खावै और यत्न से भोजन ऐसी चीजों [का] न करे कि जिनसे रुधिर न बधे, तथा चने की रोटी अरहर की दाल चावल आदि खावै और ·········–सेवन करे तो रक्त विकार जाय ॥१९॥

२० **उन्माद की औषधी**–दो पैसे भर मुलहटी को सहत में मिला के ७ दिन खाय और दाल चावल कढी आदि खावै तो उन्माद जाता रहै ॥२०॥

२१ **उपदंश की औषधी**–आंवले दूध वा सहत के साथ १) तोले भर खावै तो उपदंश जाय ॥२१॥

२२ **जीर्ण ज्वर की औषधी**–खूबकला १) तोला भर रात को पानी में भिगो दे प्रातः काल मिश्री के साथ सर्वत बना कर पीवै और घी न खाय और घी की जगह बादाम का रोगन खावै तो २१ दिन में जीर्ण ज्वर जाय, परन्तु बासा पानी में न्हाता रहै ॥२२॥

२३ **पुष्टिकार औषध**–ऽ१ सेर भर पियाज के छिलके उतार छोटे छोटे टुकड़े कर कोरे बर्तन में सहत के साथ भिगोदे फिर १५ दिन तक भूमि में गाड़ दे, निकाल कर पश्चात् तोले १) भर नित्य खावै तो पुष्टि प्राप्त हो जाय ॥२३॥

२४ **जमींकन्द के बनाने की रीती**–सेर भर जमींकन्द को शुद्ध करकै ऽ= आध पाव अदरख के साथ उबाल मसाले डाल शाक बना ले ॥२४॥

२५ **पेट की शूल की औषधी**–एक एक तोले १) भर पीयाज का रस अधरख का रस और सहत इन तीनों को मिला कर दिन में तीन समय पीवै तो शूल रोग जाय ॥२५॥

२६ **पसली के दरद की औषध**–पुराना महुवा ऽ। पाव भर ले कूट कपड़े में बांध दो घड़ी के पश्चात् पुनः उसी की रोटी बना के ४ प्रहर बंधा रहने दे तो पसली की पीड़ा जाय ।।२६।।

२७ **[तथा]**–सांभर का सींग घिस कर पसली पर लगा के कंडे से सेक करै तो पसली का दर्द जाता रहै ।।२७।।

२८ **आंखों का सुरमा**–सुरमे की डली को नीव के वृक्ष में २१ दिन तक रख दे, पुनः निकाल भंगरे के रस में छोटी इलाईची डाल खूब पीस के रख ले, उस को नेत्रों में लगाने से वर्षों तक की दूखती आंखें शुद्ध हो जाय ।।२८।।

२९ **दांतों का मंजन**–मौलसिरी की छाल पीसकर प्रातःकाल दंतधावन करै और रोज अपामार्ग का भी दन्तधाव न करे तो दांत न हिलै ।।२९।।

३० **तथा**–मांजूफल मुलेहटी सफेद कत्था[1] रूमोमंस्तगी नीलाथोथा पांचों चीजां बराबर ले और नीलेथोथे को अंगारों पर खील कर लोहे की कड़ाही में थोड़ा सा जल डाल के बुझा लेवें, पुनः पांचों को पीस और इनके बराबर आक की जड़ की छाल लेकर छवों चीज लोहे की कढ़ाई में लोहे के मूसल से पीसे, जब अंजन के बराबर [महीन] हो जाय तब सीसी में ले रखे । जब दातन करै तब अंगुली से मसोढ़ु पर लगा कर थोड़ी देर ठहरैकर पश्चात् कुरला करै, दांत पीड़ा हिलने आदि छूट कर दांत दृढ़ हो जायें ।।३०।।

३१ **श्याम केशकारक तेल**—पलाश के वृक्ष के नीचे जो बीच की जड़ हो उस को मूसला कहते हैं उसके नीचे खांडा खुदवाकर आधीजड काट नीचे खाली जगह में एक वर्तन कली कराया हुआ रख दे ऊपर से ढकना लगा इस प्रमाण छेद बीच में रहने दे कि जिस से मूसल की जड़ ठीक बैठ जाय, पुनः उस के चारों और मट्टी चुन कर और ऊपर से मट्टी डाल फिर वृक्षों के चारों ओर कंडों की आच लगादे । जितना अर्क उस पात्र में निकल आवै, उतना ही सरसों का कडुवा तेल मिला के कढाई में ओटावै जब तेल आधा रह जाय तब कढ़ाई को उतार कर उस में माजूफल एक १ मासे भर, १) तोले भर लोहे का रेतन और १ मासे भर नीलाथोथा, ये सब चीजें पीसकर तेल में

---

[1] इस दन्तमञ्जन का निर्देश पूर्ण संख्या ४४८ के पत्र में पृष्ठ ४९४ पर भी है । वहां 'पपरिया' कत्था लिखा है ।

मिलाय शीसे में भर के रख दे फिर उस को रात के समय वालों के लगा ऊपर से पान लपेट कै सो जावैं तो प्रातः काल तक श्याम केश हो जांय ॥३१॥

३२ **तृतीय[क] ज्वर की औषधी**--६ मासे भर फटकड़ी गर्म जल में जब दो (दूसरी ?) पारी का समय आवै तब पीसकर पी जाय और पारी-तक भोजन न करै तो तृतीय[क] ज्वर जाय ॥३२॥

३३ **दाद की औषधी**--गंधक राई राल कच्चा तेलीया सुहागा ये चारों चीज बराबर लेकर पृथक् पृथक् पोसकर चारों को मिला खरल में प्रहर १२ खरल कर्के जब एकजी हो जांय तब बेर के समान गोली करकै सुखा ले। फिर गोलो को चिकने पत्थर पर पानी में घिस के दाद को खुजला कर लगादे तो दाद बिलकुल जाता रहै ॥३३॥

३४ **बीछू की ओषधि**--जब किसी को बीछू काटै तब लून को पीस १ पात्र में रख दें और दूसरे पात्र में जल रखे। अंगुली के अग्र भाग से जल स्पर्श करके उस से पीसा हुआ लून लगा के जहां बीछू काटा हो उस पर फोरे फोरे हाथ से मले। पुनः इसी प्रकार बार बार करने से थोड़ी ही देर में बीछू झट उतर जाता है। जब डंक पर कुछ जलता रहता है उस पर दो पैसे भर लून को थोड़े से जल में घोल के उस में रूई भिजो के डंक पर बांध देवे तो नीद आ जायेगी[1]। और डंक पर से भी[1]पोड़ा मिट जायेगी ॥३४॥

—:०:—

[पूर्ण[2] संख्या ८०२] पत्र (५४२)

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2]।

एक भूमिका का पृष्ठ[3] और ३२० से लेके ३४४ तक[4] तौरेत और जबूर

---

१. यहां से आगे का लेख श्री स्वामी जी ने स्वहस्त से लिखा है और ३४वीं ओषधि के पाठ को स्वहस्त से शोधा है। यह ओषधि-पत्र म० मामराजजी से प्राप्त हुआ। मूल पत्र उन के संग्रह में सुरक्षित है।

२. आर्यधर्मेन्द्रजीवन से लिया। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

३. अर्थात् तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका का पृष्ठ।

४. यहाँ तक तेरहवां समुल्लास पूरा हो जाता है।

का विषय सत्यार्थप्रकाश क. भेजते हैं। सम्भाल लेना। आश्विन बदी ८ सोमवार सम्वत् १९४० को संस्कार विधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं[1] पहुंचे होंगे और पहुंचने पर रसीद भेज देना। बाकी तुम्हारे पत्रों के उत्तर वा समाचार पश्चात् लिखेंगे।

मिति आश्विन (वदी) १३ शनि सम्वत् १९४०[2]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०३] पारसल-सूचना (५४)

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
सत्यार्थप्रकाश १ पृष्ठ भूमिका, पृष्ठ ३२० से लेके ३४४ तक।
आश्विन वदी १३ शनि सं० १९४० [२९ सितम्बर १८८३][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०४] पत्र (५४३)

ओ३म्

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।[4]

अब तक सवारी का आपने क्या प्रबन्ध किया? इसका हाल अब तक मैंने कुछ भी नहीं पाया। यदि आप से डाक का बन्दोबस्त न हो सके तो चार सवारी और बढ़ा देनी होंगी। २ साढ़ियें[5], एक बढ़ा रथ कि जिसमें मैं अच्छी तरह बैठ के जा सकूं और एक रथ, अथवा हाथी, अथवा जितनी सवारी आती समय थीं उतनी ही होंगी, तब निर्वाह होगा; क्योंकि आज हरद्वार के पास के दो आदमी और आगए हैं। सब की गिनती यह है।

---

[1] देखो पूर्ण संख्या ७९१ का पत्र। [2] २९ सितम्बर १८८३।

[3] इसका निर्देश पूर्ण संख्या ८०२, पृष्ठ ८०६ में है।

[4] मूल पत्र रावराजा तेजसिंह के पास जोधपुर में था।

[5] अर्थात् सांडनियां। सांडनियां एक दिन में विना रुके ६० कोश तक यात्रा करती थीं। शीघ्रगामी तथा सवारी में सुखदायक होने से सवारी के लिये इन्हीं का

अर्थात् सब सवारी इस प्रकार से करेंगे तो अच्छा होगा। तीन रथ, एक सेजगाड़ी १ दो ऊंट २, और एक हाथी १, अथवा ४ चौथा रथ, एक पहरा जिस में छः जवान और सतवां हवलदार और दो सवार। इसी प्रकार का पत्र मैंने आप के पास भेजा था[1]। **और तीन पत्र गत रविवार के दिन जिन को आज सात** दिन हुए **कमरदान के हाथ भेजे थे वे भी पहुंचे होंगे, जिन में से एक** श्रीमान् जोधपुराधीश, दूसरा महाराजे प्रतापसिंह जी और तीसरा आप के पास। यह इसलिए आप को चिताया था कि आप सहज में प्रबन्ध करलें। और जब मुन्शी दामोदरदास आवे तब इन का प्रबन्ध सब करा दीजिये। और कल ४ बजे सन्ध्या के मेरे पास उपरिलिखित सवारी आदि आ जायें कि जिन को मैं देख लूं, पश्चात् विदित किया जाय। क्योंकि परसों यहां से यात्रा अवश्य होगी। और यह पत्र महाराजे प्रतापसिंह जी को भी सुना दीजिए। अलमतिविस्तरेण माननीयवरेषु॥

मिती आश्विन वदी १३ शनी सं० १९४०।[2]

दयानन्द सरस्वती

जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

प्रयोग होता था। अब अन्य शीघ्रगामी यात्रा साधनों के उपलब्ध हो जाने के कारण संप्रति इन का प्रायः अभाव हो गया है।

सांडनियों के लोप होने के साथ ही उनको बनाने की प्रक्रिया भी लुप्त हो रही है। हम (यु० मी०)ने सांडिनी बनाने की प्रक्रिया सन् १९३५ के आरम्भ में भूतपूर्व इन्दौर राज्य (सम्प्रति मध्यप्रदेश) के नन्दवई ग्राम (चित्तौड़ से ३० मील दूर) में स्वयं देखी थी। वह इस प्रकार थी––शीतकाल में नव जवान ऊंटनी को सवा मन घी या तेल पिलाकर हाथ पैर बांधकर मैदान में लिटा देते हैं। ४० दिन तक इसी अवस्था में रखते हैं। खाने पीने को कुछ भी नहीं देते। इस अवस्था में कुछ ऊंटनियां मर जाती हैं, परन्तु जो जीवित रहती हैं उन के रग रग में घी वा तेल पचकर पहुंच जाता है। उससे उनमें अद्भुत शक्ति वा तेजी आ जाती है। यह प्रक्रिया ऊंटनियों पर ही की जाती है। ऊंट पागल हो जाते हैं। अतः उन्हें सांड नहीं बनाया जाता।

[1] देखो पूर्ण संख्या ८०० का पत्र।

[2] २९ सितम्बर १८८३।

[3] २९ सिम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ८०५]　　　पत्रांश (५४४)

पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा............
....

आश्विन वदी १३ को वर्षा बहुत [हुई]। इस कारण अभी ८-७ दिन नहीं आना होगा। और आने के पहले सूचना की जायगी।[1]

[संभवतः ३० सितम्बर=आश्विन वदी १४]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०६]　　　पत्र-सूचना (१०५)

[कमलनयन, मन्त्री आर्यस० अजमेर][2]
रजिस्ट्री चिट्ठी के विषय में।
१ अक्तूबर १८८३ जोधपुर[3]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०७]　　　पत्र-सूचना (१०६)

[मथुरादास, मियांमीर][4]

—:o:—

---

[1] यह अंश पं० छगनलाल के आश्विन सुदी ४, संवत् १९४० अर्थात् ५ अक्तूबर सन् १८८३ के पत्र में निर्दिष्ट है। पं० छगनलाल का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[2] देशहितैषी के रजिष्टर से।

[3] आश्विन वदी ३० सोम सं० १९४०।

[4] इस पत्र की सूचना मथुरादास के विना तिथि के पत्र में है। तिथि का कथंचित् भी ज्ञान न हो सकने के कारण इसे यहां अन्त में जोड़ा है। मथुरादास का पत्र तीसरे भाग के अन्त में देखें।

[पूर्ण संख्या ८०८] मनिआर्डर फार्मांश[1]

[ऋषि दयानन्द सरस्वती के अन्तिम हस्ताक्षर[2]]

Acknowledgment.

NO. 307 Date 9/10/ 1883
For Rs. 13 As. 6
SIGNATURE OF THE दयानन्द सरस्वती
PAYEE
Date of delivery ता० ११ अक्तूबर 188[3]

THIS ACKNOWLEDGMENT WILL BE SIGNED EIGTHER BY THE PAYEE OR F THE
OFFICE OF DELIVERY, AND WILL BE RETURNED TO THE
RECFIPT FOR MONEQ PAID BUT AN OWLEDGMET
ONEY ORDER OBTAINED THE

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-वैदिकधर्मपुनःसंस्थापक-वेदोद्धारक-आर्ष-
ग्रन्थप्रचारक-नवभारतनिर्मातॄणां परमराजनीतिज्ञ-सहिष्णुप्रवर-
श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रशिष्येण
श्रीयोगि-लक्ष्मणानन्दस्वामिनां शिष्येण

---

[1] मनिआर्डर फार्म का यह टुकड़ा महाशय मामराज जी ने रायबहादुर पं० सुन्दरलाल जी (पोस्ट मास्टर जनरल) प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय के पुत्र पं० देवीप्रसाद जी दीक्षित आगरे वालों से ता० २५ अप्रैल सन् १९२७ को बड़े यत्न से प्राप्त किया था। इस टुकड़े का ब्लाक-चित्र पं० घासीराम एम. ए. सम्पादित ऋषि के जीवनचरित में लगवा दिया गया था। इस संग्रह में भी अन्य पत्रों की प्रतिकृतियों के साथ दे रहे हैं।

[2] ऋषि के उपरोक्त हस्ताक्षर जिस मनिआर्डर फार्म के टुकड़े पर हैं वह मनिआर्डर उनके शिष्य स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती ने नगर पानीपत से पुस्तकों के लिए जोधपुर भेजा था। इस का निर्देश स्वामी ईश्वरानन्द के आश्विन वदी १४ [१९४०] रविवार के पत्र में है। स्वा० ईश्वरानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

अमृतसरवास्तव्यश्रीचन्दनलालात्मजेन
इतिहासविदा भगवद्दत्तेन
खतौलीनिवासिस्वीयशिष्य**मामराज**सहायेन संगृह्य
सम्पादितः
[युधिष्ठिरमीमांसकेन परिबृंहितश्च] ५
ऋषिदयानन्दसरस्वतीपत्रविज्ञापनादिसंग्रहः
समाप्तः

❀

प्रथम परिशिष्ट

मूल पत्र-विज्ञापन-संग्रह से संबद्ध

इस परिशिष्ट के पांच भाग हैं। यथा—

१—पूर्व मुद्रित पत्रों के अनन्तर जीवन-चरितों में उपलब्ध पत्र पत्रांश पत्र-सूचना तथा विज्ञापन विज्ञापनांश विज्ञापन-सूचना आदि।

२—पूर्ण संख्या ६६ (पृष्ठ १२४) पर पत्र-सूचना के रूप में निर्दिष्ट पत्र **की प्रति कृति** की उपलब्धि।

३—पूर्व मुद्रित संस्कृत वा मराठी में छपे पत्र-विज्ञापनों का भाषानुवाद तथा पूर्वमुद्रित पत्र वा विज्ञापनों के मूल पाठ वा प्रतिलिप्यन्तर से शुद्ध पाठ का पुनः मुद्रण।

४—भूल से अस्थान में छपे पत्र वा विज्ञापनों का उचित स्थान में निवेश का निर्देश।

५—आर्य सन्मार्ग-संदर्शिनी सभा; कलकत्ता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

—:०:—

१—पूर्व मुद्रित पत्र विज्ञापनों के अनन्तर उपलब्ध पत्र-विज्ञापन

[पूर्ण संख्या ८०६] **पत्र-सूचना (१०७)**

[श्रीमद् गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा]
शङ्कासमाधानार्थ।[1]
आगरा

—:०:—

---

[1] ऋ० द० ने स्वलिखित आत्मचरित में आगरा से शङ्कासमाधानार्थ अनेक पत्र लिखने का उल्लेख किया है (यहां हमने निर्देशार्थ एक पत्र-सूचना छापी है)। द्र० दयानन्द लघुग्रन्थ-संग्रह में मुदित 'आत्मचरित' पृष्ठ ३४ इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ें।

[पूर्ण संख्या ८१०] **पत्र-सूचना (१०८)**

[श्रीमद् गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा]
शङ्कासमाधानार्थ ।[1]
ग्वालियर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८११] **विज्ञापन-सूचना (१)**

शास्त्रार्थ के लिये (ग्वालियर) ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१२] **उत्तर-पत्र-सूचना (१०९)**

[स्वामी गोपालानन्द परमहंस, जयपुर]
प्रश्न का उत्तर ।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१३] **प्रश्न-पत्र-सूचना (११०)**

संस्कृत पाठशाला जयपुर के पण्डितों को प्रश्न लिख कर भेजे ।[4]
[इन में निम्न दो प्रश्न थे—]

---

[1] ऋ० द० ने आत्मचरित में ग्वालियर से अनेक पत्र लिखने का संकेत किया है (यहां एक पत्र-सूचना छापी है) द्र० वही, आत्मचरित पृष्ठ ३४ । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या की ८०९ की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[2] इस का निर्देश पं० लेखराम कृत जीवनचरित, हिन्दी सं० पृष्ठ ५४ पर मिलता है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१० की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[3] इस का निर्देश पं० देवेन्द्र नाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ७८ में मिलता है । इसे भी पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८११ की **विज्ञापन-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[4] इसकी सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५५ में मिलती है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१२ की **उत्तर-पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

१—कल्म च किं भवति ?

२—येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मका भवन्ति किं तत्कर्म ?

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१४] उत्तर-प्रश्न-पत्र-सूचना (१११)

[जती जी, जैन साधु, जयपुर]

जती जी के आठ प्रश्नों का उत्तर तथा जैन मत पर आठ प्रश्न ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१५] तत्त्व-बोध पर्चे की सूचना (११२)

[ठाकुर साहब (रणजीत सिंह) अचरौल (जयपुर)]

तत्त्व-बोध का पर्चा (दो पृष्ठ का) ।[2]

जयपुर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१६] विज्ञापन-सारांश (४६)

जिस किसी को मूर्तिपूजा आदि पर सन्देह हो वह हम से आकर शास्त्रार्थ कर ले ।[3]

[अजमेर]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१७] उत्तर-पत्र-सूचना (११३)

[पं० रामरतन (रामसर) अजमेर]

---

[1] इस की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५७ में मिलती है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१३ की **प्रश्न-पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[2] इस पर्चे की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५८ पर मिलती है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१४ की **उत्तर-प्रश्न-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[3] यह विज्ञापन सारांश पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६४ पर मिलता है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१५ के **तत्त्वबोध का पर्चा** से आगे जोड़ें ।

सम्भवतः दश प्रश्नों के उत्तर[1]

[उनमें से एक प्रश्न का उत्तर—]

यद्यपि संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये, परन्तु जहां अंधकार फैल रहा हो वहां उपदेश के लिये अधिक रहना भी उचित है।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८१८] पत्र--सूचना (११४)

[रामसनेहियों के महन्त, अजमेर]

रामसनेहियों के मत के खण्डन विषयक पत्र[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८१९] भागवत-अशुद्धिपत्र-सूचना (११५)

[पण्डितवर्ग, अजमेर]

तीन चार पत्रों में भागवत की अशुद्धियों का निर्देश।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२०] पत्र-सूचना (११६)

[ठाकुर रणजीतसिंह, अचरौल (जयपुर)][4]

हरिद्वार से।

---

१. इस उत्तर-पत्र की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६६ पर मिलती है। इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१६ के **विज्ञापन-सारांश** के आगे जोड़ें।

२. इस पत्र-सूचना का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ९२ में मिलता है। इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१७ की **उत्तर-पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें।

३. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ९४ में है। इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१८ की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें।

४. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ १०१ में है। इसे पूर्ण

[पूर्ण संख्या ८२१] पत्र-सूचना (११७)

[अङ्गद शास्त्री, पीलभीत]
उत्तर में लम्बा पत्र ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२२] पत्र-सारांश (५४५)

[चिदानन्द साधु, सोरों]
तुम मेरे समीप आओ वा मुझे अपने पास बुलाओ और शास्त्रार्थ कर लो ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२३] पत्र-सूचना (११८)

[अङ्गद शास्त्री पीलीभीत वाले, अम्बागढ़]
पत्र का उत्तर ।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२४] उत्तर-पत्र-सूचना (११९)

[पं० जगन्नाथ बरेली वाले, अम्बागढ़]
प्रश्न के उत्तर में ।[4]

—:०:—

संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८१९ के **भागवत-अशुद्धिपत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[1] इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ११५ में है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८२० की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[2] इस पत्र की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० १२० में है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८२१ की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[3] इस पत्र की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० १२२ में है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़े गये पूर्ण संख्या ८२२ के **पत्र-सारांश** के आगे जोड़ें ।

[4] इस पत्र की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ १२२ में है । इसे पूर्ण संख्या १ से पूर्व जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८२३ की **पत्र-सूचना** के आगे जोड़ें ।

[पूर्ण संख्या ८२५] पत्र-सारांश (५४६)

श्रेष्ठोपमायोग्याय गङ्गादत्तशर्मणे आशीर्वादः ।

यहां (फर्रुखाबाद में) आप पन्नीलाल साहूकार की पाठशाला में पढ़ाने का काय करें ।[१]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२६] मनिआर्डर-सूचना (३)

मार्ग व्यय के लिये १० रुपये भेजे जा रहे हैं ।[२]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२७] पत्रोत्तर-सूचना (१२०)

[समागत पत्रों के उत्तर][३]
अलीगढ़ ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२८] प्रमाण-पत्र-सारांश (८४७)

हमने काशी की 'सत्यशास्त्र पाठशाला' के लिये चन्दा उगाहने का

---

१. इस पत्र की सूचना पूर्ण संख्या २ के पृष्ठ ८ पं० २-३ में तथा पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ २४९ में मिलती है । यह पत्राशय हमने प्रसङ्ग के अनुसार बनाया है । मूल पत्र पूर्ण संख्या २ के समान संस्कृत में रहा होगा । इसे पूर्ण संख्या १ पर छपे विज्ञापन से आगे जोड़ें ।

२ पूर्ण संख्या ८२५ के पत्र के साथ १० रुपये भेजने का उल्लेख पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ २४९ में मिलता है । पूर्ण संख्या २, पृष्ठ ८ की टिप्पणी ३ भी देखें । पूर्व पूर्ण संख्या ८२५ का पत्र और ये १० रुपये किसी व्यक्ति के द्वारा भेजे गये थे अथवा डाक वा मनिआर्डर से यह अज्ञात है । इसे पूर्ण संख्या ८२५ के पत्र-सारांश के आगे जोड़ें ।

३. यह सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २५७ में है । इसे पूर्ण संख्या ४ के विज्ञापन की समाप्ति पर पृष्ठ ३१, पं० १० से आगे जोड़ें ।

कार्य बाबू शिवसहाय को दिया है। उस के लिये यह **प्रमाण-पत्र** दिया जाता है।[1]

दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२६] उत्तर-पत्र-सूचना (१२१)

[नीलकण्ठ शास्त्री, प्रयाग]

अग्निर्वै देवानामवमः[2]—विषयक उत्तर ।[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३०] पत्र-सारांश (५४८)

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य, बम्बई]

मेरी इच्छा बम्बई में व्याख्यान देने की हुई है।[4]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३१] पत्र-सारांश (५४९)

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य तथा धर्मशीभाई, बम्बई]

हम अपनी सुविधानुसार आवेंगे और अपने आने की आप लोगों को सूचना दे देंगे।[5]

---

[1] इस प्रमाणपत्र का निर्देश और प्रयोजन पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ८१४ पर मिलता है। उसी के आधार पर यह प्रमाण पत्र-सारांश हमने बनाया है। इसे पूर्ण संख्या ७, पृष्ठ ३२, पं० ११ के आगे जोड़ें।

[2] ऐ० ब्रा० १।१॥

[3] इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २७८ में है। इसे पूर्ण संख्या ९ के **विज्ञापन-सारांश** के पश्चात् पृष्ठ ३४ पर जोड़ें।

[4] यह अंश पं० दामोदर सुन्दरदास कृत "मुम्बई आर्यसमाज नो इतिहास" की प्रस्तावना के पृष्ठ "छ" पर गुजराती में उद्धृत है। इसे पूर्ण संख्या १२ के पश्चात् जोड़ें।

[5] यह अंश पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित पृष्ठ २८६ पर उद्धृत है। इसे पूर्ण संख्या १२ से आगे जोड़े गये पूर्ण संख्या ८३० के **पत्र-सारांश** से आगे जोड़ें।

[पूर्ण संख्या ८३२] तार (९)

[व्यास जी जयकृष्ण वैद्य धर्मशी भाई, बम्बई]
हम बम्बई आते हैं।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३३] उत्तर पत्र-सूचना (१२२)

[जैन साधु, बम्बई]
एक याजुष मन्त्र पर किये गये कटाक्ष के उत्तर में।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३४] विज्ञापन-सूचना (२)

हम अमुक ग्रन्थ को प्रामाणिक और अमुक ग्रन्थ को अप्रामाणिक मानते हैं।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३५] विज्ञापन-सूचना (३)

पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान विषयक।[4]

—:o:—

---

१. इस तार का उल्लेख पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित पृष्ठ २८६ पर तथा पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ २५८ पर मिलता है। इसे पूर्ण संख्या ८३१ पर जोड़े गये पत्र-सारांश से आगे जोड़ें।

२. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ३२१ पर है। इसे पूर्ण संख्या २२ के आगे पृष्ठ ५७ पर जोड़ें।

३. इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३४८ पर है। जी० च० के अनुसार पूना पहुंचते ही यह विज्ञापन दिया था। इसे पूर्ण संख्या २४ के आगे पृष्ठ ५९ पर जोड़ें।

४. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३७५ पर है। जी० च० के अनुसार अयोध्या पहुंचने पर १८ या १९ अगस्त १८७६ को यह विज्ञापन दिया था। इसे पूर्ण संख्या ३२ के आगे पृष्ठ ६० पर जोड़ें।

[पूर्ण संख्या ८३६] विज्ञापन-अंश (५०)

अपने पण्डितों को एकत्र करके सत्यासत्य के निर्णय करने का यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३७] पत्र-सारांश (५५०)

[मुन्शी प्यारेलाल, चांदपुर]
यदि शास्त्रार्थ कम से कम दो सप्ताह तक हो तो हम आ सकते हैं।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३८] पत्र-सारांश (५५१)

[मुन्शी प्यारेलाल, चांदपुर]

हम १५ मार्च को चांदपुर पहुंच जावेंगे और आप मुरादाबाद से मुंशी इन्द्रमणि को अवश्य बुला लें।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३९] पत्र-सारांश (५५२)

[लेफ्टिनेण्ट गवर्नर, पंजाब, लाहौर]

---

[1] इस का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० में पृष्ठ ३८५ पर मिलता है। यह सम्भवतः जनवरी १८७७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर दिया था। इसे पूर्ण संख्या ३७ के आगे पृष्ठ ७९ पर जोड़ें।

[2] इस पत्र का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३९१ पर मिलता है। यह २८ फर्वरी १८७७ के समीप लिखा होगा। पूर्ण संख्या ४०, ४१ के पत्रों में श्री स्वामी जी ने चांदपुर के मेले में पहुंचने की सूचना दी है। अतः इसे पूर्ण संख्या ३९ के आगे पृष्ठ ८२ पर जोड़ें।

[3] इस का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३९२ में है। इसे पूर्ण संख्या ४० के आगे पृष्ठ ८३ पर जोड़ें।

[मैं आप से मिलने को प्रतीक्षा कर रहा हूं।][1]

१४ (?) मई[2] १८७७

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४०] पत्र-सारांश (५५३)

[जवाहर व प्रभुदयाल खत्री, रावलपिण्डी]

आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं। इस से उत्तर नहीं भेजते। इस से स्वयं रावलपिण्डी में आकर उत्तर देंगे।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४१] पत्र-सारांश (५५४)

[स्वामी सम्पद्गिरि, रावलपिण्डी]

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती (ऋ० १०।७५।५) मन्त्र में गङ्गा यमुना आदि नदियों के नाम नहीं हैं, प्रत्युत शरीर की नाड़ी विशेष के हैं।[4]

—:o:—

---

[1] इस का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४१४ में है। इसे पूर्ण संख्या ४३ के आगे पृष्ठ ८६ के अन्त में जोड़ें।

[2] उक्त जीवन चरित में १४ मई लिखा है वह अशुद्ध है। लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाब के निजी मन्त्री मि० जे० ग्रिफिथ ने १२ मई के पत्र में श्री स्वामी जी को १४ मई को १० बजे मिलने की सूचना दी थी (देखो यही पत्र विज्ञापन संग्रह पृष्ठ ९५ की टि० २)। अतः यह पत्र ८-१० मई के लगभग लिखा गया होगा।

[3] इस का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४४७ पर है। इसे पूर्ण संख्या ६३ के आगे पृष्ठ ११६ के अन्त में जोड़ें।

[4] इस का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४४६ पर है। इसे पूर्ण संख्या ६३ के आगे पृष्ठ ११६ के अन्त में जोड़े गये पूर्ण संख्या ८४० के आगे जोड़ें। इसी पत्र के साथ ऋ० द० ने सम्पद्गिरि को संस्कृत की अशुद्धियां भी लिख कर भेजी थीं।

'इमं मे' मन्त्र में गङ्गादि नाम नाड़ियों के हैं। यह ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य-विषय में भी लिखा है—**इडापिङ्गलासुषुम्णाकूर्मनाड्यादीनां गङ्गादिसंज्ञाऽस्ति।** पृष्ठ ३३८, रा० ला० क० ट्रस्ट संस्क०।

[पूर्ण संख्या ८४२] पत्र-सारांश (५५५)

[·······——·······मुलतान]
अभी कुछ दिन लाहौर ठहरेंगे, तत्पश्चात् आवेंगे।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४३] विज्ञापन-सूचना (४)

पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वानार्थ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४४] शास्त्रार्थ के नियम[3] (१)

[4][११ अगस्त सन् १८७८। कर्नल मानसल साहब बहादुर और कप्तान स्टुअर्ट साहब बहादुर, आफिसर रुड़की छावनी के समक्ष।

मौलवी साहब और स्वामी जी की उपस्थिति में दोनों की इच्छानुसार निम्नलिखित नियम निश्चित हुए। दोनों शास्त्रार्थ करनेवालों और दो योरोपियन सज्जनों के अतिरिक्त लगभग तीस-चालीस मनुष्य उस समय और भी उपस्थित थे।]

१—जिस कोठी में स्वामी जी उतरे हुए हैं वहीं शास्त्रार्थ होगा।[5]

---

[1] यह निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४६७ पर है। इसे पूर्ण संख्या ८६ के आगे पृष्ठ १४० पर जोड़ें।

[2] इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ४६७ में है। इसे पूर्ण संख्या ८७ के आगे पृष्ठ १४१ पर जोड़ें।

[3] पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७६५-७६६ पर मुद्रित हैं। इसे ११ अगस्त के पूर्ण संख्या ११९ के पत्र के आगे पृष्ठ १८८ पर जोड़ें।

[4] यह [ ] कोष्ठक अन्तर्गत पाठ शास्त्रार्थ के नियमों के निर्णय की स्थिति का बोधक और भूमिका रूप होने से हमने यहां छापा है।

[5] इस पर जी० च० में ( ) कोष्ठक के मध्य छपा है—प्रथम मौलवी साहब ने आपत्ति की तब कप्तान साहब ने यह कहा कि यदि इस मकान पर आपत्ति है तो हमारे निजी बंगले पर शास्त्रार्थ हो जाय, परन्तु शर्त यह है कि मनुष्यों की संख्या

२—दोनों पक्षों के मनुष्य चार सौ से अधिक न होंगे ।

३—शास्त्रार्थ में प्रवेश के लिये चतुर और बुद्धिमान् मनुष्यों को टिकट बांट दिये जावेंगे ।

४—शास्त्रार्थ लिखित होगा अर्थात् जो कुछ कोई बोलेगा वह लिखाता जावेगा ताकि अस्वीकार करने की सम्भावना न रहे और प्रकाशित कराने के काम आवे ।

५—६ बजे सायं से ६ बजे रात तक शास्त्रार्थ रहेगा ।

६—दोनों ओर से शास्त्रार्थ में बुद्धिमानों के समान सभ्यतापूर्ण बातचीत करने का ध्यान रहे और कोई किसी के पूर्वजों या नेताओं के विषय में कठोर बचनों का प्रयोग न करे ।

७ शास्त्रार्थ के समय मेरे और आप के अतिरिक्त और कोई सज्जन शास्त्रार्थ के विषय में किसी ओर से बातचीत न कर सकेंगे ।

६—१८ अगस्त को नियत समय से शास्त्रार्थ उपर्युक्त नियमानुसार आरम्भ किया जावेगा ।

[1][ये सारे नियम लेखबद्ध होकर दोनों पक्षों को सुनाये गये और दोनों ने स्वीकार किये और फिर मौलवी साहब और स्वामी जी दोनों साधारण प्रणामादि के पश्चात् एक दूसरे से विदा हुए ।]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४५] पत्र (५५६)

मौलवी अब्दुला साहब सलामत ।[2]

दर जवाब आप के लिखा जाता है। बेहतर है कि आप हस्ब मन्शा अपनी बजरिये मुअज़िज रईसान शहर और सदर के सिलसिल जुम्बानी

---

२४ से अधिक न हो, क्योंकि वहां अधिक स्थान नहीं है। मौलवी साहब ने उस को अस्वीकार करके कोठी (स्वामी जी का निवास स्थान) पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया ।

[1] यह अंश नियमों पर उभयपक्ष की स्वीकृति का बोधक होने से हमने वहां [ ] कोष्ठक में छापा है।

[2] यह पत्र मौलवी अब्दुला के पत्र के उत्तर में लिखा गया था । यह पत्र पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४३६ पर छपा है। इसे पूर्ण संख्या १३४ के आगे पृष्ठ २०६ पर जोड़ें । मौलवी अब्दुल्ला का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

कीजिये । मुझ को कोई उजर नहीं । और जुमला मुआमलात तहरीरी होनी चाहिये न कि तकरीरी । फक्त ।[1]

दयानन्द सरस्वती

ता० ७ सितम्बर १८७८

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४६] शास्त्रार्थ के नियम[2] (२)

१—चूंकि सबसे पहले सभा के प्रबन्धकों का निश्चित किया जाना आवश्यक है इसलिये हमारी दृष्टि में उचित है कि निम्ननिखित सज्जन दोनों पक्षों की ओर से प्रबन्धक नियत किये जायें—

(स्वीकृति के आधीन)

१–पण्डित गंगाराम साहब	१–ला० किशनसहाय साहब, रईस ।
२–ला० रामशरणदास साहब, रईस	२–बख्तावरसिंह साहब, रईस ।
३–राय गणेशोलाल साहब प्रबन्धक छापाखाना 'जल्वये तूर'	३–हकीम बलदेवसिंह साहब
४–बाबू छेदीलाल साहब गुमास्ता कमसिरियट ।	४–ला० अम्बाप्रसाद साहब, वकील ।

---

[1] इस पत्र द्वारा मौलवी साहब के जिस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने दिया है। उसे तृतीय भाग में देखें ।

ऋ० द० के इस पत्र का जो उत्तर मौलवी अब्दुला ने दिया, उसका अभिप्राय पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४३६ पर इस प्रकार दिया है—"शास्त्रार्थ मौखिक उचित है, लिखित नहीं होना चाहिये ।" इसे तीसरे भाग में देखें ।

[2] ये शास्त्रार्थ के नियम पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४४०-४४३ पर छपे हैं । पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० के पृष्ठ ४९८-५०० तक छपे हैं । उनमें कुछ सामान्य सा अन्तर हैं ।

इन नियमों को लिखवाने का निर्देश ऋ० द० के पूर्ण संख्या १३९ के पत्र पृष्ठ २१० पर मिलता है । इसलिये हम इन्हें यहां छाप रहे हैं । प्रतिपक्ष की ओर से इन नियमों के विपरीत नियम पं० लेखरामकृत जी० च० पृष्ठ ४४३-४४५ में देखें ।

५–पण्डित गेंदनलाल साहब, अध्यापक गवर्नमेण्ट स्कूल। ५–ला० तुलसीधर साहब, वकील।

६–पण्डित जगन्नाथ साहब, ६–लाला हुलासराय साहब साहूकार।

२–इन सज्जनों में से कोई एक सज्जन और जहां तक सम्भव हो, श्रीमान् सब जज साहब बहादुर प्रवन्ध समिति के सभापति नियत किये जायें।

३–प्रबन्धकों के अतिरिक्त, सभा में उपस्थित लोगों को संख्या दोनों ओर से पचास-पचास से कम और दो-दो सौ से अधिक न हो तो अच्छा है।

४–सभा में आने वाले लोगों की जितनी संख्या निश्चित की जावे उतने ही टिकट छापकर दोनों पक्षों के प्रबन्धकों को आधे-आधे बांट दिये जावें।

५–दोनों पक्ष अपनी-अपनी ओर के लोगों को नियम में रखें और उनके सब प्रकार से उत्तरदायी हों।

६–दोनों ओर से योग्य पंडितों की संख्या दस-दस से अधिक न हो; कम रखने का अधिकार है।

७–दोनों ओर से केवल एक-एक ही पंडित सभा में बातचीत करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पंडित श्री गोपाल।

८–इस सभा में वेदों के प्रमाण से ही प्रत्येक बात का खंडन और मंडन किया जावेगा।

९–वेद के मन्त्रों के अर्थ के निश्चय के लिये ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनी मुनि जी तक के ग्रन्थों को, जिनको दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं–साक्षी देनी होगी। इन ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है:–

१–ऐतरेय, २–शतपथ, ३–साम, ४–गोपथ, ५–शिक्षा, ६–कल्प, ७–व्याकरण, ८–निरुक्त-निघंटु, ९–छन्द, १०–ज्योतिष, ११–पूर्व मीमांसा, १२–वैशेषिक, १३–न्याय, १४–योग, १५–सांख्य, १६–वेदान्त शास्त्र, १७–आयुर्वेद, १८–धनुर्वेद, १९–गान्धर्ववेद, २०–अर्थवेद आदि।

१०–विदित हो कि (उपर्युक्त) ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अर्थवेद आदि

तक ऋषियों और मुनियों की ही साक्षी और प्रमाण होगा और यदि इन में भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध हो तो दोनों पक्ष उसको स्वीकार न करेंगे ।

११–उभयपक्षों को वेदों और प्रत्यक्ष आदि. प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्यधर्म से युक्त बातचीत करनी और माननी होगी ।

१२–इस सभा में जो व्यक्ति किसी का पक्षपात और रियायत करेगा उसको सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा ।

१३–चूंकि बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन ही है, इसलिये इस सभा में मूर्तिपूजन का खंडन और मंडन होगा और यदि वेदों की रीति से पंडित जी पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का मंडन कर दें तो पंडित जी की अन्य सब बातें भी सत्य समझी जावेंगी और स्वामी जी उसी समय से मूर्तिपूजन का खंडन करना छोड़कर मूर्तिपूजन करने लगेंगे और जो स्वामी जी वेदों के प्रमाण से पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का खंडन कर दें तो स्वामी जी की अन्य बातें भी सत्य समझी जावेंगी और पंडित जी उसी समय से पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन छोड़कर मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ कर देंगे । वैसा ही दोनों पक्षों को स्वीकार भी करना होगा ।

१४–प्रश्न और उत्तर दोनों ओर से लिखित होने चाहियें अर्थात् प्रत्येक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्काल लिख लिया जावे । यही नहीं, जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक-एक शब्द लिखा जावे ।

प्रत्येक प्रश्न के लिए पांच मिनट और १५ मिनट प्रत्येक उत्तर के लिये नियत हों और नियत समय में कमी करने का वक्ता को अधिकार होगा परन्तु अधिक करने के विषय में नियन्त्रण में रहना होगा ।

१५–सभा में स्वामी जी, पंडितजी तथा अन्य सज्जनों की ओर से परस्पर कोई कठोर भाषण न हो प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और कोमलता से सत्यासत्य का निश्चय करें ।

१६–सभा का समय ६ बजे शाम से ९ बजे रात तक रहे तो उत्तम है ।

१७–प्रश्नों और उत्तरों को लिखने के लिये तीन लेखक नियुक्त होने चाहियें और प्रत्येक लेख पर सभा में परस्पर मिलाने के पश्चात् दोनों पक्षों के हस्ताक्षर प्रतिदिन हों और उस लेख की एक एक प्रति प्रत्येक पक्ष को दे दी जावे और एक प्रति बक्स में दोनों पक्षों और सभापति के ताले

में बन्द होकर सभापति के सुपुर्द कर दी जावे ताकि लेख में कुछ न्यूनता अथवा अधिकता न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८–सभा का मकान समस्त प्रबन्धकों की सम्मति से निश्चित होगा।

१९–जम्मू और काशी जी आदि स्थानों की सम्मति पर इस सभा के निर्णय का निश्चय न होना चाहिये क्योंकि उक्त स्थान मूर्तिपूजन के घर हैं और वहां पंडितों से इस विषय में शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसलिये वेद और उपर्युक्त शास्त्र आदि जिनमें प्रत्येक बात को भली प्रकार स्पष्ट किया हुआ है—मध्यस्थ और साक्षी होने को पर्याप्त हैं। यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह हो तो निस्सन्देह उसको यह अधिकार है कि आज १७ तारीख सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों से या और किसी स्थान से जो पंडित उनकी सम्मति में सर्वोत्तम और अच्छे हों—उनसे तार द्वारा आने-जाने के विषय में बातचीत करके निश्चय कर लें अथवा उनके आने का प्रबन्ध कर लें और आज से ६ दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर रविवार तक उनको यहां बुला लेवें। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अवधि में उचित प्रबन्ध न हो तो अथवा इस के विरुद्ध आचरण हो तो उस पक्ष की समस्त बातें कच्ची और निर्मूल समझी जायेंगी और यदि स्वामी जी इस बीच में कहीं चले जावें अथवा इस लेख के अनुसार न चलें तो उनकी बात भी कच्ची और निर्मूल समझी जायेगी।

२०–दोनों पक्षों को वे सब पुस्तकें सभा में साथ लानी चाहियें जिनका वे शास्त्रार्थ के समय प्रमाण दें। विना मूल पुस्तक के कोई मौखिक साक्षी किसी भी पक्ष की स्वीकार न होगी। इति

लिखित १७ सितम्बर सन् १८७८।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४७] पत्र-सारांश (५५६)

[ला० किशनसहाय जी...............]

[1]आप को केवल उन पण्डितों के कहने पर जो वेदों से परिचित नहीं, ऐसा लिखना योग्य नहीं। अब उत्तम यही है कि यदि आप उचित समझें कि

१—यह पत्र-सारांश पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४४५ पर छपा है। लगभग ऐसा ही सारांश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५०१ पर भी छपा है। इस पत्र-सारांश से पूर्व पं० लेखराम ने लिखा है–[ला० किशन सहाय के पत्र के] उत्तर में स्वामी जी ने एक लम्बा चौड़ा पत्र विशेषरूप से अपने निजी हस्ता-

मैं अपने [दो][1] विद्यार्थियों को आप के यहां सभा में भेज दूं और वे आपकी सम्मति से आपके पण्डित लोगों से वेद के विषय में कुछ पूछें जिससे आप को पण्डितों की वास्तविकता विदित हो जायेगी और यदि आप को यह स्वीकार न हो तो आप कृपा करके मेरे निवास स्थान पर या बाबू छेदीलाल के मकान पर पण्डितों सहित पधारें और समस्त सन्देह निवृत्त करलें।[2]

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४८] पत्र--सूचना (१२४)

[ठाकुर रनजीतसिंह, जयपुर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४९] पत्र-सारांश (५५७)

[मुन्शी समर्थदान, अजमेर]

[अजमेर आना स्वीकार है] आप लोग मकान आदि का प्रबन्ध कर रखें। हम दिल्ली के काम से निपट कर आवेंगे और जब तुम मकान आदि की तैयारी कर लो तो हमको कहना (लिखना)। हम चलने से तीन चार दिन पहले एक पत्र लिखेंगे और जब [रेल पर] सवार होंगे तब तार दे देंगे।[4]

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

क्षर से लाला जी के पास भेजा जिस का सार यह था.........—। इसे पूर्ण संख्या १३९ के पत्र के आगे पृष्ठ २११ पर जोड़ें।

[1] यह कोष्ठ गत पद पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० के पाठ में है।

[2] यह पत्र संभवतः १९ सि० १८७८ को भेजा था। इस पत्र के उत्तर में लिखा गया ला० किशनसहाय का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[3] ठाकुर रनजीतसिंह ने सावन १९४५ (?, आश्विन १९३५) को लिखी चिट्ठी के उत्तर का संकेत पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४५० में मिलता है—'तीसरे दिन मैं (जोशी रामस्वरूप) चिट्ठी का उत्तर लाया'। यह उल्लेख १३ अक्तूबर १८७८ के प्रसंग में मिलता है। अतः १५ अक्तूबर १८७८ को पत्र लिखा गया होगा। इसे पूर्ण संख्या १५० के आगे पृष्ठ २१७ पर जोड़ें।

[4] यह सारांश पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४५२-४५३ पर

[पूर्ण संख्या ८५०] विज्ञापन-सूचना (५)

पादरी ग्रे के साथ होने वाले शास्त्रार्थ की सूचना विषयक।[1]
[२८ नवम्बर १८७८ से पूर्व]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५१] पत्र-सूचना (१२५)

[पं० सुखदेवप्रसाद, नसीराबाद]
नसीराबाद आने की स्वीकृति।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५२] पत्र-सूचना (१२६)

[उमरावसिंह, मन्त्री आ० स० रुड़की][3]
[१८ दिसम्बर १८७८ से पूर्व]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५३] तार-सारांश (१०)

[राव युधिष्ठिर-सिंह रिवाड़ी]
हम रिवाड़ी आते हैं। सवारी और निवास स्थान का प्रबन्ध कर दें।[4]
दयानन्द सरस्वती

—:०:—

तथा पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५०५ पर मिलता है। इसे पूर्ण संख्या १५१ के आगे पृष्ठ २१७ पर जोड़ें।

१. इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५०९ में है। इसे पूर्ण संख्या १७७ से आगे पृ०२ ३४ पर जोड़ें।

२. इसकी सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५१५ में है। इसे पूर्ण संख्या १७७ से आगे पृष्ठ २३४ पर जोड़ें।

३. इस की सूचना पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५८१ में है। इसे पूर्ण संख्या १७८ के आगे पृष्ठ २३५ पर जोड़ें।

४. यह तार सारांश पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४६३ पर

[पूर्ण संख्या ८५४] पत्राशय (५५८)

[रिवाड़ी के पण्डितों को]

हमारे निवास स्थान पर ही आकर बातचीत करलों ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५५] पत्र-सूचना (१२७)

[महाराज काश्मीर][2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५६] पत्र-सारांश (५५९)

[कर्नल आल्काट, बम्बई]

आप लोग हरद्वार न आवें । मेले में कष्ट होगा ।[3]

—:०:—

छपा है । यह तार जयपुर से २०-२४ दिसम्बर १८७८ के मध्य कभी दिया गया होगा । इसे पूर्ण संख्या १७८ के आगे पृष्ठ २३५ पर जोड़ें ।

[1] इस की सूचना पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५१८ पर है । इसे पूर्ण संख्या १७९ के आगे पृष्ठ २३५ पर जोड़ें ।

[2] पं० लेखरामकृत जीवन चरित (हिन्दी सं० पृष्ठ ६५४) में लिखा है—महाराजा काश्मीर ने एक पत्र भेजा था जिसमें लिखा था —ईसाई मुसलमान या अन्य जातीय पुरुष आर्य धर्म में आ सकते हैं वा नहीं ? 'इस विषय पर एक पुस्तक बना दें ।' पत्र लाने वाले से कहा 'आप यहां ठहरें, जब जायें तो सूचना देकर जायें । मैं पत्र महाराज के नाम पर दूंगा ।' स्वामी जी महाराज २७ फर्वरी से १४ अप्रैल (१८७९) तक हरिद्वार में रहे थे । यहां यह स्मर्तव्य है कि महाराजा काश्मीर के आदेश से निर्मित 'रणवीरप्रकाश' पुस्तक में विधर्मियों की शुद्धि का सप्रमाण प्रतिपादन किया गया है । इस पत्र सूचना को पूर्ण संख्या १९० के आगे पृष्ठ २०८ पर जोड़ें । महाराजा काश्मीर के पत्र का सारांश तीसरे भाग में देखें ।

[3] यह पत्र सारांश पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८१७ तथा पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५४३ के अनुसार बनाया है । इसे पूर्ण संख्या १९१ के आगे पृष्ठ २४८ पर जोड़ें ।

[पूर्ण संख्या ८५७] तार (११)

[कर्नल आल्काट, बम्बई]

हम तो नहीं आ सकते। यदि तुम हमसे मिलना चाहते हो तो स्वयं आ जाओ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५८] पत्र-सारांश (५६०)

[……… ··आर्य समाज, अमृतसर]

इस का अपराध हमने क्षमा कर दिया। इसे पुनः आर्यसमाज में प्रविष्ट करलो।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५९] तार (१२)

[कर्नल आल्काट, सहारनपुर]

आप लोग पर्वत पर आने का कष्ट न उठावें, हम स्वयं आते हैं[3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८६०] पत्रांश (५६१)

[प्राणजो दास, बम्बई]

श्याम जी को पत्र लिखकर खबर मंगवा लीजिये कि बाबू हरिश्चन्द्र इंगलैण्ड में कौन सी जगह पर है।[4]

---

१. यह तार कर्नल आल्काट के तार के उत्तर में दिया गया था। देखो पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६६२। कर्नल आल्काट का तार तीसरे भाग में देखें। जी० च० के वर्णन के अनुसार यह तार सम्भवतः ५-६ अप्रेल १८७९ को को दिया होगा। इसे पूर्ण संख्या १९९ के आगे पृष्ठ २५२ पर जोड़ें।

२. इसका निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५४३ पर है। इसे पूर्ण संख्या २०० से आगे पृष्ठ २५३ पर जोड़ें।

३. यह तार का आशय पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ८१७ पर छपा है। यह तार २९ या ३० अप्रेल १८७९ को दिया होगा। १ मई को ऋ० द० सहारनपुर पहुंच गये थे। इसे पूर्ण संख्या २०७ के आगे पृष्ठ २६१ पर जोड़ें।

४. इस पत्र का संकेत प्राणजीदास काहनदास के ता० २९ जून सन् १९७९ के

[पूर्ण संख्या ८६१] पत्र-सारांश (५६२)

[केशवलाल निर्भयराम, बम्बई]
संस्कारविधि का रुपया जल्द वापस करेंगे ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६२] पत्र-सारांश (५६३)

[साहू श्याम सुन्दरदास, मुरादाबाद]

[लड़के का] यज्ञोपवीत संस्कार करा कर उस को घर में पढ़ाओ। आज कल गुरुकुल का प्रबन्ध ठीक नहीं है और इसका विवाह मत करना ।[2]

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६३] विज्ञापन[3] (५१)

(१) विदित हो कि पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज

श्यामजी कृष्णवर्मा के नाम लिखे पत्र में है । प्राणजीदास का (प्रतिलिपि किया) पत्र स्वर्गीय श्री० महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल के संग्रह से श्री मामराज जी ने २० फरवरी १९५५ को काशी में प्राप्त किया । अब उनके संग्रह में सुरक्षित है । प्राणजी का यह पत्र मुन्शी समर्थदान ने पूर्ण संख्या २२१ (पृष्ठ २७६) पर छपे अपने पत्र के साथ श्यामजी को इङ्गलेण्ड भेजा था । इसे **पूर्ण संख्या २७८ के आगे** पृष्ठ २७४ के अन्त में जोड़े ।

[1] देखो पूर्व पृष्ठ ८३० की टि० नं० ४ ।

[2] इस पत्र सारांश का निर्देश पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४७२ पर मिलता है । यह चिट्ठी स्वामी जी ने कहां से कब लिखी इसका जीवन चरित से पता नहीं चलता । हमने मुरादाबाद के प्रसंग में जोड़ा है । इसे पूर्ण संख्या २२१ के आगे पृष्ठ २७७ के अन्त में जोड़ें ।

[3] यद्यपि यह विज्ञापन आर्य समाज शाहजहांपुर की ओर से श्री बख्तावरसिंह के हस्ताक्षरों से छपा है तथापि संख्या २ सन्दर्भ (पैराग्राफ) में **'स्वामी जी के संकेत पर'** शब्दों का उल्लेख होने से हम इसे यहां छाप रहे हैं । यह विज्ञापन पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५०३ पर छपा है । इसे पूर्ण संख्या २३१ के आगे पृष्ठ २९० पर जोड़ें ।

इस स्थान पर कल ४ सितम्बर सन् १८७९ को दोपहर के समय पधारे हैं और बंगला खजांची साहब (जो मैजिस्ट्रेट साहब की कोठी के पीछे है)ये उतरे हैं। जिन सज्जनों को दर्शन की अभिलाषा हो और वार्त्तालाप करना चाहें वह उक्त बंगले में पधारें।

(२)—स्वामी जी के संकेत पर मिस्टर विलियम साहब बहादुर-हेडमास्टर की आज्ञानुसार सर्वसाधारण जनता को सूचना के लिए प्रकाशित किया जाता है कि गवर्नमेंट हाईस्कूल अर्थात् सरकारी पाठशाला में जो जेलखाने के समीप है–निम्नलिखित तिथियों में स्वामी जी का व्याख्यान होगा:—शनिवार–६ सितम्बर; रविवार–७ सितम्बर; मंगलवार–९ सितम्बर; बृहस्पतिवार–११ सितम्बर; शनिवार–१३ सितम्बर; और रविवार–१४ सितम्बर; व्याख्यान प्रतिदिन ठीक ५ बजे से ७ बजे सायं तक हुआ करेगा।

(३) व्याख्यान के समय किसी सज्जन को इस बात की आज्ञा न होगी कि वह किसी प्रकार का प्रश्न कर सके या व्याख्यान में हस्ताक्षेप कर सके।

(४) हां, किसी सज्जन को कोई बात पूछनी हो तो बंगले पर जिन में स्वामी जी उतरे हुए हैं–पधार कर पूछ लें।

(५) यदि किसी हिन्दु, मुसलमान, ईसाई या और किसी का विचार शास्त्रार्थ का हो तो उचित है कि कृपा करके अपने वास्तविक अभिप्राय से इस समाज को सूचित करें ताकि उसका पर्याप्त प्रबन्ध कर लिया जावे परन्तु यह ध्यान रहे कि शास्त्रार्थ लिखित होगा; मौखिक कदापि नहीं हो सकता। शास्त्रार्थ के शेष नियम सूचना देने के समय दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित कर लिए जावेंगे।

(६) चूंकि बहुत से लोग स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् इस प्रकार की बातें किया करते हैं कि स्वामी जी चले गये अन्यथा हम शास्त्रार्थ करते। इस लिए ऐसी बातों का ध्यान रखते हुए यह भी प्रकाशित किया जाता है कि जो सज्जन शास्त्रार्थ करना चाहें–आज से लेकर १४ सितम्बर तक अर्थात् इन्हीं दस दिनों के बीच में अपने हस्ताक्षर युक्त लिखित निश्चय से इस समाज को सूचित कर अनुगृहीत करें। आगे इच्छा है। इति।

प्रकाशक—बख्तावरसिंह

[पूर्ण संख्या ८६४] विज्ञापन[1] (५२)

जो आप लोगों को शास्त्रप्रमाण सहित उत्तर अपेक्षित था, तो इतने पंडितों में से कोई एक भी तो कुछ पंडिताई दिखलाता ? आपके तो प्रश्न सबके सब अंडबंड शास्त्रविरुद्ध यहां तक कि भाषारीति से भी शुद्ध नहीं। ऐसों का उत्तर प्रमाण सहित मांगना, मानों गाजरों की तुला देकर तुरन्त विमान की मार्ग परीक्षा करना है। शास्त्रोक्त उत्तर शास्त्रज्ञों को ही मिलते हैं क्योंकि वे ही इन वचनों को समझ सकते हैं। तुम्हारे सामने शास्त्रोक्त वचन लिखना ऐसा है जैसा कि गंवार मनुष्य के आगे रत्नों की थैलियां खोल देना। वास्तव में तुम्हारा एक भी प्रश्न उत्तर देने के योग्य न था तथापि हमने "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय से सबका उत्तर शास्त्रोक्त प्रमाण सहित दिया है। समझा जाये तो समझ लो।

प्रश्नों के उत्तर

पहला प्रश्न—आप्त ग्रन्थों अर्थात् वेदादिक सत्य शास्त्रों के अनुसार

---

[1] यह विज्ञापन 'धर्मसभा फर्रुखाबाद के ६ अक्टूबर १८७९ के विज्ञापन और प्रश्नों के उत्तर में दिया गया था। उस में २५ प्रश्न किये गये थे और उनका उत्तर मांगा गया था। ७ अक्टूबर को ऋषि दयानन्द से उन प्रश्नों के उत्तर लिखवा लिये और ८ ता० को स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् शुद्ध करके १२ अक्टूबर १८७९ को आर्यसमाज में सुनाकर धर्मसभा के पास भेज दिये गये।

यह विज्ञापन और प्रश्नों के उत्तर पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ५२१–५२७ तक, फर्रुखाबाद के इतिहास में पृष्ठ १२६-१३४ तक और पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० में पृष्ठ ५७२-५७८ तक छपे हैं। पं० देवेन्द्र नाथ सं० जी० चरित में फर्रुखाबाद के इतिहास से लेकर छापे गये है पं० लेखरामकृत जीवन चरित में छपे उत्तरों में और फर्रुखाबाद के इतिहास में छपे उत्तरों में कुछ भेद है। विशेष भेद सं० ९ के उत्तर में है। पं० लेखराम संगृहीत उत्तर निश्चय ही प्रामाणिक हैं क्योंकि उनका संग्रह सब से पुराना है। प्रतीत होता है पं० लेखराम जी को कोई पुरानी कापी इन उत्तरों की प्राप्त हुई होगी। फर्रुखाबाद के इतिहास से स्पष्ट है कि उसने जो उत्तर छपवाये हैं वे पीछे से संशोधित किये गये थे। पं० लेखराम के पाठ में कहीं कही कुछ लेखक प्रमाद जन्य साधारण दोष हैं। परन्तु हमारी दृष्टि में पं० लेखराम का पाठ ही प्रामाणिक है। नवें प्रश्न का जो उत्तर फर्रुखाबाद के इतिहास में छपा है वैसा उत्तर ऋषि दयानन्द का नहीं हो सकता। इसे पूर्ण संख्या २३८ के पश्चात् पृष्ठ २९८ पर जोड़ें।

परिव्राजकों अर्थात् संन्यासियों के धर्म क्या हैं। वेदों के अनुसार उनको यानों अर्थात् सवारियों पर चढ़ना और धूम्र अर्थात् हुक्का आदि पीना योग्य है या नहीं ?

उत्तर—वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेद और वेदानुकूल सत्य शास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, शोक, वैर, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थसाधन, निन्दास्तुति, मान, अपमान, क्रोधादि दोषों से रहित हो स्वपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य निश्चय करके सर्वत्र-भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्यग्रहण, असत्य-परित्याग से सब मनुष्यों को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति, आसन के साधन, सत्यविद्या, सनातन धर्म, स्वपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से **वर्तमान (युक्त) करके**, दुष्टाचरणों से पृथक् कर देना—**संन्यासियों का धर्म है**। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होकर विमानों में बैठना और रोगादि निवारणार्थ औषधिवत् धूम्र अर्थात् हुक्का पीकर परोपकार करने में तत्पर, **तिन्हों को कुछ भी दोष नहीं**। यह सब शास्त्रों में विधान है परन्तु तुमको—वर्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विमुखता होने के कारण—भ्रम है; सो इन सत्य ग्रन्थों से विमुखता न चाहिए।

दूसरा प्रश्न—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्त ग्रन्थों में प्रायश्चित्त का क्या फल है ? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है इससे क्या प्रयोजन है ? यदि उससे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो क्षमा न हुई और जब मनुष्य स्वतन्त्र है और आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उसमें परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है ?

उत्तर—हमारा, अपितु हम लोगों का, वेद-प्रतिपादित मत के अतिरिक्त और कोई कपोल-कल्पित मत नहीं है। किये हुए पापों की क्षमा वेदों में कहीं नहीं लिखी; न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने किये पापों की क्षमा सिद्ध कर सकता है। शोक है उन मनुष्यों पर कि जो प्रश्न करना नहीं जानते और करने को उद्यत हो जाते हैं। क्या प्रायश्चित तुम ने सुखभोग का नाम समझा है ? जैसे जेलखाने में चोरी आदि पापों के फल का भोग होता है वैसे ही प्रायश्चित भी समझो। इसमें क्षमा का कोई कथन तक नहीं। क्या प्रायश्चित्त वहां पापों के दुःखरूप फल का भोग है ? कदापि नहीं। परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ़ मनुष्य नास्तिकता से परमात्मा का अपमान और खंडन

करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, रोग और दरिद्रता के होने पर ईश्वर को गाली प्रदान आदि भी करते हैं; तथा परब्रह्म सहन करता और कृपालुता से रहित नहीं होता। यह भी उसके दयालु स्वभाव का फल है। क्या कोई न्यायाधीश कृतपापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला सिद्ध नहीं होगा? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है? हां, जैसे न्यायाधीश विद्या और सुशिक्षा करके पापियों को पाप से पृथक् करके राजदण्ड-प्रतिष्ठित आदि करके उनको पवित्र कर सुखी कर देता है, वैसे परमात्मा को भी जानो।

तीसरा प्रश्न—यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उनसे स्थूल और सान्त संसार कैसे उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर—सूक्ष्मता की जो परम सीमा—अर्थात् जिसके आगे, सूक्ष्म से और अधिक सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती—वह परमाणु कहलाता है। जिसके प्रकृत, अव्याकृत, अव्यक्त कारण आदि नाम भी कहलाते हैं! वह अनादि होने से सत् है। हाय खेद है लोगों की उल्टी समझ पर! कारण के जो गुण उसमें समवाय सम्बन्ध से हैं, वे कारण में नित्य हैं। कारण के जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्य्यावस्था में भी नित्य हैं। क्या जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वह कार्य्यावस्था में भी वर्तमान होकर जब कारणावस्था होती है तब भी कारण के गुण नित्य नहीं होते? और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं या पृथक्-पृथक् होकर कारणरूप होते हैं तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य, नित्य होने से, अनित्य नहीं होता। वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उनमें नित्य है क्योंकि यह गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध से है।

चौथा प्रश्न—मनुष्य और ईश्वर में परस्पर क्या सम्बन्ध है? विद्या-ज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है या नहीं? जीवात्मा और परमात्मा में (परस्पर) क्या सम्बन्ध है और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और जो दोनों चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के आधीन है या नहीं? यदि है तो क्यों है?

उत्तर—मनुष्य और ईश्वर का—राजा-प्रजा, स्वामी-सेवकादि—सम्बन्ध है। अल्पज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता। जीव

और परमात्मा में व्याप्यव्यापकादि सम्बन्ध है । **जीवात्मा परमात्मा के आधीन सदा रहता है परन्तु कर्म करने में नहीं ।** किन्तु पाप कर्मों के फल-भोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के आधीन रहता है तथापि दुःख भोगने में स्वतन्त्र नहीं है । चूंकि परमेश्वर अनन्त-सामर्थ्य युक्त है और जीव अल्प सामर्थ्य वाला है; अतः उसका परमेश्वर के आधीन होना आवश्यक है ।

पांचवां प्रश्न—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं ? और जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में एक या बहुत उत्पन्न हुए ? जब कि उनमें कर्म आदिक की कोई विशेषता नहीं थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों को ही वेदोपदेश क्यों किया ? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है ।

उत्तर—संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं । सृष्टि प्रवाह से अनादि है, सादि नहीं; क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि और सत्य हैं । जो ऐसा नहीं मानते उनसे पूछना चाहिये कि क्या प्रथम ईश्वर निकम्मा था और उसके गुण, कर्म, स्वभाव निकम्मे थे ? जैसे परमेश्वर अनादि है, वैसे ही जगत् का कारण, जीव भी, अनादि है; क्योंकि किसी वस्तु के बिना उससे कुछ कार्य्य होना संभव नहीं । जैसे इस कल्प की सृष्टि के आदि में बहुत से स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे वैसे ही पूर्व कल्प की सृष्टि में भी बहुत से स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे । जीव के कर्म आदि भी अनादि हैं । चार मनुष्यों की आत्मा में वेदोपदेश करने का यह हेतु है कि उनके सदृश या अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं था । इससे परमेश्वर **में पक्षपात कुछ नहीं आ सकता ।**

छठा प्रश्न—आप के मतानुसार न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हैं ? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसको भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान है अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि कोई पुरुष किस समय में कोई कर्म करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्यज्ञान वाला है अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर का ज्ञान है तो कर्म इसके लिये नियत हो चुका; तो फिर जीव स्वतन्त्र कैसे है ?

उत्तर—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि **जिसने जैसा और जितना कर्म किया हो उसको वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है ।** अधिक-न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है ।

हे आर्यों ! क्या ईश्वर के ज्ञान में भूत भविष्यत् काल का सम्बन्ध भी कभी होता है ? क्या ईश्वर का ज्ञान होकर न हो और न होकर होने वाला है ? जैसे ईश्वर को हमारे 'आगामी कर्म्मों के होने का ज्ञान है वैसे मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण-कर्म-साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र हैं परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिये ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र होते हैं जैसा कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे उन पापपुण्यात्मक कर्मों के दुःख-सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्म्मों से उलटा है। जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने कर्म करने में स्वतन्त्र हैं।

सातवां प्रश्न—मोक्ष क्या पदार्थ है ?

उत्तर—सब दुष्ट कर्मों से छुटकर सब शुभ कर्म्म करना **जीवन्मुक्ति** और सब दुःखों से छूट कर आनन्द से परमेश्वर में रहना—यह **मुक्ति** कहलाती है।

आठवां प्रश्न—धन बढ़ाना अथवा शिल्पविद्या व वैद्यकविद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा औषधि निकालना जिससे मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो उसको औषधि आदि से नीरोग करना—धर्म है या अधर्म है ?

उत्तर—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या करने, परोपकार बुद्धि से यन्त्र वा औषधि सिद्ध करने से धर्म; और अन्याय करके करने से अधर्म; होता है। न्याय से आत्मा, मन, इन्द्रिय शरीर को सुख प्राप्त हो तो धर्म और जो अन्याय से (आत्मा आदि को सुख प्राप्त) हो तो अधर्म होता है। जो पापी मनुष्य को अधर्म से छुड़ाने और धर्म में प्रवृत्त करने के लिये औषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म, इससे विपरीत करने से अधर्म होता है।

नवां प्रश्न—तामस भोजन (मांस) खाने से पाप है या नहीं ? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में हिंसा करना यज्ञ आदिकों में क्यों विहित है और भक्षणार्थ हत्या करना क्यों लिखा है ?

उत्तर—मांस खाने में पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रन्थों में कहीं भी यज्ञ आदि के लिये पशुहिंसा करना नहीं लिखा है। गो, अश्व अजमेध के अर्थ वामियों[1] ने बिगाड़ दिये हैं। उनके सच्चे अर्थ, हिंसा करना, कहीं भी नहीं

---

[1] अर्थात् वाममार्गियों ने।

लिखा। हां, जैसे डाकू आदि दुष्ट जीवों को राजा लोग मारते, उनका बन्धन और छेदन करते हैं; वैसे ही हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है। परन्तु मार कर उनको खाना कहीं भी नहीं लिखा । आजकल तो वामियों ने झूठे श्लोक बनाकर गोमांस खाना भी बतलाया है कि जैसे कि मनुस्मृति में इन धूर्तों का मिलाया हुआ लेख है कि गोमांस का पिंड देना चाहिये। क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है ?

दसवां प्रश्न--जीव का क्या लक्षण है ?

उत्तर--न्यायशास्त्र में जीव का लक्षण इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, लिखा है ।

ग्यारहवां प्रश्न--सूक्ष्म यन्त्रों से ज्ञात होता है कि जल में अनन्त जीव हैं; तो फिर जल पीना उचित है या नहीं ?

उत्तर--क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता को प्रसिद्धि अपने वचनों से नहीं करा देते ? न जाने यह भूल संसार में कब तक रहेगी। जब पात्र और पात्रस्थ जल अन्त वाले हों तो उनमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे और छानकर या आंख से देखकर जल पीना सबको उचित है।

बारहवां प्रश्न--मनुष्य के लिये बहुत स्त्री करना कहां निषेध है ! यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में जो यह लिखा हुआ है कि यदि एक पुरुष के बहुत स्त्री हों और उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं--यह क्यों लिखा ?

उत्तर--वेद में मनुष्य के लिये अनेक स्त्रियों के करने का (बहु विवाह का) निषेध लिखा है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अच्छा नहीं होता। जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होकर अपने विषयसुख के लिये बहुत-सी स्त्री कर लेवें तो उनमें (परस्पर) सपत्नीभाव (सौतन के भाव) से विरोध अवश्य होता है। जब किसी एक स्त्री के पुत्र हुआ तो कोई विरोध से विष आदि के प्रयोग से न मार डाले इसलिये यह लिखा है।

तेरहवां प्रश्न—आप ज्योतिष शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं ! और भृगुसंहिता आप्त ग्रन्थ है या नहीं ?

उत्तर—हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं; फलित भाग को नहीं; क्योंकि ज्योतिष के जितने सिद्धान्त-ग्रन्थ हैं—उनमें, फलित का लेश भी नहीं है। भृगुसिद्धान्त—जिसमें केवल गणित विद्या है—उसको हम आप्त-ग्रन्थ मानते हैं; इतर को नहीं। ज्योतिष शास्त्र में भूत, भविष्यत्

काल का सुख-दुःख विदित होना अनाप्तोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थात् अप्रमाणित व्यक्तियों की लिखी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त कहीं नहीं लिखा।

चौहदवां प्रश्न—ज्योतिष शास्त्र में आप किस ग्रन्थ को आप्तग्रन्थ समझते हैं?

उत्तर—ज्योतिष शास्त्र में जो **जो वेदानुकुल ग्रन्थ हैं—उन सबको हम आप्तग्रन्थ जानते हैं**—अन्य को नहीं।

पन्द्रहवां प्रश्न—आप पृथिवी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता-अधिकता मानते हैं या नहीं? यदि मानते हैं तो आगे इनकी वृद्धि थी या अब है या होगी?

उत्तर—हम पृथिवी में सुखादि की वृद्धि आदि की व्यवस्था को सापेक्ष होने से, **अनियत मानते हैं**; मध्यावस्था में समान जानो।

सोलहवां प्रश्न—धर्म का क्या लक्षण है और धर्म सनातन है या परमेश्वरकृत अथवा मनुष्यकृत?

उत्तर—जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो—**वह धर्म का लक्षण कहलाता है**; सो वह सनातन और ईश्वरोक्त और वेदप्रतिपादित है; **मनुष्यकल्पित कोई धर्म नहीं।**

सत्रहवां प्रश्न—यदि कोई मतानुयायी आपके अनुसार मुहम्मदी या ईसाई है और आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो जाये तो क्या आपके मतानुयायी उसको ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उसका पाक किया हुआ (पकाया) भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर—वेदों के अतिरिक्त हमारा कोई कपोलकल्पित मत नहीं है। फिर हमारे मत के अनुसार कोई कैसे चल सकता है? क्या तुमने अन्धेरे में गिरकर खाना-पीना, मलमूत्र करना, जूती-धोती-अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, बैठना, चलना धर्म मान रखा है? हाय खेद है कि इन कुमति पुरुषों पर! कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हुआ है जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं। **सुनो; और आंख खोल कर देखो; कि यह सब अपने-अपने देशव्यवहार हैं।**

अठारहवां प्रश्न—आपके मत से ज्ञान के बिना मुक्ति होती है या नहीं? यदि कोई पुरुष आपके मतानुसार धर्म पर आरूढ़ हो और अज्ञानी अर्थात् ज्ञानहीन हो उसको मुक्ति हो सकती है या नहीं?

उत्तर--परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के विना मुक्ति किसी की न होगी। सुनो भाइयो ! जो धर्म पर आरूढ़ होगा उसको क्या ज्ञान का अभाव कभी हो सकता है ? वा ज्ञान के विना क्या कोई मनुष्य धर्म में दृढ़ आस्था रख सकता है ?

उन्नीसवां प्रश्न--श्राद्ध आदिक अर्थात् पिंडदान आदि--जिसमें पितृ-तृप्ति के अर्थ ब्राह्मण-भोजनादि कराते हैं--शास्त्ररीति है या अशास्त्र-रीति ? यह यदि अशास्त्ररीति है तो पितृकर्म का क्या अर्थ है और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इनका लेख है या नहीं ?

उत्तर--जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा, पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करना **श्राद्ध और तर्पण कहलाता है**। यह तर्पण वेदादि-शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट अर्थात् स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना श्राद्ध और तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं किन्तु पापों का अनर्थकारक आडम्बर है। जो-जो मनु आदिक ग्रन्थों में लेख है सो वेदानुकूल होने से माननीय है; अन्य कोई नहीं।

बीसवां प्रश्न--कोई मनुष्य यह समझ कर कि मैं पापों से मुक्त नहीं हो सकता--आत्मघात करे तो उसको कोई पाप है या नहीं ?

उत्तर--आत्मघात करने से पाप ही होता है; और भोगे विना पापाचरण के फल के पापों से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता।

इक्कीसवां प्रश्न--जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात ? कर्म्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्ष आदि योनियों में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर--ईश्वर के ज्ञान में जीव **संख्यात** और जीव के अल्पज्ञान में **असंख्यात** हैं। पाप अधिक करने से जीव, पशु, वृक्ष आदि योनियों में उत्पन्न होता है।

बाईसवां प्रश्न--विवाह करना अनुचित है या नहीं ? और सन्तान करने से किसी पुरुष पर पाप होता है या नहीं ? और होता है तो क्या ?

उत्तर--जो पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को **विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सबको उचित है।** वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचार से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है, क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए विना कभी नहीं रह सकता है।

तेईसवां प्रश्न—अपने सगोत्र में (विवाह) सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं, यदि है तो क्यों है ? सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था या नहीं ?

उत्तर—अपने सगोत्र में विवाह करने से दोष यों है कि इससे शरीर आत्मा, प्रेम, बल आदि की उन्नति यथावत् नहीं होती; इसीलिये **भिन्न-भिन्न गोत्रों में ही विवाह-सम्बन्ध करना उचित है।** सृष्टि के आदि में गोत्र ही नहीं थे फिर वृथा क्यों परिश्रम किया। हां, पोपलोला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप को एक ही सब सन्तान मानने से पशुव्यवहार सिद्ध होता है। इसको जो माने मानता रहे।

चौबीसवां प्रश्न—गायत्री-जाप से कोई फल है या नहीं, और है तो क्यों है ?

उत्तर—गायत्री जाप यदि वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है क्योंकि इसमें गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है। पोपलीला के जप [से] अनर्थरूप फल होने की तो कथा हो क्या है ? **कोई अच्छा व बुरा किया हुआ कर्म्म निष्फल नहीं होता है।**

पच्चीसवां प्रश्न—धर्म-अधर्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाये तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुण्य ?

उत्तर—मनुष्यों के **धर्म** और **अधर्म** भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं कि जिनका नाम **कर्म** और **कुकर्म** भी है। जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और फिर उपकार करते हुए जिसका शरीर वियुक्त हो हो जाये, तो उसको पाप नहीं पुण्य ही होगा।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६५] **पारसल-सूचना (५५)**

[बाबू माधोलाल जी, दानापुर]
विज्ञापनपत्र।[1]

---

[1] विज्ञापन पत्र भेजने की सूचना विना तारीख के पूर्ण संख्या २५३ के पत्र में है। यह पत्र ३ दिसम्बर १८७९ का है। द्र० पृष्ठ ३१०, टि० २। इसे पूर्ण संख्या २५३ के आगे जोड़ें।

[पूर्ण संख्या ८६६] विज्ञापन[1] (५३)

वेद विद्या के पूर्ण विद्वान् पण्डित दयानन्द सरस्वती बंगाली टोले के प्रिपेरेटरी स्कूल में २० दिसम्बर १८७९ शनिवार तदनुसार अगहन सुदी ७ संवत १९३६ को व्याख्यान करेंगे। आशा है कि सब सज्जन आन कर लाभ उठावें।[2]

भीमसेन शर्मा

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८६७] गश्ती पत्र-सारांश (५६४)

लाहौर अमृतसर आदि सब समाजों को[3]

मुंशी [इन्द्रमणि] जी पर जो अपराध भारतीय दण्ड विधान धारा १९४ के आधीन मिस्टर मूल साहब बहादुर मैजिस्ट्रेट मुरादाबाद के न्यायालय में कायम किया गया है उसका उत्तर देने और सफाई पेश करने के लिये मुंशी जी को उनकी निर्दोषता का विचार करते हुए सहायता के रूप में रुपया देना कर्त्तव्य है।

[८ अगस्त १८८०]

—:०:—

---

[1] पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ १८२ पर मुद्रित।

[2] यह विज्ञापन अगहन सुदी ७ सं० १९३६ (२० दि० सन् १८७९) से दो तीन दिन पूर्व दिया गया होगा। इसे पूर्ण संख्या २५५ के आगे जोड़ें।

[3] यह पत्र का सारांश पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८४२ पर निर्दिष्ट है। वहां लिखा है—'८ अगस्त १८८० को जब कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के आर्यसमाज मेरठ के गश्ती (घूमने वाले) पत्र नं० ७९ द्वारा लाहौर अमृतसर आदि की आर्य समाजों को प्रेरणा दी गई थीं.........।

मुंशी इन्द्रमणि इस समय आर्य समाज मुरादाबाद के प्रधान थे। उन्होंने मेरठ में स्वामी जी की सेवा में आकर उपर्युक्त सहायता की अत्यन्त नम्रता पूर्ण शब्दों में प्रार्थना की थी कि 'यह झगड़ा समस्त वैदिक धर्म वालों का है मुझ अकेले का नहीं।' वही जी० च० पृष्ठ ८४२-८४३। इसे पूर्ण संख्या ३२४ की पत्र-सूचना के आगे पृष्ठ ३७८ पर जोड़ें।

[पूर्ण संख्या ८६८] यजुर्वेदभाष्य सम्बन्धी टिप्पणी

सर्वत्र त्वष्टा ही है। इसको मन्त्र और पद में त्वष्ट्रा को शोध कर त्वष्टा बना ही दिया। **जिसको हम [ठीक] करते हैं वह तो ठीक होता है, जो दूसरों से कराते हैं वही गड़बड़ होता है।** हमने मन्त्र और पद शोधवाया था सो शुद्ध है, बाकी पण्डितों से शोधवाया था वही अशुद्ध रहा।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८६९] जैन मत के सम्बन्ध में प्रश्न और समीक्षा[2]

१–मुख पर कपड़ा बांधने के विषय में

जैन मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढिये, जो मुख पर पट्टी बांधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की रीति से सिद्ध नहीं है। इससे जो तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं तो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव अजर–अमर हैं और तुम भी ऐसा ही मानते होगे। जो तुम कहो कि जीव तो नहीं मरता परन्तु उसको पीड़ा अर्थात् दुःख देवे तो हम पाप के भागी होते हैं; **तो भी सर्वथा** ठीक नहीं क्योंकि ऐसा किए बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। इसमें जो तुम

---

[1] यह टिप्पणी ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेदभाष्य के आठवें अध्याय के १४ वें मन्त्र की प्रेस कापी पृष्ठ १०२ के किनारे (हाशिये) पर अपने हाथ से लिखी है। इस टिप्पणी के लिखने पर भी वेदभाष्य के संस्कृत-पदार्थ में 'त्वष्टा' के स्थान में 'त्वष्ट्रा' तृतीयान्त समझ कर 'तनूकर्त्रा' और भाषार्थ में (त्वष्ट्रा) छपता रहा। द्र० वैदिक यन्त्रालय मुद्रित संस्करण १-२-३। उक्त (यजु० ८।१४) मन्त्र का भाष्य यजुर्वेदभाष्य के २६-२७ सम्मिलित अंक में छपा है। इस पर सं० १९३८ आषाढ़ शुक्ल ५ (=१ जुलाई १८८१) तिथि अंकित है। अतः यह अंक जून १८८१ में छपा होगा। इसे पूर्ण संख्या ४५९ के आगे पृष्ठ ५०४ पर जोड़ें।

[2] ये प्रश्न और उत्तर आदि पं० लेखराम जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ७३१-७३२ तक छपे हैं। पं० लेखराम कृत जीवन चरित के अनुसार ऋ० द० ने ये प्रश्न और उन की समीक्षा १३ जुलाई १८८१ को पं० छगनलाल आदि के हाथ सिद्धकरण साधु के पास भेजे गये। द्र० हिन्दी सं० पृष्ठ ७३० की अन्तिम पंक्तियां। इसे पूर्ण संख्या ४६० के अन्त में पृष्ठ ५०५ पर जोड़ें।

कहते हो कि जहां तक बन सके वहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये; कारण, सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुःख और बांधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है; तो यह कहना आप लोगों का अयुक्त है; क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को बहुत दुःख पहुँचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बांधने से गर्मी रहने से उष्णता अधिक होती है जैसे किसी मकान का द्वार बन्द हो और पर्दा डाला जाय तो उस में गर्मी अधिक होती है और खुला रखने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है इसलिये जो कोई मुख पर कपड़ा बांधते हैं वह जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बांधते वह उन बांधने वालों से अच्छे हैं। किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बांधते हो मुखद्वारा वायु रुक कर नाक के छिद्र से वेग से बाहर निकलती है वह, जीवों के लिये अधिक दुःखदायी होती है। जैसे मुख से कोई अग्नि फूंके और कोई नल से तो नल से वायु चारों ओर से रुक अधिक बलवान् हो अग्नि सी लगती है। इसी प्रकार नाक की वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाती है, इससे तुम हिंसक हो। जो तुम कहो कि हम नाक और मुख पर एक कपड़ा बांधेंगे तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका की गर्मी बढ़कर दुगनी हिंसा होगी। इससे मुख और नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे कपड़ा बांधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक कर देना दोष है। दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्ध युक्त ही है। जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है जैसा कि बन्द जाजरूर (शौचालय)। इस प्रकार मुखादि प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है जैसा कि मेले आदि में। और न्यून दुर्गन्ध विशेष रोग नहीं करता; यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादि कम करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो, जिससे रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान के बाधक होते हो। जैसे जाजरूर (शौचालय) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है वैसे आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी! जब दुर्गन्धयुक्त पुरुषों की बुद्धि अति मन्द होती है तो उसके संगियों को क्यों न होती होगी!

२. उष्ण जल पीने के विषय में—

जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और उष्ण में नहीं—यह भी तुमको अत्यन्त भ्रम हुआ है क्योंकि ठंडे के जीव उष्ण जल करने में अधिक दुःख पाते हैं और उनके शरीर जीवित जल में घुल जाते हैं जैसे सौंप का अर्क। सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो मांस का जल पीते हैं और जो ठंडा जल पान करते हैं वह (इन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दुःख देते हैं। दूसरे वह जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राणवायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं। इससे ठंडा जल पीने वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दुःख देने वाले ठहरते हैं। जो तुम कहो कि न तो हम जल गर्म करते हैं और न हम किसी को अपने लिये जल को उष्ण करने का निर्देश देते हैं, तो भी तुम अपराध से नहीं छूट सकते क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न उष्ण करने का निर्देश देते तो वे अधिक जल क्यों गर्म करते। जो ऐसा कहो कि पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं। यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है। [१]परन्तु बहुतों को चोर बना देते हैं। इसलिये तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने में अग्नि वैसी शिक्षा देने वाले जलाने और उस जल से भाप ऊपर उड़ाने से भी जीवों को दुःख पहुंचता है। इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ।

३. पैसा भर कुण्ड के जल में अनन्त जीव मानने के विषय में—

तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें अयुक्त हैं जैसे एक छोटे से अर्थात् पैसा भर के कुंड में अनन्त जीवों का रहना। इस पर यदि कोई तुमसे प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं उसका अन्त है—तो फिर उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं? फिर तुमसे उसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के अतिरिक्त और कुछ न बन पड़ेगा।

यह थोड़ा-सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत के सिद्धांतों में दोष दिखलाया है। जो तुम सन्मुख बैठ कर चर्चा करो तो तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भांति विदित हो जायें परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सन्मुख तुम्हारे मत के खण्डन-विषय में चर्चा करना चाहे तो भी तुम कभी न चाहोगे क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता तो दूसरे मत वालों से संवाद करने में कभी न डरते। इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तक को बहुत गुप्त रखते और अपने मतवालों

---

[१] यहां से आगे जी० च० में पाठ अशुद्ध छपा है।

के अतिरिक्त दूसरों को देखने के लिये नहीं देते। तुम्हारी ये बातें ही तुम्हारी सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को झूठी कर देती हैं। जिसका चांदी का रुपया है वह सर्राफ और **सुनार आदि** को दिखाने में क्यों डरेगा! हमारा वेदमत सच्चा है इससे हमको किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता। जैसे तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुंह पर कपड़ा बांधे बिना तुमसे हम बात नहीं करते। यह तुम्हारा केवल छल है क्योंकि "नाच न आवे आंगन टेढ़ा।" (हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७०] सिद्धकरण साधु के उत्तर तथा समीक्षा[1]

[2][सिद्धकरण साधु जी ने तीसरे दिन अर्थात् १५ जुलाई सन् १८८१ को सुजानमल कोठारी के हाथ स्वामी जी के प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर भेजे—

प्रश्नः—मुह बांधने में क्या धर्म है? हमको तो पाप प्रतीत होता है इत्यादि।

उत्तरः—जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है—उस मकान के द्वार में होकर वायु भीतर जाती है तो वायु के जीव सब मर जाते हैं। जब बारड़ा(द्वार)बन्द किया जावे तो उस की ओट से वायु के सब जीव बच सकते हैं और बाहर भी उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठण्डा होकर जाता है जैसा कि उष्ण जल की भाप। बाहर एक गर्म की हुई चीज की भाप के निकलते समय कपड़े की ओट दो तो फिर ओट से बच कर भाप बाहर जावेगी, वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी वा आड़ा हाथ देकर देखो तो पहले जो हाथ देगा उसका जलेगा। वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी ओर जो आजूबाजू हाथ रहेगा कभी वैसा नहीं जल सकता। वह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है और जीव अजर अमर है परन्तु वायु के जीव का शरीर है। विना शरीर के जीव

---

१. सिद्धकरण साधु का उत्तर, और उसकी समीक्षा पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ७३३–७३६ तक छपी है। यह साधु जी के उत्तर की समीक्षा ऋ० द० ने १६ जुलाई १८८१ को पं० वृद्धिचन्द आदि के हाथ साधु जी के पास भेजी थी। द्र० वही जीवन चरित, पृष्ठ ७३६। अतः इसे पूर्ण संख्या ४६० से आगे जोड़ी गई पूर्ण संख्या ८६९ से आगे जोड़ें। जी० च० में पाठ अशुद्ध छपा है, उसे कहीं कहीं शोधा है।

२. यद्यपि सिद्धकरण साधु का उत्तर तीसरे भाग में छापना चाहिये था, परन्तु इसके निर्देश के विना ऋ० द० की समीक्षा स्पष्ट नहीं होती थी। अतः हम इसे यहां भिन्न टाइप में छाप रहे हैं।

नहीं रह सकता । दूसरे-खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है कि उसको सब कोई समझ सकता है क्योंकि जो कोई बड़े मनुष्य के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा रहता है क्योंकि जिससे थूक न उछले वा अपनी दुर्गन्धता का श्वास उनके पास न पहुंचे तो आपड़ों से (आप सरीखे) बुद्धिमान् होकर यह क्या प्रश्न पूछा। आपको भी यह तो विचार चाहिए कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह वांचना क्या पुस्तक के थूकारा वा दुर्गन्ध-श्वासा नहीं पहुंचती होगी ? इसलिए अवश्य आपको उघाड़े (खुले मुख) रहना उचित नहीं और हम तो साधु हैं, हम निरर्थक जोड़ नहीं करते क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है, धर्म के अतिरिक्त साधु को कुछ प्रयोजन नहीं । कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने । जाने-आने का कुछ प्रयोजन नहीं । हां, यह पक्की देखी कि कुछ धर्म की बात मानेंगे तो जा भी सकते हैं । (हस्ताक्षर) सिद्धकरण ।]

उत्तर की समीक्षा—जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है इत्यादि। यह तुम्हारा मुख की पट्टी बांधने का उत्तर अविद्यारूप है क्योंकि बांहर का वायु ही सब पदार्थों का जीवन-हेतु है। विना इसके संयोग के कोई भी प्राणी नहीं बच सकता और उसके सम्बन्ध के विना अग्नि भी नहीं जल सकती । जैसे किसी प्राणी वा जलती अग्नि को बाहर की वायु से वियुक्त करें तो वह उसी समय मर जाता है और दीपकादि अग्नि भी बुझ जाता है क्योंकि इसके जलाने आदि का कारण बाहर का वायु है। न मानो तो बन्द कर देख लो। इसलिये यह तुम्हारा अविद्यारूपी उत्तर सिद्ध होता है। यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता। देखो जो मकान के द्वार और छिद्र बिल्कुल बन्द किये जायें तो अग्नि कभी न जलेगी और एक ओर से ओट किया जाये तो दूसरी ओर से जहां मार्ग पाता है वहां से अतिवेग से चलकर वही वायु के जीवों से उसका सम्बन्ध होता है । और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता किन्तु वह एक ओर से रुक कर दूसरी ओर से गर्म हो जाता है ज्वाला की जितनी गर्मी है। जब तक बाहर की वायु से सम्बन्ध और संघात छूट एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् हो कर न जल जाये तब तक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है और सर्वत्र वायु में विद्युत् रूप अग्नि भी (कि जहां वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते ? जब एक ओर कपड़े आदि से आड़ा किया जाये तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा हो फैलने और

टकराने से शीघ्र ठंडा नहीं होता किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है जैसे कि मैदान की अग्नि । जब अग्नि की ओर आड़ा हाथ दिया जाये तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी । आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती, इससे यह अविद्वानों की बात है । देखो जो सूर्य्य की ओर हाथ करें तो क्या सूर्य्य की गर्मी घट जाती है और क्या जिस बर्तन में जल गरम किया जाता है उसका मुख खुला रखने से अधिक गरम और आधा वा तीन भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर की वायु में नहीं फैलती और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाये तो क्या बर्तन टूट फूट और उड़ न जायेगा ? क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की तो उसकी ओर गर्मी कम होने से दूसरी ओर अधिक गर्मी नहीं होती । क्या हाथ के आड़े किये हाथ से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी के हाथ और कोई वस्तु हो तो वह अधिक तप्त नहीं होती और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि को रोका जावे तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों न चढ़ेगा और भाप के दूसरी ओर हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा और हाथ की आड़ में गर्मी इसलिये अधिक नहीं लगती कि वह अगली बगल होकर ऊपर उड़ जाती है । देखो ! तुम्हारी यहां अत्यन्त भूल है क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु में मर जाते तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जबकि वायु अत्यन्त तप्त हो लू चलता है तब क्या सब जीव मर जाते हैं और गर्म वायु के जीव जबकि पौष मास में अतिशीत पड़ता है तब क्या मर जाते हैं ? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है; क्योंकि जो ऐसा होता तो परमेश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्य्यादि को क्यों रचता ? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो तो वेदादि सत्यशास्त्र पढ़ो और सुनो जिससे यथार्थ ज्ञान पाके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको । जो ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे तो यह उत्तम मनुष्यजन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे ।

अजर-अमर मरणशील कैसे हो सकता है ?—यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जीवों को अजर-अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो । जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो तो प्रतीत होता है कि

आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े मनुष्यादि से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो। जो ऐसा है तो फिर वैसा क्यों नहीं करते। छोटे मनुष्य के सन्मुख हर समय मुख बांधे रहते हो। क्या बड़े मनुष्य का थूक छोटे मनुष्य के साथ लग जाना अच्छा समझते हो? क्या बड़े के मुख में कस्तूरी घुली होती है, छोटे के नहीं? यदि बड़े छोटों का विचार है तो अपने चेलों के सन्मुख क्यों बांधे रहते हो? क्योंकि जब किसी बड़े मनुष्य से बोला करो तब बांध लिया करो। देखो इस बात को तुम नहीं जानते। बड़े मनुष्यों से बात करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है, यदि मुख खुला रखा जावे अर्थात् कपड़ा न लगावें तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे हों अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाये जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक नहीं सुना जाता। देखो! कैसे अन्धेर की बात है, क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है? नहीं, किन्तु सुगन्ध-दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन नहीं समझा हैं जैसे गान विद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता क्योंकि जो-जो विद्या की बातें हैं उनको विद्वान् ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। हम **शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को वेद समझते हैं; कागज स्याही को नहीं।** और कागज स्याही को, जड़ होने से, सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज वा लेखादि हैं, उनको बनाने वालों ने, मुख बांधकर बनाया और लिखा होगा? हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्धोच्चारण होना है। इसका उत्तर हमने पहले ही लिख दिया था कि मुख बांध कर अननुनासिक को सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं परन्तु इसके समझने को तो विद्या चाहिये।

और जो आप साधु बनते हो तो बताओ साधु के क्या लक्षण हैं? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी। जो स्वार्थ की इच्छा नहीं है तो "निरर्थक हम नहीं बोलते" ऐसा क्यों कहते हो? और जो स्वार्थी हो तो

साधु क्यों बनते हो ? जो आपको पक्षपात नहीं होता तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा यह आग्रह क्यों करते कि बिना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते ? यदि ऐसा नियम था तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यों बोले थे कि आपका क्या नाम है ? इत्यादि खुले मुख बोले थे। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन के समय (स्वप्रयोजन के लिये) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन, छादन, मलविसर्गादि कर्म मौन के अतिरिक्त नहीं समझते होगे। यह बात मिथ्या है क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुए और जो तुम कहीं आते-जाते नहीं तो यहां कहां से आ गये ? क्या एक ही स्थान पर शिला के समान स्थिर रहते हो ? भला जिसका रुपया चांदी का है उसको उसके कच्चेपन की क्या आशंका हो सकती है ? क्या सबके सामने दिखलाने से वह रुपया ताम्र का भी हो जाता है ? क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें बिना समझे-बूझे मान लेवें ? हां ठीक है तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो जो प्रसन्नता से "सत्यार्थ" और "प्रमाण" शब्दों को सुनते ही हल्ला करके तुमको संतुष्ट किया करें, तुम चाहे सत्य कहो वा असत्य; मान ही लें; जैसे दिल्लो को मिठाई। न पूछें, न शंका करें, न झूठ का खंडन करें। ठीक समझ लिया जैसे तुम वैसे तुम्हारे सिद्धान्त हैं—मानो बालकों का खेल ! जो मुख की पट्टी का उत्तर तुम नहीं दे सकते तो छोटे से कुण्ड में अनन्त जीवों के होने आदि का तो उत्तर देना। तुमने तो क्या, किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी विद्या की इन बातों को नहीं समझा था। जो समझते होते तो ऐसी असंभव बातें क्यों लिख जाते ? सत्य है जबसे तुम लोगों ने वेदविरोधी होकर वेदोक्त सत्यमत को छोड़ के कपोल-कल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है तब ही से तुम लोग विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अंधकार में प्रविष्ट हो गये हो। इसी से ईश्वर, जीव और पृथिवी आदि तत्त्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो।

आओ ! अब भी क्यों झूठा पक्षपात करते हो ? वेदोक्त सत्य मत का स्वीकार क्यों नहीं करते और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्याविरुद्ध कपोलकल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते और अन्यथा आग्रह करते जाते हो। सत्य है जो तुम लोगों के आत्माओं में वेद विद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों के लिखने में लेखनी कभी न उठाते और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते तो चर्चा करने में झूठे हीले-बहाने क्यों पकड़ते और ऐसे अशुद्ध लेख का व्यर्थ परिश्रम क्यों करते ? यदि अब भी

सच्चे हो तो सन्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते क्योंकि जो वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है वही मानने योग्य है । जिस किसी ने मत-मतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्ष पूर्वक वादानुवाद नहीं किया वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता । इसीलिये तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्या करो; नाच न आवे आंगन टेढ़ा !

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७१] तार (१३)

[महाराजा तुकोजीराव होल्कर, इन्दौर]

अब तो हमारा आना यहां से लौटते समय होगा ।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७२] विज्ञापन-सारांश

हम प्रातः काल ८ बजे से सायंकाल के ५ बजे तक किसी से नहीं मिलेंगे । ५ बजे से रात्रि पर्यन्त मिल सकेंगे ।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७३] पत्र (५६५)

....[3]

[3]हम को आये कई दिन हो गये और जिस दिन हम बम्बई में उतरे थे,

---

[1] यह तार महाराज तुकोजीराव होल्कर के 'अब मैं राजधानी में आ गया हूं । कृपा करके शीघ्र दर्शन दीजिये' तार के उत्तर में बम्बई से दिया गया था । यह लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ५६५ पर निर्दिष्ट है । यह तार इन्दौर से बम्बई पहुंचने के कुछ समय पश्चात् ही दिया गया होगा । अतः इसे पूर्ण संख्या ४८३ के पश्चात् पृष्ठ ५२७ पर जोड़ें ।

[2] यह विज्ञापन पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ६६० पर उद्धृत है । बम्बई पहुंचने के कितने दिन पीछे यह विज्ञापन दिया गया, यह अज्ञात है । अतः हम इसे स्थूलरूप से पूर्ण संख्या ४८५ के अन्त में पृष्ठ ५६० पर जोड़ रहे हैं ।

[3] यह पं० लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८७७ पर छपा है । यह

स्टेशन पर मिलने के लिये कर्नल अलकाट और ब्लेवेत्स्की भी आये थे। और उसी समय हमने उन से कहा था कि ईश्वर के विषय में जो विचार है उसका हमारे तुम्हारे बीच में एक हो जाना बहुत आवश्यक है तो उन लोगों ने कहा कि इस में शीघ्रता क्या पड़ी है, किसी न किसी दिन हो रहेगा। हमने उत्तर दिया कि यह सब से आवश्यक बात है। इसमें विलम्ब करना अनुचित है, परन्तु अभी तक न अलकाट साहब और न मैडम ब्लैवेत्स्की ने इसका कोई प्रबन्ध किया। तुम जाकर मौखिक भी समझा देना कि हम को इस बात की बड़ी इच्छा है। यदि वह इस बात को अस्वीकार करेंगे तो हम लोगों के मध्य मित्रता रहनी कठिन हो जायेगी क्योंकि मैं नास्तिकों का खण्डन करने में आलस्य करना पाप समझता हूं।

—:o:—

२—पूर्ण संख्या ६९ (पृष्ठ १२४) पर पत्र-सूचना रूप में निर्दिष्ट पत्र की उपलब्धि

Rawalpindi[1]
12th Dec. 1977.[2]

Dear Pandit jee,

Yours.........[3]the 6th current is to hand. To know

पत्र ऋ० द० ने किस के नाम और कब लिखा था, यह अज्ञात हैं। इस पत्र को किसके हाथ भेजा था उसका नाम भी उल्लिखत नहीं है। इस पत्र का जो उत्तर आया—"अलकाट साहब दिसौर (दिसावर=देशान्तर) चले गये और हमको अवकाश नहीं कि हम आप से इस संबन्ध में विचार शास्त्रार्थ करें।" वही पृष्ठ ८७७। इस उत्तर और पूर्ण संख्या ५११ तथा ५१२ पर छपे पत्रों की तुलना से विदित होता है कि यह पत्र २१ मार्च १८८२ को लिखा गया था। अथवा २२ मार्च को ही पूर्ण संख्या ५१२ पर छपे पत्र से पूर्व लिखा गया था। क्योंकि इस पत्र के उत्तर से कर्नल अलकाट के बाहर जाने का जो निर्देश मिलता है उसका निर्देश पूर्ण संख्या ५१२ के मैडम ब्लेवेत्स्की को लिखे पत्र में भी है। अतः इसे पूर्ण संख्या ५११ के अन्त में पृष्ठ ५४५ पर जोड़ें।

[1] इस पत्र की फोटो कापी श्री इन्दुलाल मोतीलाल पटेल (सायला) तथा श्री अम्बालाल नरसिंह पटेल (जेतपुर) के प्रयत्न से श्री बलभद्र जी राणा, लीमड़ी

[इस पृष्ठ की शेष टिप्पणी २-३ अगले पृष्ठ पर देखें]

that the..............of Vedbhashya Rs. for 31..............of 24 pages..........................do include the cost of paper..clude it.............

No objection from my side for giving the work in contract if it can possibly be printed cheaper than at present in Benares.

If Shamji Krishna Verma does not go to England & like to govern the Vedbhashya printing in its distribution etc. then Ill............[3]glad............and that.........upon desire..............hand allowing...........in the meantime Rs. 30 or even Rs. 40 per month including house rent for putting the printed copies in store, as I pay..............Lazarus for the same duty, except the postage expenses. Shamji Verma is a very good pundit & can correct both Sanskrit and Hindi...........properly.

You yourself and Baboo H. Chintamani will have to watch the regular movement of the work either by correspondence or personally, while for myself, the translation of the Vedas & preaching the true doctrine all round the country must be considered.........duty of work to do. My asheerbad to you.

Yours wellwisher
Pt. S. D. Saraswatti
दयानन्द सरस्वती

[To
R. B. Gopal Rao.] H. Deshmukh Sharma
....

[पूर्व पृष्ठ की शेष टिप्पणियां]

(सौराष्ट्र) से प्राप्त हुई। इसी पत्र की दूसरी प्रति श्री बलभद्र जी राणा के कनिष्ठ भ्राता जे० एन० राणा (बम्बई) के संग्रह में विद्यमान है। हमने अक्टूबर १९८० को बम्बई जाकर देखी।

२. मार्गशीर्ष शुक्ल ७ बुद्धवार १९३४।

३. मूल पत्र जो कि खस्ता हो चुका था उसे ३-४ स्थान पर कागज चिपकाकर

[भाषानुवाद]

रावलपिण्डी
१२ दिसम्बर १८७७

प्रिय पण्डित जी,

आपका [पत्र] वर्त्तमान मास दिनांक ६ हस्तगत हुआ। जानना ······ कि वेदभाष्य के ········· रु० ३१ के लिये ··············· २४ पृष्ठ के ······ ··············· कागज का मूल्य भी सम्मिलित ·······················

कार्य को ठेके पर देने के लिए मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं, यदि सम्प्रति बनारस की अपेक्षा सस्ता मुद्रण हो सकता हो। ······ ··················· यदि श्याम जी कृष्ण वर्मा इङ्गलैण्ड नहीं जाते हैं और वेदभाष्य मुद्रण वितरण आदि की व्यवस्था करना चाहते हों, तो मुझे प्रसन्नता होगी। ··················· और कि ··········· इच्छानुसार ·············· ···· ·· हाथ अनुमत ········· इस बीच ········ ······························ तीस या चालीस रुपये प्रति मास, जिसमें मुद्रित प्रतियों को भण्डार में रखने के लिए मकान किराया सम्मिलित है, जो मैं ··········· लाजरस को, पोस्टेज व्यय के अतिरिक्त, इसी कार्य के लिए चुकाता हूं। श्याम जी वर्मा बहुत अच्छे पण्डित हैं और संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ··········· उचित रूप से संशोधन कर सकते हैं।

स्वयं आप और बाबू ह० चिन्तामणि को, पत्रव्यवहार द्वारा अथवा व्यक्तिशः, कार्य के सतत संचालन का ध्यान रखना होगा। जहां तक मेरा प्रश्न है, वेदभाष्य तथा सत्य सिद्धान्त का सम्पूर्ण देश में प्रचार मेरा कर्त्तव्य समझा जाना चाहिये। आप को मेरा आशीर्वाद।

आप का शुभचिन्तक
पण्डित स्वा० द० सरस्वती
[दयानन्द सरस्वती]

················
··· ~ ह० देशमुख शर्मा
················

—:o:—

फोटो लिया गया। उससे जो पद अक्षर दब गये उन के स्थान पर हमने ··· ········ बिन्दु रख दिये हैं। इसका ब्लाक बनवाकर हम प्रतिकृति छाप रहे हैं।

३—पूर्वमुद्रित संस्कृत वा मराठी में छपे पत्र-विज्ञापनों का भाषानुवाद तथा पूर्वमुद्रित पत्र वा विज्ञापनों के मूल पाठ वा प्रतिलिप्यन्तर से शुद्ध पाठ का पुनर्मुद्रण

पूर्ण संख्या १ (पृष्ठ १-६) संस्कृत विज्ञापन का भाषानुवाद

[1]कल्याण हो। १. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद ४. अथर्ववेद—इन चारों वेदों में कर्म, उपासना, ज्ञानकांड का निश्चय है। उन में सन्ध्या उपासना से लेकर अश्वमेघ तक कर्मकांड जानना चाहिये। यम से लेकर समाधि तक उपासना कांड जानें। निष्कर्म से लेकर परब्रह्म के साक्षात्कार तक ज्ञानकांड समझें। ५. आयुर्वेद—में चिकित्सा विद्या है जिसके दो ग्रन्थ चरक और सुश्रुत सत्य जानो। ६. धनुर्वेद—उसमें शस्त्रास्त्र विद्या है। ७. गान्धर्ववेद—में गानविद्या है। ८. अर्थवेद—में शिल्पविद्या **कलाकौशल और भवननिर्माण की विद्या है**। यह चारों वेदों के क्रमशः चार उपवेद हैं। ९. शिक्षा—उसमें वर्णोच्चारण की विधि है। १०. कल्प—उसमें वेदमंत्रों के (द्वारा यज्ञ आदि के) अनुष्ठान की विधि है। ११. व्याकरण—उसमें शब्द, अर्थ और उनके परस्पर सम्बन्ध का निश्चय है। उसके प्रामाणिक ग्रन्थ अष्टाध्यायी और महाभाष्य दो हैं; दोनों को सत्य जानना चाहिये। १२. निरुक्त—उसमें वेदमंत्रों की निरुक्तियां है। १३. छन्द—में गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं। १४. ज्योतिष—उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान है; इसमें केवल एक ही ग्रन्थ भृगुसंहिता सत्य जानना चाहिये। यह छः वेदांग हैं। यही चौदह विद्या हैं। १५. उपनिषद अर्थात् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कैवल्य—यह बारह उपनिषदें हैं। इनमें ब्रह्मविद्या है। १६. शारीरकसूत्र—में उपनिषत् के मन्त्रों की व्याख्या है। १७. कात्यायन आदि सूत्र—इनमें जन्म से लेकर श्मशान तक संस्कारों की व्याख्या है। १८. योगभाष्य—में उपासना और ज्ञान के साधन हैं। १९. वाकोवाक्य—इस एक ग्रन्थ में वेदों के अनुकूल तर्क करने की विधि है। २०. मनुस्मृति—में वर्णाश्रमधर्मों के व्याख्यान हैं और वर्णसंकरों के धर्मों के भी। २१. महाभारत—में अच्छे लोगों और दुष्ट जनों के लक्षण हैं।

---

[1] यह भाषानुवाद हमने पं० लेखरामकृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६३३-६३४ से लिया है। इस के साथ सम्बद्ध टिप्पणियां संस्कृत पाठ के नीचे देखें।

इन इक्कीस शास्त्रों को सत्य जानो परन्तु इन इक्कीस शास्त्रों में भी जो वचन व्याकरण, वेद और शिष्टाचार के विरुद्ध हो—वह असत्य है।

इन इक्कीस शास्त्रों के अतिरिक्त जो ग्रन्थ हैं, उन सबको **"गप्पाष्टक"** जानो। गप्प कहते हैं मिथ्याभाषण को और फिर जिसमें आठ गप्प हों उसको बुद्धिमान् "गप्पाष्टक" कहते हैं और जिसमें आठ सत्य हों उसको "सत्याष्टक" कहते हैं। **अब आठ गप्प कौनसी हैं**—१—मनुष्य के वनाये हुए ब्रह्मवैवर्त से लेकर पुराणादि सब ग्रन्थ;—यह पहली गप्प है। २—पाषाण आदि में देवता की बुद्धि (भावना) रख कर उनकी पूजा करना—यह दूसरी गप्प है। ३—शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय—यह तीसरी गप्प है। ४—तन्त्र ग्रन्थों में कहा हुआ वाममार्ग मत चौथी गप्प है ५—भांग आदि नशों का प्रयोग करना यह पांचवीं गप्प है। ६—परस्त्रीगमन यह छठी गप्प है। ७—चोरी करना यह सातवीं गप्प है। ८—छल, अभिमान, मिथ्याभाषण—यह आठवीं गप्प है। यह आठ जो गप्पें हैं—इनको छोड़ देना चाहिये।

अब **आठ सत्य** कौनसे हैं वह कहते हैं १—ऋग्वेद आदि इक्कीस शास्त्र परमेश्वर और ऋषियों के वनाये हुए—यह सब पहला सत्य है। २—ब्रह्मचर्याश्रम से गुरु की सेवा, अपने धर्म के अनुष्ठान के अनुसार वेदों का पढ़ना दूसरा सत्य है। ३—वेदोक्त वर्णाश्रम के अनुसार अपने-अपने धर्म सन्ध्या, वन्दना, अग्निहोत्र का अनुष्ठान तीसरा सत्य है। ४—शास्त्र के अनुसार अपनी स्त्री से संबन्ध और पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में अपनी स्त्री से गमन करना, श्रुति और स्मृति के अनुसार चालचलन रखना—यह चौथा सत्य है। ५—दम, तपश्चरण, यम आदि से लेकर समाधि तक उपासना और सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान करना पांचवां सत्य है। ६—विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास और संन्यासग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा न करना—यह छठा सत्य है। ७—ज्ञान और विज्ञान से समस्त अनर्थ से उत्पन्न होने वाले जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संगदोष के त्यागने का अनुष्ठान सातवां सत्य है। ८—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेष, तम, रज, सत्व सब क्लेशों का निवृत्ति, पंचमहाभूतों से अतीत होकर मोक्षस्वरूप और

आनन्द को प्राप्त होना आठवां सत्य है। यह आठों सत्य ग्रहण करने चाहियें। इति।

दयानन्द सरस्वतो ने यह पत्र रचा—यह भी सज्जनों को जानना चाहिये। ("शोलयेतूर" मुद्रणालय में छपा)

—:•:—

पूर्ण संख्या २ (पृष्ठ ७-९) पर छपे संस्कृत पत्र का भाषानुवाद

श्रीरस्तु (कल्याण होवे)

स्वस्ति श्री श्रेष्ठ उपमायोग्य गङ्गादत्त शर्मा के लिये दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद विदित होवे। यहां सब कल्याण है वहां भी होवे। आप का पत्र आया वहां का समाचार भी जाना। आप बुद्धिमान् होकर पत्र तो भेजा परन्तु स्वयं पत्र भेजने के तुल्य नहीं आये यह महान् आश्चर्य है। यह पत्र देखते ही शीघ्र आओ और आकर जिस दिन आप यहां पाठशाला में पढ़ाना आरम्भ करोगे उसी दिन एक मास का पूर्व विचारित [रुपयों] को अपने घर भेज देना यह निश्चय जानो इसमें कुछ विचार नहीं करना। यह शंका भी आप न करें कि आजीविका वहां होगी वा नहीं। इस समय तो प्रतिदिन एक रुपया आजीविका है। परन्तु जब जब आपके गुणों का प्रकाश होगा तब तब अधिकाधिक आजीविका निश्चित होगी ऐसा जानना। इस समय तो आपने यहीं रहना है फिर यहां से वा अन्यत्र आजीविका निश्चित स्थिर रहेगी। मेरे जाने पर आजीविका होगी वा नहीं, यह शंका भी न करें। यहां आने पर सब अच्छा होगा। परन्तु आप यहां आने में क्षण मात्र भी विलम्ब न करें। सं० १९२७ भाद्रशुक्लपक्ष षष्ठी बृहस्पतिवार के दिन यह पत्र लिखा ऐसा विदित होवे।

महाभाष्य अष्टाध्यायी धातुपाठ उणादिपाठ वार्तिकपाठ परिभाषापाठ गणपाठ की पुस्तकें लेकर ही आना होवे और वेद की भी।

—:०:—

पूर्ण संख्या २१ (पृष्ठ ५५) पर छपे मराठी विज्ञापन का मूल प्रति से मिलाकर संशोधित पाठ तथा उसका भाषानुवाद

विज्ञापन[1]

सदहूं स्वामीनीं केलेलें सौंस्कृतप्राकृत भाष्यासहित ग्रंथ छापावयाचें

---

[1] यह विज्ञापन ऋ० द० विरचित आश्विन सुदि १ सं० १९३१ में प्रकाशित

आहेत, परंतु या कामास द्रव्यानुकूलतेची विशेष न्यूनता असल्यामुळें ती दूर करण्याच्या उद्योगांत आहोत, आणि हे ग्रंथ छापण्यास सुरवात केल्याची किंमतीसहवर्तमान खबर सर्वांस कलविण्यांत येईल.

या विषयी मागाहून जाहीरात दिलीं जाईल, या शिवाय सर्व आर्यलोकांकरिता सद्धर्म विचार नावांचें मासिक पुस्तकांत सत्यार्थनामक ग्रंथाचे भाषांतरासहित विषय घेतले जातील. या कामास सर्व आर्यलोक आपला उदार आश्रय देतील अशी आशा आहे.'

—:०:—

पूर्ण संख्या २१ (पृष्ठ ५५) ऊपर छापे गये मराठी विज्ञापन का भाषानुवाद

विज्ञापन[1]

स्वामी जी द्वारा रचित संस्कृत प्राकृत भाष्यसहित ग्रन्थों को प्रकाशित करवाना है। परंतु इस कार्य के लिये द्रव्यानुकूलता का विशेष अभाव है, जिसे दूर करने का हम प्रयास कर रहे हैं। इन ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य आरंभ होते ही मूल्य के साथ वर्त्तमान स्थिति की सूचना सभी को दी जाएगी।

इस संबंध में कुछ समय पश्चात् विज्ञापन दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त सभी आर्य सज्जनों के लिए 'सद्धर्म विचार' नामक मासिक में 'सत्यार्थ' नामक ग्रन्थ के विषयों का अनुवाद सहित प्रतिपादन होगा।

इस काम में सभी आर्य सज्जन उदारता से सहयोग प्रदान करेंगे ऐसी आशा है।

—:०:—

'सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि' के आवरण पत्र ४ पर छपा है। पहले हमने इसे प्रतिलिपि से छापा था, उस में प्रतिलिपिकर्ता के प्रमाद से कई स्थान पर पाठ अशुद्ध हो गया था। अब इसे मूल विज्ञापन से अक्षरशः मिलाकर छाप रहे हैं। विज्ञापन के मूल पाठ में भी ५–६ अशुद्धियाँ हैं, उन्हें उसी प्रकार रहने दिया है।

[1] यह विज्ञापन सं० १९३१ के अन्त में छपा था।

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

पूर्ण संख्या २११ (पृष्ठ २६४–२६६) पर छपे पत्र का शुद्धपाठ

बाबू माधोप्रसादादि आनन्दित रहो।[1]

वृत्तान्त यह है कि सब सज्जनों के प्रति एक आनन्द का समाचार प्रकट किया जाता है। वोह यह है कि एस० एच० अलकाट साहिब तथा एच० पी० [ब्ले]वेस्की जिनकी पत्री पहले अ[म]रिका से अपने समाजों में आई थी उन से हमारा पहिली मई सन् हाल[2] को सहारनपुर में समागम होने से मालूम हुआ कि जैसी उनकी पत्रियों से बुद्धि प्रकट होती थी उनके मिलने से अधिक योग्यता और सज्जनता प्रकट हुई। उनके साथ दो दिन सहारनपुर में समागम रहा और समाज के सब पुरुषों ने यथावत् सत्कार किया। उन का उपदेश सुनने से लोगों के चित्त बड़े प्रसन्न हुए। पश्चात् वे हमारे साथ मेरठ को आये। वहां पर भी सब समाज के लोगों ने सुन्दर रीति से सत्कार किया और उपदेश का ऐसा सुन्दर चरचा रहा कि जिससे सबको आनन्द हुआ और उपदेश में सब अमीर वा उमराव तथा अहलकार और अंग्रेज लोग भी पांच दिन तक बराबर आते रहे और जिस किसी ने मतमतांतर में कुछ शङ्का को उनका यथार्थता से उत्तर मिलता रहा। अर्थात् अमरीकन साहिबों ने सब लोगों के चित्त पर यह निश्चय कर दिया कि जितनी भलाई और विद्या है वे सब वेद से निकली और जितने वेदविरुद्ध मत हैं वे सब पाखण्ड रूप हैं पश्चात् उक्त साहिब तो ७ मई को बम्बई चले गये और हम कुछ दिन यहां ठहरेंगे। यह जो उन साहिबों से हमारा समागम है यह इन आर्यावर्तादि देशों के मनुष्यों को उन्नति का कारण है। जैसे एक परम औषध के साथ किसी सुपथ्य का मेल होने से शीघ्र ही रोग का नाश हो जाता है इसी प्रकार इस समागम से आर्यावर्तादि देशों [में] वेदों का प्रकाश और असत् पा[प]रूपी रोग का विनाश

---

[1] इस पत्र की बाबू माधोलाल को ६ अगस्त १८७८ को लिखे गये अन्य पत्र के साथ एक प्रतिलिपि श्री मामराज जी के संग्रह में श्री नारायण स्वामी जी से प्राप्त हुई हमें उपलब्ध हुई। उसके पश्चात् श्री पं० विधुमित्र शास्त्री द्वारा लिखित 'दानापुर में ऋषि दयानन्द का पदार्पण और प्रभाव' पुस्तक देखने को मिली। इस में भी दानापुर समाज के संग्रह में विद्यमान पत्रों के आधार पर पत्र छापे हैं। इन दोनों का पाठ हमारे पूर्व (पृष्ठ २६४–२६६) प्रकाशित पत्र से अनेक स्थानों में भिन्न है। अतः हम इस का शुद्ध पाठ यहां छाप रहे हैं। प्रतीत होता है कि पं० भगवद्दत्त जी को जो प्रतिलिपि मिली थी उस में लेखकप्रमाद से अशुद्धियां हो गई थी।

[2] वर्तमान, १८८६।

शीघ्र हो जायेगा और उक्त साहिबों का आचरण तथा स्वभाव हम को अत्यन्त शुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि वे लोग तन-मन-धन से सब प्रकार वेद-मत की स्थापना करने में उद्यत हैं। जो बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उक्त साहिबों के विषय में यह बात उठाई थी कि ये लोग जादू जानते है और जासूसों की तरह छल कपट की बातें करते हैं उस[की] यह बात सब मिथ्या है। क्योंकि जिस को जादू कहते हैं वोह यथार्थ में पदार्थ विद्या हैं उस विद्या को उन्होंने मूर्खों का भ्रम दूर करने और सत्य मार्ग में चलने के लिये धारण किया है सो कुछ दोष नहीं, परन्तु हरिश्चन्द्र जैसे मूर्खों को भूषण भी दूषण ही दीख पड़ता है। इस हरिश्चन्द्र ने इन साहिबों के चित्त में ऐसा भ्रम किया था कि जिस का हम वर्णन नहीं कर सकते परन्तु वे सब भ्रम हमारे मिलने से दूर हो गये। देखो इस हरिश्चन्द्र की बेइमानी कि बहुत सा विघ्न वेदभाष्य के काम में कर चुका है और अब तक भी करता जाता है, इसलिए सब आर्य्य भाईयों को उचित है कि इस को अपने आर्य्यसमाजों से बहिष्कृत समझें और इस का किसी प्रकार का विश्वास न करें। देखो पूर्व काल में हमारे ऋषि मुनियों को कैसो पदार्थ विद्या आती थी कि जिसमें आत्मा के बल से सब के अन्तष्करण के भेद को शीघ्र ही जान लिया करते थे। जैसे बाहर की पदार्थ विद्या से सिद्ध किये हुवे रेल तारादि विद्या को मूर्ख लोग जादू समझते हैं वैसे ही भीतर के पदार्थों के योग से योगी लोग अनेक अद्भुत कर्म कर सकते हैं इस में कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग जितनी विद्या बाहर के पदार्थों से सिद्ध करते हैं उस से कई गुणी अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं। जैसे बाहर के पदार्थों का उपयोग बाहर से होता है वैसे ही भीतर के पदार्थों का उपयोग भीतर से होता है। जैसे स्थूल पदार्थों की क्रिया आंखों से देख पड़ती है वैसे सूक्ष्म पदार्थों की क्रिया आंखों से नहीं देख पड़ती, इसी कारण लोग आश्चर्य मानते हैं। हां, यह कह सकते हैं कि बहुत से धूर्त लोग उस विद्या को तो जानते नहीं, उल्टे जाल रच कर सत्य विद्या को बदनाम करते हैं. इसी कार[ण] झूठों का तिरस्कार और सच्चों का सत्कार सर्वदा करना चाहिये, परन्तु जिस समय किसी का असत्य प्रघट हो जावे, उसी समय उस का परित्याग करना चाहिये। जैसे बहुत दिनों के पश्चात् हरिश्चन्द्र का कपट प्रकट होने से अपने आर्य्यसमाजों से बाहर किया गया। इसी प्रकार जिस किसी पुरुष का असत्य प्रघट हो जावे उसको तत्काल ही अपने समाजों से अलग कर दो चाहे कोई क्यों न हो। अस[त्य]वादी

की सर्वदा परीक्षा करते रहो। इसी का नाम सुधार है क्योंकि **बुद्धेः फलमनाग्रहः**। जब यही सत्पुरुष का लक्षण है, तब उसको सच्चा ज्ञान हुवा जानो जब अपने निश्चय किये हुवे में भी, जितना असत्य जाने उस को उसी समय त्याग दे [तो] उस के दूसरे का असत्य छोड़ने में क्या आश्चर्य है। ऐसे काम के बिना न आप सुधर सकता है और न दूसरे को सुधार सकता है। अब इस पत्री को इस वृत्तान्त पर पूर्ण करता हूं कि इन साहिबों के पूर्व पत्रों और सात दिन बातचीत करने से निश्चय किया है कि इन का तन मन [और] धन सत्य के प्रकाश और असत्य के विनाश और सब मनुष्यों के हित करने में है। जैसा कि आप लोगों का निश्चय से उद्योग है। वेदभाष्य अब शीघ्र आने वाला है कुछ चिन्ता मत करना॥

६।५।१८७८[1] मेरठ। (दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

४—भूल से अस्थान पर छपे पत्रों के उचित स्थान का निर्देश

पूर्ण संख्या ६४ पृष्ठ ११७ पर छपा कन्हैयालाल एग्जिक्यूटिव इंजीनियर के नाम छपा पत्र-सारांश अस्थान में छप गया है। पं० लेखरामकृत जीवन चरित (पृष्ठ ८२७) के अनुसार इस का संबन्ध भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ के साथ है। भ्रमोच्छेदन का मुद्रण आषाढ़ १९३७ के पूर्वार्ध में हुआ होगा। अतः **इस पत्र-सारांश को पूर्ण संख्या ३०७ (पृष्ठ ३५४) के आगे जोड़ना चाहिये**।

पूर्ण संख्या २११ पृष्ठ २६४–२६६ पर छपा बाबू माधोप्रसाद के नाम का पत्र पं० भगवद्दत्तजी को प्राप्त प्रतिलिपि में ७।५।७९ का निर्देश होने से अस्थान में छप गया है। इस पत्र की शुद्ध ता० ६।५।७९ है। अतः **इसे पूर्ण संख्या २१२ के पत्र के आगे जोड़ना चाहिये**। अर्थात् २१२ का पत्र २११ वां होगा और यह २१२ वां होगा।

विशेष द्रष्टव्य इसी पृष्ठ की टिप्पणी १।

---

[1] यहां श्रीनारायण स्वामीजी से प्राप्त तथा दानापुरसम्बन्धी पुस्तक में छपे पत्र में ६।५।१८७८ पाठ है। इस में निश्चय ही लेखक की भूल है। अगले पूर्ण संख्या २१२ पर छपे पत्र की तुलना से तथा ऋ० द० के जीवन चरित से स्पष्ट है कि यहां सन् १८७९ ही चाहिये। तारीख ७ के स्थान में ६ होने से इसे ८ मई १८७९ को लिखे पूर्ण संख्या २१२ के पत्र के आगे रखना चाहिये। इन दोनों के पूर्वापर मात्र का भेद होने से अगली पूर्ण संख्या पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

५—आर्य्य-सन्मार्ग-सन्दर्शिनी सभा" कलकत्ता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

[उक्त शीर्षक से पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६७१—६९६ तक जो अंश छपा है, उसका ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के साथ सीधा कुछ भी संबन्ध न होने पर भी हम इसे यहां छाप रहे हैं। इसका कारण यह है कि कलकत्ता के पण्डितों ने उक्त सभा करके ऋ० दयानन्द के कतिपय सिद्धान्तों पर जो निर्णय लिया था उसका उत्तर आर्यसमाज कलकत्ता ने दिया था। इसके सम्बन्ध में जी० च० पृष्ठ ६७२ पर लिखा है—**समस्त उत्तर और प्रश्न उनके उन प्रत्युत्तरों सहित जो आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये थे। पाठकों की भेंट करते हैं।** इससे विदित होता है कि ये उत्तर ऋ० दयानन्द के लिखे हुए हैं। इतना ही नहीं, उक्त प्रश्नों के जो उत्तर दिये गये हैं वे अत्यन्त प्रौढ़ है। जहाँ तक हम जानते हैं उस समय कलकत्ता में कोई ऐसा स्वामी जी का अनुयायी विद्वान् नहीं था, जो ऐसे प्रौढ उत्तर दे सके। इस से अनेक शास्त्रीय विषयों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसीलिये हम इन्हें यहां सबसे अन्त में छाप रहे हैं।

जनवरी १८८१ में ऋ० द० आगरा में थे। वहाँ वे १० मार्च १८८१ तक रहे इस अवसर में ऋ० द० ने कलकत्ते की सभा में किये गये आक्षेपों का उत्तर नहीं दिया था। ३१ मार्च १८८१ को जयपुर से ऋ० द० कृपाराम स्वामी को लिखते हैं—'**कलकत्ते की सभा आदि के साथ हम को लिखने छपवाने का अवकाश नहीं। वेदभाष्य का काम बहुत है तुम को अवकाश हो तो लिखो छपवाओ**' (द्र०—पूर्ण संख्या ४४८, भाग २, पृष्ठ ४९३) अतः सम्भव है ऋ० द० ने ३१ मार्च के पश्चात् कलकत्ता की सभा में किये गये आक्षेपों के उत्तर लिखकर आर्यसमाज कलकत्ता को भेजे होंगे।

आगे हम पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६७१—६९६ तक का पूरा पाठ उद्धृत करते हैं। यहां हमने पण्डितों की सभा से संबद्ध अंश **काले मोनो** टाईप में छापा है। सम्पा०]

२२ जनवरी सन् १८८१ रविवार को शाम के समय सीनेट हाल, राजधानी-कलकत्ता में वहां के बड़े-बड़े रईसों और प्रसिद्ध पण्डितों ने एकत्रित होकर यह सभा[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की कार्यवाहियों के विरुद्ध निर्णय देने के अभिप्राय से आयोजित की थी।

---

[1] इस सभा का उल्लेख पूर्ण संख्या ४४८ (पृष्ठ ४९३) के पत्र में है।

समाचारपत्र "सार सुधा धि" में लिखा है कि इस सभा के प्रबन्धक कालिज के प्रिंसिपल पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न थे। इसी सभा में पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति, जीवानन्द विद्यासागर बी० ए० और नवद्वीप के पंडित भुवनचन्द्र तर्करत्न और जैसोर के रामधन, कानपुर के पंडित बांके बिहारी वाजपेयी, पंडित जमना नारायन तिवाड़ी; वृन्दावन के सुदर्शनाचार्य और तञ्जोर प्रदेश के कोड़म ताल्लुक के त्रिदोष-नललोरों ग्राम; मद्रास प्रेजीडेन्सी के पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (जिनको राम सोबा शास्त्री भी कहते हैं) आदि तीन-सौ ऐसे ही पंडित सुशोभित थे। इनके अतिरिक्त रईसों में वहां के प्रसिद्ध जमींदार आनरेबल महाराजा जितेन्द्रमोहन ठाकुर सी० ऐस० आई, महाराजा कमलकृष्ण बहादुर, राजा सुरेन्द्र मोहन ठाकुर, डाक्टर सी० ऐस० आई, राजा राजेन्द्र लाल मलिक, बाबू जयकिशन मुख्योपाध्याय, कुमार देवेन्द्र मलिक, बाबू चारुचन्द्र मलिक, आनरेबल बाबू कृष्णदाल पाल, लाला नारायनदास मथुरा निवासी, राय बद्रीदास-बहादर-निवासी, सेठ जुगल किशोर जी सेठ नाहर मल, सेठ हंसराज आदि कलकत्ता निवासी, रईस उपस्थित थे। यद्यपि पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू राजेन्द्रलाल साहब मित्र एल० एल० डी०—यह दोनों सज्जन इस बड़ी सभा में न पधारे तथापि इन सज्जनों ने सभा की कार्यवाही को हृदय से स्वीकार किया।

"हिन्दू पैट्रियट" (Hindu Patriot) में लिखा है कि गत शनिवार को यहां के सीनेट-हाउस में बंगाल के पंडितों की एक सभा हुई थी। लगभग पांच सौ मनुष्य एकत्रित थे जिनमें अनुमानतः तीन सौ पंडित होंगे। इस सभा में सब मनुष्य कुर्सियों पर बैठे थे मथुरा के सेठ नारायनदास के प्रयत्न से यह सभा वेद के कई विषयों में सन्देह-निवारण करने के लिये की गयी थी। मद्रास के एक राम सोबा शास्त्री ने कहा कि पंडित दयानन्द सरस्वती ने वेदों के विषयों में जो मत दिया है उससे दक्षिण और दूसरे देश के लोगों को बहुत सन्देह होता है और उस विषय में बंगाल के प्रधान पंडितों की सम्मति लेने के लिये वह कलकत्ता आये हैं।"

जिस समय उपर्युक्त समस्त सज्जन सीनेट हाल में एकत्रित हो गये तब पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने इस सभा के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य वर्णन करके निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित किये थे। वे प्रश्न तथा उक्त सभा में उनके निर्णीत समाधान इस प्रकार हैं:—

१. ब्राह्मण भाग भी वेद के मन्त्रभाग और संहिता भाग के समान मानने के योग्य हैं या नहीं और मनुस्मृति के समान दूसरी स्मृतियां भी मानने योग्य हैं अथवा नहीं। इसके उत्तर में निश्चय हुआ कि दोनों माननीय हैं।

२. विष्णु, शिव, दुर्गा का पूजन, श्राद्धविधि और तीर्थयात्रा शास्त्रोक्त है अथवा नहीं ? निश्चय हुआ कि—हां, यह सब शास्त्रोक्त हैं।

३. ऋग्वेद संहिता में "अग्निमीळे पुरोहितं" आदि-आदि मन्त्र हैं। इसमें आये 'अग्नि' शब्द से अग्नि अथवा ईश्वर किसको समझना चाहिये ? निश्चय हुआ कि 'अग्नि' (आग)।

४. यज्ञ, वायु और जल की शुद्धि के लिये किया जाता है अथवा मुक्ति के लिये ? । निश्चय हुआ कि मुक्ति केलिये ।

संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं में तर्क-वितर्क होता रहा। प्रश्नों के उत्तर सब लिख लिये गये थे और उनपर सब पंडितों की सही (हस्ताक्षर) हुई थी। पण्डित लोगों को बधाई भी मिली थी। ("हिन्दू पैट्रियट" से) "भारतमित्र" २७ जनवरी सन् १८८१ ।

अब हम समस्त उत्तर और प्रश्न उनके उन प्रत्युत्तरों सहित, जो आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये—पाठकों की भेंट करते हैं इसी में राजा शिवप्रसाद के आक्षेपों का खंडन भी विद्यमान है।

प्रथम-प्रश्न—पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न जी ने प्रथम प्रश्न यह किया कि वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है, ब्राह्मणभाग भी वैसा ही (प्रामाणिक) मानने के योग्य है या नहीं ? और मनुस्मृति धर्मशास्त्र के समान और स्मृतियां भी स्वीकार करने के योग्य हैं या नहीं ?

उत्तर—इसका उत्तर पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह दिया कि यजुर्वेद संहिता में लिखा है—"यत्किंचिन्मनुरब्रवीतद् भेषजं भेषजतायाः"[1] अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के योग्य है। इस वेद के वचन से समस्त मनुस्मृति स्वीकार करने के योग्य है और यदि मनुस्मृति का (केवल) कोई एक(ही) भाग (प्रामाणिक) माना जावे तो उस मंत्र में, जो 'यत् किंचित्' शब्द आया है जिसका अर्थ 'जो कुछ भी' है; वह व्यर्थ हो जाता है; इसलिये समस्त मनुस्मृति को (प्रामाणिक) मानना

---

[1] द्र० ताण्ड्य ब्रा० २३।१६।७ ।। तै० सं० २।२।१०।। मै० सं० २।१।६।। काठक सं० ११।५।। इस वचन में स्मृति मनु प्रकरणानुसार वैवस्वत मनु है, न कि स्मृतिकार स्वायंभुव मनु। शङ्कराचार्य से लेकर स्वामी दयानन्द पर्यन्त सभी आचार्य उपर्युक्त वचन को स्वायम्भुव मनु विषयक मानकर मनुस्मृति के प्रामाण्य के लिये इसे उद्धृत करते हैं।

योग्य है। यदि मनुस्मृति को स्वीकार न किया जावे तो वह **वेद भी,** कि जिसमें मनुस्मृति का मानना एक आवश्यक बात लिखी है—मानने के योग्य नहीं रहता। इसलिये वेद संहिता को (प्रामाणिक) मानने वाले के मत में मनुस्मृति को (प्रामाणिक) न मानना संहिता के मत से विपरीत ठहरना है। दयानन्द सरस्वती ने भी मनु को (प्रामाणिक) मान कर ही अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' के पृष्ठ ३ में ये शब्द लिखे हैं—"प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि" इत्यादि। इसीलिये स्वामीजी का मनुस्मृति को मानना स्पष्टतया प्रकट है।

अब देखिये मनुस्मृति के अध्याय ६ में लिखा है कि:—

"एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥"

इस श्लोक के अनुसार, ब्राह्मण भाग के अतिरिक्त उपनिषद् भाग का भी, वेद के समान (प्रामाणिक) होना और स्वीकार किया जाना सिद्ध है। यजुर्वेद आरण्यक के प्रथम अध्याय के दूसरे भाग में लिखा है, कि:—स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्। एतैरादित्यमंडलं सर्वैरेव विधास्यते" इस वचन के अनुसार श्रुति के समान सब स्मृतियां भी (प्रामाणिक) मानने योग्य सिद्ध होती हैं क्योंकि "विधास्यते" शब्द के अर्थ "प्रमीयन्ते" के हैं अर्थात् जिससे कि ठीक-ठीक ज्ञान उत्पन्न हो और यही अर्थ भाष्यकार ने भी लिखे हैं और पंडित तारानाथ वाचस्पति ने भी ऐसा ही लिखा है:—वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्" अर्थात् वेद धर्म की जड़ हैं और स्मृति भी वैसी ही हैं। मनु के इस वचन के अनुसार भी सब स्मृतियां मानने योग्य सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार बहुत-सी युक्तियों से यह बात सिद्ध होती है कि संहिता के समान ब्राह्मण भाग और मनुस्मृति के समान विष्णु, याज्ञवल्क्य आदि समस्त स्मृतियां मानने के योग्य हैं और यही सब पंडितों की इकट्ठी सम्मति है।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—प्रथम हमारी अन्वेषिणी सभा में यह प्रमाण उपस्थित हुआ:—"**यत्किंचिन्मनुरब्रवीत्तद् भेषजं भेषजतायाः**" अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के योग्य है। यद्यपि जो बात इस वचन से सिद्ध होती है उसपर हमें कोई आक्षेप नहीं है परन्तु जो इसको **यजुर्वेद संहिता का वचन बताया गया है यह बात सर्वथा अशुद्ध है।** यह वचन यजुर्वेद संहिता के चालीसों अध्यायों में कहीं नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि इसका पता ठिकाना नहीं दिया गया। मनुस्मृति में जो वेदों का बार-बार वर्णन आया है और उनके पढ़ने-पढ़ाने की प्रेरणा की

गयी है उससे स्पष्ट प्रकट है कि **वेद मनु जी के काल से** पहले **विद्यमान थे। फिर समझ में नहीं आता कि किस विचार और किस अभिप्राय से उक्त वचन यजुर्वेद संहिता का वर्णन किया गया है। वेदों में मनुस्मृति की चर्चा आने की क्या आवश्यकता थी?** क्या वेद अपने आप में अधूरे थे कि उनकी पूर्ति मनु जी पर छोड़ी गयी थी। आश्चर्य तो यह है कि हमारी 'अन्वेषिणी' सभा में से किसी ने चूं तक नहीं की और पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री जी मद्रासी का कहना विना विवाद स्वीकार कर लिया गया। हमारी भोली सभा कदाचित् इस बात से अपरिचित है कि ऐसे मिथ्या कथन से स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का खंडन नहीं होता प्रत्युत उनको और बल प्राप्त होता है। **वास्तव में उक्त वचन सामब्राह्मण का है** जिसमें यह जताया है कि कर्मकांड के विषय में जो कुछ मनु जी ने कहा है वह औषधि की भी औषधि है। भला यदि वह ब्राह्मण ही का वचन कहा जाता तो इसमें क्या बुराई थी। तर्क का तर्क था और सत्य का सत्य। वास्तव में **मनु जी ने जो कुछ कहा है उसको तो हम स्वीकार करते हैं परन्तु जो बातें मनुस्मृति में मनु जी के पश्चात् स्वार्थी लोगों की ओर से मिला दी गयी हैं उनको प्रामाणिक मानने में, तो निस्सन्देह** हमको आपत्ति है। जो व्यक्ति मनुस्मृति को ध्यान से पढ़ेगा उसे विश्वास हो जायेगा कि उसमें ऐसी बातें बहुत पायी जाती हैं। कुछ स्थानों पर तो परस्पर विरोध की सी अवस्था उत्पन्न हो गयी है। उनका कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायेगा।

वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है ब्राह्मणभाग भी वैसा ही मानने के योग्य है या नहीं? यह प्रश्न अशुद्ध रूप में रखा गया है--इसमें एक दार्शनिक भूल है जिससे शास्त्रार्थ का वास्तविक विषय सर्वथा नष्ट हो जाता है अथवा कोई शास्त्रार्थ का विषय निश्चित ही नहीं होता। यदि ब्राह्मण वेद का भाग है तो कोई कारण नहीं कि वह संहिता के समान प्रामाणिक न माना जाय। दोनों पक्षों में विवाद का विषय तो वास्तव में यह है कि जैसे संहिता वेद मानी जाती है वैसे ही ब्राह्मण भी (वेद) मानने के योग्य है या नहीं? इसलिये अच्छा होता यदि यह प्रश्न इस रूप में रखा जाता कि ब्राह्मणग्रन्थ भी 'संहिता भाग' के समान ही वेद हैं या नहीं; या जैसी संहिता (स्वतःप्रमाण) मानी जाती है वैसे ही ब्राह्मण (ग्रन्थ भी स्वतः प्रमाण) स्वीकार करने योग्य हैं या नहीं? यह प्रश्न बड़ा आवश्यक है और इसके विषय में आजकल बहुत कुछ चर्चा हो रही है। इधर तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ब्राह्मणों को वेद का

भाग नहीं मानते; उधर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द; ने स्वामी जी के खंडन में एक पुस्तिका लिख मारी है। हमारे देश के पंडित कुछ और ही गीत गा रहे हैं। कुछ लोग (ऐसे भी हैं जो) न संहिता को मानते हैं और 'ब्राह्मण-ग्रन्थों' को मानते हैं यों ही विवादग्रस्त विषय में हस्तक्षेप कर रहे हैं। कुछ ने स्वामीजी की निन्दा करना ही अपना ध्येय बना रखा है कि कदाचित् इसी से परलोक सुधरे। हमारी सम्मति में इस प्रश्न के निर्णय से वेदमत के मानने वालों के बहुत से विवाद दूर हो सकते हैं। उचित यह है कि राजा शिवप्रसाद साहब को भी 'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी' सभा के पंडितों या उस सभा की रईसों की शाखा में सम्मिलित समझा जाये और फिर सबका उत्तर सामूहिक रूप में दिया जाये। राजा शिवप्रसाद जी ने इस बात को सिद्ध करने के लिये कि ब्राह्मण वेद का भाग हैं—पूर्वमीमांसा के दो सूत्र उपस्थित किये हैं और उनका समर्थन पंडित विशुद्धानन्द जी बनारसी और डाक्टर टीबू साहब ने किया है। इसलिये आवश्यक है कि इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाये। प्रथम हम इस विचार को उन्हीं सूत्रों से आरम्भ करते हैं। वह सूत्र यह हैं—**तच्चोदकेषु मंत्राख्या। शेषे ब्राह्मणशब्दः। इनका अर्थ** यह वर्णन किया गया है कि वेद का मन्त्रों से शेष जो भाग है वह ब्राह्मण है। परन्तु खेद है कि राजा साहब ने पहले और पीछे के सूत्र सर्वथा छोड़ दिये हैं; बीच में से दो सूत्र ले लिये हैं। प्रतीत होता है कि उनका प्रकट प्रयोजन एक व्यक्ति का खंडन था, कुछ सत्य की खोज अभीष्ट न थी। यदि पूर्वापर के प्रसंग को देखकर शास्त्रार्थ के रूप में विचार करते तो निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण बात होती और उससे साधारणरूप से पढ़ने वाले पर भी कुछ वास्तविकता प्रकट हो सकती थी। वास्तव में इन दो सूत्रों से राजा साहब का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता क्योंकि इनमें वेद शब्द या उसका समानार्थक कोई और शब्द नहीं आया है; यही नहीं, यदि वह अगले पिछले सूत्रों को ध्यान से देखते तो इन दो सूत्रों का प्रमाण देने का कदापि साहस न करते। हम जैमिनीजी की पूर्वमीमांसा के दूसरे अध्याय के प्रथमपाद के ३० से लेकर ३७ सूत्रों तक (और इन्हीं में वह दो सूत्र हैं) नीचे देकर उनकी व्याख्या करते हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जायेगा कि आपका ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का भाग नहीं है। वे सूत्र ये हैं:—

"विधिमंत्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात्" ॥ ३० ॥ **"अपि वा प्रयोगसामर्थ्यात्-मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्"** ॥ ३१ ॥ **"तच्चोदकेषु मंत्राख्या"** ॥ ३२ ॥

"शेषे ब्राह्मणशब्दः" ॥३३॥ **"अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः"** ॥ ३४ ॥ **"तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"** ॥ ३५ ॥ **"गीतिषु सामाख्या"** ॥ ३६ ॥ **"शेषे यजुः शब्दः"** ॥ ३७ ॥

प्रथम सूत्र (३०) का यह अर्थ है कि विधि (अर्थात् ब्राह्मण) और मन्त्र (अर्थात् संहिता) इन दोनों का क्या एक ही अर्थ है क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के शब्द आते हैं मानो इन दोनों में कुछ भेद नहीं। यह (प्रश्नात्मक) कथन आक्षेपकर्ता का है? **दूसरे सूत्र** (३१) में जैमिनी जी इसका उत्तर देते हैं कि **ऐसा नहीं** (अर्थात् मन्त्र और विधि एक नहीं) है; अपितु मन्त्र प्रयोग शक्ति से निरपेक्ष के कर्म का वर्णन करता है और उससे **अगले सूत्र** (३२) में मन्त्र की परिभाषा व्याख्या के रूप में लिखी है अर्थात् मन्त्र वह है जो मनुष्य के मन में किसी वस्तु या कार्य का निरपेक्ष ज्ञान उत्पन्न करता है। फिर आगे चौथे सूत्र (३३) "शेषे ब्राह्मणशब्दः" में 'ब्राह्मण' [ग्रन्थ] की परिभाषा लिखी है और यह पहले सूत्र [३०] के आगे है; इसमें विधि शब्द आया है। इन सूत्रों में यद्यपि अबतक वेद का शब्द नहीं आया है परन्तु विषय तथा शब्दों से यह सिद्ध होता है कि चूंकि मन्त्रों अर्थात् संहिता में निरपेक्ष और सृष्टि की दशा का शुद्ध वर्णन है इस लिये संहिता ही वेद है और वेद का अर्थ भी निरपेक्ष ज्ञान हैं।

विधि का अर्थ ब्राह्मण—शेष रहा विधि शब्द, सो यह ब्राह्मणों पर लागू होता है और उनमें मन्त्रों के अर्थ; तथा विधि-निषेध सम्बन्धी आज्ञाएं और ऐतिहासिक घटनायें आदि टीका के रूप में लिखी हैं। यह बात उनकी रचना, क्रम और विषयों से प्रकट है। प्रत्युत जब 'ब्राह्मण' शब्द की वास्तविकता पर विचार किया जाता है तो भी वही परिणाम उत्पन्न होता है अर्थात् ब्राह्मण शब्द ब्रह्म का बताने वाला है और **ब्रह्म का अर्थ वेद** (या परमात्मा आदि) के हैं और जो ब्रह्म अर्थात् वेद को जानता है या जिससे वेद जाना जाता है या **जिसमें वेद के सिद्धान्तों की व्याख्या है उसको ब्राह्मण कहते हैं**। वेद के आदि भाष्यकार "ब्रह्मवादी" कहलाते थे और उन्हीं के नाम पर उनके भाष्यों का नाम ब्राह्मण रखा गया और यह नाम वास्तव में उचित है। इनके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' का अर्थ ब्राह्मणों के समूह के भी हैं। **पहले यह प्रथा थी कि जब कोई धार्मिक या वैधानिक पुस्तक लिखी जाती थी या कोई विशेष टीका की जाती थी अथवा उसमें कोई सुधार या परिवर्तन किया जाता था तो वह विद्वानों की किसी सभा में उपस्थित करके वादविवाद के पश्चात् स्वीकृत होता था** और यह प्रथा

अब भी प्रचलित है जैसा कि श्री महाराजा साहब जम्मू व कश्मीर ने जो धर्मशास्त्र बनाया है वह बहुत से पंडितों की सम्मति लेने के पश्चात् प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार आश्चर्य नहीं कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रामाणिक ब्राह्मणों के समूह या सभा में स्वीकृत होकर प्रकाशित किये गये हों और ब्राह्मणों के नाम से प्रसिद्ध हुए हों और प्रकट रूप में यह भी एक कारण है कि वह अबतक प्रामाणिक चले आते हैं और उनका आदर-सम्मान वेदों के समान होता है; यहां तक कि सर्वसाधारण जनता में वह वेद का भाग समझे जाते हैं अन्यथा यह बात अनुमान में नहीं आती कि ब्रह्म [वेद] का एक भाग संहिता और दूसरा भाग ब्राह्मण हो। ऐसा विभाजन शाब्दिक और आर्थिक दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है। इसलिये ऐसी अवस्था में ब्राह्मण शब्द के कोश में दिये हुए युक्तियुक्त अर्थों को छोड़कर जो उसको वेद के भाग पर लागू किया जाता है इसके लिये कोई अत्यन्त दृढ़ कारण होना चाहिये और वह नहीं है।

'आम्नाय' तथा विभाग' शब्द की व्याख्या—अब आगे चलिये "**आम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः**" [सूत्र ३४] अर्थात् जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं; क्योंकि जो कुछ वैदिक है उसमें विभाग हैं। इस सूत्र में दो शब्द व्याख्या करने के योग्य हैं "**आम्नातेषु**" जो दूसरे शब्द '**आम्नाय**' से बताया गया है आम्नाय का अर्थ है वेद। और दूसरा '**विभागः**' जिसका अर्थ विभाजन है। अब यदि सूत्र के प्रथम भाग में जो निषेधार्थक शब्द दो स्थानों पर आया है—उसे निकाल दिया जाय तो शेष यह रह जाता है **कि जो कुछ वैदिक है** वह मन्त्र है **अर्थात् मन्त्र ही वेद है**। और यदि इस वाक्य में जो शब्द "आम्नातेषु" आया है उससे अभिप्राय उन शब्दों से लिया जाये जो यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण यज्ञ के समय अवसर के अनुसार बढ़ाते, परिवर्तन करते या निकाल देते हैं तो भी हमारा प्रयोजन नष्ट नहीं होता। **दूसरा वाक्य** जो युक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है—स्पष्ट रूप से हमारे अर्थ का समर्थक है। पहले वाक्य में कहा है कि जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं। **दूसरे में इसका कारण वर्णन किया है कि जो कुछ वैदिक है उसमें विभाग है अर्थात् वैदिक ग्रन्थों का क्रम और विभाग नियत और स्वीकरणीय है**, उसमें अन्य शब्दों के लिये स्थान नहीं और इस विभाग का विस्तार अगले सूत्रों में लिखा है। यदि आक्षेपकर्ता यह कहे कि इस विभाग से अभिप्राय वेदों के दो भागों अर्थात् मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग से है तो हम पूछते हैं कि सूत्र में ब्राह्मण शब्द या उसका समानार्थक कोई

और शब्द कहां है ? अपितु ब्राह्मण आदि के जो शब्द यज्ञ के समय अवसर के अनुसार पढ़े जाते हैं—उनको अवैदिक घोषित किया है । इसके अतिरिक्त यदि इस युक्ति को स्वीकार कर लिया जाये तो इस सूत्र का विषय यहीं समाप्त हो जाता है और इसका अगले सूत्रों के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रहता प्रत्युत अगले सूत्र व्यर्थ और निरर्थक हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि अगले सूत्र भी इसी "विभागः" अर्थात् विभाजन की व्याख्या करते हैं और "**तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था**" इसका अर्थ यह है:—इनमें एक ऋग् है जो अर्थों की व्यवस्था के साथ छन्दों की व्यवस्था रखता है (और मन्त्र भी है) । इस सूत्र में जो बहुवचन में सर्वनाम "तेषां" (उनमें) आया है वह "आम्नातेषु" शब्द को ओर संकेत है जो पहले सूत्र में लुप्त बहुवचन के रूप में प्रयुक्त है । इसके अतिरिक्त कोई और शब्द ऐसा नहीं है जिससे सर्वनाम 'तेषां' का सम्बन्ध जोड़ा जा सके। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पहले सूत्र के दूसरे भाग में जो वेदों के विभाग का वर्णन आया है उससे अभिप्राय यही विभाग है जो विवादास्पद सूत्र और अगले सूत्रों में किया गया है और ब्राह्मण शब्द का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं । इसके अतिरित्त ऋग्वेद की जो परिभाषा की गयी है, वह किसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों पर लागू नहीं होती क्योंकि वह न तो सामूहिक रूप में छन्दोबद्ध हैं और न मन्त्र हैं । अगले सूत्र में सामवेद की परिभाषा यह दी गयी है कि "**गीतिषु सामाख्या**" अर्थात् जो उपर्युक्त लक्षण के अतिरिक्त गाया भी जाता है । "**शेषे यजुः शब्दः**" अर्थात् ऋग् और साम के अतिरिक्त यजुर्वेद है । इससे आगे कई सूत्रों तक **निगदों** पर विचार चला गया है जिन को आक्षेपकर्ता चौथा वेद कहता है । वह विचार हमारे वास्तविक प्रयोजन से सम्बन्ध नहीं रखता इसलिये उसकी उपेक्षा की जाती है। केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि उससे भी यही सिद्ध होता है कि इन समस्त सूत्रों में वेदों के स्वरूप पर विचार किया गया है । इसलिये उपर्युक्त वर्णन और वचनों की शैली तथा स्वयं ब्राह्मणग्रन्थों के विषयों से स्पष्ट निश्चित होता है कि ब्राह्मण वेद नहीं प्रत्युत संहिता ही वेद है । यद्यपि इस विषय में असंख्य प्रमाण विद्यमान हैं परन्तु ढेर में से एक मुट्ठी नमूना अर्थात् जैमिनी जी के प्रमाणों ही पर सन्तोष किया जाता है । आवश्यकतानुसार और प्रमाण फिर उपस्थित किये जायेंगे । इन सूत्रों का प्रमाण विशेषतया इसलिये दिया गया है कि राजा शिवप्रसाद साहब सितारये हिन्द ने जो इस वादविवाद के मानो अगुआ हुए हैं—इन्हीं में से दो सूत्रों पर अपने तर्क को

आश्रित रखा था और उनके लेख पर बहुत से अपरिचित लोग अब तक गर्व कर रहे हैं । अभी कुछ दिन पहले एक पौराणिक पंडित चतुर्भुज नामक ने मैडम ब्लेवेटेस्की की "**थियासोफ़िस्ट**" पत्रिका में एक विज्ञापन छपवाया है जिसमें आपने राजा शिवप्रसाद जी के लेख का प्रमाण देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य को मोल लेने का निषेध किया है। वाह ! इस महात्मा को क्या अच्छी सूझी ! धन्य है ! धन्य है ! आप ने तो वेदों को छुपाते-छुपाते वह अवस्था उत्पन्न कर दी कि ईश्वर की शरण ! और जब दूसरे व्यक्ति ने प्रकाशन पर कमर बांधी तो यह विरोध ! इस प्रकार का विज्ञापन भी आजतक किसी पत्रिका या समाचारपत्र में छपा नहीं देखा ।

अन्य प्रमाण—अन्त में **पूर्वमीमांसा के प्रथम अध्याय** के दूसरे पाद के ३१ से लेकर ५३ तक सूत्र भी अवलोकनीय हैं। इनमें आक्षेपकर्ता ने वेदों अर्थात् संहिता के विषय में बहुत से आक्षेप किये हैं और जैमिनीजी ने उन के उत्तर दिये हैं। इन आक्षेपों में एक यह भी है कि चूंकि मन्त्रों के अर्थ समझ में नहीं आ सकते हैं इसलिये मन्त्र निरर्थक और व्यर्थ हैं। इसका एक उत्तर जैमिनी जी यह देते हैं कि **चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान हैं इसलिये इनके अर्थ भलीभांति समझे जा सकते** हैं। देखो सूत्र ५३ '**विधिशब्दाश्च**"। सारांश यह कि समस्त आक्षेपों और उत्तरों के क्रम से निश्चित होता है कि संहिता ही ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक है और ब्राह्मणग्रन्थ उसका व्याख्यान हैं। हां, यह बात अवश्य है कि ब्राह्मणग्रन्थ भी प्रामाणिक और आदर के योग्य हैं; परन्तु वहीं तक जहांतक उनका मन्त्रों से विरोध न हो। इसका निर्णय भी जैमिनी जी ने ही कर दिया है—

"**मन्त्रतस्तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः ।**"

(पूर्व मीमांसा अध्याय ५, पाद १. सूत्र १६) । इसका अर्थ यह है कि विरोध की अवस्था में मंत्र प्रधान है; क्योंकि मन्त्र अपने आप में प्रमाणित है और इसी से कर्म की पूर्णता होती है; इसलिये वह अर्थात् 'ब्राह्मण' कर्म का प्रकाशित करने वाला है। इससे स्पष्ट प्रकट है कि मन्त्र को ब्राह्मण पर प्रधानता है अर्थात् मंत्र मुख्य है और ब्राह्मण गौण और मन्त्र बिना कर्म प्रयोगरूप सिद्धि नहीं होती। इसी से हमारे आचार्य्यों ने मन्त्र को अन्तरंग और ब्राह्मण को बहिरंग कहा है। मानो कि एक प्राण है और दूसरा शरीर। एक स्वतःप्रमाण है और दूसरा परतःप्रमाण।

और जो हमारी योग्य सभा ने मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक का **प्रमाण देकर** उससे यह सिद्ध करना चाहा है कि ब्राह्मणग्रन्थों का उपनिषद्

भाग वेद के समान है— इसमें वह सफल नहीं हुई। **"एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्। विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥"** इस श्लोक का अर्थ यह है कि वन में रहकर इस दीक्षा तथा अन्य दीक्षा का सेवन करे और आत्मा की शुद्धि तथा मन को पवित्रता के लिये उपनिषदों में जो श्रुति अर्थात् वेद के मन्त्र हैं या जो मन्त्र ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित हैं—उनका सेवन करे अर्थात् उनको पढ़े और विचारे। यह श्लोक वानप्रस्थाश्रम के विषय में है, इसमें उपनिषद् शब्द विशेषण है और श्रुति शब्द विशेष्य; अर्थात् इसका अर्थ हुआ—"जो श्रुतियां (वेदमन्त्र) उपनिषदों में आती हैं।" चूँकि वानप्रस्थाश्रम आत्मा की शुद्धि और मोक्ष के लिये धारण किया जाता है और **उपनिषदों में प्रायः इसी** उद्देश्य के चुने हुए मन्त्र लिखे हैं; इसलिये मनु जी ने इन मन्त्रों की ओर विशेष ध्यान दिलाया है।

'मनुस्मृति के समान अन्य स्मृतियां भी माननीय हैं या नहीं ?—प्रतिष्ठित सभा में इस विषयक दो वचन प्रमाणरूप से स्वीकार किये गये और उनमें से एक यह है—**स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयं एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते।"**

हे मेरी प्रिय सभा! इसमें कहां लिखा है कि सब स्मृतियां या अमुक-अमुक स्मृति मानने के योग्य हैं। इस वचन में जो स्मृति शब्द आया है उसके अर्थ तो स्मरणशक्ति के हैं और उसको स्मृति-पुस्तकों पर कदापि लागू नहीं किया जा सकता। इस वचन के अर्थ स्पष्ट है अर्थात् स्मृति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (इतिहास), अनुमान—इन चारों से आदित्यमण्डल के भेद जाने जाते हैं। यदि यहां 'स्मृति' शब्द का अर्थ समस्त स्मृतियां किया जायें तो यह वचन समस्त स्मृति-पुस्तकों से पीछे का बना हुआ ठहरता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्यों ?

दूसरा वचन मनुस्मृति का है और वह यह है:—"वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।"

हे मेरी अन्वेषिणी सभा! मनुस्मृति तो आदिस्मृति गिनी जाती है, भला इसमें पीछे को बनी हुई स्मृतियों का वर्णन क्योंकर आ सकता था? मनुजी ने तो सार्वजनिक शिक्षा के रूप में एक पूर्ण सिद्धांत का वर्णन किया है कि वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है और जो वेद को जानते हैं उनका वचन और कर्म जो वेद की शिक्षा पर आधारित है -सत्यधर्म का मूल है।

अभिप्राय यह है कि समस्त धर्म का आरम्भ वेद से होता है और—**जो वेद को जानकर उसकी आज्ञाओं के पालन से अपने मन और मस्तिष्क को उज्ज्वल कर लेते हैं और विद्या तथा आचार का एक जीवित तथा प्रभावशाली उदाहरण हैं—उनकी शिक्षा, वचन और स्वभाव भी धर्म के बोधक हैं।** जो लोग स्वयं वेद नहीं जान सकते—वह ऐसे लोगों की शिक्षा और संगति से लाभ उठावें।

अब हम दो-एक प्रमाण नमूने के रूप में अपनी ओर से उपस्थित करते हैं ताकि वास्तविक स्थिति और भी अधिक प्रकट हो जाये। प्रथम देखो पूर्वमीमांसा अध्याय पहला, पाद ३, सूत्र ३—**"विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्"**। इसका अर्थ यह है कि श्रुति के विरुद्ध जो स्मृति हो वह त्याग करने योग्य है और जो अनुकूल हो वह मानी जा सकती है। वास्तव में समस्त स्मृतियों को पूरा-पूरा मानने का कोई मनुष्य दावा नहीं कर सकता क्योंकि इनमें इतने विरोध पाये जाते हैं कि उनका समाधान कठिन है। ऐसी अवस्था में यही हो सकता है कि या तो वह पूर्णतया अस्वीकृत किये जायें या जैमिनी जी के इस व्यापक सिद्धान्त पर आचरण किया जाये कि **जो कुछ वेद और बुद्धि के अनुकूल पाया जाये वह माननीय और शेष अमाननीय ठहराया जावे।**

फिर देखो मनु जी क्या कहते हैं—

"या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥"

(अ० १२, श्लोक ९५,९६)

इनका अर्थ यह है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हैं और जो-जो नवीन और नास्तिक मत है— वह सब निकम्मे और तमोगुण से भरे हैं क्योंकि वेद से बाहर जो वचन है वह मनुष्य का बनाया हुआ और नाशवान् है और इसलिये प्रमाणित और मानने योग्य नहीं हो सकता। इससे प्रकट है कि सभी स्मृतियां पूर्णतया माननीय नहीं हो सकतीं। हां, इनका जो बचन वेद पर आधारित हो और जो बुद्धि तथा विवेक के अनुकूल हो, उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जैसे—**श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा।"** अर्थः—

जहां वेद और स्मृति और पुराण इन तीनों में विरोध हो वहां वेद ही प्रमाण माना जाता है और स्मृति और पुराण के विरोध की अवस्था में स्मृति को विशेषता है ।

दूसरा प्रश्न:—पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने दूसरा प्रश्न यह किया कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्तियों की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि और गंगा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में तथा क्षेत्रों में स्नान और वास शास्त्र के अनुसार उचित है या नहीं ?

उत्तर—इसका पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह उत्तर दिया कि यह सब शास्त्रानुसार वैध हैं । इसकी सिद्धि में ऋग्वेद में यह लिखा है—"तव श्रियै मरुतो मार्ज्जयंति रुद्र यत्ते जनि चित्रम् ।" इसके अनुसार शिवलिंग की मूर्त्ति की पूजा स्थापना आदि से पूजन का फल होता है। इसका अर्थ यह है—"हे रुद्र ! यत् यस्मात् तव जनि जन्म चारु मनोज्ञं चित्रं च कर्माधीनत्वेन जीवजनिविलक्षणं तस्मात् तव त्वत्तः श्रियै ऐश्वर्य्यप्राप्तये लिंगरूपं त्वां मरुतो देवाः मार्ज्जयन्ति गंगादितीर्थेऽभिषेचयंतीत्यर्थः । अभिषेचनमस्य लिंगादिरूपप्रतिमायामेव सम्भवात्, लिंगस्य प्रतिसिद्धिः ।"

अर्थात् हे रुद्र ! जब आपका जन्म आपकी इच्छा पर निर्भर है तब आपका जन्म और जीव के जन्म से विलक्षण प्रकार का है अर्थात् आप कर्मों के वश नहीं; इसलिये देवता अपने कल्याण के लिये आपके लिंग की स्थापना करके उसका पूजन करते हैं । स्थापना करना विना लिंगादि रूपों के असम्भव है । इसलिये लिंगादि की मूर्त्ति का पूजना स्वयंसिद्ध हुआ ।

और रामतापनी उपनिषद् में भी साफ-साफ लिखा है कि—"अविमक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिव । क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन[1] मां शिवं ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।" अर्थात् रामचन्द्र जी शिवजी से कहते हैं कि हम तुम्हारे क्षेत्र अर्थात् काशी में सबकी मुक्ति के लिये पत्थर की मूर्ति में विद्यमान हैं । जो हमारी पूजा पत्थर की मूर्तियों में करते हैं उनको ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त कर देते हैं इसमें कुछ सन्देह न समझो । बृहज्जाबाल उपनिषद् के इस वाक्य से भी कि "शिवलिंगसिसन्ध्यमभ्यर्च्येति" । शिवलिंग की पूजा स्पष्ट सिद्ध होती है ।

और मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में भी "नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृ-तर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ।।" और "देवलस्मृति" में भी लिखा है:—"अस्नात्वा नैव भुञ्जीत ह्यजप्त्वाग्निमपूज्य च । शालि-

---

[1] इस सारे प्रकरण में उद्धृत उद्धरणों का पाठ बहुत अशुद्ध है ।

ग्रामं हरे चिह्नं प्रत्यहं पूजयेद् द्विजः ।। भास्करं गणपञ्चास्मिं शंखञ्चैव सरस्वतीम् । महालक्ष्मीं महादुर्गां नित्यं विप्राणामर्चयेत् ।। शालिग्रामशिलातीर्थे पिबेद्यो मनुजोत्तमः । तस्य पापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यादिकानि च ।।"

और ऋग्वेद के गृह्य परिशिष्ट में भी लिखा है कि—"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वास्कन्दो वा विनायको वा न्यस्ता वा ईज्यंते ।"

और बौधायन सूत्र में भी लिखा है—"महादेवं महापुरुषं वार्चयेत्" इत्यादि ।

इसी प्रकार और बहुत-सी विभिन्न पुस्तकों से सिद्ध होता है कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि की पूजा उचित है और पूजा न करने से पाप होते हैं जैसा कि नीचे धर्मशास्त्र का प्रमाण है—यदि विप्रः सनत्सम्ये हे वतार्चनाजाद रात् स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्र लाभा । स काशदिविप्रथे प्राम्यश्चि समुदाहृतम् । ब्रह्म कृच्छ्रं चरेदेव दिनेकसिन् द्विजोत्तमः । पर्ण कृच्छ्, वर्ष त्यागे उदुम्बरम् । शालिग्रामशिला नास्ति यत्रचैवामृतोद्भवा । श्मशानसदृशं गेहं स विप्रः पंक्तिदूषक ।। यह गौतमस्मृति के श्लोक हैं । इनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि जो मूर्तिपूजन न करेगा उसको जबतक कि सूर्य्य, चन्द्र और तारागण स्थित हैं–तब तक नरक में रहना पड़ेगा । उसका प्रायश्चित्त यह है कि यदि एक दिन पूजन न करे तो "ब्रह्मकृच्छ्र" प्रायश्चित्त और यदि एक मास न करे तो "पर्णकृच्छ्र" प्रायश्चित्त करे और यदि वर्ष भर न करे तो "उदुम्बरकृच्छ्र" प्रायश्चित्त । जिसके घर में शालिग्राम की मूर्ति और शंख नहीं हैं वह घर श्मशान के समान है । इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने और भी बहुत से प्रमाण उपस्थित किये जो स्थान पर्याप्त न होने के कारण छोड़ दिये जाते हैं ।

फिर यह कहा कि यदि स्वामीजी रामतापनी और बृहज्जाबाल उपनिषद को कि—जिनमें पूजन लिखा है—दश उपनिषदों में गणना न किये जाने के कारण स्वीकार न करें तो देखो स्वामी जी ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में कैवल्योपनिषद् का प्रमाण दिया है, वह भी दश उपनिषद् से बाहर है । उदाहरणार्थ सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३ में लिखा है—"स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट् । स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः इत्यादि ।" यह कैवल्योपनिषद् का वचन है । इसलिए जबकि उन्होंने कैवल्योपनिषद् को–जो दश उपनिषद् से बाहर है—स्वीकार कर लिया तो फिर उनको शेष और उपनिषद् भी मानने पड़ेंगे । तो बस रामतापनी और बृहज्जाबाल आदि उपनिषद् सब समान हैं ।

और यदि कहो कि श्रुति और स्मृति में तो मूर्तिपूजन का वर्णन है ही नहीं

फिर मूर्तिपूजन क्योंकर हो सकता है ? तो यह बात ठीक नहीं हैं क्योंकि सामवेद के ब्राह्मण के पांचवें अनुवाक के दसवें खंड में साफ-साफ यह लिखा है—"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसंति रुदंति गायन्तीत्यादि" इनसे देवताओं का मन्दिर और उनमें देवताओं की मूर्ति सिद्ध हुई। परन्तु दयानन्द सरस्वती जी इस वचन के विषय में कहते हैं कि यहां देवताओं के मन्दिर और देवताओं की मूर्ति से अभिप्राय ब्रह्मलोक से है। स्वामीजी के इस कथन से स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने इस श्रुति के अर्थ लगाने में विचार नहीं किया। इस श्रुति में जो शब्द (परन्दिव) है यदि उसके अर्थ ब्रह्मलोक के लगावें तो "अन्वेति" शब्द कि जिसके अर्थ 'देखकर' हैं किस प्रकार से उपयुक्त हो सकता है ? क्योंकि जब दोनों शब्दों के अर्थ मिलकर 'ब्रह्मलोक' देखकर हवन आदि शान्ति करता हुआ तब यह किस प्रकार हो सकता है क्योंकि हम इस लोक के रहने वाले ब्रह्मलोक को किसी प्रकार नहीं देख सकते। तब हम नहीं जानते कि स्वामीजी इस श्रुति के अर्थ ब्रह्मलोक की प्रतिमा क्योंकर लगाते हैं। "परन्दिव" शब्द के अर्थ ब्रह्मलोक के कदापि नहीं हैं। इससे भूलोक के रहने वाले वैष्णव आदि से ही अभिप्राय है और यही अर्थ यहां उचित हैं। देखो सायणाचार्य ने भी अपने भाष्य में यही अर्थ लगाये हैं:—"वक्ष्यमाणाद्भुत वामधिकारो परंदिव उत्कृष्टां वैष्णवीं दिशं अकीर्णं होमार्थं वर्तते प्रवर्तद्गति ॥"

इसी खंड में "खननात् दहनात् इत्यादि भूमिशुद्धचतेत्यंत" इस लेख से पृथिवी का खोदना आदि पाया जाता है। दयानन्द स्वामीजी यह कहते हैं कि इसी अनुवाक के सातवें खंड में "स पृथिवीं अन्वावर्तते" यह लिखा है। इसमें पृथिवी शब्द दिखलायी देता है और इससे पहले पृथिवी शब्द कहीं नहीं पाया जाता; पृथिवी शब्द का प्रयोग यहीं समाप्त हो गया। यह उनका कहना ठीक नहीं क्योंकि दसवें खंड में भी "भूमि" शब्द आया है और मनुस्मृति में भी लिखा है:—"सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ (८।१८) संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः। प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥" (९।२८५) इन श्लोकों के अनुसार दो ग्रामों के बीच में एक देवता का मन्दिर बनाना उचित है और जो कोई पत्थर आदि की मूर्ति उसमें न रखे उस पर पांच सौ रुपया जुर्माना होना आवश्यक है। इस बारे में स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि प्रतिमीयते अनेनेति व्युत्पत्त्या" प्रतिमा शब्द के अर्थ भारतोलने के हैं अर्थात् भार तोलने के बाटों का नाम "प्रतिमा" है। स्वामीजी के इस कहने से स्पष्ट प्रकट है कि उन्होंने मीमांसाशास्त्र नहीं देखा है। देखो पूर्वमीमांसा में रथ के बनाने वाले के बारे में लिखा है:—"वचनाद्रथकारस्य इत्यादि

वर्षासु रथकारोऽग्निमादधीतेति ।" वेद के इस वचन में जो "रथकार" शब्द है उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"रथं करोतीति रथकारः ।" इस प्रकार व्युत्पत्ति करके इसके अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं ऐसा नहीं समझना चाहियें क्योंकि ऐसा समझने से उसके केवल यौगिक अर्थ हो जायेंगे । इस शब्द के कोष में दिये हुए अर्थों से एक नीच जाति का व्यक्ति अभिप्रेत है । यदि इसको छोड़कर इसके यौगिक अर्थ अर्थात् 'रथ का बनाने वाला' लिये जावें । तो चारों वर्ण के लोगों से अभिप्राय हो जाता है । इसलिए पूर्वमीमांसा के रचयिता जैमिनी ने भी यही निश्चित किया है कि जहां कोष के अर्थ होते हों वहां यौगिक अर्थ न लिये जावें । इसलिये "प्रतिमा" शब्द के कोष में दिये हुए अर्थ—पत्थर की मूर्ति के अतिरिक्त और कोई यौगिक अर्थ लेना उचित नहीं होगा । कोष के अर्थों को छोड़कर यदि केवल यौगिक अर्थ लें तो—"अग्निर्नष्टः अग्निरुत्पन्नः इत्यादि" वाक्यों में यह व्युत्पत्ति करके अग्नि शब्द का विशेष अर्थ—'जलाने वाला' छोड़ कर इन्द्र आदि देवता के भी समझा जायेगा । क्योंकि (यौगिक तो) यही अर्थ हो सकते हैं । इसलिए देवताओं की मूर्ति और उनकी पूजा करना सब श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार उचित है ।

यजुर्वेद संहिता में श्राद्ध के विषय में यह लिखा है कि:—"निवीतम्मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणाम्"[१] इससे प्राचीनावीत अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर (लटका) करके[२] पितृकर्म करना प्रकट होता है। इसमें जो "पितृणां" शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है इससे मरे हुए माता-पिता का श्राद्ध पाया जाता है । जब एक मनुष्य जीवित है तो उस समय उसका केवल एक पिता होता है परन्तु मरने के पश्चात् पिता के समान पितामह, प्रपितामह को भी शास्त्र के अनुसार "पितृणां" (शब्द से वाच्य) कह सकते हैं। इसलिए इस वेद वचन में जो "पितृणां" शब्द आया है उससे मृतकश्राद्ध आदि ही अभिप्रेत है, देखो:—"मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालः कोटिजन्मसु" स्मृतियों में भी इसका यह अर्थ है कि जो मरे हुए लोगों का मरने के दिन श्राद्ध आदि नहीं करता है वह सहस्रों पीढ़ियों तक चाण्डाल की योनि में उत्पन्न होता है। ऊपर लिखा हुआ वचन देवल स्मृति का है। "मनु" भी लिखते हैं:—"पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ।।" (मनु ३-१२२) अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अमावस्या के दिन अपने पिता आदि के श्राद्ध का करना अत्यन्त आवश्यक है । और 'न निवर्तयति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ।

---

[१] 'जैमिनीयन्यायमालाविस्तार' में दिया हुआ है । —सम्पा०

[२] देखो मनुस्मृति अ० २२ श्लो० ६३ ।—सम्पा.

इन्दु क्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्त् सः ।। जो नहीं करता वह ऐतरेय स्मृति के इस वचन के अनुसार पापी होता है । इसलिये यह बात स्पष्ट रूप से निश्चित हो गयी कि मरे हुओं का श्राद्ध-तर्पण, श्रुति और स्मृति दोनों के अनुसार–विहित है । ऋग्वेद संहिता १०-७५-५ में तीर्थ के विषय में लिखा है:––"सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतंति । ये वै तन्वा विसृजन्ति धीराः ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते" "यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती, इमम्मे गंगे यमुने इत्यादि ।" इसमें "गंगा यमुने" आदि शब्दों से प्रकट होता है कि गंगा आदि तीर्थस्नान करने से स्वर्ग होना और पाप से छूटना अभिप्रेत है । मनुस्मृति में लिखा है कि:––"यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः । तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः ।" इसका यह अर्थ है कि झूठ बोलने के पाप से छूटने के लिए गंगास्नान और कुरुक्षेत्र-वास करना चाहिये । तीर्थ-क्षेत्रों के बारे में और भी बहुत से प्रमाण हैं । इसलिये गंगा आदि का स्नान और कुरुक्षेत्र-आदि का वास श्रुति और स्मृति दोनों से सिद्ध है ।

इसके पश्चात् श्री तारानाथ वाचस्पति ने मूर्ति-पूजन को उपनिषदों के अनुसार सिद्ध करना आरम्भ किया । उनका वर्णन बहुत बढ़ने लगा और इधर सायं समय होता जा रहा था; इस कारण से महेशचन्द्र न्यायरत्न ने तारानाथ जी को एक पर्चा लिखकर दिया कि यद्यपि आप इस बारे में कई दिन तक बोल सकते हैं परन्तु आज समय बहुत कम और काम बहुत अधिक है । यद्यपि तारानाथ जी को बहुत कुछ कहना था परन्तु महेशचन्द्र जी के कहने से अपना भाषण समाप्त करके कहने लगे कि अभी मुझको इस बारे में बहुत कुछ कहना शेष है ।

"आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर"—ब्राह्मणों और स्मृतियों पर विचार के पश्चात् अब हम दूसरे प्रश्न की ओर आकृष्ट होते हैं कि क्या शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्ति और शिवलिंग की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि उचित है या नहीं ? और गगा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के स्नान और वास से पाप की निवृत्ति और मुक्ति होती है या नहीं ?

उत्तर—यद्यपि इस बारे में पहले भी पर्याप्त तर्कवितर्क हो चुके हैं और कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त युक्तियों या शास्त्र के प्रमाणों से किसी ऐसे दावे को सिद्ध नहीं कर सका परन्तु चूंकि अब इन बातों का विचार एक ऐसी विद्वानों की सभा में हुआ है जिसका उदाहरण भारत के इतिहास में पाया नहीं जाता । इसलिये उचित नहीं कि इस सभा के निर्णय

की समीक्षा किये विना यों ही छोड़ दिया जाये। **विचार आरम्भ करने से पहले इस बात का वर्णन करना आवश्यक** है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती–जिनके वचनों के खण्डन के लिये इस सभा का आयोजन हुआ था– इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं। **विदित रहे कि वह अपने तर्क-वितर्क का आधार वेद आदि सत्यशास्त्रों पर रखते हैं** और उन सत्यशास्त्रों को हमारी विद्वानों की सभा भी स्वीकार करने योग्य समझती है और स्वामी जी के लेखों में स्थान–स्थान पर उनका प्रमाण पाया जाता है। स्वामीजी कहते हैं कि सत्यशास्त्रों में मूर्तिपूजन आदि नहीं लिखा। ऐसी अवस्था में उचित तो यह था कि उन्हीं शास्त्रों के प्रमाणों से स्वामीजी के वचनों का खंडन किया जाता परन्तु इसके स्थान पर इधर-उधर के प्रमाण दिये गये हैं और यदि कहीं किसी सत्यशास्त्र का प्रमाण भी दिया है तो उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। अब हम उत्तर आरम्भ करते हैं।

शिवलिंग और मूर्तिपूजन—“**तव श्रियै मरुतोमार्ज्जयन्ति रुद्र यत्तेजनिमचारुचित्रम्**”—इस वचन से हमारी श्रेष्ठ-मस्तिष्क सभा शिवलिंग को पूजा सिद्ध करती है! और इसका अर्थ भी प्रमाण के रूप में उपस्थित किया गया है परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि (इस वचन से) शिवलिंग की पूजा कहां से निकलती है और उसके सिद्ध करने के लिये सीधे सादे अर्थ को छोड़कर क्यों इतना कष्ट उठाया गया है। शब्दों के अर्थ तो स्पष्ट रूप से यह हैं कि ‘**हे रुद्र! तेरी सृष्टि अथवा प्रकाश विचित्र चित्ताकर्षक और आश्चर्यजनक है; इसलिये देवता लोग तेरी महिमा के लिये उसको शुद्ध कर रहे हैं** (अर्थात् तेरी महत्ता को प्रकट कर रहे हैं या तेरी स्तुति और प्रशंसा उच्च स्वर से कर रहे हैं)’। भला! अब बताइये कि आपके भाष्यकार ने “**मार्जयन्ति**” शब्द पर जो टिप्पणियां की हैं उनको कौन मान सकता है? क्या देवताओं का कल्याण इसी पर निर्भर है कि परमात्मा की सच्ची पूजा छोड़कर लिंग आदि स्थापन करके उसका पूजन गंगा आदि तीर्थों के पानी से करें? वास्तव में उक्त ‘मार्जयन्ति’ शब्द “**मृज**” धातु से बना है जिसके अर्थ हैं **पवित्र करना, शब्द करना, सजाना**। देवता और लिंग की पूजा भला (इन दोनों का सम्बन्ध) यहां कब सम्भव है? यदि हमारे अर्थ आपकी दृष्टि में ठीक न हों तो आप को कोई और अच्छे अर्थ खोजने पड़ेंगे या इस प्रमाण का ही त्याग करना पड़ेगा क्योंकि **आजकल के देवता आपके शिवलिंग की पूजा से घृणा करने लगे हैं** और प्राचीन ऋषि-मुनियों के ढंग पर केवल सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही

की पूजा को **अपनी मुक्ति** का कारण समझते हैं। हां, यदि शिवलिंग से कल्याण या कल्याणस्वरूप परमात्मा का अनुमान करने वाला गायत्री आदि मंत्र, या **कोई और** साधन—जो वेद और बुद्धि के अनुकूल हो—लिया जाये तो उसका सेवन तीन काल क्या यदि दिन भर भी करो तो कुछ हानि नहीं। परन्तु यह नहीं कि जिस वस्तु का नाम लेने से शिष्ट जनों को घृणा होती हो, उसका चिह्न बनाकर व्यापार (लेन-देन) के लिये उसकी पूजा की जाये।

मूर्तिपूजा के बारे में अप्रामाणिक उपनिषदों और स्मृतियों आदि के जो प्रमाण दिये गये है उनके विषय में तर्क करना व्यर्थ है क्योंकि जब हम इन मूल पुस्तकों को ही प्रामाणिक नहीं मानते तो उनके प्रमाणों को कब मान सकते हैं! इसलिये ऐसे प्रमाणों का उपस्थित करना ही व्यर्थ था। इसके अतिरिक्त इन पुस्तकों में मूर्तिपूजा आदि के खंडन के भी बहुत प्रमाण पाये जाते हैं जिनका वर्णन आगे किया जायेगा और फिर हम जैमिनी जी और मनुजी के वचनों से ऊपर सिद्ध कर आये हैं कि स्मृतियों आदि के जो **वचन वेद के अनुकुल नहीं वह स्वीकार करने योग्य नहीं।** जिस देश में और जिस घर में विद्या का प्रकाश नहीं है वह निस्सन्देह, दीपकरहित घर के समान है। जब शरीर से आत्मा निकल जाती है तो वह जलाने या गाड़ने के योग्य हो जाता है। जिस आत्मा में परमात्मा का प्रेम और सत्य का प्रकाश प्रकाशित नहीं, वह अविद्या, अन्धकार और दुःख में फंसी रहती है। परन्तु इस बात को कभी श्रेष्ठ बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती कि जिस घर में शालिग्राम या शिवलिंग नहीं वह श्मशान के समान है। हमारी विदुषी सभा यह भी कहती है कि स्वामीजी ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये **'कैवल्योपनिषद्' का** प्रमाण दिया है और यह दश उपनिषदों से बाहर है; इसलिए जब उन्होंने कैवल्योपनिषद् को स्वीकार कर लिया तो फिर उनको शेष और उपनिषदें भी माननी पड़ेंगी। यह एक विचित्र प्रकार का तर्क है! भला, यदि हम पुराणों से मूर्तिपूजन के खंडन में कोई प्रमाण दें, जैसा कि देंगे ही—तो क्या इससे यह आवश्यक होता है कि हमने सब पुराणों को मान लिया? किसी विशेष बात के समर्थन या उसकी सिद्धि के लिये **किसी पुस्तक से वचन-विशेष का प्रमाण देने से यह परिणाम**

कदापि नहीं निकलता कि प्रमाण देने वाले ने, उस पुस्तक को और अन्य बीसियों पुस्तकों को भी सामूहिक रूप से प्रामाणिक मान लिया है।

"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वा स्कन्दो वा विनायको वा व्यस्ताः समस्ता वा ईज्यन्ते।" यह वचन भी (यदि इसके वही अर्थ लिये जांय जो हमारी इस अत्यन्त समझदार सभा के मस्तिष्क में हैं) वैसा ही वेद की शिक्षा के विरुद्ध है जैसे कि अन्य अप्रामाणिक प्रमाण हैं—जिनपर निर्भर किया गया है। हमारी समझ में नहीं आता कि **इतने बड़े ऋग्वेद को छोड़ परिशिष्टों और टिप्पणियों की ओर क्यों ध्यान दिया गया है**। यदि ऋग्वेद जिसका पाठ (जिसकी मंत्र संख्या) दस हजार के लगभग है और जो सृष्टि की वास्तविकता और उसके प्रबन्ध और उसकी क्रमिकता के सिद्धान्त की एक प्रतिलिपि है—आपके दावे का समर्थन नहीं करता जो इधर-उधर भाग दौड़ करने से क्या कुछ मिल सकता है। जो बौधायन सूत्र का प्रमाण दिया गया है—उसके शब्दों से तो महादेव महापुरुष अर्थात् **परमात्मा की पूजा प्रकट होती है**; इसमें शिवलिंग आदि की कोई चर्चा नहीं।

"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति गायन्तीत्यादि"। इस वचन से मूर्तिपूजन कदापि सिद्ध नहीं होता और न इसमें पूजा की कुछ चर्चा है। हमको ज्ञात नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी इसका क्या अर्थ करते हैं' परन्तु यदि आक्षेपकर्ता के कथनानुसार वह इस वचन का सम्बन्ध ब्रह्मलोक से जोड़ते हैं (यद्यपि उनकी रचनाओं और लेखों में ऐसा नहीं देखा गया) तो कुछ पाप नहीं करते। वचन की भाषा को आगे पढ़ने से प्रकट होता है कि वह सत्य पर हैं। यदि आपको यह अर्थ पसन्द नहीं तो भला कहिये कि आप और आपके भाष्यकार ने "परन्दिव" शब्द के जो अर्थ इस भूलोक के रहने वाले वैष्णव आदि लिखे हैं वह क्योंकर स्वीकरणीय हो सकते हैं? जब कोष में या व्युत्पत्ति द्वारा भी इस शब्द के यह अर्थ ही नहीं हैं; तो समझ में नहीं आता कि वैष्णव आदि मत से इसका सम्बन्ध क्यों जोड़ा गया है? यदि हमारी प्यारी सभा इच्छा से या अनिच्छा से इन्हीं अर्थों पर डटी रहना चाहती है तो और मत वालों को—अर्थात् शिव, शक्ति, गणपति, भैरव आदि के उपासकों को और उस सत्यवक्ता कबीर और ईश्वरभक्त नानक के अनुयायियों को भी यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वे उक्त शब्द का सम्बन्ध अपने-अपने मत से जोड़े क्योंकि सब अपने-अपने मत को

---

१. ऋ० द० ने काशी-शास्त्रार्थ में इस प्रकरण का विवेचन किया था।

उत्तम और सर्वोपरि जानते हैं। वास्तव में "परंदिव" शब्द के यहां वे अर्थ उपयुक्त नहीं हैं जो हमारी विदुषी सभा स्थापित करना चाहती है। अब रही यह बात कि इस वचन में देवताओं के आयतन और देवताओं की मूर्ति का वर्णन है—सो विदित रहे कि इन शब्दों से देवता की मूर्ति का पूजन सिद्ध नहीं होता। यदि लेखक को मूर्तिपूजन को वैध सिद्ध करना अभीष्ट था तो उसको इस वचन में दो-एक शब्द और बढ़ाकर अपने उद्देश्य को प्रकट कर देने में क्या बाधा थी? इस प्रकार के शब्द तो उन लोगों की पुस्तकों में भी पाये जाते हैं जो मूर्तिपूजन को महापाप और परमात्मा का अपमान समझते हैं जैसे जबरईल फरिश्ता और उसका मकान बेरी[1] का वृक्ष आदि-आदि। इसके विषय में कुछ आगे भी लिखा जायेगा।

"**खननात् दहनात् इत्यादि भूमिः शुध्यते इत्यन्तम्**" इस वचन की भी वही दशा है जो ऊपर अन्य वचनों की वर्णन की है; इसकी व्याख्या की कुछ भी आवश्यकता नहीं। पृथिवी आदि खोदना कुछ मूर्तिपूजन का प्रमाण नहीं हो सकता।

अब रहा मनुस्मृति का प्रमाण—"**सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च॥ संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः। प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च॥** इन तीनों पंक्तियों में से पहली पंक्ति तो मनुस्मृति के आठवें अध्याय के श्लोक संख्या २४८ की दूसरी पंक्ति है; जिसका अर्थ यह है कि (ग्राम की) सीमा के मिलने के स्थान पर देवस्थान बनाना चाहिये। यहां कई श्लोकों में सीमाओं पर चिह्न लगाना और सीमाओं के झगड़े का निर्णय तथा सीमाओं को पहचानने के चिन्हों का वर्णन है। इसलिये उक्त श्लोक की पहली पंक्ति में[2] तालाब, कूप, बावली और झरने के समानार्थक (संस्कृत) शब्द विद्यमान हैं जो उसी अभिप्राय से प्रयुक्त हुए हैं—जिससे देवस्थान हुआ है। वास्तव में **यहां देवस्थान से अभिप्राय किसी पवित्रगृह**—जैसे, पाठशाला या यज्ञस्थान या धर्मशाला आदि से है; सीमासन्धियों पर ऐसे स्थान होंगे तो लोग सीमाभंग करने से डरते रहेंगे। फिर इस शब्द को मूर्तिपूजन का प्रमाण मानना केवल मात्र महर्षि मनु का अपमान करना है! ईश्वर की शरण, कहां सीमा का बांधना और कहां मूर्तिपूजन? **अन्तिम दो**

---

[1] **मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि सातवें आसमान पर एक बेरी का वृक्ष है उससे आगे जबरईल फरिश्ता नहीं जा सकता।—अनुवादक।**

[2] **तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च। (मनु-८।२४८)—सम्पा.**

पंक्तियां—मनुस्मृति के नवें अध्याय के श्लोक संख्या २८५ की हैं। अर्थ यह है कि जो व्यक्ति **पुल, ध्वजा और पानी के ऊपर आने-जाने के साधनों बांटों या नापने के साधनों की हानि करे वह पांच सौ रुपया जुर्माना दे** और उस हानि को पूरा करे। इसमें विचारणीय शब्द केवल 'प्रतिमा' शब्द है। औचित्य तो यह चाहता है कि इसके अर्थ बाट आदि के हों (साथ[1] ही के अगले दो श्लोकों में इसी प्रकार से शुद्ध वस्तुओं में मिलावट करने और उनके बिगाड़ने के लिये और समान मूल्य देने वालों में से एक को अच्छी और दूसरे को बुरी वस्तु देने तथा मूल्य में छल करने आदि के लिये दंड निर्धारित किया गया है) परन्तु हमारी प्यारी सभा यह कहती है कि इस शब्द के प्रसिद्ध अर्थ मूर्ति के हैं और प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर यौगिक अर्थ लेने अनुचित हैं। और इस कथन के समर्थन में जैमिनी मुनि का एक वचन भी उपस्थित किया गया है। यह युक्ति प्रकटतया कुछ मूल्य रखती है **परन्तु जो लोग किसी भाषा के साहित्य से परिचित हैं वह इसको पूर्ण (अटल) नियम के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। बहुत स्थान ऐसे होते हैं जहां प्रसिद्ध अर्थ को छोड़कर यौगिक अर्थ ही लिये जाते हैं।** हां जहां प्रसिद्ध अर्थों से काम निकलता हो वहां इच्छा अथवा अनिच्छा से यौगिक अर्थों का लेना व्यर्थ है। यही अभिप्राय जैमिनी जी का है; अन्यथा वह वचन समस्त व्यावहारिक और यौगिक अर्थों का मिटाने वाला ठहरता है। हमारी भोली सभा ने जो "रथकार" आदि शब्द का उदाहरण देकर अपना मीमांसाज्ञान प्रकट किया है उससे कोई दृढ़ निष्कर्ष नहीं निकलता। यद्यपि रथकार' आदि शब्दों के भी यौगिक अर्थ लिये जा सकते हैं परन्तु प्रतिमा' शब्द के यौगिक अर्थ लेने से यह आवश्यक नहीं हो जाता कि इन शब्दों या सारी भाषा के शब्दों के अवश्य यौगिक अर्थ ही लिये जायें। प्रत्येक स्थान पर अवसर और प्रकरण को देखा जाता है। विचारणीय वचन में **औचित्य और आगामी प्रसंग पर विचार करने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यहां प्रतिमा' शब्द का अर्थ मूर्ति नहीं है।** यदि इसका अर्थ 'मूर्ति' ही लिया जाय तो भी मूर्तिपूजन का औचित्य क्योंकर सिद्ध होता है? मूर्ति' शब्द आ जाने से ही यह सिद्ध नहीं होता कि यहां मूर्तिपूजन का विधान किया गया है। इसके विपरीत इस शब्द से तो उस समय को एक अद्भुत अवस्था का ज्ञान होता है और उससे प्राचीन आर्य्यों की महत्ता

---

१. इससे अगला श्लोक इस प्रकार है—'अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा'—इत्यादि।—सम्पा.

उनके विचारों को व्यापकता और समानता की भावना सिद्ध होती है। वह यह कि धर्मात्मा और न्यायप्रिय राजा और शासक इस बात को उचित नहीं समझते थे कि प्रजा या राजा के किसी सम्प्रदाय में अपने धार्मिक विश्वासों को डंडे के बल पर फैलायें; प्रत्युत उनका सदा यह दृष्टिकोण रहता था कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय धार्मिक बातों में अपने-अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण करे और धार्मिक कृत्यों को स्वतन्त्रता और शान्ति के साथ पूरा कर सके और कोई किसी को बलात् रोकने वाला न हो और इसी अभिप्राय से कानून बनाया जाता था। इस बात का उदाहरण अंग्रेजी सरकार के शुभ शासनकाल में, जो भारतवर्ष के लिए एक महान् वरदान और अप्रत्याशित लाभ का देने वाला सिद्ध हुआ है—पाया जाता है। चारों ओर स्वतन्त्रता का सुप्रभाव फैल रहा है, धार्मिक विचार और शास्त्रार्थ होते हैं। शासनविधान एकेश्वरवादियों और मूर्तिपूजकों का समानरूप से समर्थन करता है। यह तो प्रत्येक को अधिकार है कि मूर्तिपूजा को अधर्म समझे और घोषित करे परन्तु यह किसी का साहस नहीं कि मूर्ति को तोड़े और यदि तोड़े तो उसको दण्ड दिया जाता है। यदि विधान में मूर्ति तोड़ने वाले के लिये कोई दण्ड निर्धारित किया गया तो उससे यह सिद्ध नहीं होता कि मूर्तिपूजा का निर्देश दिया गया है। या विधान के बनाने वाले या शासक या उनकी जाति या प्रजा मूर्तिपूजक है। यही बात महर्षि मनु के काल पर भी लागू हो सकती है। **यदि उस समय कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने विद्याहीन विश्वासियों को अपने फंदे में फंसाये रखने के अभिप्राय से मूर्तिपूजा का कुछ प्रचार किया हो और मनु जी ने देश की परिस्थिति को देखते हुए कानून विधाननिर्माता के रूप में मूर्ति तोड़ने के लिए दण्ड निर्धारत कर दिया हो तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का करना विहित ठहराया गया है**। यदि मूर्तिपूजा वैध होती तो वेद और सत्यशास्त्रों और प्राचीन ऋषिमुनियों के ग्रन्थों में उसका वर्णन अवश्य ही स्पष्ट रूप से पाया जाता—परन्तु ऐसा नहीं है। भला जब तीन सौ विद्वान् पंडितों की सभा मूर्तिपूजन के समर्थन में सत्यशास्त्रों से कोई प्रमाण नहीं दे सकी तो औरों से क्या आशा की जाती है! वास्तव में इसका प्रचार बौद्धों के काल से हुआ है।

मूर्तिपूजा के निषेध में प्रमाण—उपर्युक्त युक्तियों से यह तो भली भांति निश्चित हो गया कि मूर्तिपूजन उचित नहीं और अब उसके खंडन में वेदों के कुछ प्रमाण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।" (यजुर्वेद संहिता, अध्याय ३२, मं० ३) **अर्थ**—उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं, उसका नाम अत्यन्त तेजस्वी है।

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धमित्यादि" । (यजु० अध्याय ४०, मन्त्र ८) । **अर्थ**:—वह (परमात्मा) सर्वव्यापक तथा सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, शरीर रहित, पूर्ण, नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध, पापों से पृथक् है।

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥" **अर्थ**:—जो लोग प्रकृति आदि जड़ पदार्थों की उपासना करते हैं वह अन्धकारमय नरक में जाते हैं और जो उत्पन्न हुई वस्तुओं की उपासना करते हैं वह उससे भी अंधकारयुक्त नरक में जाते हैं।

"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।" **अर्थ**—जो बुद्धिमान् उसे आत्मा में स्थित देखते हैं उन्हीं को शाश्वत सुख प्राप्त होता है, औरों को नहीं।

"ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ।" **अर्थ**--जो संसार और संसार के उपादान कारण से उत्कृष्ट है, निराकार और निर्दोष है--जो उसको जानते हैं उनको अमर जीवन प्राप्त होता है और दूसरे लोग केवल दुःख में फंसे रहते हैं।

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय ।" **अथ**--उसी के ज्ञान से मृत्यु के पंजे से छुटकारा होता है, कोई और मार्ग इच्छित स्थान पर पहुंचने का नहीं है।

किसी देवता की उपासना करना भी उचित नहीं--शतपथ ब्राह्मण में जहां तैंतीस देवताओं की व्याख्या की है। (और उन्हीं तैंतीस के तैंतीस करोड़ बन गये हैं और उस सूचि की पूर्णता के पश्चात् जो उसमें और जैसे गूंगापीर आदि समय समय पर सम्मिलित होते रहे हैं वह उसके अतिरिक्त रहे) वहां भी परमात्मा के अतिरिक्त और किसी की उपासना विहित नहीं रखी; प्रत्युत उसका खंडन किया है। जैसे--**"आत्मेत्येवोपासीत । स योन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यात् । योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद । अथा पशुरेव स देवानाम् ।"** (शतपथ ब्रा०, कांड १४, अध्याय ४) परमेश्वर जो सबका आत्मा है उसी की उपासना करनी चाहिये। जो परमेश्वर के अतिरिक्त किसी और को

प्रिय अर्थात् उपास्य समझता है उसे जो कहे कि तू प्यारे के विरह से दुःख में पड़ेगा वह सत्य की ओर है। जो और देवता की उपासना करता है वह वास्तविकता को नहीं जानता, वह निश्चित रूप से बुद्धिमानों में केवल पशु के तुल्य है।

हाय, खेद ! हमारी प्यारी सभा इन **प्रामाणिक** वचनों और सैंकड़ों और ऐसे ही प्रमाणों की उपेक्षा करके मूर्तिपूजा को वैध सिद्ध करना चाहती है और बड़ी धूमधाम के साथ प्रकट करती है कि जो व्यक्ति शिवलिंग और शालिग्राम की पूजा नहीं करता वह सीधा नरक को जाता है। हे मेरी प्रतिष्ठित सभा ! तेरी महत्ता और विद्वत्ता में तो किसी को सन्देह नहीं हो सकता परन्तु मैं चकित हूं कि तेरी कार्यवाही ऐसी क्यों निकली कि उसके खंडन के लिये एक साधारण मनुष्य को भी लेखनी उठा कर उद्यत होना पड़ा है।

अब देखो आपका प्यारा श्रीमद्भागवत क्या कहता है:—**मृच्छिला-धातु-दार्वादिमूर्तावीश्वर-बुद्धयः । क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्ति न यान्ति ते ।"** **अर्थ**—मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर का ध्यान करते हैं ऐसे मूढ़ तप से केवल कष्ट उठाते हैं और वास्तविक शान्ति को प्राप्त नहीं करते।

और भी कहा है—**यस्यात्मबुद्धिः'** इत्यादि। अर्थात् जो व्यक्ति तीन धातुओं से निर्मित शरीर को आत्मा समझता है और स्त्री और पुत्र आदि को अपना समझता है और मिट्टी की मूर्ति को उपासना के योग्य समझता है और जो बुद्धिमान् मनुष्यों को तो नहीं, जल को तीर्थ समझता है—वह निश्चित रूप से गधा है।

मूर्तिपूजा के खंडन में कुछ युक्तियां—हमारे विचार में मूर्तिपूजन के खंडन में शास्त्रों के जो प्रमाण ऊपर लिखे गये हैं वह पर्याप्त हैं; इससे अधिक लिखना तो व्यर्थ बोलना ही कहलायेगा। अब एक-दो तर्कसम्मत युक्तियां उपस्थित की जाती हैं।

देखिये, जैसा उपास्य (होता है) वैसा ही उपासक या यों कहिये कि जैसा उपासक (होता है) वैसा ही उपास्य (होता है)। यह एक सूक्ष्म बात है—जिसकी व्याख्या से विचारणीय समस्या भली-भांति सुलझ सकती है। प्रत्यक्ष है कि जो गुण उपास्य में माने जाते हैं उनका प्रभाव न्यूनाधिक उपासक के व्यक्तित्व पर अवश्य होता है या शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से जैसा

उपासक होता है वैसा ही वह अपना उपास्य कल्पित कर लेता है। इन बातों में ध्यान का बड़ा हाथ है। यदि हमारा उपास्य क्रोधी अत्याचारी है तो उसका क्रोध और यदि लज्जालु है तो उसको लज्जा और यदि दयालु है उसकी दया की छाया हमारी आत्मा पर पड़ती है और इसका प्रभाव हमारी समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों पर पड़ता है। इस सिद्धान्त पर जब हम यह मानते हैं कि हमारा उपास्य सत, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परमपवित्र, सत्यस्वरूप, तेजःस्वरूप, परमस्नेही, प्राज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वगत, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, अनादि और अनन्त है—जैसा कि वेदों में लिखा है—तो हमारी आत्मा की भीतरी शक्तियों का विकास और प्रकाश होकर उसमें एक प्रकार की महत्ता, तेज विस्तार और पवित्रता उत्पन्न होती है जिसमें हमारा सारा आत्मिक और सामाजिक ढांचा प्रकाशमय हो जाता है और जिसका परिणाम शाश्वत सुख है। यदि हम ऐसे उपास्य को पत्थर और धातु आदि की मूर्ति या किसी और परिमित वस्तु में ध्यान करके उसको नमस्कार करना स्वीकार करते हैं तो विपरीत परिणाम होता है। यह भी एक प्रत्यक्ष बात है कि समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि हमारी सबसे बड़ी पथ-प्रदर्शक है। यही कारण है कि हमारी गायत्री जो बीजमन्त्र गिनी जाती है उस द्वारा बुद्धि के प्रकाश के लिये ही प्रार्थना की गयी है। जिन साधनों से बुद्धि की उन्नति और सुधार हो उनका व्यवहार में लाना अत्यन्त उचित है और जिस बात से बुद्धि में निर्बलता और अन्धकार उत्पन्न हो उसको धारण करना आत्महत्या में सम्मिलित है। सच्ची ईश्वरोपासना, सच्ची शिक्षा और बुद्धिमानों के संग से बुद्धि उज्ज्वल और शुद्ध होती है और इसके विपरीत जड़ वस्तुओं की उपासना बुरी शिक्षा और अविद्वानों के संग से वह निर्बल और अन्धकारयुक्त होती है। इसलिये जड़ वस्तुओं में सर्वशक्तिमान् परमात्मा का ध्यान करके उनको नमस्कार के योग्य बताना मानो बुद्धि को बिगाड़ना है और बुद्धि का बिगाड़ना आत्मघात है और आत्मघात करना पाप है। **इसलिए सिद्ध हुआ कि मूर्तिपूजन पाप है।** मद्यपान और व्याभिचार इसी कारण से पाप हैं कि उनसे बुद्धि नष्ट और आत्मा अपवित्र होती है तथा दूसरे के अधिकार का हरण होता और ईश्वराज्ञा भंग होती है। इसलिये जब मूर्तिपूजन से बुद्धि नष्ट और आत्मा का पतन तथा ईश्वर का अपमान होता है तो बताइये कि मूर्तिपूजन पाप नहीं तो और क्या है? **जैसी जो वस्तु हो उसका वैसा समझना वास्तविक ज्ञान है**

और जड़ पदार्थों में ईश्वरभावना करनी या किसी काल्पनिक देवता का ध्यान करना या कराना पथभ्रष्टता और भ्रान्ति है।

"मृत्यु के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि"—हमारी प्रिय सभा ने श्राद्ध के विषय में एक यह वचन प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है:—**"निवीतम्मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणाम्"** इस वचन में न तो मरे हुए माता-पिता की कुछ चर्चा है और न श्राद्ध का शब्द आया है; फिर पता नहीं कि इससे मरे हुओं का श्राद्ध क्योंकर सिद्ध होता है ? केवल यज्ञोपवीत का इधर-उधर करना श्राद्ध का प्रमाण नहीं समझा जा सकता। **श्राद्ध और तर्पण का जो वास्तविक अभिप्राय है—उसको हम अस्वीकार नहीं करते।** हमारा आक्षेप तो यह है कि मृतकों के लिये श्राद्ध और तर्पण करना और उनके नाम से किसी विशेष वर्ग के लोगों को विना अधिकार की परीक्षा किये अच्छे-अच्छे प्रकार का भोजन कराना और चांदी-सोना कर के रूप में देना बुद्धि और शास्त्र के अनुसार अवैध और अनुचित है। हां, मृतकों की स्मृति में यदि कोई परोपकार का कार्य्य इस अभिप्राय से किया जाये कि **हमको मृत्यु का स्मरण रहे और हम बुराइयों से बचे रहें तो कुछ हानि नहीं।** हमारी सूक्ष्म बातों पर विचार करने वाली सभा ने जो यह वर्णन किया है कि "पितृणाम्" शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है; इसलिये उससे मृतकों का श्राद्ध सिद्ध होता है, यह युक्ति ठीक नहीं प्रतीत होती। यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रतीत होता है कि किसी काल में वह सम्मान और उपाधि देने तथा उनके महत्त्व और योग्यता के वर्ग-विभाग करने के अर्थों में भी प्रयुक्त किया जाता था और फिर परिस्थिति के परिवर्तन से वह प्रयोग स्थगित होकर उसके स्थान पर और-और शब्द प्रयुक्त होने लगे। अंग्रेजी भाषा का शब्द "फादर" (Father) इस शब्द से एक विचित्र समानता रखता है—जिसका वर्णन रोचकता से रहित न होगा। "फादर" शब्द पितृ शब्द से निकला है और वह लगभग उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है जिनमें कि 'पितृ' शब्द प्रयुक्त होता है या होता था। पहली शताब्दी में हुए ईसाईमत की पुस्तकों के लेखक और रोम की सीनेट के सदस्य "फादर" कहलाते थे और इस समय के ईसाई मत के नेताओं अर्थात् पादरी लोगों और पहले तथा पिछले पूर्वपुरुषों के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह इस बात का एक

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

समर्थक प्रमाण हैं कि "पितृणाम्" शब्द से अभिप्राय उच्च कोटि के गुणवान् विद्वानों और बुद्धिमानों आदि से है। शतपथ ब्राह्मण में उनके आठ भेद लिखे हैं—जो इस प्रकार हैं :—१–चित्त की एकाग्रता और ज्ञान की वास्तविकता के इच्छुक "**सोमसद्**" कहलाते हैं। २–अग्नि जो समस्त पदार्थों में सबसे अधिक क्रियाशील है उसको अवस्थाओं और गुणों का ज्ञान प्राप्त करके जो उससे अच्छी प्रकार काम ले सकते हैं उनको "**अग्निष्वात्त**" कहते हैं। ३–जो विद्या और आचार से अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके गुणों की वृद्धि में विशेषता प्राप्त करते है वे "**बर्हिषद्**" कहलाते हैं। ४–जो औषधियों के लाभ और गुणों के ज्ञान में योग्यता प्राप्त करते हैं वे '**सोमपा**' कहलाते हैं। ५–जो अग्निहोत्र आदि यज्ञों में पूर्ण योग्यता रखते हैं वे "**हविर्भुज्**" कहलाते हैं। ६–जो उचित साधनों से शरीर और आत्मा की रक्षा करते हैं उनको '**आज्यपा**' कहते हैं। ७–जो अपना बहुमूल्य समय सदा ज्ञान और तप को शिक्षा और प्रेरणा में व्यतीत करते हैं उनको '**सुकालिन्**' कहते हैं। ८–जो सूझ-बूझ और न्यायकारिता आदि में अद्वितीय हैं वे "**यम**" कहलाते हैं।

इससे प्रकट है कि उक्त शब्द बहुवचन में ही प्रयुक्त होना उचित था। यदि इन शब्दों से अभिप्राय सृष्टि के पूर्वपुरुषों से हो तो भी "**पितृणाम्**" शब्द का सम्बन्ध मृत माता-पिता से स्थापित नहीं किया जा सकता, प्रत्युत पाया जाता है कि विचारणीय वचन में मनुष्यों और पितरों के कर्मों में एक प्रकार का भेद किया गया है। इस प्रकार का भेद "शतपथ ब्राह्मण" में मनुष्यों और देवताओं में किया गया है जैसा कि "**इयं वा इदं न तृतीयमस्ति।**" "**सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः**" अर्थात् स्वभाव और गुणों की दृष्टि से मनुष्य के दो भेद हैं - देव और मनुष्य। जो सत्यवादी और सत्यमार्ग पर हैं वह **देव** कहलाते हैं और जो झूठे और कपटी हैं **उनको मनुष्य कहते हैं।**

पितृयज्ञ की व्याख्या—इस स्थान पर यदि पितृयज्ञ की कुछ व्याख्या की जाये तो उससे विचारणीय विषय भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा।

विदित रहे कि पितृयज्ञ के दो भेद हैं—श्राद्ध और तर्पण। **श्राद्ध** वह कार्य्य है जो सच्ची श्रद्धा से किया जाये अर्थात् देव, ऋषि और पितरों की सेवा। और **तर्पण** से अभिप्राय है उनको प्रसन्न करना और प्रसन्न रखना तथा उनको सुख पहुंचाना। जो लोग विद्या, सुशीलता और सज्जनता में पूर्णता प्राप्त करके अपने पुण्यकर्मों से संसार में एक उदा-

हरण स्थापित करते हैं—वह **देव** कहलाते हैं। **ऋषि** वह हैं जो बड़प्पन और गुणों में पूर्ण योग्यता प्राप्त करके पठन पाठन का कार्य्य चालू रखते हैं। **पितृ** वह हैं जो "इलमुल्यकीन" (देखे विना ही किसी वस्तु की वास्तविकता पर पूर्ण विश्वास कर लेना) और "ऐनुल्यकीन" (किसी वस्तु को देखने के पश्चात् उसकी वास्तविकता को पूर्ण विश्वास के साथ भलीभांति जानना) की अवस्थाओं में से गुजर कर "हक्कुल यकीन" (किसी वस्तु में प्रविष्ट हो जाना या स्वयं वह वस्तु बन जाना या उसमें खो जाना) का पद प्राप्त करते हैं। इसी विषय के सम्बन्ध में मनुस्मृति का एक श्लोक (मनु० २।१७६) जिसको हम विना व्याख्या यों ही छोड़ आये हैं नीचे लिखा जाता है:—**'नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥'**' यह श्लोक ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में है और इस में उन कार्यों का वर्णन है जो ब्रह्मचारी को गुरु की सेवा में रहकर अपनी उन्नति के लिये करने चाहियें और उनका अगले श्लोकों में विस्तारपूर्वक वर्णन है। प्रथम प्रणाम और आदर सत्कार और सच्ची शिक्षा की वास्तविकता साधारण रूप में बतायी गयी है अर्थात् प्रतिदिन स्नान करके और पवित्र होकर देव, ऋषि और पितृ अर्थात् गुणवान् व्यक्तियों की सेवा करे और उनके गुणों का चिन्तन करे जिससे उनके मन में वैसे ही गुणों को प्राप्त करने की उमंग उत्पन्न हो। शास्त्रों का सेवन अर्थात् अध्ययन करे और इन्द्रियों को वश में रखे। मूर्तिपूजन के खंडन में हम बहुत कुछ लिख आये हैं, यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस श्लोक से भी हमारी प्यारी सभा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

हमारी प्यारी सभा ने श्राद्ध के बारे में एक प्रमाण मनुस्मृति का दिया वह यह है :—**पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥**" अर्थात् पितृयज्ञ से निवृत्त होकर अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रत्येक मास की अमावस्या में पितरों का श्राद्ध करे। यह श्लोक स्पष्टतया मनु जी का कहा हुआ नहीं है; परन्तु (दुर्जनतोषन्याय) से मनु-प्रोक्त मान लिया जाय फिर भी इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। यदि प्रत्येक मास में इस प्रकार का श्राद्ध जिसका ऊपर वर्णन हुआ है—होम की भांति विशेषता के साथ किया जाया करे तो कुछ हानि भी नहीं। **हम किसी ऐसे कार्य्य के विरुद्ध नहीं जो एक श्रेष्ठ आदर्श स्थापित करने के अभिप्राय से ऐसे पूर्वजों की स्मृति में किया जाये जिनके महान् व्यक्तित्व से लोगों को धार्मिक और सांसारिक विषयों में लाभ पहुंचा हो या पहुंचाता हो**

अन्यथा देश को धन सम्पत्ति को यों ही नष्ट करना और किसी विशेष वर्ण या सम्प्रदाय को उससे किसी प्रकार का धार्मिक या सांसारिक काम किये बिना, काल्पनिक दान के रूप में मुफ्त खिलाना पिलाना और धन का व्यय करके निकम्मा और आलसी बनाना राजनीतिक सिद्धान्तों की दृष्टि से महान् अपराध है।

मनुस्मृति का जो एक आध अन्य प्रमाण दिया गया है उसके खंडन में कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि हम उसको प्रामाणिक नहीं समझते। जो वर्ष में पन्द्रह दिन श्राद्ध किये जाते हैं—उनका कुछ वर्णन हमारी प्यारी सभा ने नहीं किया, इसलिये उनके विषय में विचार करना भी व्यर्थ है। अब हम अपने कथन के समर्थन में मनुस्मृति के चौथे अध्याय के तीन श्लोक (२३९ से २४१ तक) नीचे देकर इस विषय को समाप्त करते हैं और अपनी प्यारी जाति से अत्यन्त नम्रतापूर्वक न्याय चाहते हैं:—

“नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसम क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥”

अर्थः—परलोक में माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धु—इनमें से कोई भी सहायता नहीं कर सकता; केवल धर्म ही सहायक होता है (क्योंकि) मनुष्य अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है और अकेला ही अपने किये हुए भले-बुरे कर्मों का फल पाता है। लकड़ी और मिट्टी के ढेले के समान मृत शरीर को पृथिवी पर छोड़कर भाई-बन्धु अलग हो जाते हैं; केवल धर्म ही उसके साथ जाता है। इससे प्रकट है कि **मरने के पश्चात् मनुष्य के पुण्यकर्म ही उसके सहायक होते हैं। किसी अन्य के किए हुए श्राद्ध आदि से उसको कुछ लाभ नहीं पहुंचता।** सृष्टि नियमों में कोई ऐसा नियम ही नहीं पाया जाता कि एक के खाने से दूसरे की तृप्ति हो। जो यहां कुछ नहीं करता उसको आगे भी कुछ नहीं मिलता। अपना किया हुआ ही काम आता है।

गंगा आदि तीर्थों में स्नान और वास करने से पाप की निवृत्ति होती है या नहीं ?”—हमारी प्यारी सभा ने तीर्थ के विषय में एक यह प्रमाण दिया है:—**‘सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै**

तन्वा विसृजन्ति धीराः ते जनासो मृतत्वं भजन्ते ।। यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती, इमम्मे गंगे यमुने इत्यादि ।" इस वाक्य में जो गंगा आदि शब्द आये हैं उनको हमारी प्यारी सभा प्रसिद्ध नदियों के नाम से तीर्थ बताती है परन्तु ठीक नहीं क्योंकि शब्द सित और असित (श्वेत और काला) जो आरम्भ में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं - वही हमारी इस प्रतिष्ठित सभा के काल्पनिक तीर्थों की असारता सिद्ध करते हैं। वास्तव में गंगा आदि से अभिप्राय श्वास यन्त्रों से है; जिनको इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा भी कहते हैं। यह योगसाधन की नाड़ियां हैं जिनसे योग के इच्छुक प्राणायाम और ध्यान आदि द्वारा बीच की सीढ़ियों को पार करके मन की स्वच्छता प्राप्त करते हैं और समाधि में स्थित होकर परमात्मा का साक्षात् करते हैं। विचाराधीन वचन का अभिप्राय यह है कि जहां दो श्वेत और काली नदियों (इड़ा और पिंगला) का मेल होता है अर्थात् अन्धकार (विषयवासना का राज्य) की सीमा समाप्त होकर ज्ञान का प्रकाश आरम्भ होता है वहां अद्वैत की लहरों में डुबकी लगाकर योगी लोग ब्रह्मलोक में भ्रमण करते हैं और पवित्र योगमार्ग में चलने वाले जो लोग सांसारिक विषयों का परित्याग करते हैं वे शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं। वास्तव में यही वे बड़े तीर्थ हैं जो मनुष्य की आतमा को पापों से रहित, अत एवं पवित्र कर के अनन्त आनन्द प्रदान करते हैं। तीर्थ के अर्थ हैं तैराने का उपकरण। नदियों को तैराने का उपकरण नहीं माना जा सकता; इसके विपरीत (उन्हें) डुबोने का (साधन) कहना ही उचित है। सत्यशास्त्रों में तीर्थ से अभिप्राय परमेश्वर, गुरु, विचार, सत्यशास्त्र, भक्ति, उपासना, योग आदि से है और वास्तव में यही मुक्ति के साधन हैं। फिर यदि गंगा आदि शब्दों के यौगिक अर्थों की ओर ध्यान दिया जाय तो उनसे भी हमारी बात का समर्थन होता है। आश्चर्य तो यह है कि उनके समानार्थक इडा पिंगला, सुषुम्ना के यौगिक अर्थ भी क्रमशः लगभग वैसे ही पाए जाते हैं। यही दशा रेचक, पूरक, कुंभक शब्दों की है जो योगदर्शन में प्रयुक्त होते हैं। उनकी व्याख्या यहां व्यर्थ है, प्रत्येक व्यक्ति कोष को पुस्तकों को देखकर अपना सन्तोष कर सकता है। फिर यह बात भी वर्णन करने योग्य है कि पुराणों के अनुसार गंगा भगीरथ के काल से चली है। भगीरथ राजा सगर की तीसरी पीढ़ी में हुआ है और वह उसे अपने पितरों की मुक्ति के लिये स्वर्ग से लाया था और अपने संकल्प में सफल हुआ। यदि इस कथा को सत्य माना जाये तो दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक यह कि जो लोग भगीरथ के

काल से करोड़ों वर्ष पहले इधर-उधर मर चुके थे, उनकी क्या गति हुई और यदि भगीरथ उसे अपने ही पितरों की मुक्ति के लिये लाया था तो उससे हमारा क्या सम्बन्ध है ? दूसरे यह कि वेद जो सनातन माना जाता है उसमें गंगा शब्द उन अर्थों में जो उस पर लागू किये जाते हैं—क्योंकर प्रयुक्त हुआ ? वास्तविकता यह है कि यह सब ढकोसले वेद की शिक्षा के बिरुद्ध हैं। यह भी विदित रहे कि विचाराधीन वचन ऋग्वेद संहिता का नहीं, प्रत्युत उसके एक व्याख्यान का है। कदाचित् यही कारण है कि उस का पता नहीं बताया गया।

तीर्थ की मीमांसा—हमारी प्यारी सभा ने तीर्थों के विषय में मनुस्मृति का एक यह श्लोक प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है:—**'यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैब हृदि स्थितः। तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः ॥''**

हम चकित हैं कि हमारी विदुषी सभा ने क्या समझ कर इस श्लोक को तीर्थों का प्रमाण निश्चित किया है। यहां तो इसके विपरीत उसका खंडन पाया जाता है; कहा है गंगा कुरुक्षेत्र मत जाओ। यह श्लोक मनुस्मृति के आठवें अध्याय के उस स्थान का है जहां साक्षी के अतिरिक्त शपथ लेने और झूठ बोलने के दण्ड आदि का वर्णन है। इस श्लोक और उससे ऊपर के श्लोक में अगले पिछले श्लोकों के सम्बन्ध में साधारण रूप से झूठ से बचने की प्रेरणा की गयी है दोनों का अर्थ यह है कि यदि तुम समझते हो कि मैं अकेला हूं तो ऐसा नहीं क्योंकि तुम्हारे भीतर पाप और पुण्य को देखने वाला मुनीश्वर सदा विद्यमान रहता है। ऐसा जो पवित्र तेजोमय वकील तुम्हारे भीतर विद्यमान है उसके साथ यदि तुम्हारा झगड़ा नहीं तो गंगा और कुरुक्षेत्र मत जाओ (अर्थात् उस मुनीश्वर की शिक्षा के अनुसार चलो और झूठ न बोलो, यही मूल बात है और गंगा आदि जाने से कुछ नहीं होता)।

वास्तव में मूल अभिप्राय पहले ही श्लोक में आ जाता है और फिर उसी बात को दूसरे श्लोक में दुहराना व्यर्थ था। इसीसे प्रतीत होता है कि यह श्लोक मनु जी का कहा हुआ नहीं प्रत्युत उस काल का बढ़ाया हुआ है जब स्वार्थ या भ्रान्ति से काल्पनिक तीर्थों और मूर्तिपूजा को प्रचलित किया गया था। **यह भी विदित रहे कि इस स्थान के अतिरिक्त सारी मनुस्मृति में कहीं गंगा का नाम भी नहीं आया है।** भला जिस अवस्था में कि मनु जी ने छोटी-छोटी बातों के वर्णन में श्लोकों के श्लोक लिख मारे हैं तो यदि यह काल्पनिक तीर्थयात्रा और मूर्तिपूजन (जिसका आजकल इतना प्रचार है

और जिसके कारण वास्तविक धर्म हमको छोड़कर चला गया है) उनकी दृष्टि में वैध होता या यदि उनके समय इसका प्रचार होता तो इसके विषय में दो चार श्लोक लिख देने कौन बड़ी बात थी ? वास्तव में मनु जी ने धर्म और मोक्ष के जो सिद्धन्त लिखे हैं उनका ऐसी बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ।

इन काल्पनिक तीर्थों का खंडन तो भागवत जैसे ग्रन्थ में भी पाया जाता है; जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं अर्थात् जो मनुष्य पानी को तीर्थ समझता है और विद्वानों को नहीं वह गधा है । फिर देखो :—"**इदं तीर्थमिद तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः । आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्तिर्वरानने ॥**" **अर्थात्**—यह तीर्थ है, वह तीर्थ है—अविद्वान् और तमोगुणी लोग ऐसा कहते फिरते हैं, वह आत्मा के तीर्थ को नहीं जानते, उनकी मुक्ति क्योंकर हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती ।

इस बारे में अब और अधिक लिखना व्यर्थ है, केवल मनु जी का एक वचन साधारण सिद्धान्त के रूप में नीचे लिखा जाता है :—

"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥"

अर्थः—जल से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं मन सत्य से पवित्र होता है, विद्या और उपासना से आत्मा पवित्र होती है, ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ।

यह श्लोक व्याख्या की आवश्यकता नहीं रखता । यदि गंगास्नान से पाप छूट सकते हैं और स्वग मिल सकता है तो उपासना आदि का कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? इधर हत्या की, चोरी की, व्यभिचार किया उधर गंगा में नहाए और पवित्र हुए और स्वर्ग प्राप्ति इसके अतिरिक्त ।

पापों से छूटना तो एक ओर रहा, इसके विपरीत ऐसे विश्वास से तो पापों की प्रेरणा होती है और पाप करने का साहस बढ़ता है । आप हजार ऐसे जाल बिछायें और लोगों को भ्रमायें परन्तुः—"**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**" । पापों का फल प्रत्येक को अवश्य भोगना पड़ेगा ।

तीसरा प्रश्न

पंडित महेशचन्द्र जी ने यह प्रश्न किया कि "अग्निमीळे पुरोहित" आदि मन्त्रों में अग्नि शब्द से अभिप्राय परमात्मा से है या (भौतिक) आग से ?

उत्तर—इसके उत्तर में दण्डित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने कहा कि इस मन्त्र में

जो 'अग्नि" शब्द आया है उससे अभिप्राय 'जलाने की आग' (भौतिक अग्नि) से है। यदि इसके यौगिक अर्थ करें तो वे 'पूर्व मीमांसा' के "रथकाराधिकरणवत्" —इस सूत्र के विरुद्ध होते हैं; इसलिये इस मन्त्र में अग्नि शब्द से भौतिक अग्नि ही अभिप्रेत है।

"आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—हमारी प्यारी सभा कहती है कि इस मन्त्र में जो "अग्नि" शब्द आया है उसका अभिप्राय 'जलाने की आग' है; परमेश्वर नहीं। पररन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया गया कि यह शब्द कहीं भी परमेश्वर के अर्थों में नहीं आया है। यहां भी वही 'रथकार' आदि की युक्ति उपस्थित की गयी है जिसका हम ऊपर खंडन कर चुके हैं। हमारी समझ में तो जैसा अवसर होता है वैसे (प्रकरणानुसार) अर्थ लिये जाते हैं। ऐसे ही एक विशालबुद्धि पंडित ने जो वर्षों काशी में पढ़कर आया था—साधारण रूप से मृग का अर्थ हिरण जानते हुए "**मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति**" वाले भर्तृहरि जी के श्लोक का अर्थ मनुष्य की आकृति वाले हिरण किया गया था और ऐसे ही भट्टाचार्य्यों के लिये संस्कृत वालों ने "सैन्धवमानय" वाला उदाहरण रखा हुआ है। जो पूर्वापर प्रसंग को देखे विना किसी वाक्य का अर्थ करते हैं—उन्हें बुद्धिमानों के सामने लज्जित होना पड़ता है। **सर्वांश में कोई नियम निश्चित नहीं किया जा सकता कि सब स्थानों में रूढ़ि अर्थ लिये जायें अथवा यौगिक।** व्याकरण जानने वाले उन अर्थों को महत्त्व देते हैं जो धातु-प्रत्यय के नियमों से बन सकते हैं और यही विधि ऋषियों के काल में प्रचलित थी। अग्नि शब्द के रूढ़ि और यौगिक दोनों अर्थ लिये जाते हैं। इस शब्द के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी "भ्रान्ति-निवारण" पुस्तक में (जो उन्होंने साधारणतया समस्त पंडितों और विशेषतया पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न के खंडन में लिखी है) तथा अन्य पुस्तकों में भी इतने विस्तार के साथ विचार किया है कि किसी न्यायप्रिय मनुष्य को कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता और यही कारण है कि न 'सन्मार्ग-दर्शनी' के तीन सौ पंडितों ने और न भारतवर्ष के समस्त पंडितों ने आज तक उनका खंडन किया है। फिर भी हम केवल दो-तीन अन्य प्रमाण यहां लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं– "**अग्निर्द्रविणोदा-अश्वो-वायुः-श्येनोऽश्विनौषध इति।**" (निघण्टु अध्याय ५) अर्थात्(इस वाक्य में परिगणित) अग्नि आदि सभी शब्द ब्रह्म के समानार्थक हैं। इसी प्रकार देखिए–"**ब्रह्म ह्यग्नि**"–(शतपथ ब्रा० १, ४, २, ११)। "**आत्मा वा अग्निः**"– (शतपथ ब्रा० ७,३,३,२)॥ आदि।

चौथा प्रश्न

पण्डित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों का लक्ष्य जल और वायु की शुद्धि है या कि स्वर्ग आदि में पहुंचना ?

उत्तर—**पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री जी ने कहा कि** "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम:, ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' **आदि यजुर्वेद के मंत्रों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ स्वर्गसाधक हैं अर्थात् उनके करने से स्वर्ग प्राप्त होता है।**

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—यदि स्वर्ग से सुख का प्राप्त होना अभिप्रेत है जैसा कि कोष में इस शब्द के अर्थ हैं तो हमें कोई आपत्ति नहीं और यदि उससे अभिप्राय हूर और गिलमां (मोतियों के रंग वाले लड़के) के विश्रामस्थल और इन्द्रियों के विषय की **पूर्ति करने वाले स्थान से है तो हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते।** होम आदि से तत्काल मुक्ति नहीं मिल सकती प्रत्युत यह तो शारीरिक सुख और सांसारिक आनन्द तथा परोपकार के साधन हैं और ऐसा ही समस्त ऋषि-मुनि मानते चले आये हैं। इससे स्पष्ट प्रकट है कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों के अनुष्ठान से जल, वायु की शुद्धि और उसके द्वारा सुख होता है।

हां, यदि यह कहो कि होम में जो वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं उनसे प्रार्थना उपासना; और प्रार्थना-उपासना से ईश्वरप्राप्ति होती है तो निस्सन्देह, इस प्रकार क्रमश: तो वह भी मुक्ति का एक कारण हो सकता है। अथवा—आत्मिक होम मुक्ति का कारण होता है। इसलिये मनु आदि सत्य-शास्त्रों और उपनिषदों में लिखा है कि **इन्द्रियों का होम मन में करे और मन का आत्मा में और आत्मा का परमात्मा में करे।** और ऐसा ही महात्मा व्यास जी ने भी लिखा है।

पांचवां प्रश्न

पंडित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि वेद के ब्राह्मण भाग का अपमान करने से पाप होता है या नहीं ?

उत्तर—**पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने उत्तर दिया कि यह तो हम पहले प्रश्न के उत्तर में लिख चुके हैं कि ब्राह्मणभाग भी वेद ही है। फिर ब्राह्मणभाग का अपमान करने से मानो वेद का अपमान हुआ और मनु ने वेद के अपमान के विषय में लिखा है।**

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—जो श्लोक पंडित जी ने उपस्थित किया है उसका वास्तविक अर्थ यह है कि पढ़े हुए वेद को भूल जाना, वेद की निन्दा करना, झूठी साक्षी देना, मित्र को पीड़ा पहुंचाना, अपवित्र भोजन करना, मद्य पीना—यह छहों समान पाप हैं। हमारी अन्वेषिणी सभा कहती है कि जो पाप मद्य पीने वाले को होता है वही पाप वेद का अपमान करने वाले को होता है। यह बात बुद्धि के अनुकूल है परन्तु देखना तो यह है कि वह वेद का अपमान करने वाला कौन है? स्वामी दयानन्द सरस्वती या उसके विरोधियों का विशाल समूह? इस बात का निर्णय करने लिये आवश्यक है कि दोनों पक्षों के कुछ वचनों का यथार्थ रूप में वर्णन किया जाये।

विदित रहे कि दोनों पक्ष **वेद को प्रामाणिक मानते हैं और ईश्वरीय वचन समझते हैं**। विवाद तो इस विषय में है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल संहिता को वेद और ब्राह्मणों को उनके व्याख्यान कहते हैं और हमारी प्यारी सभा दोनों को समष्टि रूप से वेद मानती है। स्वामी जी कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजन, ईश्वर का अवतार, मृतकश्राद्ध और गंगा आदि तीर्थों का कोई उल्लेख नहीं है प्रत्युत उनका खंडन पाया जाता है। हमारी प्यारी सभा इन बातों में वेद का विधान मानती है और शिवलिंग, शालिग्राम आदि की पूजा को एक सिद्धान्त बताती है। स्वामी जी वेद के सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वरोपासना सिखाते हैं और हमारी प्यारी सभा प्रकृतिपूजा की शिक्षा देती है। स्वामीजी वेद को स्वतः प्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते हैं और हमारी प्यारी सभा समस्त शास्त्रों और ग्रन्थों को वेद के बराबर प्रामाणिक मानती है। स्वामीजी समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि का हस्तक्षेप उचित बताते हैं और हमारी प्यारी सभा बुद्धि के पांवों में शास्त्राज्ञा की बेड़ी डालकर उसको गिराना चाहती है। स्वामीजी कहते हैं कि वेद के पढ़ने-पढ़ाने का समस्त मनुष्य जाति का समान अधिकार है और हमारी प्यारी सभा उसे अपनी व्यक्तिगत पैतृक दाय समझती है। इन सब बातों पर ऊपर विस्तार के साथ विचार हो चुका है और यहां उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं। अब हम इस बात का निर्णय—कि वेद का अपमान करने वाला कौन ठहरता है—अपने न्यायप्रिय पाठकों पर छोड़ते हैं और इस लेख को इस प्रार्थना पर समाप्त करते हैं कि हे परमात्मन्! तू अपनी कृपा से समस्त मनुष्यजाति को और विशेषतया भारत को (जिसे बुद्धि की अधिक आवश्यकता है)—वह बुद्धि

का प्रकाश प्रदान करे जिसके लिये वेद के बीजमंत्र गायत्री में प्रार्थना की गयी है ताकि मूर्खता और अनेकेश्वरवाद का अन्धकार दूर होकर तेरे ईश्वरत्व और एकेश्वरवाद का तेज प्रस्फुरित हो और उलझे हुए विचारों और झूठे भ्रमों के स्थान पर एकता और वास्तविकता की लहरें मन में उठें।

—:०:—

7_886

द्वितीय परिशिष्ट

मूल पाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियां

पृष्ठ २, पं० ७–८––**तत्रैका भृगुसंहिता सत्या वेदितव्या**––ऋ० द० भृगुसंहिता को ज्योतिषशास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ मानते थे। इस विषय में पृष्ठ २-३ पर दी गई संख्या ३ की टिप्पणी के अन्त से पूर्व अर्थात् 'वाला पत्र' (पृ० ३, पं० १२) के आगे अगला अंश और जोड़ लें—

ऋषि दयानन्द ने ८ अक्तूबर सन् १८७९ को फर्रुखाबाद के पौराणिक विद्वानों के २४ प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे उन में १३ वां प्रश्न और उस का उत्तर (द्र० प्रथम परिशिष्ट, पृष्ठ ८३९) द्रष्टव्य है। उसमें 'भृगुसिद्धान्त को आप्त प्रामाणिक ग्रन्थ और उस में 'केवल गणित विद्या' का निर्देश माना है।

पृष्ठ १० पं० ४, २३ के लेखानुसार **प्रतिमा पूजन विचार=हुगली-शास्त्रार्थ** सं० १९३० में बा० हरिश्चन्द्र ने छपवाया था। ये बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में प्रख्यात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आरम्भ में ऋ० द० के घोर विरोधी रहे। विरोध में पुस्तकें भी लिखीं, परन्तु शीघ्र ही वे उनके प्रशंसक बन गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित की जाने वाली "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" पत्रिका के मुख पृष्ठ पर सम्पादक मण्डल में 'स्वामी दयानन्द' का नाम भी छपता था।

पृष्ठ २३, पं० २—'उनका वचन सत्य ही है' पर टिप्पणी—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये ।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥१८॥

आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषा वाक्यमसंशयन् ।
सत्यम्, वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ।।१९।।
आयुर्वेदीयं चरक सं० सूत्र० अ० ११ ।।

अर्थात् जो तप और ज्ञान के बल से रजोगुण और तमोगुण से रहित हैं जिनका त्रैकालिक निर्मल अव्याहत (यथावत्) ज्ञान है ऐसे आप्त शिष्ट और विद्वान् हैं उनका वचन असंशय सत्य है। वे रजोगुण और तमोगुण से रहित आप्त जन असत्य क्यों कहेंगे।

पृष्ठ ३९,पं० ९—'पूर्व ग्यारह लक्षणयुक्त जो धर्म कहा ………' पर टिप्पणी—

यहां 'पूर्व' शब्द से सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सन् १८७५) की ओर संकेत है क्योंकि प्रकृत विज्ञापन उसी की हस्तलिखित प्रतिलिपि के अन्त में है। **ग्यारह लक्षण युक्त धर्म**—ऋ० दयानन्द ने मनुस्मृति ६।६२ में उक्त दश लक्षणों में अहिंसा का समन्वय करके धर्म के ११ लक्षण कहे हैं। द्र० स० प्र० (सन् १८७५), पृष्ठ १६९–१७०, पूना प्रवचन, तीसरा प्रवचन, पृष्ठ १४ (रा० ला० क० ट्र० सं०), संस्कारविधि प्रथम संस्करण (सन्-१८७५) पृष्ठ १३७, सं० विधि संशोधित सं०, पृष्ठ ३० (रा०ला० क० ट्र०-सं०)।

पृष्ठ ३९, पं० ३०, ३१—'सुश्रुत का आहार विद्याध्याय तथा पाक करने का अध्याय'—ये अध्याय अन्वेषणीय है।

पृष्ठ ४०, पं०१५–१६—'परन्तु इससे अधिक जिस देश में अपना जन्म हुआ होय' पर टिप्पणी—

आजकल के आर्यससाज के नेता मानवतावाद के झोंके में बह कर उदारतावादी बनकर भूमण्डल के उत्थान की बात करते हैं। उन्हें ऋ० द० का यह वचन ध्यान से पढ़ना चाहिये। इसी प्रकार ऋ० द० ने स० प्र० के एकादश समुल्लासान्तर्गत ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज की आलोचना (पृष्ठ ५९१—६०१) में भी लिखा है (द्र० पृष्ठ ५९१, ५९२, ६०१)।

पृष्ठ ४६ पं० ९—**विष्णु स्वामी**—इस पर टिप्पणी—विष्णु बाबा ब्रह्मचारी ने '**वेदोक्तधर्मप्रकाश**' नामक एक ग्रन्थ कलि सं० ४९६० = वि० सं० १९१६ में लिखा था। इसमें अवतारवाद और मूर्तिपूजा के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर ग्रन्थकार की दृष्टि उदार है। पाश्चात्य मत का खण्डन भी उक्त ग्रन्थ में किया है। इसके मराठी में दो संस्करण छपे हैं (दोनों मुम्बई

मराठी ग्रन्थ संग्रहालय, दादर बम्बई में विद्यमान हैं)। हिन्दी (व्रजभाषा) का सं० १९२६ में छपा था। यह हमारे संग्रह में विद्यमान है।

पृष्ठ ४७, पं० २८-३०—'अथवा हमें——अशक्य है।' अंश निकाल देवें। इस के स्थान पर निम्न पाठ जोड़े।

लीलाधर हरिदास ने 'सत्यासत्य-विचार' नाम से आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई में २ भागों में व्याख्यान दिया था। द्र० बम्बई आर्यसमाज द्वारा सं० १९३२ में २०×३०=१६ पेजी आकार में प्रकाशित ११ मास का विवरण, पृष्ठ ३१। उसी का सन् १८७६ में प्रथम बार मुद्रण हुआ था।

पृष्ठ ५२, पं० १७—**संस्कार की चोपड़ी बनाने**—इस विषय में पूर्ण सं० २६ का पत्र (पृष्ठ ६१, पं० १६) भी देखें।

पृष्ठ ५३, पं० ३—'गान की चोपड़ी' अर्थात् 'प्रार्थना समाज' के गान की पुस्तक। द्र० पृष्ठ ५१ पं० १०।

पृष्ठ ५७ पं० ३—**उन नियमो में दो नियम बढ़े हैं**—

ये २८ मूल नियम और उनका व्याख्यान सन् १९३३ में छपे 'मुम्बई समाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ तक छपे हैं। इन्हें इस संग्रह के अगले 'तृतीय परिशिष्ट' में भी हम दे रहे हैं।

एक विवाहादि उत्साह० यह नियम २७ वीं संख्या पर छपा है। **दूसरा —जब तक नौकरी०** यह नियम २६ संख्या पर मिलता है।

पृष्ठ ५७, पं० २४—**विरोधी नहीं रहे**। इस के आगे बढ़ावें --

इन्दुप्रकाश के सम्पादक विष्णु शास्त्री ने शीघ्र ही ऋ० द० का विरोध छोड़ दिया था ऐसा **लोक हितवादी** पत्रिका के जनवरी फर्वरी १८८४ के अङ्क में पं० गोपालराव हरिदेशमुख ने स्पष्ट लिखा है। विष्णुशास्त्री जी ने आ० स० मुम्बई में 'आर्यवैद्यशास्त्रनी उत्कृष्टता' विषय पर ३ भाग में व्याख्यान दिये थे। द्र० आर्यसमाजनो नियम पृष्ठ ३२।

पूर्ण संख्या २३ पृष्ठ ५८, पं० २-३—**आर्यसमाज के नियम और उनकी व्याख्या पुस्तक छपता है'** पर टिप्पणी—

यह नियम और व्याख्या की पुस्तक हमें स्वतन्त्र रूप से छपी हुई प्राप्त नहीं हुई। सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के रचयिता श्री दामोदरदास सुन्दरदास को प्राप्त हुई थी। उसी आधार पर उन्होंने उक्त इतिहास में पृष्ठ २०-२१ तक नियमों और उनके व्याख्यान को गुजराती अक्षरों में छपवाया है। हम इस दुर्लभ ऐतिहासिक वस्तु का आगे

'तीसरे परिशिष्ट' में सुरक्षा की दृष्टि से पूर्ण रूप से अर्थात् नियम और व्याख्यान दोनों को छाप रहे हैं।

पृष्ठ ९७—**विज्ञापनपत्रमिदम्**—पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ २९२ पर लिखा है—'दोनों विज्ञापन छपवाने का प्रबन्ध किया।' ये दोनों विज्ञापन कौन से थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। प्रकृत विज्ञापन १४ अगस्त १८७६ से ३-४ मास पश्चात् बरेली में लिखा गया था।

पृष्ठ ९७, पं० ४—**भाष्य रचे जाते थे**—अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ रूप भाष्य।

पृष्ठ १०९, पं० १३—'मेरा वेदभाष्य महाभारत के पूर्व के भाष्यों……' इसका तात्पर्य है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास और उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा जो शाखा प्रवचन हुआ था वह महाभारत युद्ध से पूर्व हुआ था।

पृष्ठ ११७, पूर्ण संख्या ६४ का पत्र अस्थान में छपा है। इसे भ्रमोच्छेदन (वि०सं० १९३७)के पश्चात् रखना चाहिये। द्र० प्रथम परिशिष्ट पृष्ठ ८३२।

पृष्ठ १२९, पं० २४—'**स्वामी जी के लिखे ६ पत्र**…………छपे हैं' यहां कुछ भूल हो गई है। पूर्ण संख्या ६६, ६८, ६९, ७० तो पं० गोपालराव हरि देशमुख को लिखे गये और पूर्ण संख्या ७१, ७२ पं० रामाधार वाजपेयी को लिखे गये हैं। यहां 'दूसरे सभी पत्र' शब्दों से पूर्ण सख्या ७१, ७२ के पत्रों की ओर ही ऋ० द० का संकेत जानना चाहिये।

पृष्ठ १३६, पूर्ण संख्या ७९, ८० के पत्रों का माधोलाल जी के द्वारा दिया गया उत्तर तीसरे भाग में देखें।

पृष्ठ १७८ पर पूर्ण संख्या ११२ पर लाला मूलराज के नाम छपे पत्र पर **पत्र संख्या** २५५ छपनी चाहिये। द्रष्टव्य— 'इससे पहले एक चिट्ठी संख्या २५५ लिखी ५ अगस्त की ……' (पृष्ठ १८०, पं० १२)।

पृष्ठ १९८ पं० २४–२८ तक शास्त्रार्थ के जिन नियमों की चर्चा है, उन का इस प्रकरण में मुद्रण भूल से न हो सका। अतः हमने इन्हें प्रथम परिशिष्ट (भाग २) में पृष्ठ ८२४-८२७ पर छापा है।

पृष्ठ २१०, पं० १८—'सभा के नियम लिखवा दिये हैं' —ये नियम इस पत्र से पूर्व छापने चाहिये थे, परन्तु भूल से रह गये। इन्हें हमने प्रथम परिशिष्ट (भाग २) में पृष्ठ ८२४-८२७ पर छापा है, वहां देखें।

पृष्ठ २१२ पं० १४—'आपकी नम्बरी १६४–२० सि० की' पाठ के विषय में–'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तक के पृष्ठ २९ में मुद्रित पत्र में '२० सि०' के स्थान में '२१ सितम्बर' छपा है। कौन सी तारीख शुद्ध है यह मूल पत्र

से ही जाना जा सकता है। 'दानापुर' में ऋ० द०' पुस्तक में भी मुद्रण प्रमाद पर्याप्त हैं।

पृष्ठ २१३, पं० २२-२३—'मेरठ आर्यसमाज की स्थापना २९ सितम्बर १८७८ को हुई थी' इसका संशोधन—

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ५०१ पर 'मेरठ में आर्यसमाज की स्थापना २९ सितम्बर १८७८ में हुई थी' ऐसा लिखा है। पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४४८ पर 'असौज बदी ३ सं० १९३५ तदनुसार २९ सितम्बर सन् १८७८ में' मेरठ समाज की स्थापना लिखी है। यह दोनों लेख अशुद्ध हैं। पूर्ण संख्या १४४ (पृष्ठ २१२) पर छपे मेरठ से २३ सितम्बर ७८ को बाबू माधोलाल को लिखे पत्र में स्पष्ट लिखा है—**यहां पर समाज हो गया है**। अतः मेरठ में आ० स० की स्थापना निश्चय ही २३ सितम्बर १८७८ से पूर्व हुई थी। पं० लेखराम कृत जी० च० में 'असौज बदी ३ सं० १९३५ तदनुसार २९ सितम्बर सन् १८७८' लिखा है। असौज अर्थात् आश्विन बदी ३ को १४ सितम्बर १८७८ शनिवार था। २९ सित० को आश्विन सुदी ३ थी। हमारा विचार है कि लेखराम जी का 'असौज बदी ३' लिखना ठीक है। उस से अंग्रेजी तारीख की तुलना में भूल हुई है।

पृष्ठ २१७' पं० २४—टि० ३ निकाल देवें, अशुद्ध है।

पृष्ठ २१९, पं० २२—'**जुगलबिहारी शर्मा की एक चिट्ठी आई**' इस पर टिप्पणी—जुगलबिहारी शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

पृष्ठ २३५ पं० २२–२३ की तीसरी टिप्पणी इस प्रकार पढ़ें—

देखो पं० लेखराम कृत जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५५१ तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ५१७। यह तार जयपुर से रुड़की दिया गया था। यहां 'मेरठ' के स्थान में 'रुड़की' होना चाहिये।

पृष्ठ २९९, पं० ८—'विज्ञापन तुमने छपवा लेने नमूना भेजते हैं'…… ……मुरादाबाद से विज्ञापन बाबत………'. पर टिप्पणी—

'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तिका में पृष्ठ ३८ पर माधोलाल के नाम लिखे पत्र को छापते हुए सम्पादक विभुमित्र शास्त्री ने टिप्पणी 'मुरादाबाद का विज्ञापन इस प्रकार था' लिखकर 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या २३५ (पृ० २९५) पर छापे गये विज्ञापन को छापा है। यह सम्पादक की भूल है। उक्त विज्ञापन मुरादाबाद में नहीं लिखा गया था अपितु शाहजहांपुर में दिया गया था। मुरादाबाद का विज्ञापन प्रेस खोलने

के सम्बन्ध में मुंशी इन्द्रमणि ने छपवाया था उसी की ओर यह संकेत हैं। द्र० पूर्व पृष्ठ २६० की पङ्क्ति २३ से आगे का पाठ।

पृष्ठ ३६५, पं० १३ '**विशिष्ट विज्ञापन**' इस पर टि० की २ संख्या डाल कर टिप्पणी देवें—इस विज्ञापन के मुद्रित होने के स्थानों का निर्देश आगे पृष्ठ ३६८ की टिप्पणी १ में देखें।

पृष्ठ ३६६, पं० २२ 'सोमवार' पद नहीं हैं, के आगे बढ़ायें–पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८७३–८७५।

पृष्ठ ३९८, पं० १-२—'......**विज्ञापन ही विज्ञापन छपवा डाले। नहीं छापने योग्य बाते लिखीं।' इस पर टिप्पणी—**

यहां जिस विज्ञापन के छापने पर ऋ० द० ने अप्रसन्नता प्रकट की है वह विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य के अङ्क १६-१७(सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर **बड़ा भारी विज्ञापन(अवश्य देखने योग्य)** शीर्षक से मुंशी बख्तावर-सिंह ने छपवाया था। इसे हम तीसरे परिशिष्ट में पूर्ण संख्या ३१९, पृष्ठ ३९९ पं० ५-६ के प्रसंग में दे रहे हैं।

पृष्ठ ४०७, पं० २७–१६ सितम्बर १८८० के आगे बढ़ावें—पूर्ण संख्या ३४४, पृष्ठ ४०९, पं० २ में '१२ गुरुवार' का ही निर्देश है।' परन्तु पूर्ण संख्या ३४६ पृष्ठ ४१० पं० १५ में 'भाद्रसुदी १२ बुधवार' का निर्देश ही मिलता है।

पृष्ठ ४०८, पं० ३—**मथुरा से दूसरा पंडित बुलाया है**—इस पंडित का निर्देश पृष्ठ ४१८ पं० १७ में भी हैं।

पृष्ठ ४१४, पं० १६—**डाक्टर मासिनाम्ना**—ये लन्दन को थियोसोफिकल सोसाईटी के प्रधान थे। पूर्व पृष्ठ १५६ पर पूर्ण संख्या १०४, १०५ के विषय में लिखा है—'दो पत्र इङ्गलैण्ड भेजे गये'। सम्भवतः १ पत्र डा० मासि को भेजा गया होगा। दयानन्द दिग्विजयार्क भाग ३ पृष्ठ ९१ पर डा० सी. सी. मैसी साहब के थियोसोफिकल सोसाइटी से इस्तीफा देने का उल्लेख किया है। डा० मैसी ने जिस कारण इस्तीफा दिया था उसे दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३ पृ ठ ९१,९२ (आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट देहली द्वारा प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ १४९) पर देखें।

पृष्ठ ४१८ पं० १७—**एक पंडित मथुरा से आया था**—इसका उल्लेख पूर्व पृष्ठ ४०८, पं० ३ में भी है।

पृष्ठ ४३२, प० २७ 'मिलता है।' से आगे बढ़ावें–'अगला पूर्ण संख्या ३७३, (पृष्ठ ४३४-४३७) जो पत्र ऋ० द० ने स्वहस्ताक्षर से भेजा था, उसके पृष्ठ

४३५, पं० ५ में 'मैंने इससे पहले पत्र में लिख… –' का उल्लेख मिलता है।

पृष्ठ ४९३, पं० ९—**कलकत्ते की सभा**—इस सभा में ऋ० द० पर किये गये आक्षेपों का उत्तर हमने प्रथम परिशिष्ट में पृष्ठ ८६३ पर छापा है। पं० लेखराम के निर्देशानुसार यह उत्तर ऋ० द० ने दिया था।

पृष्ठ ४९४, पं० १५—**आगे छापे जा रहे**—इस पर टिप्पणी—यह ओषधिपत्र आगे पूर्ण संख्या ८०१ पर पृष्ठ ८०१–८०६ तक छपा है।

पृष्ठ ५०५, पं० १९-२०—**'आपके पास भेजते हैं**—इस पर टिप्पणी—ये कागजात पूर्ण संख्या ४६२ पर पृष्ठ ५०८–५१२ तक छापे हैं।

पृष्ठ ५४२, पं० ३-५—**'तीन दिन पश्चात् वार्षिक उत्सव'** इस पर टिप्पणी–चैत्र शुक्ला १ को उत्सव मनाया गया। इसके संबन्ध में हमने आगे चौथे परिशिष्ट 'आर्यसमाज की स्थापना तिथि' में विस्तार से लिखा है।

पृष्ठ ५४२, पं० ५-६—**'दानापुर से तीन सभासद यहां उत्सव पर आवेंगे'** इस पर टिप्पणी—तीन के स्थान में चार सदस्य बम्बई पहुंचे। इनके नाम थे—बाबू माधोलाल, बाबू जनकधारीलाल, बाबू रामनारायणलाल और पं० आदित्यनारायण। ये लोग २० मार्च १८८२ को बम्बई पहुंचे थे। 'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर इन लोगों का २ मार्च को बम्बई पहुंचना लिखा है, वह भूल है। ऋ० द० ने जिस पत्र में इन के सम्मिलित होने की सूचना दी है वह चैत्र वदी ९=१७ मार्च १८८२ है। इससे स्पष्ट है कि ये लोग १७ मार्च के पश्चात् बम्बई पहुंचे थे।

पृष्ठ ५४४, पं० २१ कर्नल आल्काट के नाम पूर्ण संख्या ५११ का पत्र—यह पत्र ऋ० द० ने बाबू जनकधारीलाल से लिखवाया था (द्र० 'दानापुर में ऋ० द०' पृष्ठ ६६)। यह पत्र मूलतः अंग्रजी में लिखा गया था।

पृष्ठ ५५३, पं० २४—**कोटहूमीलाल**—इस पर नई टिप्पणी बढ़ावें—आगे पूर्णसंख्या ७२७ के पत्र में पृष्ठ ७३९, पं० २५ में 'कुतुहूंबीलालसिंह' नाम आया है। दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ ९० पर 'कुटुम्बीलालसिंह' और ९२ पर 'कुटुम्बीलाल' नाम मिलता है। आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट का नया सं० पृष्ठ १४८, १४९।

पृष्ठ ५६९, पं० २३—**'टाइटल पेज ४'** इसके आगे बढ़ावें—'पर ऋषि दयानन्द के हस्ताक्षर से युक्त'।

पृष्ठ ५६६, पं० २४—'छपा है' के आगे बढ़ावें—**'इसके साथ देशहितैषी और आर्य का भी विज्ञापन छपा हैं'** । ५६५ अशुद्धि

पृष्ठ ६४२, पं० ३—**इन्द्रमणि जी के विज्ञापन रूप**—इस पर टिप्पणी देवें—इन्द्रमणि द्वारा प्रकाशित विज्ञापन तीसरे भाग में देखें ।

पृष्ठ ६४८, पं० २६—'सुरक्षित किया है' के आगे बढ़ावें—सेवकलाल कृष्णदास के १९ तथा २० जनवरी १८८३ के पत्र तीसरे भाग में देखें ।'

पृष्ठ ६६१, पं० २—**'वे श्रीमान् महाराणा जी के पास भेज देंगे'**—इस पर टिप्पणी देवें—

'यह महाराणा उदयपुराधीशों को धन्यवाद का पत्र कई आर्य समाजों की ओर से भेजा गया । यह धन्यवाद-पत्र दयानन्द दिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १४९-१५१ (नया सं० पृष्ठ १७९-१८०) पर छपा है । इसे तथा इसका महाराणा जी की ओर से दिया गया उत्तर तीसरे परिशिष्ट में देखें ।

पृष्ठ ६६७, पं० ४ **'बारा मार्च की लिखी हुई चिट्ठी आई'**—इस पर टिप्पणी—वह चिट्ठी हमें नहीं मिली ।

पृष्ठ ६६७, पं० ६-७—**'शुद्धि-पत्र·······जिल्दें बंधवाने का लिखा सो अच्छा किया'**—इस पर टिप्पणी—

'शुद्धि-पत्र वेदभाष्य के ग्राहकों को भेजने और वेदभाष्य की जिल्दें बंधवाने के सम्बन्ध में ऋग्वेद भाष्य अंक ४०-४१, अधिक श्रावण १९३९ के सम्मिलित अंक के टाइटल पेज ४ पर मुंशी समर्थदान ने सूचना छापी थी । उसी की ओर यह निर्देश है । उक्त सूचना तीसरे परिशिष्ट में दे रहे हैं ।

पृ० ७१२ टि० ६—**इस प्रकार शोधें**—यह सूचना य० भाष्य के ४८-४९ (सम्मिलित) अङ्क तथा ऋ० भाष्य के सं० १९४० आषाढ़ कृष्ण के ५०-५१ (सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज के प्रथम पृष्ठ पर छपी है ।

पृष्ठ ७३६, पं० १६—**घड़ी तुम्हारे पास एक आई वा दो**—पुरोहित उदयलाल को घड़ी भेजने के लिये ऋषि दयानन्द ने सेवकलाल कृष्णदास को भी लिखा था और लक्ष्मण गोपाल देशमुख जब जोधपुर में स्वामी जी से मिलकर (जून ३।४।१८८३) बम्बई लौटे, तब उनसे भी घड़ी भेजने को कहा था । दोनों ने घड़ी भेजने की सूचना अपने अपने पत्रों में दी । देखो म० मुंशी राम सम्पा० पत्रव्यवहार (पृ० २४२, २४३, २७४) अतः स्वामी जी महाराज को सन्देह हुआ कि घड़ी एक भेजी गई और दोनों ने उसकी सूचना दी, या दोनों ने अलग अलग घड़ी भेजी ।

पृष्ठ ७३७, पं० ९—‘वेद पर आक्षेप पत्र छपवाया है’—इस पर टिप्पणी देखें—‘यह आक्षेप पत्र तीसरे परिशिष्ट में देखें।’

पृष्ठ ८३९ पं० २६ से पृष्ठ ८४० पं० ७ के **प्रश्नोत्तर विषय पर टिप्पणी**—यहां भृगुसंहिता का भृगुसिद्धान्त के नाम से निर्देश किया। और उसे आप्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। तथा इसमें ‘केवल गणित विद्या’ स्वीकार की है। इसकी तुलना पूर्ण संख्या १, पृष्ठ २, पं० ७-८ तथा पूर्ण संख्या १२१, पृष्ठ १९७ पं० २३-२६ और सत्यार्थप्रकाश(१८७५)के तृतीय समुल्लास के पृष्ठ ८६ के साथ करनी चाहिये। विशेष द्र० पूर्व पृष्ठ २ की टि० ३।

पृष्ठ ८६३ पर हमने [ ] कोष्ठ में जो सम्पादकीय नोट दिया है। उस के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख भी दर्शनीय है—

इसी ‘आर्यसन्मार्गदर्शिनी सभा और ऋषि दयानन्द’ में आगे पृष्ठ ८८२ पं० १८ में लिखा हैं—“हम को ज्ञात नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इसका क्या अर्थ करते हैं।” इस लेख से इन उत्तरों का लेखक अन्य व्यक्ति होने की आशंका होती है। क्योंकि ऋषि दयानन्द ने इस उद्धरण पर काशी शास्त्रार्थ में अपना अभिप्राय प्रकट किया है। फिर भी हम समझते हैं इन प्रश्नों के उत्तर में ऋ० द० का हाथ अवश्य था। क्योंकि ऐसा गूढ़ विचार अन्य प्रकट नहीं कर सकता।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी जीवनी ‘कल्याणमार्ग के पथिक) पृष्ठ ९९ (काशी ज्ञानमण्डल प्रेस) में लिखा है—‘लाला सांईदासजी…… । पत्रों में भी वह प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं लिखते थे। उस समय तक उन्होंने एक उर्दू ट्रैक्ट ‘एक आर्य’ नाम से लिखा था जिसमें कलकत्ता के पण्डितों की ऋषि दयानन्द के विरुद्ध दी हुई व्यवस्था की पड़ताल की गई थी।’ यह ट्रैक्ट हमें देखने को नहीं मिला। परन्तु हमने जो उत्तर छापे हैं उनके लेखक साईंदास जी नहीं हो सकते, क्योंकि वे वेदशास्त्रादि के गम्भीर ज्ञाता नहीं थे।

पृष्ठ ८६९, पं० २४-२७—**जो ब्रह्म अर्थात्…… ब्राह्मण रखा गया—** इस पर टिप्पणी—

इस की तुलना ‘पूना-प्रवचन’ के दसवें प्रवचन(पृष्ठ ११०)के साथ करें—‘ब्राह्मणों के बनाये हुए जो वेदों के व्याख्यान थे उन को ब्राह्मण पुस्तक कहा जाता था।’ इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ‘वेदसंज्ञाविचार’, प्रकरण में भी लिखा है—“**चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि** अर्थात् चारों वेदों के जानने वाले

ब्रह्म=ब्राह्मण महर्षियों से प्रोक्त जो वेद के व्याख्यान उन को ब्राह्मण कहते हैं" । द्र० पृष्ठ १००, रा० ला० क० ट्रस्ट संस्क० ।

पृष्ठ ८६६ पं० २६-३२–**जब कोई धार्मिक या वैधानिक……होता था** पर टिप्पणी--इसकी पूनाप्रवचन पृष्ठ १११ पं० ४-६ (रा० ला० क० ट्र० संस्क०) के पाठ के साथ तुलना करनी चाहिये । पूनाप्रवचन के इस प्रसंग पर दी गई दूसरी टिप्पणी भी देखनी चाहिये ।

—:o:—

तृतीय परिशिष्ट

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में निर्दिष्ट आवश्यक सामग्री का संकलन

पूर्ण संख्या २२, पृष्ठ ५७, पं० ३—उन नियमों में दो नियम बढ़ाये हैं—

यहां 'उन नियमों में' शब्द से जिन नियमों की ओर संकेत किया है, वे राजकोट की आर्यसमाज के लिये रचे गये थे । उनकी संख्या २६ थी । उनमें आगे पत्र में लिखे दो नियम बढ़ाकर बम्बई आर्यसमाज के लिये २८ नियम बनाये थे ।

पूर्ण संख्या २३, पृष्ठ ५८, पं० २-३—**आयसमाज के नियम और उन की व्याख्या पुस्तक छपता है—**

इन दोनों निर्देशों के अनुसार आर्यसमाज मुम्बई के २८ नियम व्याख्यान सहित नीचे दे रहे हैं—

मुम्बई आर्य समाज के नियम[१] और उसका व्याख्यान[२]

मूल १. ओं सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का अवश्य होना चाहिये ।

---

१. यहां हम मुम्बई आर्य समाज के नियमों का पाठ सन् १९३३ में छपे 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ पर छपे पाठ के अनुसार दे रहे हैं । श्री पं० लेखराम रचित जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ २००-२०३ तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३५ में नियमों का पाठ हिन्दी भाषानुसार संशोधित छपा है ।

२. मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास में नियमों के मूल पाठ के साथ 'व्याख्यान' भी

व्याख्यान—इस समाज से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति मनुष्यों को यथावत् होगी। अतएव आर्यावर्तादि देशस्थ मनुष्य जातिमात्र का हित इस समाज से निश्चित होना है।१।।

मूल २. ईस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही माना जायेगा। तथा साक्ष्यर्थ वेदों के विज्ञानार्थ और आर्य इतिहासार्थ, शतपथ ब्राह्मणादि छ ६ वेदों के जो अङ्ग, ४ चार उपवेद, ६ छः दर्शन, तथा ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान, ये सब आर्य सनातन संस्कृत ग्रन्थों का गौणं प्रमाण माना जायगा, जो कि वेदानुकूल।

व्याख्यान—मुख्य वेदों से उत्तम कोई ग्रन्थ माना न जायगा, किन्तु नीचे लीखे प्रमाणे साक्ष्यादिक प्रयोजन के लिये यथोक्त शतपथादि ग्रन्थ माने जायँगे, जितना जितना अंश वेदानुकूल। विरुद्धांस को न माना जायगा। स्वतः प्रमाण ग्रन्थान्तर प्रमाणानपेक्ष, कि वेदों के प्रमाण विषे वेदों का ही प्रमाण माना जायगा। और शतपथादि पूर्वोक्त ग्रन्थों का परतः प्रमाण, अर्थात् वेदों के प्रमाण से ही उनका प्रमाण होगा, स्वतः नहीं।२।।

छोटे अक्षरों में छपा है। इस व्याख्यान की भाषा भी हिन्दी है (मूल नियम और व्याख्यान की भाषा हिन्दी होते हुए भी गुजराती लिपि में छपे हैं)। नियमों का व्याख्यान किस का लिखा है, यह उक्त इतिहास से ज्ञात नहीं होता। परन्तु इसी इतिहास के पृष्ठ २१ पर जो टिप्पणी (आगे इसे हम छाप रहे हैं) से, तथा ऋ० द० के पूर्ण संख्या २३ के पत्र में पृष्ठ ५८, पं० २-३ में लिखा है--'**आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है**' लेख तथा व्याख्या पर विचार करने से विदित होता है कि यह व्याख्या भी ऋषि दयानन्द की लिखी वा लिखाई हुई है। इस लिये हम मूल नियमों को बड़े अक्षरों में तथा उस के साथ उसको व्याख्यान को छोटे अक्षरों में यहां छाप रहे हैं।

'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के लेखक श्री **दामोदरदास सुन्दरदास** ने आर्य समाज के नियमों और उसके व्याख्यान के पाठ के अन्त में पृष्ठ २१ पर टिप्पणी में लिखा है--"उपला जुना मुल २८ नियमो जे ढबमां छापेला प्राप्त थया तेवोने तेवाज ऊपर मुजेब आपेला छे. ते समयनी छपाई तथा भाषापण कांइक जुदी पड़ती जणाय छे. तेमा कोई सुधारो के फेरफार कर्या बगैर एमज आपवा उचित लागवाथी ते गुजराती टाइप मां ज असल मुजब छाप्या छे।"

मूल ३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक-एक प्रधान समाज होगा, और अन्य सब शाखोपशाखारूप होंगे।

व्याख्यान—सब को निकट परस्पर व्यवस्था प्रीति और उपकार के लिये तथा विद्या वृद्ध्यर्थ यह नियम जानना ॥३॥

मूल ४. प्रधान समाज के अनुकूल अन्य सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

व्याख्यान—उन्नति के लिये यह नियम जानना ॥४॥

मूल ५. प्रधान समाज से वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार पुस्तक होंगे। सदुपदेश के लिये, और आठ आठवे दिन एक आर्यप्रकाश पत्र निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायंगे।

व्याख्यान—विद्वान्, अविद्वान्, स्त्री, पुरुष इन सभों को सत्यासत्य कर्तव्याकर्तव्य और इश्वरादि पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों का यथावत् बोध और अत्यन्त सुखप्राप्त होगा ॥५॥

मूल ६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।

व्याख्यान—जिस्से इस समाज की रक्षा और अत्यन्त उन्नति होय ॥६॥

मूल ७. प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था पालन करेगा। और मन्त्री सब के पत्रों का प्रत्युत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

व्याख्यान—सब समाजस्थों को सब सभासदों का वर्तमान और प्रश्नोत्तर विदित रहने के लिये यह नियम है ॥७॥

मूल ८. इस समाज में सत्पुरुष सद्नीति सदाचरणी जनों के हितकारक समाजस्थ किये जायेंगे।

व्याख्यान—दुष्ट मनुष्य के सभासद् होने से समाज को दोष लगता है। इसलिये दुष्ट को सभासद् शीघ्र नहीं करना किन्तु जो दुष्टता छोड़ने के लिये और सज्जनता ग्रहण करने के लिये निष्कपट होके सभासद हुआ चाहै सो हो सकता है ॥८॥

मूल ६. जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होय, सो जैसा गृहकार्य में पुरुषार्थ करता है, उस्से अधिक पुरुषार्थ ईस समाज की उन्नति के लिये करें। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति ही करें अन्यथा नहीं।

व्याख्यान—जब परोपकार सर्वहित स्वहृदय की प्रीति होगी, तब यह कार्य बनता है जो इस नियम के अनुकूल आचरण करेगा, उसको धन्यवाद देना चाहीये। और परमात्मा की तर्फ से भी उसी को धन्यवाद अवश्य मिलेगा ॥६॥

मूल १०. आठ आठवें दिन प्रधान मन्त्री और सब सभासद् समाज स्थान में एकीठे होंय, सब काम से इस काम को मुख्य जानके।

व्याख्यान-क्योंकि ईस व्यवहार से इस लोक और परलोक तथा मोक्ष की निश्चित सिद्धि होती है, ईस्से इस काम को सर्वोत्तम अवश्य जानना ॥१०॥

मूल ११. ऐकिठे होके सर्वथा उचित होंय परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ के करें, सामवेदादि गान करैं। ईन विषयों में ही होय, कि परमेश्वर, सत्यधर्म, सद्नीति, सत्योपदेश विषयक ही वादित्रवादनपूर्वक गान, पूर्वोक्त विषयक मन्त्रों का अर्थ, ऐसा ही वक्तृत्व, पुनर्गान, पुनर्मन्त्रार्थ, पुनर्गान ईत्यादि।

व्याख्यान-सत्य प्रतिपादन असत्य का खण्डन जिस्से होय, ऐसा न होय, कि मेरा ही कथन सत्य अखण्डित जैसा होय, वैसा ही हठादी से दुसरे का सत्य का भी खण्डन करना अपने असत्य का भी मण्डन, करना इत्यादि सर्थथा छोड़ ही देना ॥११॥

मूल १२. प्रत्येक सभासदों को न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त होय, उसमें से आर्यसमाज आर्यविद्यालय तथा आर्यप्रकाश पत्र, ईन तीनों के प्रचार के लिये प्रीतिपूर्वक शतांश देवैं। अधिक देने से अधिक धर्मफल। ईस धन का व्यय इन तीन विषयों में ही होय, अन्यत्र व्यय नहीं किया जाय।

व्याख्यान–इस नियम के विना आर्यसमाजादि की स्थिर व्यवस्था और उन्नति नहीं हो सकती वारंवार सभासदों से जादा लेने से अच्छा नहीं। और धनाढ्य लोगों पर अत्यन्त भार होने से उनकी अरुचो हो सकती है। इसलिये यह नियम होना ही चाहिये। परन्तु जो जो व्यापारी है और अपना व्यवहार गुप्त रखना चाहै वह एक वार इक्ट्ठा धन देवै, यथासामर्थ्य और श्रद्धा, अथवा मासीक किंवा वार्षिक निबन्ध न कर देवे। तथैव राजालोगों की भी व्यवस्था रहै। और अन्य सब लोगों का शतांश देना ही ठीक है ॥१२॥

मूल १३. जो जन ईन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करै उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

व्याख्यान–परन्तु वह जन सत्कार की इच्छा किंवा दंभादि से कोई काम न करें, किन्तु इस काम को अपना ही समजे। मनुष्यों के उपकार और इश्वर की प्रसन्नता के लिये ही करें, अन्यथा नहीं। क्योंकि जैसे जैसे विनयादि मनुष्य में होते हैं वैसे वैसे मनुष्य का सत्कार आप से आप ही होता है, स्वेच्छा से नहीं। परन्तु आर्यसमाज का उपकार जन परमार्थ दृष्टि से ही करे और सब लोग उसकी प्रतिष्ठा यथायोग्य करैं ॥१३॥

मूल १४. इस समाज में वेदोक्त आदि प्रकार से ही एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में आवेगी।

व्याख्यान–निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्व जगत् पिता, सर्वजगन्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव' अनन्त सुखप्रद, धर्मार्थ काम मोक्षप्रद ईत्यादि विशेषणों से परमात्मा ही स्तुति गुणकीर्तन प्रार्थना, उस्से सर्वश्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना, उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षणवाला की ही भक्ति करनी। उस्से विपरीत को कभी नहीं करनी ॥१४॥

मूल १५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायंगे।

व्याख्यान—निषेक (१) वीर्यप्रदान, पुंसवन (२) वीर्यरक्षोपाय, सीमन्तोन्नयन (३) गर्भरक्षोपाय, जातकर्म (४) बालक और प्रसूत स्त्री की सम्यक् रक्षाकरण, नामकरण (५) देवदत्त, यज्ञदत्त, सुशील, सुवीर, यशस्वी इत्यादि पुत्रों का नाम रखना; कलावती, यशोदा, शर्मदा, धर्मदा, इत्यादि कन्याओं के नाम रखना, निष्क्रमण (६) शुद्ध प्रदेश में बालक को घुमाना आदि, (७) कर्णवेध, (८) चुडाकर्म मुण्डन करना, यज्ञोपवीत (९) विद्यापठनार्थ विद्यार्थी का चिह्न धारण करना, विद्यारम्भ (१०) नियमपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम-पालन, गुरुसेवा और यथार्थ विद्याभ्यास करना, सत्यभाषण, सुशीलादि सद्गुण धारना, समावर्तन (११) यथावत् चौदह विद्या पढ़ने शिल्पादि हस्तक्रिया सीख के विवाह करने की इच्छा करके गुरु को प्रसन्न करके घर को आना, विवाह (१२) २५ वर्ष उपरान्त ४८ वर्ष पूर्व पुरुषों का विवाह का नियम है, वेदादिशास्त्रों में, तथा स्त्री लोगों का नियम १६ वें वर्ष से आगे और २५ वा ३० वर्ष से पूर्व पूर्व कन्याओं का विवाह होना चाहिये। परस्पर प्रसन्नता, तुल्य विद्या, स्वभाव, रुप, बल, पराक्रम, शरीर के गुण, तुल्य होना चाहिये, परन्तु स्त्री का शरीर पुरुष से छोटा कुछ कम बल होना चाहिये। तब गृहस्थाश्रम में सुख और उत्तम होते हैं, अन्यथा कुछ सुख तो नहीं होता, किन्तु दुःख ही भोगना पड़ता है, गृहाश्रम कृत्य(१३)नाना प्रकार गृहस्थों के व्यवहार, पञ्चमहायज्ञ, सन्तानोत्पत्ति, सन्तानों का सुशिक्षा पूर्वक विद्यादान, स्त्री पुरुष, श्वसुर, सासू, भृत्य, गृह सम्बन्धि सब काम यथायोग्य करना, गार्हपत्यदीक्षादि होना, वानप्रस्थ दीक्षा (१४)वेदान्तसेवन योगाभ्यास शास्त्रों का सुविचार परमेश्वर की अत्यन्त भक्ति, सब पदार्थों का गुणदोष विचार, शरीर पदार्थों में दोष दर्शन, हिताहित विचारादि करना, मोक्षविचार, उसके होने के उपायों का अनुष्ठान, सन्यास आश्रम दीक्षा, (१५)सब जगत् का कारण एक अद्वितीय परमात्मा और सब जगत् कार्य्य, परब्रह्म में दृढ़ निश्चय, धर्म का उपदेश और अधर्म का खण्डन, पक्षपात छोड़ के सब का हित करना। एक परमेश्वर परायण होके सर्वत्र घूमना, मोक्ष का यथावत् निश्चय करना इत्यादि। मृत्युसस्कार करना (१६) मृतक शरीर को स्नानादि से शुद्ध करना, सुगन्ध युक्त करना, श्मशान में पांच हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी तथा तीन हाथ गहरी वेदी करके प्रथम अर्ध वेदी लकड़ी से भरनी। ऊपर मुड़दा रखना। फिर उस पर और बगल में लकड़ी चिणनी तथा एक हाथ भर पृथ्वी से ऊपर चिणनी

चन्दन की लकड़ी कुछ १० वा २० सेर तो अवश्य चाहिये अन्य काष्ठ भी पलाश वा आम्रादिक होना, ३ तीन मण घी न्यून सेन्यून २० सेर से कम न होना चाहिये। फिर अग्नि प्रवेश करना। पुनः शुक्ल यजुः के ३९ वें अध्याय के "**स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः**" ईत्यादि मन्त्रों से चिता में कस्तूरी केसरादि युक्त घी का होम करना; जब तक मृतक शरीर भस्म न हो जाय। फिर शोक निवृत्त्यर्थ १० दिन कुछ अधिक वा न्यून दिन तक विद्वानों के साथ भाषण, विचार करना। जब शोक निवृत्त हो गया, तब विद्वानों को भोजन, दक्षिणा, धर्मात्माओं को यथा शक्ति देना। ए १६ सोलह संस्कारों में होम दानादि और वैद्यक शास्त्र की रीति से भोजन, पान, औषधादि सेवन करना। जिस्से शरीरारोग्य बढ़े और बुद्धि अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होय, उस्से सब सुख होना, अन्यथा नहीं।।१५।।

मूल १६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन और पाठन कराये जायंगें, वेदोक्त रीति से स्त्री और पुरुषों को सत्यशिक्षा करने में आवैगी।

व्याख्यान—संस्कृत वा भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ बनाने और पढ़ाने में वेदानुकूल आवेंगे। कोई भाषान्तर भी पढ़ाये जायगे। परन्तु जो जो उत्तमत्ता युक्त होंगे मुख्य संस्कृत ग्रन्थों का ही पठन और पाठन कराया जायगा।।१६।।

मूल १७. इस समाज में स्वदेशादिक हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जायगा एक परमार्थ और द्वितीय लोकव्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति किइ जायगी।

व्याख्यान–जैसा "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" नौकर भी आपके स्वामी के काम से अपना काम प्रथम कर्ता है, पीछे स्वामी का। प्रातःकाल जब निद्रा से जगता है तब पहिले अपना मुख प्रक्षालन पुंछना आदि करके पुनर्नौकरी का काम कर्ता है, वैसा ही सब मनुष्यों को उचित है, कि अपना अपना जन्म-देश का उपकार प्रथम करना और फिर अन्य देशस्थ मनुष्यों का उपकार करना। परमार्थ, ईश्वर, तद्भक्ति, तस्मादेव भय, तदाज्ञा पालन, सर्वजनोपकार, विद्याभ्यास, विद्यादान, अधर्म का सर्वथा त्याग, सत्यधर्म का सर्वथा अनुष्ठान, पक्षपात त्याग, सत्पुरुष संग, मन और इन्द्रियों का दमन,

मोक्ष और वैराग्य, विज्ञानादि मोक्षोपायों का अनुष्ठान इत्यादि परमार्थ में लेना, और व्यवहार में ब्रह्मचर्यादि अनुष्ठान, यथाकाल न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से राज्य और धनादि का संग्रह करना, वर्तमान में उन की रक्षा यथायोग्य करना, रक्षित को युक्ति से बढ़ाना, बढ़े को सद्विद्यादि में यथायोग्य व्यय करना, कोई एक को राज्य वा धन का अधिकार नहीं देना। अयोग्य सन्तानों को भी भोजन वस्त्रादि योग्य क्षेम मात्र से अधिक अधिकार न देना, किन्तु राज्य और धनादि की रक्षा उन्नति और व्यवस्था पालन धर्मात्मा विद्वान् और सज्जनों की सभा से ही सब व्यवस्था उत्तम उत्तम करना। शरीर के भोजनादि नियम सन्तानों को धर्म विद्या ही की सुशिक्षा करना, सत्य बात का प्रचार और मिथ्या बात का खण्डन करना और कराना। एक एक शरीर का नियम कुटुम्ब, घर, नगर, ग्राम, देश, और भूगोल, इन के सामाजिक नियम; सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट यथायोग्य बांधना, जिनसे सब संसार का यथायोग्य परम हित होय वैसे वैसे अनेक सुनियम करना इत्यादि व्यवहार पक्ष में लेना ॥१७॥

मूल १८. इस समाज में न्याय जो पक्षपात रहित अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य, धर्म, वेदोक्त, सोही माना जायगा; इस्से विपरीत न माना जायगा. यथाशक्ति।

व्याख्यान—आर्य सभासदों से कोई कहै कि यह बात वेदोक्त है तुम करो, तब दो बात विचारनी, जो वह युक्ति सिद्ध सत्य है तो माननी और युक्ति सिद्ध सत्यार्थ नहीं है, तो जानना कि ईस का यह अनर्थ करता है। फिर जो सर्वथा विद्वान् पक्षपात रहित लोगों को प्रत्यक्षादि प्रमाण और पदार्थ विद्या से युक्त नहीं अर्थ दिखता तो जानना कि यह वेदों का वचन नहीं है किन्तु कोइ को बनावट है, मतलब सिन्धू का वचन कि वा अविद्वान् का रचित है इश्वरोक्त नहीं। जब कोइ कहै कि वह काम परम्परा से चला आता है तुम लोग क्यों नहीं कर्ते? उस्से कहना कि वेदों में दिखला, पुस्तक के बीच में जो दिखलावे, फिर उस्से अर्थ करना, फिर जो अनर्थ होय, तो पूर्वोक्त रीति से ही निश्चय करके मानना वा छोड़ना। यथाशक्ति जितना अपना सामर्थ्य होय उस्से कमती काम कधी न रहै, अधिक श्रेष्ठ काम होय सो तो अच्छा ही है ॥१८॥

मूल १९. इस समाज की तर्फ से शिष्ट विद्वान् लोक सर्वत्र सत्योपदेश करने के लिये भेजे जायंगे; समयानुकूल।

व्याख्यान—जिस्से सब लोगों में सत्य असत्य यथावत् प्रकाशित होय, सत्य का ग्रहण सब लोक करैं और मिथ्याचार का त्याग करैं। तथा पाखण्डी धूर्त लोगों का खण्डन और धर्मात्मा सत्यप्रिय विद्वानों का मण्डन और सत्कार सर्वत्र होय एतदाद्यर्थ यह नियम है ॥१६॥

मूल २०. पुरुष और स्त्री ईन दोनों के विद्याभ्यास के लिये भिन्न भिन्न आर्यविद्यालय प्रत्येक स्थान में यथाशक्ति किये जायंगे। युरुषों की पाठशाला में अध्यापन और सेवा प्रबन्धादि पुरुषों से ही प्रबन्ध किया जायेगा। तथैव स्त्रियों की पाठशाला का स्त्रियों से, विपरीत नहीं।

व्याख्यान—विद्या पुरुष और स्त्रियों को जब तक यथावत् नहीं होती तब तक उस देश में मनुष्यों को दुःख के दिन नष्ट होके सुख के दिन प्राप्त कधी नहीं होते। महापुण्य और धर्म यही है जो सत्य सनातन विद्या का प्रचार करना। यथोक्त रीति से प्रबन्ध होने से यथावत् विद्या होती है और विघ्न कोई नहीं होता, इत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम है ॥२०॥

मूल २१. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाजाद्यर्थ धनकोश, इन चारों को व्यवस्था प्रधानार्य समाजानुकूल रहैगी। इनकी उन्नती और संरक्षण भी उस्से ही किया जायगा।

व्याख्यान—जो कुछ इन चारों का मुख्य प्रबन्ध आज्ञा और सम्यक् उनको रक्षादिक मुख्य समाजानुकूल रक्खा है यह मुख्याधिकार प्रधानार्य समाजाधीन रहेगा, और गौण काम शाखोपशाखारुप समाजों के आधीन ही यथायोग्य रहेगा। जिस्से किसी प्रकार व्यवस्थोलंघन कोई न कर सके। यथावत् उन्नति सब की होती जाय ॥२१॥

मूल २२. इस समाज में प्रधानादि सब सभासद परस्पर प्रीत्यर्थ अभिमान हठ दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़ के उपकार सुहृदता से सबसे निर्वैर होके स्वात्मवत् संप्रीति सबकी करनी होगी।

व्याख्यान—जो प्रीति से होता है सो काम वैर से कभी नहीं होता।

वह छोटा है, मैं बड़ा हूं, मेरी बात झूठी भी होय, वही सत्य होय, सभा में मेरी बात कट जायगी तो अप्रतिष्ठा मेरी होगी अर्थात् जैसे बनै वैसे मेरी बात सर्वोपरि रहैं, सत्य होय वा असत्य। ऐसा झुंठा हठ लेना कोई को नहीं चाहिये। यह सब का अभिप्राय रहे कि जो यथार्थ सत्य हैं वही स्थिर रहै। छोटा और बड़ा, छोटे और बड़े काम से ही मानना, अन्यथा नहीं ॥२२॥

मूल २३. विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित जो सत्य बात सम्यक् विचार से ठहरै उसी को सब सभासदों को विदित करके वही सत्य बात मानी जाय। विपरीत न मानी जाय। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

व्याख्यान—जिस देश में मनुष्यों को सुमति विचार युक्ति है उस देश का सौभाग्य नित्य ही बढ़ता जायगा, और दुःख सब नष्ट हो जायगा। सब व्यवहारों में किंवा परमार्थ विचार में सदा सत्य की तर्फ ही रहना सबको चाहिये, विपरीत को छोड़ के। मनुष्य की मनुष्यता यही है। अन्यथा पशुता ही जाननी ईत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम जानना ॥२३॥

मूल २४. जो जन ईन नियमों से अनुकूल आचरण करेगा उसको शिष्ठ समाज में ही स्थिर करना, वह धर्मात्मा सद्गुणी होय। इससे विपरीत को साधारण समाज में रखना। और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। प्ररन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु ए दोनों बात शिष्ठ सभासदों के विचार से ही की जाय, अन्यथा नहीं।

व्याख्यान—शिष्ट की प्रतिष्ठा करनी, दुसरे[1] को उपदेश और उत्साह देना तृतीय[2] से सदा उपेक्षा रखनी ॥२४॥

मूल २५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्यसमाजाद्यर्थ धनकोश ईन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद तन मन और धन से यथावत् सदा करै।

---

१. द्वितीय को अर्थात् साधारण जन को। सम्पा०।

२. तृतीय से अर्थात् दुष्ट से। सम्पा०।

व्याख्यान—ईन चारों की यथावत् प्रवृत्ति से आरम्भ से लेके उत्तरोत्तर मनुष्यों को महासुख लाभ होना अवश्य है ॥२५॥

मूल २६. जब तक नौकर करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करै और न अन्य को नौकर रक्खे । वे दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथायोग्य वर्ते ।

व्याख्यान—इस नियम से घर की नाई दोनों का अच्छा होगा और व्यवहार में भंग कधी नहीं होना, तथा धर्मरीति से धनाढच और दरिद्र का सुख से निर्वाह होना । इस्से समाजादि को अत्यन्त उन्नति होगी ॥२६॥

मूल २७. जब जब विवाह, पुत्र जन्म महालाभ किं वा मरण अथवा कोई समय दान, धन व्यय करना होय, तब तब आर्यसमाजाद्यर्थ धनादि दान अवश्य करैं। ऐसा धर्म काम कोई भी अन्य नहीं है, इस निश्चय को जान के इसको कधी ही न भुलै ।

व्याख्यान—इस नियम से आर्यसमाजादि की अत्यन्त उन्नति होने से स्वदेशादिस्थ मनुष्यादि को अत्यन्त सुखो का लाभ होगा । इसलीये यह नियम है ॥२७॥

मूल २८. इन नियमों से कोई नियम नया किया जायगा वा कोई निकाला जायगा, कि वा अधिक न्यून किया जायगा । सो सब शिष्ट सभासदों के विचार रीत से सब शिष्ट सभासदों को विदित करके ही. यथायोग्य करना होगा ।

व्याख्यान—इस नियम से सब बुद्धिमानों को आगे विचार करने का अवकाश रहेगा । कोई बुद्धिमान् अत्यन्त बन्धन में नहीं पड़ेगा । किन्तु आगे आगे विचार शक्ति के बहाने का उत्साह बढ़ैगा । ईस्से विज्ञान नित्य बढ़ता ही जायगा । ओ३म्. २८ ।

टिप्पणी—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ५७ पं० ३-८ पर जिन दो नियमों को बढ़ाने का उल्लेख करके नियमों का स्वरूप लिखा है, उन में प्रथम इन नियमों में संख्या २७ पर है और दूसरा नियम संख्या २६ पर ।

पृष्ठ ६४, पं० २०—इसके 'पत्र के विषय में दीनानाथ गांगोली ने अंग्रेजी

में जो पत्र' के स्थान में इस प्रकार शोधें—**'पत्र को भेजते समय दीनानाथ गांगोली ने बङ्गला में जो पत्र······'**। दीनानाथ गांगोली का मूल बंगला पत्र इस प्रकार था—

श्री श्री दुर्गाशरणम्
नमस्कारं ते निवेदनमिदम्

दयानन्द सरस्वती महोदयेर एक खनि मात्रो पत्रो पाइयासी ताह पठैलम् अवश्य तिनि अन्यो कोनो व्यक्तिर द्वारा यह इंग्रेजी ते लिखइया लौइआ छीलैन य ते ताहार साखोर आछे आशाकरी अपनी भला आछन

बसम्बद्ध
श्री दीनानाथ गांगोली
हालीशहर बंगाला
२४ पौष १३०२[1]

पूर्ण संख्या २९६, पृष्ठ ३४२—:**मीमांसक उपसभा'** के सदस्य आदि का वर्णन है। इस 'उपसभा' का निर्देश पूर्ण संख्या ४५७, पृष्ठ ५०१ पं० १२ में भी है। यह 'मीमांसक उपसभा' ता० २८ जून सन् १८८० ई० तदनुसार आषाढ़ कृष्णा ६ सोमवार सं० १९३७ के दिन फर्रुखाबाद आर्यसमाज की अन्तरंग सभा में नियत की गई थी। आर्यसमाज फर्रुखाबाद के रजिस्टर में इस अन्तरङ्ग सभा का विवरण इस प्रकार लिखा है—

"श्रीयुत स्वामी जी महाराज के सन्मुख आज की सभा में मीमांसकोपसभा का नियत होना सभासदों ने स्वीकार किया। इस सभा का आधिपत्य अन्तरङ्ग सभा पर होगा। इस में पक्षपातरहित न्याययुक्त उन बातों का निर्णय किया जावेगा जो कि अन्तरङ्ग सभा में ठीक ठीक निश्चित नहीं हुई हैं। इस के सभासद और प्रतिनिधि सभासद निम्नलिखित नियत हुए—"

[इतना अंश श्री मामराज जी ने आ० स० फर्रुखाबाद के रजिटर से नकल किया था। अगला अंश इतिहास फर्रुखाबाद पृष्ठ २३३ से दे रहे हैं।]

[मूल सदस्य]	[प्रतिनिधि सदस्य]
१. बाबू दुर्गाप्रसाद जी	१. मुंशि हरनारायण जी
२. लाला जगन्नाथप्रसादजी	२. पुरोहित मुन्नीलाल जी

---

[1] वि० सं० १९५२, सन् १८९५। यह मूल बंगला पत्र महाशय मामराज जी से प्राप्त हुआ था।

३. लाला निर्भयराम जी
४. लाला रामचरण जी
५. पं० गोपालराव हरि जी

३. आप के पुत्रों में से
४. लाला काली चरण जी
५. मुंशी नारायण दास जी

विशेष—यह मीमांसकोपसभा आपसी वैमनस्य को मिटाने के लिये नियत की गई थी। इसी कारण इस का अन्तरंग सभा पर भी आधियत्य स्वीकार किया गया था (द्र० फर्रुखाबाद का इतिहास, पृष्ठ २३३)। यदि इसी ढंग पर सर्वत्र समाजों प्रतिनिधि सभाओं और सार्वदेशिक सभा में भी अन्तरंग सभा के ऊपर मीमांसक **उपसभा** नियत की जाये और उस के निर्णय का रागद्वेष छोड़ कर स्वीकार किया जाये तो सभी विवाद समाप्त हो सकते हैं।

पूर्ण संख्या ३११, पृष्ठ ३५७–३५९—इस पत्र में वेदभाष्य की शीघ्रता से पूर्ति के लिये सहायतार्थ दो पण्डित रखने के लिये विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त हुए चन्दे का उल्लेख है। इस पत्र को तथा पूर्ण संख्या २१७ (पृ० २७१–२७३) पर छपे मुख्तियारनामे तथा पूर्ण संख्या ३२८ (पृ० ३८२) पर छपे प्रथम स्वीकार पत्र को समझने के लिये इस की पृष्ठभूमि जाननी आवश्यक है। वह पृष्ठ भूमि इस प्रकार है—

ऋषि दयानन्द २० मई १८८० =वैशाख शु० ११ सं० १९३७ को सातवीं (फर्रुखाबाद के इतिहासानुसार पृष्ठ १३५, वस्तुतः ९ नवमी) बार जब फर्रुखाबाद पधारे थे, तब उन्होंने २७ जून के व्याख्यान के अन्त में—"**वेदों का महीधरादिकों ने अशुद्ध अनर्गल अर्थ करके देश में भ्रान्ति फैलाई। वेदों का शुद्ध व सत्यार्थ शीघ्र होना आवश्क है**" इत्यादि कहकर **वेदभाष्य के कार्य को शीघ्र संपादन के लिये प्रबन्ध करने को कहा** (फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १३९)। इसके उपरान्त ही तत्काल १३५०) रु० एकत्रित हो गये (फर्रु० का इति० पृष्ठ १४०) और इस कार्य की पूर्ति के लिये श्री कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने ५ जून १८८० को एक विज्ञापन प्रकाशित किया, जो ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य के अंक १४ के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

आर्य समाज फर्रुखाबाद को ओर से

"सब आर्यसमाजों और और सज्जनों को विदित किया जाता है कि जो वेदभाष्य श्रीयुत स्वामी जी महाराज हम लोगों के परम उपकार के वास्ते

कर रहे हैं और जिसके सत्य अर्थ का प्रकाश शीघ्र ही हो जाना अवश्य है और यह बड़ा भारी काम है। एक के पूरा करने का कभी सम्भव मालूम नहीं होता। देखिये **अकेले स्वामी जी ने गत वर्षों में अति परिश्रम किया कि जिससे महा दारुण रोग उनको हुआ कि जिससे शरीर बचना भी असम्भव हो गया**[१], परन्तु ईश्वर की कृपा से वे सब रोगनिवृत्त हो गये अब हम सब लोगों की यह सम्मति है कि प्रशंसित महाराज के पास दो पण्डित ऐसे योग्य और विद्वान् सब समाजों की ओर से नियत किये जावें कि वे भी वेदभाष्य के श्रम का कुछ बोझ उठा लेवें, जिससे स्वामी जी का भार हल्का हो जावे अर्थात् कम श्रम करना पड़े, और वेदभाष्य शीघ्र ही बन जावे। क्योंकि उसके न होने से अन्धकार मनुष्य के हृदय में छा रहा है और नाना प्रकार के परस्पर विरोधी मतों में स्थित होकर महाहानि सुखों की करली और करते जाते हैं वह कभी न छूट सकेगी। अर्थात् एक मन्त्र का भी भाष्य रह जावेगा तो सम्भव है कि अविद्वान् लोग उसी का उलटा सूधा अर्थ समझाकर मनुष्यों को बहकावेंगे और अपना मतलब साधेंगे। इस वास्ते सब आर्यसमाजों को निवेदन किया जाता है कि यथाशक्ति इस

---

[१] यह महादारुण रोग भयानक अतिसार था। यह कष्ट लगातार कई मास तक रहा। इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने स्वयं पूर्ण संख्या १९६ (पृष्ठ २५१) से पूर्ण संख्या २२९ (पृष्ठ २८८) तक के कई पत्रों में किया है। सम्भव है इस रोग से शरीर के बचने की असम्भावना देखकर ही ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त भयानक अवस्था में अलीगढ़ जाकर ठा० मुकुन्दसिंह आदिके नाम मुख्तियारनामा रजिस्ट्री करवाया। यह मुख्तियारनामा पूर्ण संख्या २१७(पृष्ठ २७१)पर छपा है। रजिस्ट्री कराने के लिये ऋषि दयानन्द रोग की अधिकता के कारण कचहरी में भी न जा सके। रजिस्ट्रार ने अपना आदमी उनके स्थान पर भेजकर उनका बयान लिया। इसका उल्लेख उक्त मुख्तियारनामे की रजिस्ट्री पत्र के अन्त में रजिस्ट्रार के लेख में किया है। देखो यही पत्रव्यवहार पृष्ठ २७३, पं० ११-१२। शरीर की अचानक ऐसी दुरवस्था को देखकर ही ऋषि दयानन्द ने इसके कुछ काल के अनन्तर ही १६ अगस्त १८८० को मेरठ में अपने "स्वीकारपत्र" (वसीयतनामा) की भी रजिस्ट्री करवा दी। यह स्वीकारपत्र इसी ग्रन्थ में पूर्ण संख्या ३२८ (पृष्ठ ३८२) पर छपा है। जीवनचरित्रों में इस दारुण रोग का साधारण सा उल्लेख तो है, परन्तु मुख्तियारनामे का उल्लेख ही नहीं है।

काम में सहायता करनी उचित है। दो पण्डित विद्वान् १००) रु० से कम पर नहीं मिल सकते और सम्भव है कि जो उसकी सामग्री शीघ्र जुड़ जाये तो छः वर्ष में सम्पूर्ण चारों वेदों का भाष्य हो जा सकता है। तो इतने व्यय का भार हम सब समाजों और और लोगों को उठा लेना अशक्य नहीं है। इस समाज से भी यथाशक्ति द्रव्य का प्रबन्ध किया जायेगा। और जिस जिस समाज या मनुष्य ने जो कुछ भेजना हो निम्नलिखित नियमानुसार पत्र द्वारा इस समाज को अथवा श्री स्वामी जी महाराज को एक मास के भीतर उत्तर भेज दें।

हम आशा करते हैं कि इस परम उपकारक विषय में कोई भी सज्जन यथाशक्ति प्रयत्न करने में आलस्य न करेगा। जो यह काम इस समय में भी पूरा न हुआ तो फिर इसका होना अतिदुर्लभ है, क्योंकि ऐसा परोपकारी श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् और दयालु दूसरा कौन है जो इसको पूरा करे। इससे यह सर्व हितकारी कार्य अवश्य कर्तव्य है।

१—एक वर्ष का व्यय प्रथम ही देना होगा फिर इसी क्रम से प्रतिवर्ष छठे वर्ष पर्यन्त लिया जावेगा।

२—यदि कोई पांच वर्ष का व्यय एक बार भेज देवेगा तो उससे छठे वर्ष की याचना न की जावेगी, किन्तु उसके व्याज से पूरा हो जावेगा।

३—जो समाज वा मनुष्य जितना देवे एक वर्ष से कम न देवे अर्थात् जितना महावारी देवे उसका १२ गुणा करके वर्ष के आदि में भेज दिया करे। यह चन्दा छः वर्ष के पीछे नहीं लिया जावे।

४—इसके धन व्यय का हिसाब वर्ष वर्ष के अन्त में आर्यसमाज फर्रुखाबाद भेज दिया करेगा। छठे वर्ष के अन्त में जो व्यय करके बच रहेगा वह यथासंख्य सब देने वालों का अंश लौटा दिया जायेगा

५—इस व्यय में जिस किसी देनेवाले को कभी शंका पड़े तो आर्यसमाज फर्रुखाबाद से प्रत्युत्तर मंगवा सकते हैं।

६—इस पत्र का उत्तर वा धन प्रदान जो कुछ जिसको भेजना हो वह बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास एक मास के भीतर भेज देवे।

ह० कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद. ५ जून १८८०।

पूर्ण संख्या ३१२ पृष्ठ ३५९- ३६० पर जिस प्रकार के सहायक पण्डित के लिये **वेदभाष्य के टाइटल पेज पर** विज्ञापन छापने का उल्लेख है, वह

विज्ञापन **'चाहना'** शीर्षक से यजुर्वेदभाष्य अङ्क १५ के टाइटल पेज ३ पर इस प्रकार छापा गया था—

चाहना

विदित हो कि हमको वेदभाष्य के काम के लिये एक ऐसा पण्डित चाहता है जो कि पाणिनि व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी, महाभाष्य, पूर्वमीमांसा, निघण्टु निरुक्त, न्याय, वेदान्त पढ़ा हुआ, संस्कृत की भाषा व्याकरण की रीति से सुन्दर बना सकता हो, एक वा दो वेद भी पढ़ा हो, संस्कृत शीघ्र शुद्ध लिख सके। जो ऐसा पण्डित होगा उसको ५०) रु० वा ६०) मासिक जैसी उसकी योग्यता होगी मिला करेगा।

इस विषय में निम्नलिखित पते पर पत्र भेजना चाहिये—

मुंशी बखतावरसिंह, प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय लक्ष्मी कुण्ड, काशी

पूर्ण संख्या ३१९, पृष्ठ ३६९, पं० ५, ६—चारों वर्षों के पृथक् पृथक् चन्दा का विज्ञापन······भेज दें। यह विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य अंक १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर निम्नप्रकार छपा था—

बड़ाभारी विज्ञापन

(अवश्य देखने योग्य)

१—सब सज्जनों को विदित हो कि अब वेदभाष्य के छपने और प्रकाश करने का **प्रबन्ध** अच्छे प्रकार हो गया है, सो अब प्रतिमास अंगरेजी की पहली तारीख को यहां से डाक में डाला जाया करेगा।

२—जिन महाशयों के पास पहली तारीख से १० दिन के भीतर वेदभाष्य न पहुंचे तुरन्त हमको पत्र लिखें, नहीं तो फिर आगे को कोई दोष हम पर न लगा सकेगा।

३—ईश्वर की कृपा से इन दो १६, १७ अंकों के साथ तीसरा वर्ष सम्पूर्ण हो गया, अब १८ अंक से नये चौथे वर्ष का आरम्भ होगा। सब सज्जनों को उचित हैं कि इस अगले वर्ष का चन्दा ८) रु० दोनों वेदों का हमारे पास भेज दें। पिछले तीन वर्षों का चन्दा १७) रु० होता है, सो जिन्होंने कुछ नहीं दिया वे १७) रु० और जिन्होंने कुछ दे दिया है वे १७) रु० में से जितना दिया है उतना निकालकर बाकी का चन्दा हमारे पास शीघ्र भेजदें।

४—जो ग्राहक इस मास सितम्बर में ही अपना पिछला हिसाब दाम-दाम[1] भेजकर न चुका देंगे, तो हमको उनके नाम नादिहंदों[2] में लिख कर वेदभाष्य में छापकर प्रकाशित करने पड़ेंगे।

इसलिये उचित है कि जैसे सभ्यता पूर्वक हम सब ग्राहकों के पास ३ वर्ष से बराबर वेदभाष्य भेज रहें हैं, वैसे ही वे भी शीघ्र दाम भेज कर हिसाब चुका दें।

५—अब चौथे वर्ष का हम नया रजिस्टर बना रहे हैं कि जिसके अनुसार सब ग्राहकों के नाम छापे जावेंगे, यदि किसी को वेदभाष्य न लेना हो तो १५ सितम्बर तक हमको लिखें, नहीं तो फिर बराबर एक वर्ष तक लेना और दाम देना पड़ेगा।

हस्ताक्षर बख्तावरसिंह, मैनेजर वेदभाष्य बनारस

विशेष—ऋ० द० ने इस विज्ञापन के छापने पर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा था—'[जिन] से दाम उधार हैं उनका हिसाब छाप दो सो तो कुछ भी नहीं किया किन्तु विज्ञापन ही विज्ञापन छाप डाले। नहीं छापने के योग्य बातें छापीं। द्र० पूर्ण संख्या ३३४, पृष्ठ ३९७ पं० २५ से पृष्ठ ३९८, पं० २.।

पृष्ठ ३८२, पं० ३० में जिस विज्ञापन का उल्लेख किया है वह पूर्व इसी परिशिष्ट में पृष्ठ ६२०-६२२ पर छपा है।

पूर्ण संख्या ३३४, पृष्ठ ३९८ पं० ३—**मुन्शी जी का [वृत्तान्त] वृथा छापा।**[3] मुंशो इन्द्रमणि के मुकद्दमे का वृत्तान्त जो ऋग्वेदभाष्य अङ्क १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ २-३-४ पर छपा था वह इस प्रकार है—

मुंशी इन्द्रमणि जी के मुकदमे का वृत्तान्त

तीस वर्ष हुए होंगे एक किसी मुसलमान ने हिन्दूओं के खण्डन में एक किताब "बद्द हिन्दू" बनाकर छपवाई थी उसमें देवता अवतार आदि की निन्दा सर्वथा प्रमाण शून्य लिखी थी उसके उत्तर में किसी हिन्दू ने एक किताब "रद्द मुसलमा" बनाई फिर उवेदुल्ला नामी मुसलमान ने एक

---

[1] अर्थात् दमड़ी दमड़ी। [2] अर्थात् न देने वालों की सूची में।

[3] इस विषय में पूर्ण स्थिति जानने के लिये पृष्ठ ४०३ की टिप्पणी ३ अवश्य देखें।

किताब "तोफेतुलहिन्द" बनाकर छपवाई उसमें देवता आदि की अतीव निन्दा भरी है, मुसलमानों ने इस किताब के अनुसार जगह जगह हिन्दुओं के सम्मुख देवता आदि और हिन्दू मत की निन्दा करनी आरंभ की। इससे बहुधा मूर्ख हिन्दू मुसलमान हो गये. तब मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मतानुयायियों की रक्षा के लिये उस किताब के उत्तर में एक किताब 'तोफेतुलइसलाम" बनाई और वह आगरा,लाहौर,गुजरांवाला, बुलन्दशहर, मुरादाबाद आदि में छपकर प्रसिद्ध हुई। फिर मुरादाबाद के मुसलमानों ने "एजाज मुहम्मदी" और "हिदयेतुलइइसना" दो किताब बनाईं। इनमें हिन्दुओं के देवताओं को बहुत बुराई प्रमाण शून्य लिखी और छापकर प्रसिद्ध की। इनके उत्तर में मुंशी इन्द्रमणि ने "हमलः हिन्द" और "समसाम हिन्द" दो किताब बनाईं। वे १६ वर्ष हुए मेरठ में, फिर १२ वर्ष हुए मुरादाबाद में मुद्रित हुईं। इन किताबों के छपने से आज तक कहीं हिन्दू मुसलमानों में कोई उपद्रव नहीं हुआ फिर मुसलमानों की ओर से मौलवी मुहम्मदअली तहसीलदार विस्तारी जिला मुरादाबाद ने इन दोनों किताबों के उत्तर में "सीतुल्लाजब्बार" नामी एक किताब बनाकर बरेली में छपवाई। इसमें हिन्दुओं के देवता और मुंशी इन्द्रमणि को निरी गालियां ही भरी हैं। फिर मुसलमानों ने और भी कई किताब "लज्ज़ातुलहिन्द, तेग़ फकीर बर गरदन शरीर, हक़गोई शरह, सलोई" आदि बनाईं। जिनमें हजारों गालियां देवता और अवतारों को लिखी हैं। मुंशी इन्द्रमणि ने इन किताबों का उत्तर तो नहीं लिखा केवल अपनी पहिलो दो बार की छपी हुई हमलः हिन्द समसाम हिन्द को तीसरी बार छपवाया। मुरादाबाद के एक मुसलमान ने द्वेष करके अपने अखबार जामशमशेद १३ मई सन् ८० में लिखा कि इन किताबों के छपने से यहां के मुसलमान बिगड़ रहे हैं कोई इन्द्रमणि को मार डालेगा। सरकार इन किताबों को जलवा दे। इस पर गवर्नमेण्ट से एक चिट्ठी सत्य निर्णयको साहब मजिस्ट्रेट के नाम आई। उन्होंने वह चिट्ठी डिपटी इमादअली को सौंपी। डिपटी इमादअली तो मुंशी इन्द्रमणि के जानी शत्रु और अपने मत के अतीव पक्षपाती हैं। साहब बहादुर को इस विषय में खूब ही समझाया और इन्द्रमणि की ओर अपने निर्णयपत्र में पूर्ण दोष आरोपण किये। अब तो प्रायः मुसलमानों ने नगर में कहना प्रारम्भ किया कि इन्द्रमणि को कठिन होगा। अभी साहब बहादुर ने गवर्नमेण्ट की चिट्ठी का उत्तर नहीं लिखा था कि मुंशी इन्द्रमणि ने एक अरजी डाक के द्वारा साहब मजिस्ट्रेट के पास भेजी कि इस विषय में मुझको बुला कर निर्णय किया जाय।

२१ जुलाई साहब बहादुर किसी कारण से रयासत रामपुर को पधारे, वहां के राज्याधिकारी पुरुषों ने साहब बहादुर से इन्द्रमणि के विषय में बहुत कुछ कहा और उन्हें महा कोपित कर दिया, साहब उसी दिन रामपुर से लौट आये, २२ तारीख कचहरी में जाते ही मुंशी इन्द्रमणि को दफा २९२ और २९३ ताज़िरात हिन्द का दोष लगाकर वारण्ट के द्वारा कचहरी में बुलाया। हम नहीं जानते जब कि मुंशी जी आप अरजी दे चुके थे कि मुझे बुलाया जाय, फिर साहब बहादुर ने प्रथम ही वारण्ट की क्या आवश्यकता समझी। क्या साहब बहादुर को मुसलमानों की प्रसन्नता और मुंशी साहब की जो कि हिन्दुस्तान भर में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं उनकी अप्रतिष्ठा ही करनी स्वीकार थी, परन्तु कोर्ट इंस्पेक्टर साहब जो वारण्ट लाये थे मुंशी साहब को अपनी सज्जनता के कारण प्रतिष्ठा सहित ही साहब की कचहरी में ले गये और मुंशी साहब के पहुँचते ही बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ वकील भी अदालत में पधारे। साहब बहादुर ने मुंशी साहब से कहा कि तुमने "हमल: हिन्द वा समसाम हिन्द" में अमुक अमुक बातें कहां से लिखी? उत्तर दिया कि अमुक अमुक किताब से लिखी हैं और मैंने ये किताबें मुसलमानों की बनाई हुई किताबों के उत्तर में लिखी हैं, कुछ दिन का अवकाश मिले तो सबका प्रमाण दूंगा, वकील भी अवकाश की प्रार्थना करते थे, परन्तु साहब ने इस पर कुछ ध्यान न किया और यह आज्ञा दी कि हम २५ को सरकारी गवाही सुनेंगे और २६ को मुकद्दमा करेंगे एक घण्टे के भीतर १०००) रु० जमानत के दो। एक घण्टे में १०००) रु० जमानत की आज्ञा भी मुंशी साहब को बंदीग्रह भेजने की सूचक है, क्योंकि मुंशी साहब धनाढ्य तो हैं नहीं, केवल विद्या में प्रसिद्ध हैं, परन्तु ईश्वर को मुंशी साहब की बात रखनी थी, किसी पुरुष ने अपने पास से १०००) रु० जमानत का दे दिया।

२३ जुलाई को तातील थी २४ को मुकद्दमा पेश हुआ। साहब बहादुर ने कहा कि हमने "हमल: हिन्द व समसाम हिन्द" पर ३ आक्षेप रक्खे, इनका उत्तर दो—

(१) "मेहर" को खरची क्यों लिखा?

(२) मरियम के विषय में जो लिखा है कहां से लिखा?

(३) आईशा और संग असवद की कथा कहां से लिखी?

प्रथम बाबू बैजनाथ ने "शरह मुहम्मदी" का तरजुमा बाबू श्यामाचरण का किया हुआ जो कानून सरकारी है दिखाया है इसमें भी 'मेहर'

को खरची लिखा है, फिर मुंशीजी ने दूसरे प्रश्न का उत्तर कुरान के “सूरह तहरीम” में से दिखा दिया, इस पर अंग्रेजी कुरान भी देखा गया उसमें भी वही अभिप्राय निकला । तीसरे आक्षेप के विषय में मुंशीजी ने निवेदन किया कि “हिन्दयेतुल इसनाम” वालों ने एक कथा शिव पारवती की महा निन्दित लिखी है वह “रद्द हिन्दू” में से लिखी है उसके उत्तर में जो कुछ “रद्द मुसलमा” वाले ने लिखा था वही “रद्द मुसलमा” में से मैंने लिखा है । फिर मुंशीजी की ओर से दरखास्त गुजरी कि हमारे पास इस समय कुरान के सिवाय और किताब नहीं है और हमल: हिन्द समसाम हिन्द में मुसलमानों की किताबों से लिखा है। १५ दिन का अवकाश मिले तो सब किताब तलाश करके प्रमाण दिया जाय और गवाहों के नाम सम्मन जारी कराये जायं । यह दरखास्त नामंजूर हुई । फिर बाबू बैजनाथ ने दूसरी दरखास्त गुजारी कि हुकम नामंजूरी दरखास्त की नकल मिले कि हम अपील करें और मुकदमा मुलतवी रहे । यह भी नामंजूर हुई और जो कुछ मुंशी साहब तथा वकीलों ने निवेदन किया साहब ने कुछ न सुना और ५००) रुपये मुंशी इन्द्रमणि पर जुरमाना कर दिया और सम्पूर्ण ‘हमल: हिन्द व समसाम हिन्द’ मकान मुंशी साहब के से कोर्ट इंस्पेक्टर को भेजकर मंगाली और फड़वा डालीं ।

महान् शोक है कि यह वादानुवाद मुसलमान और हिन्दुओं में ३० वर्ष से हो रहा था और प्रथम मुसलमानों ने ही हिन्दुओं के खण्डन में प्रमाण शून्य किताबें लिखी थीं, जिनसे हिन्दू मत की बड़ी निन्दा और हानि हुई कि बहुधा हिन्दू उनकी मिथ्या बातें सुन कर मुसलमान हो गये । उनको तो आज तक सरकार ने कुछ नहीं कहा और मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मत की रक्षा के लिये उन किताबों का उत्तर प्रमाण सहित लिखा और अब केवल वह किताबें जो पहले दो बार मुद्रित होकर प्रसिद्ध हो चुकी है और जिनसे आज तक कहीं कोई उपद्रव भी नहीं हुआ तीसरी बार छपवाई तो ५००) रु० जुरमाना हुआ और किताबें फाड़ी गईं । इस मुकद्दमें में साक्षात् मुसलमानों का पक्ष हुआ । इस मुकदमे को सुनकर नगर नगर के हिन्दुओं में हाहाकार हो रहा है । हिन्दू मुसलमानों में यहां विरोध हो गया । हम न्यायशील गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करते हैं कि यह शास्त्रार्थ जिस प्रकार ३० वर्ष से हो रहा है और हिन्दू ईसाई मुसलमान आज तक जैसे अपने मत के प्रतिपादन और परमत के खण्डन की किताबें लिखने में स्वतन्त्र हैं उसी प्रकार हिन्दुओं को रक्खें। नहीं तो जिन ज़िन मुसलमानों ने हिन्दुओं के खण्डन में

किताबें लिखी हैं और देवता अवतार आदि की वृथा निन्दा की है उनको भी दण्ड दे।

पृष्ठ ४२८ पर 'पत्र-सारांश (२४२)' के रूप में छपे पत्र के सम्बन्ध में इसी पृष्ठ की टिप्पणी १ (पं० १९-२०) देखें। इसके विषय में पुनः पृष्ठ ४३४, पं० १८, १९ में लिखा है— **एक पत्र आर्यसमाज गुजरांवाला के द्वारा भेजा था'** आर्यसमाज गुजरांवाला के मन्त्री नारायण कृष्ण ने ऋ० द० के पत्र को श्री प० आत्माराम जी को भेजते समय जो पत्र साथ में लिख कर भेजा था, वह इस प्रकार था—

आ० स० गुजरांवाला के मन्त्री नारायण कृष्ण का पत्र[1]

श्रीयुत पं० आत्माराम जी और लाला ठाकुरदास जी नमस्ते।

देहरादून से यहां एक पत्र प्रश्न के उत्तर का जो आप सज्जनों ने स्वामी जी से किये थे इस प्रयोजन से पहंच्या था कि इसकी एक नकल आप के समीप भेजी जावे, सो नकल आप के समीप भेजी जाती है, और यह भी प्रकट किया जाता है कि इस की एक नकल स्वामी जी की आज्ञानुसार लुधेहाने के श्रावक सज्जनों के पास भी भेजी गई है, मुनशी प्रभदयाल जी से आप कूं मालूम हुआ होगा। ता० १३ नवम्बर सन् १८८० इसवी

द० नारायण कृष्ण आर्यसमाज गुजरांवाला

पृष्ठ ४३५, पं० ६-१० तक राजा शिवप्रसाद के मतानुसार जैन और बौद्ध एक हैं, इस विषय का उल्लेख किया है। (इस पर वहां की संख्या ३ की टिप्पणी देखें)। ठाकरदास ने इस विषय में राजा शिवप्रसाद को पत्र लिखा था उसका जो उत्तर राजा शिवप्रसाद ने दिया उसे हम नीचे दे रहे हैं। इस में राजा शिवप्रसाद ने जैनियों के दबाव में आकर अपने पूर्व लेख के विपरीत लिखा है। पत्र इस प्रकार है—

'श्री ५ सकल जैन पंचायत गुजरांवालों को शिवप्रसाद का प्रणाम पहुंचे कृपापत्र पत्रों सहित पहुंचा।

१. जैन और बौद्ध मत एक नहीं है सनातन से भिन्न भिन्न चले आये जर्मन देश के एक बड़े विद्वान ने इसके प्रमाण में एक ग्रन्थ छापा हैं।

२. चार्वाक और जैन से कुछ संबंध नहीं जैन को चार्वाक कहना ऐसा है जैसा स्वामी दयानन्द जी महाराज को मुसलमान कहना।

---

१. यह पत्र 'दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका' भाग १, पृष्ठ २० पर छपा है।

२. यह पत्र 'दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका' भाग १ पृष्ठ ३५-३६ पर छपा है।

३. इतिहास तिमिर नाशक का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया उसकी भूमिका की नकल (१) इसके साथ दी जाती है उससे विदित होगा कि "संग्रह" है बहुत बात खंडन के लिये लिखी गई मेरे निश्चय के अनुसार उसमें कुच्छ भी नहीं है.

४. जो स्वामी जी जैन को इतिहासतिमिरनाशक के अनुसार मानते हैं तो वेदों को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते.

आपका दास शिव प्रसाद

(१) **भूमिका** (इतिहासतिमिरनाशक की)

पढने वालों से हम हाथ जोड़ के और बहुत नम्र होके विनती करते हैं कि जब तक पूरा ग्रन्थ न देख लें भला बुरा न कहें और ग्रन्थ कर्त्ता के मत निश्चय इष्ट उपासना भक्ति श्रद्धा का कुछ खोज न करें बड़ी भूल होगी यदि ग्रंथ की लिखावट से कोई इसका अनुमान करना चाहेगा वा ऐसे संकल्प विकल्प और वादानुवाद में पड़ेगा यह ग्रंथ तो जैसा बहुत से आधुनिक ग्रंथों में देखा गया और बड़े बड़े आधुनिक विद्वानों से सुना गया जो अंगरेजी पारसी नहीं जानते उनके लिये हिन्दी में लिखा है इससे वह और नहीं तो इतना अवश्य जान जायेंगे कि वह क्या सोचे हुये हैं और दूसरे क्या सोचते हैं वह क्या समझे हुये हैं और क्या समझते हैं यदि दूसरों ने कुछ अयथार्थ सोचा समझा हो वह दृढ़तर प्रबल प्रमाण दे जब दूसरी बार ग्रंथ छपेगा उन्हीं के प्रमाणों के अनुसार उसमें लिख दिया जायगा यह तो संग्रह है कुछ किसी मत के खंडन वा स्थापन करने के निमित्त नहीं लिखा गया है इत्यलम् किमधिकम्.

बनारस १ जनवरी सन १८७३ ई० शिवप्रसाद

पूर्ण संख्या ५१४, पृष्ठ ५४६, पं० ९—**वे जैसा [आर्य का] नोटिस लिख भेजें छपने के वास्ते वैसा ही छपवा देना।** पुनः पूर्ण संख्या ५३१, पृष्ठ ५६४, पं० १०-११—**आर्य पत्र का नोटिस भेजते हैं, टाइटल पेज पर छाप दो।** पुनः पूर्ण संख्या ५७८ पृष्ठ ६११, पं० २५-२७ 'आर्य पत्र लाहौर ... एक बार छाप देना।' यह 'आय' पत्र सम्बन्धी नोटिस रूप विज्ञापन **ऋग्वेदभाष्य अंक** ४२-४३ (सम्मिलित) अंक (आश्विन कृष्ण सं० १९३९) **के** टाइटल पेज ३ तथा ऋ० भा० अंक ४८-४९ (सम्मिलित) अंक (वैशाख-कृष्ण १९४०) **के** टाइटल पेज ४ पर इस प्रकार छपा था—

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

विज्ञापन

आर्य

इस नाम का मासिक पत्र अंग्रेजी भाषा में छपता है । इस में आर्यावर्तीय प्राचीन विद्या, धर्म और नीति आदि उत्तमोत्तम विषयों पर बहुत लिखा जाता है । वेदादि सत्यशास्त्रानुकूल आर्यसमाज के उद्देश्यों को समझने के लिये यूरोपादि देशवासियों और एतद्देशीय अङ्गरेजी जानने वालों को यह बहुत ही उत्तम साधन है । अङ्गरेजी मासिक पत्र थियोसोफिस्ट में आर्यसमाजों के विरुद्ध जो विषय छपते हैं उन का उत्तर आर्य समाजों की ओर से यही पत्र देता है ।

जो सज्जन पुरुष इस को लेना चाहैं, डाक व्यय सहित ४ रुपया वार्षिक भेज कर नीचे लिखे पते से मंगावें ।

लाला रत्नचन्द वैरे
सम्पादक, आर्य सय्यद मिट्ठा बाजार, लाहौर

पूर्ण संख्या ५४८, पृष्ठ ६११, पं० २५-२७—'………**देशहितैषी अजमेर जिस प्रकार का नोटिस वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छपने के लिये भेजे वैसा एक वार छाप देना'** । यह देशहितैषी पत्र सम्बन्धी नोटिस ऋग्वेदभाष्य अंक ४२-४२ (सम्मिलित) आश्विन कृष्ण सं० १९३९ के अंक के टाइटल पेज ३ पर इस प्रकार छपा था—

देशहितैषी

मासिक पत्र आर्य समाज अजमेर की ओर से प्रकाशित होता है । जिसमें वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश तथा उपयोगी समाचार तर्क-वितर्क सहित प्रेरित पत्रादि निष्पक्षपातत्तायुक्त सरल भाषा में मुद्रित होते हैं । वार्षिक मूल्य केवल उपकार की दृष्टि से डाक महसूल सहित १≡)रखा है । जिन सद् व्यक्तियों को इसका ग्राहक बनना स्वीकार होय इस पते से पत्र भेजे ।

मुन्नालाल, मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

पूर्ण संख्या ६११, पृष्ठ ६४२, पं० ३—**एक पत्र मुंशी इन्द्रमणि जी के विज्ञापन रूप मेरे पास आया** । तथा पूर्ण संख्या ६५४, पृष्ठ ६७८, पं० १९, २६ में भी मुंशी **जी के विज्ञापन का उल्लेख है** । मुंशी इन्द्रमणि ने जो विज्ञापन ऋ० द० और आर्य समाज मेरठ के विरुद्ध छपवाया था, वह इस प्रकार था—

मुन्शी इन्द्रमणि का विज्ञापन[1]

प्रकट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खण्डन में एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी नामक मासिक पत्र अजमेर में एक उचित वक्ता के नाम से मुद्रित हुआ है और उसमें प्रायः यह नाम भी निन्दा के साथ लिखा है। उसका उत्तर भी शीघ्र ही मासिक पत्र के द्वारा जो कि हम धर्माधर्म के निर्णय में प्रचारित करना चाहते हैं, मुद्रित होकर सज्जनों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा। वरन् उक्त व्याख्यान के अन्त में जो यह लिखा है कि जगन्नाथदास और इन्द्रमणि की प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें वो आर्यसमाज मेरठ के लाला रामशरणदास आदि भद्रपुरुषों से पूछ देखें कि अन्य मार्गियों के विचार विषय की शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया है। मैंने अद्य पर्यन्त उस विषय को स्वामी जी की अति निन्दा का कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया, परन्तु जबकि वे उल्टा चोर कोतवाल को डांटे इस दृष्टान्त के सदृश अब मेरी मिथ्या निन्दा लोगों से करने और छपवाने लगे, तब उस विषय को प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना। विदित हो कि जिस समय मुझ पर मुसलमानों के झगड़े में ५००) रु० दण्ड हुआ तो स्वामी जी ने समाजों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि की सहायता के लिए चन्दा करके हमारे तथा लाला रामशरणदास सभासद् आर्यसमाज मेरठ के पास भेजो। यहां से एकत्र करके मुन्शी जी के पास भेजा जायगा, जिससे कि वह उक्त दण्ड क्षमा होने के लिये अपना मुकदमा लड़ावें। स्वामी जी के लेखानुसार लाहौर, अमृतसर, रुड़की, फर्रुखाबाद, फीरोजपुर, शाहजहांपुर औरंगाबाद, दार्जिलिंग, गुरुदासपुर, जेहलम, मुल्तान, बटाला आदि के सज्जनों ने यथोचित द्रव्य एकट्ठा करके स्वामी जी तथा लाला रामशरणदास के पास भेजना प्रारम्भ किया, जबकि उक्त मुकदमे का अपील जजी मुरादाबाद ही में दायर था तो मुझ को ६००) रु० मिस्टर हिल साहब बैरिस्टर हाईकोर्ट के पास भेजने की आवश्यकता हुई, तब मैंने आप मेरठ जाकर लाला रामशरण-

---

[1] यह विज्ञापन दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १००—१०४ तक (नया दिल्ली संस्क० पृष्ठ १५४-१५७) तथा पं० लेखराम जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ८४३-८४५ तक छपा है। हमने दयानन्ददिग्विजयार्क से छापा है।

दास से कहा कि ६००) रु० बैरिस्टर साहब के पास भेजने हैं, जिसमें ४००) रु० ते मेरे पास है, २००) रु० चन्दे के रुपये में से जो तुम्हारे पास जमा हुआ है, दे दीजिये, लाला साहब ने उत्तर दिया है कि यहां से तो अभी तुमको रु० नहीं मिलेगा, वहीं से कुछ यत्न करके भेज दो। फिर मैंने उनसे प्रश्न किया कि अब तक आप के पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाज से बतलाने की आज्ञा नहीं है। धन्य है जिसकी सहायता के लिये सज्जनों ने धन भेजा उसको देना तो क्या ? यह भी न बतलाया जाय कि इतना द्रव्य है। निदान मैं वहां से अपने स्थान को चला आया और एक सज्जन की सहायता से बैरिस्टर साहब को ६००) रु० भेज दिये फिर जब जजी मुरादाबाद से ५००) रु० जुर्माने में से ४००) रु० जमा होकर १००) रु० शेष रहे, तब लाला रामशरणदास जी मुरादाबाद आए थे। मैंने उनसे कहा कि अब हाईकोर्ट में अपील करनी है, रुपया भेजिये। तब भी लाला साहब ने वही उत्तर दिया कि वहां से तो रुपया नहीं मिलेगा यहीं से यत्न करके हाईकोर्ट की अपील कर दीजिये। फिर लाला रामशरणदासजी अपने स्थान को चले गये और मैं रुपये के लिये कई बार स्वामी जी को तथा लाला रामशरसदास जी को लिखा मुझे दोनों जगह से कुछ न उत्तर मिला। तब मैंने भारतमित्र कलकत्ते में यह छपवाया कि जिन सज्जनों को मेरे मुकदमे में सहायता करनी हो वह जो देना चाहें, वह मेरे ही पास भेजें अन्य जगह का भेजा हुआ द्रव्य मुझ को नहीं मिलता ! फिर स्वामी जी को लिखा कि इस मुकद्दमे के लिए आपके तथा रामशरणदास के पास धन जमा हुआ और हमको नहीं मिलता यदि आपका विचार ऐसा ही है तो स्पष्ट लिख दीजिये। हम हाईकोर्ट का अपील न करें इस लिखा-पढ़ी के उपरान्त स्वामी जी ने ९००) रु० रामशरणदास जी ही के पास रक्खा हां जिन महाशयों ने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुंचा और उन्हीं के सहाय से इस मुकद्दमे का काम चला। यहां यह विषय संक्षेप से निवेदन किया गया विस्तारपूर्वक फिर प्रकट किया जायगा। अब बुद्धिमान् न्याय करें कि कि जो धन सज्जनों ने मेरी सहायता के निमित्त स्वामी जी तथा रामशरणदास जी के पास भेजा और उन्होंने सम्पूर्ण मुझको न दिया किन्तु उसके स्वामी बन बैठे तो अन्य मार्गियों के विवाद के विषय के शान्तिकारक व्यवहार प्रसङ्ग में स्वामी जी और रामशरणदाम जी ने विपरीत व्यवहार किया है या मैंने।

इन्द्रमणि मुरादाबाद

पूर्ण संख्या ६२८; पृष्ठ ६६० पं० २४ से पृ० ६६१, पं० ३ तक महाराणा उदयपुराधीश को आर्यसमाजों की ओर से जिस धन्यवाद पत्र[1] के भेजने का उल्लेख है वह इस प्रकार था—

आर्यसमाजों की ओर से

महाराणा सज्जनसिंह जी को समर्पित धन्यवाद-पत्र

श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्यकुलदिवाकर महाराणा श्री श्री १०८ श्री सज्जनसिंहजी वर्म्मा धीरवीर चिर प्रतापी जी० सी० एस० आई० मेदपाटाधीश चरणेषु।

महामान्यवर महाशय

श्रीमान्! इस आर्यसमाज का सविनय निवेदन यह है कि हमारे आर्यावर्त्त देश के यावत् भूत भावी और वर्त्तमान् आर्यसमाजों के सर्वस्व रूप परम पूजनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामीजी महाराज का सर्वत्र उपदेश करते करते इस वर्ष यावदार्यकुलदिवाकर के प्राचीन और अक्षतराज्य मेवाड़ में भी पधारना होकर सात मास के लगभग निवास हुआ और जब तक उक्त स्वामी जी महाराज का तत्र निवास हुआ तब तक श्रीमान् ने अपनी परम प्रसिद्धि योग्यता के अनुसार स्वामी जी महाराज का आतिथ्य और आदर सन्मान बहुत ही अच्छी तरह रक्खा कि जिसके सविस्तार समाचार हम लोगों के जानने में आकर यह उत्कंठा हुई कि हम सब लोग हमारे उस सनातन यावदार्यकुलदिवाकर को इस निवेदन पत्र द्वारा अन्तःकरण से धन्यवाद अर्पण करें कि जिनके शूरवीर पुरुषा हमारे प्रजापति सब समय से लेकर इस समय तक निरन्तर रहे हैं कि जिस समय की आर्य-विद्या-धर्म और राजनीति का उपदेश और प्रतिपादन उक्त स्वामी जी महाराज वर्त्तमान काल में करते हैं॥

श्रीमन् महाशय राजन्! जैसे इस वर्ष स्वामीजी महाराज का अकस्मात् पधारना मेदपाट देश में होने से आर्यावर्त्त की सनातन आर्य-विद्या-धर्म और राजनीति के उपदेश श्रवण करने का अवसर श्रीमान् को अपने सभ्य सुभटगणसहित प्रथम ही प्राप्त हुआ है वैसे ही सब आर्यसमाजों को भी आज श्रीमान् को अपने सनातन यावदार्यकुलदिवाकर जानने और

---

[1] यह धन्यवाद पत्र दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १४९–१५१ (नया दिल्ली संस्करण पृष्ठ १७९-१८०) पर छपा है। हमने वहीं से लेकर छापा है।

सविनय धन्यवाद देने का प्रथम ही हस्तगत हुआ है निदान श्री श्री जगदीश्वर से यही प्राथना है कि श्रीमानों को चिरस्थाई रक्खें ।।

श्रीमान् आपने जो एक अपना निज हस्ताक्षरी पत्र स्वामी जी महाराज को अर्पण किया है उसकी प्रति अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसो हम लोग श्रीमान् को योग्यता इतने दूरस्थ प्रदेशों में बैठे बैठे सुनते थे वह आज सर्वरीत्या निश्चित हुई और उसमें भी विशेषता यह है कि जो कुछ श्रीमानों ने उक्त पत्र में लिखा है वह छः सात महीनों तक निरन्तर स्वामी जी महाराज की परीक्षा करके लिखा है । और इसके अतिरिक्त यह भी आपको अपने धन्यवाद देने योग्य विषय है कि श्रीमानों ने उक्त स्वामी जी महाराज कृत स्वीकार पत्र और उसमें नियत की हुई व्यवस्थापक सभा के सभापति का पद अपने कतिपय सभ्य सुभटों सहित अंगीकार किया कि जिससे यह दृढाशा हुई कि श्रीमान् हम सब आर्यों पर अब से वही सनातन पुत्रवत् कृपा दृष्टि रक्खेंगे ।। अन्त में सब आर्यों की यही सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना है कि श्रीमानों को धनवान् पुत्रवान् और आयुष्मान् पूर्णप्रतापयुक्त करे । मिति……संवत् १९४० विक्रमी

श्रीमदीय चरणसेवक समस्त आर्य समाज के प्रधान सभासदों की ओर से ।।

हस्ताक्षर—सभापति
हस्ताक्षर—उपसभापति
हस्ताक्षर—मन्त्री
हस्ताक्षर—कोशाध्यक्ष
हस्ताक्षर—पुस्तकाध्यक्ष

पूर्ण संख्या ६३० पृष्ठ ६६३ पं० ९—**एक मान्य-पत्र मुझको दिया—**

पूर्ण संख्या ६७०, पृष्ठ ६९७, पं० ८—**मान्य-पत्र पर यदि तुम्हारा लेख**…………

पूर्ण संख्या ६७६ पृष्ठ ७०२ पं० २०-२२—**जो [लेख] मुंशी समर्थदान ने मान्य-पत्र के साथ छापा है, सो अच्छा है । क्योंकि इतने लेख के बिना मान्य-पत्र का अर्थ लोगों की समझ में नहीं आता । इतना लेख अवश्य होना था ।**

मुंशी समर्थदान का प्रारम्भिक लेख तथा मान्य-पत्र यजुर्वेदभाष्य अंक ४८, ४९ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

सब सज्जनों को प्रकट हो कि श्री स्वामी जी महाराज श्री महाराणा जी के उदयपुर में ७ मास तक विराजमान रहे। उस समय श्रीमान् उदयपुराधीशों ने स्वामी जी महाराज को मान-पत्र दिया, सो सब लोगों के अवलोकनार्थ प्रकट किया जाता है—

मान-पत्र की प्रति

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरो जयति ।।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थकारुणिकपरमहंसपरिब्राजकाचार्यवर्यश्री ५ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीयतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु। आप का अठै सात मास का निवास सूं चित अत्यन्त आनंद मैं रह्यो क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूं के ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्यों[1] मैं निस्सन्देह प्राप्त होवा की म्हां का सभ्य जना सहित दृढाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वां श्रेष्ठ पुरुषां दृढ़ होवै है ज्यो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो यो आप मैं यथार्थ मिल्यो अब म्हें आपका वियोग को संयोग तो नहीं चावांहा परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्यां कै उपकारक है जी सूं अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हाका चित्तनैं शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्।

सं० १९३९ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे
हस्ताक्षर
महाराणा
सज्जनसिंहस्य

पृष्ठ ६६६, पं० २२-२४—**यजुर्वेदभाष्य का ४६-४७ (सम्मिलित) अंक देर से प्रकाशित** हुआ। इस की सूचना समर्थदान ने इस अङ्क के टाइटल पेज ४ पर इस प्रकार दी थी—

वेदभाष्य के प्रिय ग्राहकों से निवेदन है कि कई कारणों से श्री स्वामी जी महाराज के पास से वेदभाष्य के पत्रों के आने में देर हो गई। इससे

---

[1] न्याय धर्म और शरीर की उन्नति के लिये ऋषि दयानन्द ने महाराणा सज्जनसिंह को **"दिनचर्या के नियम"** लिख कर दिये थे। वे नियम पूर्ण संख्या ५९८ पर पृष्ठ ६२५-६३३ तक छपे हैं। उन्हीं की ओर यह संकेत प्रतीत होता है।

यह (४६-४७) अङ्क समय पर न निकल सका। और इसके निकलने में देर होने के कारण ऋग्वेद का अङ्क भी १ अप्रेल को नहीं निकल सकेगा। कुछ पीछे से निकलेगा।

पूर्ण संख्या ६३८, पृष्ठ ६६७' पं० ७—**[वेदभाष्य की] जिल्दें बंधवाने का लिखा सो अच्छा।** मुंशी समर्थदान ने वेदभाष्य की जिल्द बंधवाने का विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य अंक ४०-४१ (सम्मिलित) श्रावण अधिक सं० १९३९ के आवरणपत्र पृष्ठ ४ पर निम्न प्रकार छापा था—

वेदभाष्य की जिल्द

वेदभाष्य के ग्राहकों को प्रकट हो कि दोनों वेदों का भाष्य बहुत सा छपकर आप लोगों के पास पहुंच चुका है, इसलिये दोनों वेदों की जिल्दें बन्धवा लेना ठीक है। दोनों वेदों की पृष्ठ संख्या तो आदि से अन्त तक एक ही रहेगी परन्तु जिल्दें पृथक् पृथक् होंगी। यद्यपि एक एक जिल्द की पृष्ठ संख्या पृथक् पृथक् होती तो उत्तम थी परन्तु जहां जहां दोनों वेदों की संख्या का टूटना ठीक था वहां से आगे तक छप गई। इस लिये अब तक एक ही संख्या रक्खी गई है॥

जिल्द का क्रम ऐसा रक्खा है कि "ऋग्वेदभाष्य" अंक ४०।४१ में पृष्ठ ११२८ तक चौथा अध्याय पूरा हुआ है यहां तक एक जिल्द होगी। और यजुर्वेदभाष्य का दशवां अध्याय तक ३४।३५ में पृष्ठ ९६० तक पूरा हुआ है इसकी एक जिल्द बंधेगी। हम दोनों वेदों को एक एक जिल्द का सूचीपत्र और शुद्धिपत्र पृथक् पृथक् छपवा के ग्राहकों के पास पीछे से किसी अंक के साथ भेजेंगे तब सब लोग दोनों भाष्यों के साथ शुद्धिपत्र और सूचीपत्र लगाकर जिल्द बंधवा लें।

समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग

पूर्ण संख्या ६७५, पृष्ठ ७००, पं० २१—**तेरे लिखे प्रमाणे प्रतिकृति भेजी जाती है—**

ऋषि दयानन्द की प्रतिकृतियां (फोटो) अनेक स्थानों पर ली गईं। उनकी एक सूची श्री महाशय मामराज जी ने भेजी है जिसे उन्होंने महान् परिश्रम और अन्वेषण कर के तैयार किया है। उसे हम आगे परिशिष्ट ६

में दे रहे हैं पाठक वहां देखें। उन में से ऋ० द० सरस्वती के उपलब्ध असली फोटो और उपलब्ध मूल पत्रों की प्रतिकृति पृथक् एक संग्रह में देंगे।

पूर्ण संख्या ६८८, पृष्ठ ७१२, पं० ७—**वेदभाष्य के टाइटल पर जोधपुर का नोटिस छाप देना।** यह नोटिस (सूचना) यजुर्वेदभाष्य के ४८-४९ (सम्मिलित) अंक तथा ऋग्वेदभाष्य के सं० १९४० आषाढ़ शुक्ल के ५०–५१ (सम्मिलित) अङ्क में टाइटल के प्रथम पृष्ठ पर नीचे इस प्रकार छपी थी—

“विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इन दिनों मारवाड़ देश में जोधपुर शहर में विराजमान हैं।”

पूर्ण संख्या ६८८, पृष्ठ ७१२, पं० ११—**ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छाप देना।**

समर्थदान ने उक्त समाचार ऋग्वेदभाष्य अंक ५०, ५१ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर इस प्रकार छापा था—

उदारता !!!

हम अत्यन्त धन्यवादपूर्वक प्रगट करते हैं कि शाहपुरेश श्रीमान् महाराज राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्मा ने वेदभाष्य की सहायता में २००) रु० चित्तौड़ी (जिनके १५० रु० कलदार होते हैं) दिये और ३०)रु० मासिक मिति जेष्ठ कृष्ण ४ सं० १९४० से वैदिक धर्म्मोपदेशक मण्डली के व्यय के लिये देना स्वीकार किये हैं।

समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता
वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग

[श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ६९२ पर लिखा है—“विदा के समय शाहपुराधीश ने २५०) रु० वेदभाष्य की सहायतार्थ दिये……… ।” यहां १५० कलदार के स्थान में २५०) भूल से छप गया प्रतीत होता है।]

शाहपुराधीश-प्रदत्त मान-पत्र

स्वस्ति श्री सर्वोपकारकारणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मद्दया-

नन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की बारंबार नमस्तेऽस्तु ।

अपरं च, यहां आप का विराजना सार्धत्रयमास हुआ, तथापि आप के सत्यधर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई । आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्तधर्म उपदेश ग्रहण, पुनः सत्याचरण, असत्य त्याग और आप के मुखारविन्द से श्रवण की अभिलाषा देख के आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है, मेरी भी सम्मति यही हुई कि आप का पधारना ही उत्तम है । यही समझ कर यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की । आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे ।

सं० १९४० मिति ज्येष्ठ कृष्णा ४ हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य ।

पूर्ण संख्या ७२७, पृष्ठ ७३७, पं० ८-९—**आप के.........पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप छपवाया है** । यह आक्षेप पत्र मूलतः 'थियोसोफिस्ट' मार्च १८८३ में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब ने छपवाया था । उसे 'भारतमित्र' पत्र के सं० १९४० आषाढ़ सुदी ८ गुरुवार के अंक में भारतमित्र के संपादक ने उद्धृत करके लिखा—'हम लोगों को आशा है कि स्वामी दयानन्द जी इसका खण्डन कर आर्यसमाज का गौरव बढ़ावेंगे' । (१४ जुलाई सन् १८८३) । मिस्टर ह्यूम का आक्षेप निम्न प्रकार था—

मिस्टर ह्यूम का वेद पर आक्षेप[1]

“वेद ईश्वर की वाणी है, इसलिये अभ्रान्त है, आर्यावर्त और स्वामी दयानन्द जी का यही मूल मन्त्र है । परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि इतना अनुमानातीत वेद ऐसा अनुमान क्यों हैं ? ईश्वर का वचन इतना रहस्यमय क्यों है ? यदि इस मूल मन्त्र को कि वेद अभ्रान्त है, सत्य मानलें तो इस का अर्थ यह होगा कि वेद के उपदेशक अभ्रान्त (निर्भ्रान्त) हैं । क्योंकि वेद में भ्रान्ति का अस्तित्व और अनस्तित्व भाष्यकारों के हाथ में है । स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य भी तब अभ्रान्त हो सकता है जब दयानन्दजी स्वयं ईश्वर के तुल्य हों और उन में ईश्वर की पूर्ण प्रेरणा हो । इसलिये मैं

---

[1] यह हमने पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८३७ से उद्धृत किया हैं ।

ललकार कर कहता हूं कि स्वामी जी अपने मूल मन्त्र को प्रमाणित करें या अपनी प्रेरणा का प्रमाण दें।"

पूर्ण संख्या ७५४, पृष्ठ ७६४, पं० १—**श्रीमान् महाराणा जो ने धन्यवाद पत्र के उत्तर में लिखा सो अच्छी बात हुई।** आर्यसमाजों की ओर से प्रेषित (पूर्व पृष्ठ ९३३ पर मुद्रित) धन्यवाद पत्र के उत्तर में महाराणा उदयपुराधीश ने जो लिखा वह इस प्रकार है—

श्रीमान्

उदयपुराधीश के आज्ञापत्र की प्रति

श्री राम जी

श्री

श्री एकलिङ्ग जी
नम्बर
१५९

श्री सज्जन महीशस्यश्चैक—
लिङ्गरतेरियम् ॥ स्वतन्त्रसदसो
मुद्रा मुद्रिता हि दयानिधेः
॥ १ ॥

सिद्धि श्री श्री आर्यसमाज अमुक योग्य लिखी राज्यस्थान उदयपुर से राजे श्रो महद्राजसभा अपरं च राज में जो एक आर्यसमाज अमुक का धन्यवाद पत्र लिखा मिती आश्विन कृष्ण ३ आश्विन संवत् १९४० का श्री मन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्यकुल दिवाकर महाराजा जी श्री १०८ श्री सज्जनसिंह जी वर्मा धीर वीर प्रतापी की सेवा में उक्त समाज की ओर से सविनय निवेदन करने की राज के पत्र लिखे मिती आश्विन कृष्ण ३ सं० ४० के साथ भेजा वह आज श्रीमान् यावदार्यकुल दिवाकर की सेवा में यथाविधि निवेदन होकर उसको प्रत्युत्तर में श्रीमदीय आज्ञानुसार लिखने में आता है कि उक्त धन्यवाद पत्र को श्रीमानों ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया और उक्त समाज के सभासदों ने जो अपने शुद्ध अन्तःकरण से अपनी वृत्ती और विचार इस अक्षतराज्य के प्रति उक्त धन्यवाद पत्र में प्रकाशित किये हैं उनको ज्ञात करके भो श्रीमान् अति प्रसन्न हुए और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से आशा रखते हैं कि सर्व आर्यों के ऐसे ही श्रेष्ठ विचार सदैव रह कर मेदपाटेश्वर के लालन और पालन के भागी होंगे और प्रतिदिन आर्यावर्त्त देश की सनातन आर्यविद्या धर्म-उच्चनीति और रीति मर्यादादि को सम्प्रति काल के क्षय से संरक्षित करके यथास्थित पालन करेंगे किमधिकम् संवत्

१९४० आश्विन कृष्ण १४ तदनुसार तारीख २९ सितम्बर[1] सन् १८८३ ई०
हस्ताक्षर मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या मन्त्री
राजे श्रीमहद्राज सभा श्री दर्बार देश मेवाड़

पूर्ण संख्या ७५७, पृष्ठ ७६७, पं० १०-१२—**ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पांचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा। और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में ऋग्वेदभाष्य पूरा हो जायेगा।**

यह पत्र ऋषि दयानन्द ने भाद्र बदी ५ सं० १९४०=२३ अगस्त १८८३ को लिखा था। इसके पश्चात् ऋषि दयानन्द केवल दो मास ७ दिन ही जीवित रहे। उसमें भी २७ सितम्बर से अन्त तक रुग्ण ही रहे। इस बीच के १ मास ४ दिन में ऋषि दयानन्द ने सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का भाष्य किया।

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य कहां तक किया, तथा उनके सामने कितना छपा, कितने भाग की प्रेसकापी बनी, और कितने भाग तक हिन्दी बन गई थी। इन सब बातों की सूचना देने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने ऋषि दयानन्द के अनन्य सेवक और लेखक ब्र० रामानन्द को नियत किया। रामानन्द ने इन विषयों का जो लिखित उत्तर पाण्ड्या जी को दिया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पत्र को श्री महाशय मामराज जी ब्र० रामानन्द के घर से खोज कर लाये थे। पत्र इस प्रकार है—

ब्र० रामानन्द का पत्र

श्रीयुक्त माननीयानेक शुभगुणगणाऽलंकृत ब्रह्मकर्मसमर्थ श्रीमत्पंडितवर्य मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्याऽभिधेयेष्वितो रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतरामिति।

भगवन् आपने जो मुझे श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८

---

[1] ऋषि दयानन्द के पूर्ण संख्या ७५४ के जिस पत्र में इस धन्यवाद पत्र के प्रत्युत्तर में लिखे लेख का उल्लेख है, वह भाद्र वदी १ सं० १९४०=१९ अगस्त १८८३ का है। इससे प्रतीत होता है महाराणा जी ने प्रथम प्राप्त धन्यवाद पत्र के प्रतिलेख की हस्तलिखित प्रति पहले भेजी जा चुकी थी। प्रस्तुत पत्र आश्विन कृष्णा ३ को लिखे गये धन्यवाद पत्र के उत्तर में लिखा गया है।

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य के विषयों को परीक्षा कर के श्रीमती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिये(एक सारांश) बनाने को प्रेरणा की थी सो आप की आज्ञानुसार उसको बनाकर आप की सेवा में समर्पित कर्त्ता हूं, अवलोकन कीजियेगा ।

इत्यलं प्रशंसनीय बुद्धिमद्वर्येषु

मिति पौष कृष्ण ३
रवि सम्वत् १९४०

शुभचिन्तक
रामानन्द ब्रह्मचारी

ऋग्वेदभाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ मद्दयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित प्रमाणे जानना चाहिये—अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक रचा गया ।

१ मण्डल के आरम्भ से ८६ सूक्त के ५ मंत्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५०+५१ अङ्क तक ।

१ मण्डल ८६ सूक्त के ६ मंत्र से ९१ सूक्त के ३ मंत्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है ।

१ प्रथ[म] मंडल के ९१ सूक्त के ४ मंत्र से १ प्रथम मण्डल ११४ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है ।

१ प्रथम मंडल के ११४ सूक्त के ६ मंत्र से १ मंडल के १२४ वें सूक्त के १२ वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मण्डल के [१२४ वें सूक्त के

यजुर्वेदभाष्य

यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा । १५ वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित हो गया अर्थात् ५० और ५१ अंक तक ।

१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है ।

१५ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है ।

२३ वें अध्याय के ५० वें मन्त्र की भाषा बनी हुई शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है ।

२३ वें मन्त्र के ५१ वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी ।

२४ वें अध्याय [से २६ वें] अध्याय

१३ वें]मन्त्र से १ मण्डल के[१४३ वें] सूक्त की समाप्ति पर्यन्त का भाष्य पं० ज्वालादत्त जी[के पा]स भाषा बनाने के लिये वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।	तक का भाष्य भाषा बनाने के लिये पं० ज्वालादत्त जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।
१ मण्डल १४४ वें सूक्त से मंडल ७ के ९२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत में बना हुआ है।	२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है अर्थात् बिना शुधी संस्कृत है।
१ मण्डल के ९१ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र से १ मण्डल के ११४ वें सूक्त के पूर्व मन्त्र के ऋग्वेद भाष्य के रद्दी पत्रे अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।	१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

मिति पौष कृष्ण ३ रवि सं० १९४०

विशेष–इस पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के कुछ भागों के लिये **"अशुद्ध संस्कृत"** शब्द का प्रयोग हुआ है। उसका तात्पर्य रफ **कापी** से है अर्थात् उस भाग की **'फेयर कापी'='मुद्रण योग्य'** प्रतिलिपि तैयार नहीं हुई थी।

ब्र० रामानन्द का यह पत्र परोपकारिणी सभा के २८ दिसम्बर १८८३ के प्रथम अधिवेशन में पढ़ा गया था और इस विषय में निम्न प्रस्ताव पास हुआ था—

"प्रस्ताव सं० ५ एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं। प्रतीत होता है कि समग्र यजुर्वेद का भाष्य स्वामी जी पूर्ण कर गये परन्तु बहुत थोड़ा भाग उसका अब तक मुद्रित हुआ है और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल तक।

सबकी सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पण्डित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी अनुवाद करने के कार्य पर नियत किये जायं और प्रति व्यक्ति को २५) पच्चीस मुद्रा मासिक वेतन मिले…………।"

परोपकारिणी सभा के अधिवेशनों का रिपोर्ट संग्रह (सन् १९२७) पृष्ठ ३॥

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने २८ दिसम्बर १८८३ के अधिवेशन के प्रस्ताव संख्या ७ के अनुसार २८ दिसम्बर १८८५ के अधिवेशन में **एक आवेदन पत्र** (९ दिसम्बर १८८५ का छपा) उपस्थित किया, जिसमें

ऋषि दयानन्द के लिखित तथा उनके संगृहीत लिखित और मुद्रित पुस्तकों का विवरण दिया है। उस आवेदन पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के सम्बन्ध में निम्न लेख है—

वेष्टन नं० १८—श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य अशुद्ध लेख अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का।

वेष्टन नं० १९ श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य का शुद्ध लेख भाषा सहित, जो छापने योग्य।

वेष्टन नं० २०—श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी।

इस उद्धरण में भी **"शुद्ध"** शब्द **प्रेस कापी** के लिये और **'अशुद्ध लेख'** **रफ़ कापी** के लिये प्रयुक्त हुआ है।

—:o:—

चतुर्थ परिशिष्ट

आर्यसमाज-स्थापना की वास्तविक तिथि

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ और वैदिक आर्ष वाङ्मय वा आर्षज्ञान के प्रसारार्थ क्रमशः आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा की स्थापना की थी। परोपकारिणी सभा की स्थापना तिथि जो उदयपुर के स्वीकार पत्र में 'सं० १९३९ फाल्गुन शुक्ला ५ मंगलवार तदनुसार ता० २७ फैब्रुवरी सन् १८८३ ई०' छपी है (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६५४, पं० १-२)। उस में विद्यमान अशुद्धि का संशोधन उसी स्थान पर टिप्पणी में दर्शा दिया है। आर्य समाज की स्थापना तिथि में मूलतः न भूल है, और न आरम्भ में इसके सम्बन्ध में कोई विवाद ही था। यह झूठा विवाद बम्बई आर्य समाज के भवन पर लगे एक जाली शिला लेख से उत्पन्न हुआ है। अतः हम यहां आर्यसमाज स्थापना तिथि के विवाद के मूल भूत प्रमाणों और हेतुओं की मीमांसा करके पूर्वतः स्वीकृत शुद्ध स्थापना तिथि की प्रामाणिकता दर्शाएंगे।

विवाद का आरम्भ और कारण—सन् १९३९ तक आर्यसमाज की

स्थापना तिथि निर्विवाद रूप से **चैत्र शुक्ला ५, सं० १६३२** (गुजराती सं० १६३१) तदनुसार **१० अप्रैल शनिवार सन् १८७५** मानी जाती थी, परन्तु हैदराबाद सत्याग्रह के समय सितम्बर १६३६ को श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज जब बम्बई की प्रथम स्थापित काकड़वाड़ी (गिरगांव) को आर्यसमाज में गये तो वहां उन्हें समाज मन्दिर पर एक छोटा सा शिलालेख दिखाई दिया, जिस पर आर्यसमाज स्थापना तिथि **चैत्र सुदि १, सं० १६३१ (गुजराती सं०), ७ अप्रैल बुधवार सन् १८७५** अङ्कित थी। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने ४ सितम्बर १६३६ को आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा देहली को लिखा—

'आर्यपर्वपद्धति में आर्यसमाज का स्थापना दिवस चैत्र शुक्ला पंचमी है और बम्बई आर्यसमाज में जो शिला ऋषि के समय की है, उसमें स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा लिखी है। यह विषय अन्तरंग सभा में रख कर निश्चय किया जाए कि भविष्य में कौन-सी तिथि मानी जाये। यह विषय प्रान्तीय सभाओं को लिखकर उनसे सम्मति मंगवाई जाए॥

श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के उक्त नोट पर सार्वदेशिक सभा ने अपनी २७ जनवरी १६४० की अन्तरंग सभा में विचार करके निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया—

"नोटिस का विषय सं० ४ आर्य समाज स्थापना दिवस की ठीक ठीक तिथि के निर्धारण का विषय पेश हुआ। प्रगट किया गया कि इस समय आर्यसमाज स्थापनादिवस चैत्र शुक्ला ५ को मनाया जाता है। परन्तु बम्बई के आर्यसमाज के शिलालेख पर स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा अंकित है तथा वह प्रमाणित है। इसलिये स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ रखनी चाहिये। यह भी प्रगट किया गया कि प्रो० ताराचन्द जी गाजरा इस सम्बन्ध में विशेष खोज और छानबीन कर रहे हैं।

निश्चय हुआ कि सम्प्रति यह विषय स्थगित किया जाये और पूरी-पूरी छानबीन होने के बाद यह विषय पुनः पेश किया जाये।"

[टिप्पणी—**पाठक वृन्द ! सार्वदेशिक सभा के इस प्रस्ताव पर ध्यान देवें। प्रथम—शिलालेख में अङ्कित चैत्र शुक्ला १ को प्रमाणित कह दिया। और दूसरे अंश में 'इस विषय को स्थगित रखने और पूरी छानबीन के पश्चात् पुनः पेश करने का निर्देश है।**]

तत्पश्चात् यह विषय पुनः २८-१०-४० को अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निम्नलिखित निश्चय हुआ—

“जामे जमशेद नामक समाचार-पत्र तथा आर्य समाज बम्बई की पुरानी रिपोर्ट के आर्य समाज स्थापना विषयक लेखों के फोटो प्राप्त करके यह विषय आगामी अन्तरंग में प्रस्तुत किया जाये। इससे पूर्व २७-१-४० को अन्तरंग ने निश्चय किया था कि यह विषय आगामी बैठक में पेश किया जाये।”

उक्त निश्चय के अनुसार यह विषय १५-१२-४० की अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निम्न प्रकार निश्चय हुआ—

“आर्य समाज स्थापना-दिवस की तिथि के परिवर्तन का विषय पेश हुआ। आर्य समाज बम्बई की नौवीं रिपोर्ट का फोटो पेश होकर पढ़ा गया, जिसमें समाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी प्रतिपदा अंकित की गई है। इसी सम्बन्ध में प्रगट किया गया कि जामे जमशेद नामक पत्र की कापी प्राप्त नहीं हो सकी है। विचार के बाद निश्चय हुआ कि यह पर्व चैत्र शुक्ल ५ के स्थान पर चैत्र सुदी प्रतिपदा को मनाया जाया करे।”

इस प्रकार १९४० के बाद से आर्यसमाज स्थापना दिवस चैत्र सुदी १ को मनाया जाने लगा।[1]

इस नवीन उपस्थापित आर्य समाज स्थापना तिथि के सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे। यहां पहले सन् १९३९ तक निर्विवाद रूप से मनाई जाने वाली चैत्र सुदी ५मी तिथि के सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१—श्री गोपालरावहरिदेशमुख के नाम सं० १९३१ (गुजराती) मिति

---

[1] उक्त प्रस्तावों की प्रतिलिपि श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित ने **आर्यसमाज की स्थापना कब हुई** लेख में दी है। हम ने वहीं से लिया है। उपर्युक्त प्रस्तावों से स्पष्ट है कि चैत्र शुक्ला १ का आर्य समाज स्थापना तिथि मनाने का निश्चय २८-१०-४० की अन्तरंग सभा में स्वीकृत हुआ था। परन्तु सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित **‘आर्य समाज और उसका सन्देश’** पुस्तक में पृष्ठ १६१ पर चैत्र सुदी १ की पुष्टि में ‘सार्वदेशिक सभा दिल्ली का दिनाङ्क २७ जनवरी ४० के निर्णय’ का उल्लेख है। यह सरासर अशुद्ध है। उपर के प्रस्तावों को पढ़ने से स्पष्ट है कि २७ जनवरी ४० के प्रथम प्रस्ताव में तो “पूरी छानबीन होने के बाद पुनः पेश करने” का उल्लेख है। यह है सार्वदेशिक सभा के मिथ्याचरण का नमूना।

चैत्र शुद्ध ६ रविवार को लिखे गये पत्र में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

'बम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन संध्या के साढ़े पांच बजते आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ।'

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन तृतीय संस्करण संवत् १९३७, प्रथम भाग, पृष्ठ ५५।

२—आर्यसमाज स्थापना के ११ मास पश्चात् माघ सं० १९३२ को बम्बई आर्य समाज की ओर से प्रकाशित **'श्री आर्य समाजना नियमो'** शीर्षक २०×३० के बत्तीस पृष्ठी आकार की २२ पृष्ठ की पुस्तक के आरम्भ में छपा है—**श्री आर्यसमाज स्थापना, संवत् १९३१ (गुजराती) ना चैत्र शुद्ध ५ ने शनिवार।**

हम इस पुस्तिका के प्रारम्भिक दो पृष्ठों की फोटो यहां देते हैं—

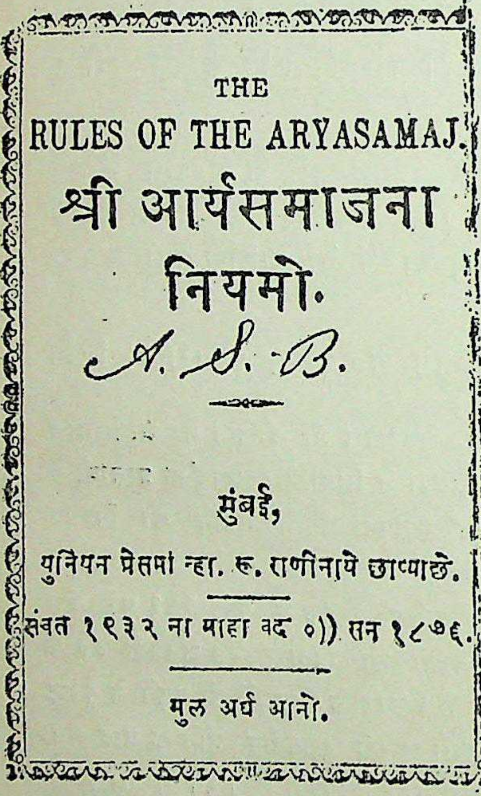

THE
RULES OF THE ARYASAMAJ.
श्री आर्यसमाजना
नियमो.
A. S. B.

मुंबई,
युनियन प्रेसमां न्हा. रू. राणीनाये छाप्याछे.
संवत १९३२ ना माहा वद ०)) सन १८७६.
मुल अर्ध आनो.

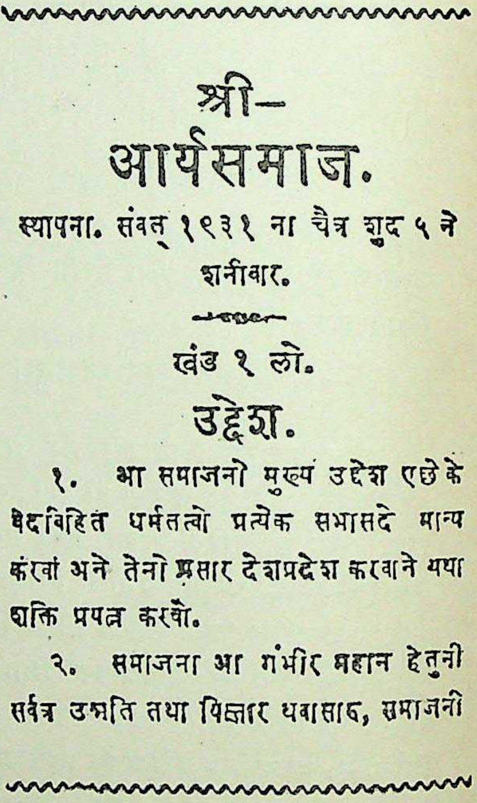

श्री—
आर्यसमाज.
स्थापना. संवत् १९३१ ना चैत्र शुद ५ ने
शनीवार.

खंड १ लो.
उद्देश.

१. आ समाजनो मुख्य उद्देश एछे के वेदविहित धर्मतत्वो प्रत्येक सभासदे मान्य करवां अने तेनो प्रसार देशप्रदेश करवाने यथा शक्ति प्रयत्न करवो.

२. समाजना आ गंभीर महान हेतुनी सर्वत्र उन्नति तथा विस्तार थवासारु, समाजनी

आर्यसमाज की स्थापना के विषय में बम्बई आर्यसमाज द्वारा मुद्रित उक्त पुस्तिका रूप सबसे पुराना और प्रामाणिक रिकार्ड है।

इस के पश्चात् पञ्जाब प्रतिनिधिसभा के आदेशानुसार श्री पं० लेखराम जी आर्यमुसाफिर ऋ० द० के जीवन चरित की सामग्री का संकलन करते हुए सम्भवतः सन् १८९०-१८९३ के मध्य बम्बई पहुंचे थे। उन्होंने इस प्रसङ्ग में लिखा है—

“चैत्र सुदी ५ शनिवार सं० १९३२ तदनुसार १० अप्रेल सन् १८७५ व ३ रबीउल अव्वल सन् १८९२ हिज्री व संवत् १७९७ शालिवाहन व सन् १२८३ फस्ली व माहे सुरदाद सन् १२८४ फारसी, व चैत २९ संक्रान्ति संवत् १९३२ को शाम के समय, मोहल्ला गिरगांव में डा० मानक जी के बागीचे में, श्री गिरधर लाल दयालदास कोठरी बी० ए० एल० एल० बी० की प्रधानता में एक सार्वजनिक सभा की गयी और उसमें यह नियम सुनाये गये और सर्वसम्मति से प्रमाणित हुए और उसी दिन से आर्यसमाज की स्थापना हो गयी।

इस के आगे २८ नियम देकर पुनः लिखा है—

“फिर अधिकारी नियत किये गये। तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल को आर्य समाज के अधिवेशन होने लगे।” हिन्दी सं० पृष्ठ २७२।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि चैत्र सुदी पंचमी को ही बम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई थी और इसी दिन नियमों की स्वीकृति तथा अधिकारियों का चयन हुआ। **‘तत्पश्चात् शनिवार को आर्यसमाज के अधिवेशन होने लगे।’** उद्धरण स्पष्ट बता रहा है कि चैत्र सुदी ५ को अधिवेशन नहीं हुआ। श्री पं० लेखराम जी के उक्त उद्धरण में देश में प्रयुक्त लगभग सभी प्रसिद्ध सन्, संवतों, उन के महिने वा तिथि का यथावत् उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पं० लेखराम जी के जैसा ही ठीक निर्देश श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३३५ तक मिलता है। इस निर्देश में पृष्ठ ३३५ पर **‘इसके पश्चात् आर्यसमाज के पदाधिकारी नियत किये गये और प्रति शनिवार को सायङ्काल आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन होने निश्चित हुए।’** लेख अधिक स्पष्ट है। इसके आगे १०-१२ पंक्तियां छोड़कर लेख है—

‘आर्यसमाज स्थापित होने के पश्चात् स्वामी जी के व्याख्यान आर्यसमाज में ही होने लगे। एक व्याख्यान १७ अप्रेल को हुआ और दूसरा २४ अप्रेल को हुआ।’ पं० देवेन्द्रनाथ सं० जा० च० पृष्ठ ३३५।

इस उद्धरण से हमारे पूर्व लेख की पुष्टि होती है कि चैत्र शुक्ला ५ को आर्यसमाज के नियमादि स्वीकार करने और पदाधिकारियों की नियुक्ति तथा प्रति शनिवार सायं अधिवेशन करने का निश्चय करके सभा विसर्जित हो गई थी। इसलिये स्वामी जी महाराज का प्रथम भाषण १७ अप्रेल शनिवार को हुआ।

आर्यसमाज की स्थापना चैत्र सुदि पञ्चमी को ही हुई इसमें बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'टाइम्स आफ इण्डिया' के १० अप्रेल सन् १८७५ के प्रभात संस्करण पृष्ठ ३, कालम ३ पर छपी सूचना से भी होती है। पाठ इस प्रकार है

"A meeting will be held at 5-30 P. M. today in the Girgam Back Road, in the bungalow belonging to Dr. Maneck ji Aderjee when Pt. Dayanand Sarswati Swami will perform the ceremonies for the formation of Arya Samaj. All well wishers of the cause are invited to attend."[1]

इन सभी उद्धरणों को उद्धृत करने का प्रयोजन यही है कि जो लोग चैत सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना के पक्षधर है, उनकी कल्पना का उद्घाटन हो जावे। चैत शुक्ला ६ सं० १९३२ पूर्व उद्धृत ऋषि दयानन्द के पत्र में आये **'आर्यसमाज का आनन्द पूर्वक आरम्भ हुआ'** का अर्थ **'साप्ताहिक अधिवेशन'** हुआ करते हैं, वह आर्यसमाज के प्रारम्भिक ग्यारह मासों की कार्यवाही में प्रयुक्त स्थापना शब्द और पं० लेखराम तथा पं० देवेन्द्रनाथ के उल्लेखों में चैत सुदी ५ को नियमों की स्वीकृति पदाधिकारियों की नियुक्ति होने का तथा साप्ताहिक अधिवेशन न होने के निर्देश से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द का 'आरम्भ हुआ' शब्दों का अभिप्राय 'स्थापना' से ही है।

इस प्रसंग में हम श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित (श्री स्वा० विद्यानन्दजी) द्वारा 'आर्य समाज की स्थापना कब हुई' लेख का वह अंश उद्धृत करते हैं, जिससे स्पष्ट होगा कि चैत सुदी १ के पक्षपाती अपने झूठे दावे को सिद्ध करने के लिये ऐसी खींचातानी करते हैं जो असत्य की पर्याय बन जाती है। यथा—

"चैत सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि सिद्ध करने के लिये सार्व-

---

[1] यह उद्धरण भी श्री दीक्षित जी के लेख से लिया है।

देशिक सभा द्वारा नियुक्त पं० वैद्यनाथ जी का कथन है कि 'टाइम्स आफ इण्डिया' आदि में १० अप्रेल को छपी सूचना का आर्यसमाज की स्थापना से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके मत में पं० लेखराम जी, देवेन्द्र बाबू आदि की यह भूल थी कि उन्होंने 'टाइम्स आफ इण्डिया' में छपी सूचना में आये 'formation' शब्द का अर्थ 'foundation' समझ लिया जबकि उसका ठीक अर्थ 'साप्ताहिक अधिवेशन' होता है। 'formation' अंगरेजी का शब्द है। अंगरेजी का सबसे अधिक प्रामाणिक कोश Oxford English Dictionary है। उसमें formation शब्द के अर्थ दिये हैं—Putting or coming into form, creation, production, formal structure, the manner in which a thing is formed, construction. ये सभी अर्थ foundation के तो पर्याय जैसे हो सकते हैं। परन्तु बहुत खोजने पर भी हमें formation का अर्थ 'साप्ताहिक अधिवेशन' अथवा उसका अंगरेजी पर्याय weekly meeting, assembly or congregation नहीं मिला। निश्चय ही formation का अर्थ निर्माण अथवा स्थापना है। **इस सूचना में** formation **के लिये भक्त जनों, सत्संगियों, मुमुक्षुओं, श्रद्धालुओं, आदि को आमंत्रित न करके** well-wishers of the cause **अर्थात् उद्देश्य से सहानुभूति रखने वालों को आने की प्रेरणा की गई है। इन शब्दों से भी स्पष्ट है कि उस दिन का वह आयोजन आर्य समाज की स्थापना के लिये किया गया था, प्रवचन सुनने-सुनाने के लिये नहीं।** Formalities for the formation of Arya Samaj का अभिप्राय भी स्थापना के लिये अपेक्षित विधि विधान, अधिकारियों की नियुक्ति आदि से है, हवन-यज्ञ आदि से नहीं।"

ये तो हुए चैत्र शुक्ला ५ को आर्यसमाज स्थापना तिथि सम्बन्धी लेख। अब चैत्र शुक्ला १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि मानने वालों के प्रमाण वा हेतु—

१—आर्यसमाज काकड़वाड़ी गिरगांव मुम्बई की समाज में एक शिला लेख लगा है। इस में **'आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ सं० १९३१ (गुजराती) तदनुसार ७ अप्रेल बुधवार सन् १८७५'** अङ्कित है।

२—इसकी पुष्टि में आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्डडीड तथा कार्यवाहियों का भी हवाला दिया जाता है।

हम इन की क्रमशः परीक्षा करते हैं—

१—शिलालेख की परीक्षा—चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना

निथि बतलाने वाला शिलालेख उसी **आर्यस्थान** पर लगा है, जिसके ऊपर लगे एक शिला लेख में **फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८, १८ फैब्रुअरी** १८८२ अङ्कित है[1] ।

इससे इतना तो स्पष्ट है कि स्थापना तिथि बोधक शिलालेख को यदि सही माना भी जाये तो आर्यसमाज स्थापना के लगभग ७ वर्ष बाद का है । इस विषय में हमारा विचार इस प्रकार है—

(क) निम्नहेतुओं से स्पष्ट है कि श्री पं० लेखराम जी सन् १८९३ में समाज भवन पर लगे शिलालेख की तिथि के लगभग ८-१० वर्ष पश्चात् ऋ० द० के चरित के अनुसन्धान में बम्बई गये थे । उस समय यदि उक्त आर्यसमाज स्थापना तिथ्यङ्कित शिलालेख वहां लगा हुआ विद्यमान होता तो उस व्यक्ति द्वारा, जो ऋ० द० के चरित की खोज के लिये ही वहां पहुंचा हो, शिलालेख की उपेक्षा किया जाना असम्भव था । तथा यह भी प्रश्न होता है कि उस समय के आर्यसमाज के अधिकारियों ने पं० लेखराम को आर्य समाज की स्थापन की तिथि क्या बताई होगी ? अनुसन्धान करने को निकले व्यक्ति ने तो न जाने कितने दिन बम्बई में ठहर कर विविध व्यक्तियों से पूछाताछी की होगी । ऐसी अवस्था में यदि उक्त शिलालेख विद्यमान होता अथवा समाज के अधिकारियों द्वारा पं० लेखराम को आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत सुदि १ बताई जाती तो पं० लेखराम जी उसका ही निर्देश करते । इस से स्पष्ट है कि **सन् १८९०–१८९३ के मध्य जब पं० लेखराम जी ऋषि चरित के अनुसन्धान के लिये बम्बई गये थे, उस समय न वहां उक्त शिलालेख था और ना ही किसी व्यक्ति ने उन्हें आर्यसमाज स्थापना की तिथि चैत सुदि १ बताई थी, यह निर्विवाद है ।**

(ख) पं० लेखराम जी के पश्चात् ऋषि चरित के अनुसन्धान में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने तथा श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी ने जो प्रयत्न किया उस की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है । श्री स्वामी सत्यानन्द जी तो कथा वा उपदेश के लिये अनेक बार बम्बई आर्य समाज में गये थे । श्री

---

[1] जिस 'आर्यस्थान' नामक भवन पर 'फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८, १८ फर्वरी सन् १८८२' तिथि का शिलालेख लगा है, वह भी उक्त तिथि के बहुत पीछे लगाया गया है । इस विषय में हम आगे लिखेंगे । वस्तुतः यह भवन के निर्माण के काल का बोधक नहीं है ।

देवेन्द्रनाथ जी ने भी इस सम्बन्ध में अपने जीवन का १५ वर्ष का जो महत्त्वपूर्ण समय लगाया, उस काल में वे कई बार बम्बई समाज में गये होंगे। उन्होंने भी उक्त शिलालेख का कोई निर्देश नहीं किया और ना ही आर्यसमाज के किसी अधिकारी ने उन्हें आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत सुदी १ बताई।

पं० लेखराम और पं० देवेन्द्रनाथ सदृश ऋषि जीवन पर न्योछावर होनेवाले ऋषि चरित-अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह सोचना कि उन्होंने बम्बई के आर्यसमाज के तात्कालिक अधिकारियों से आर्यसमाज स्थापना तिथि के विषय में कुछ नहीं पूछा, ऐसा वही विकृत मस्तिष्क का व्यक्ति सोच सकता है, जिसे येन केन प्रकारेण आ० स० स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ की पुष्टि करनी हो।

(ग) स्थापना तिथि चैत सुदी १ के बोधक शिलालेख को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर स्पष्ट विदित होता है कि यह जाली शिलालेख पीछे से लगाया गया है। क्योंकि आर्यसमाज के भवन पर जो दूसरा शिलालेख लगा है, उससे इसके अक्षर-विन्यास में भिन्नता है। पाषाण भी भिन्न है। यदि दोनों शिलालेख समकाल के होते तो पाषाण की भिन्नता सम्भव होने पर भी दोनों के अक्षर विन्यास में तो समानता होती। साधारण से दो शिलालेखों को भिन्न भिन्न कारीगरों से खुदवाने में कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

यदि आर्य सार्वदेशिक सभा इस बात के निर्णय के लिये भारत सरकार के किसी पुरातत्त्व विशेषज्ञ जो शिला लेख विशेषज्ञ भी हो, परीक्षा कराये तो जालसाजी स्पष्ट प्रमाणित हो जायेगी।

(घ) आगे हम आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्ड डीड और मुद्रित रिपोर्टों के अंश उद्धृत करेंगे उन में सं० १ की डीड में आर्यसमाज स्थापना तिथि **७ मार्च सन् १८७५** है तथा सं० २ की रिपोर्ट में **चैत्र शुद्ध १ शनीवार ता० ७ मार्च शके १८७५** छपा है। इनमें चैत्र शुद्ध १ मार्च और शनीवार लिखना अशुद्ध है। यदि उक्त विवादास्पद शिलालेख 'आर्य-स्थान' पर लगे अन्य शिलालेख के साथ सं० १९३८ में ही लगाया गया होता तो उस शिलालेख में **चैत्र शुद्ध १ सं० १९३१ ता० ७ अप्रेल १८७५ बुधवार** लेख की विद्यमानता में डीड और रिपोर्ट में उक्त दिन और मास की भयङ्कर भूलें कदापि न होती। इस से भी स्पष्ट है कि यह शिलालेख, सन् १८८८ की डीड तथा सं० १९४५ को छपी रिपोर्ट के पीछे किसी समय लगाया गया।

(ङ) पूर्व १० अप्रेल सन् १८७५ के 'टाइम्स आफ इण्डिया' के प्रभात संस्करण में छपी सूचना और उसके सम्बन्ध में पं० वैद्यनाथ शास्त्री के वक्तव्य की पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित द्वारा की गई जो यथार्थ समीक्षा ऊपर उद्धृत की है, उससे स्पष्ट है कि पं० वैद्यनाथ जी को असत्य पक्ष के पोषण की चाहे कितनी ही झूठी कल्पनाएं क्यों न करनी पड़ें, उनमें उन्हें कोई झिझक नहीं होती।

(२) अब हम आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्ड डीड तथा उन कार्यवाहियों (रिपोर्टों) पर विचार करते हैं, जिन्हें 'चैत्र सुदी १' की पुष्टि में प्रमाण रूप से उपस्थित किया जाता है।

१—ता० १३ अप्रैल १८८८ को दो बजकर ५५ मिनट पर आर्यसमाज ट्रस्ट सम्बन्धी जो डीड रजिस्टर्ड हुआ उसमें निम्न लेख है—

Whereas in or about the christian year 1875 a certain inhabitant of Bombay being desirous of establishing a samaj in Bombay with the object and for the purpose of carrying out Religious, Social and Moral reforms on the authority of the VEDAS as explained and taught by the late revered Pandit DAYANAND Saraswati Swami. A meeting of the promoters of the intended instituion was held at Bombay on the Seventh day of MARCH 1875 under the presidency of the said Pandit DAYANAND Saraswati Swami and at such meeting the following principles were adopted.

२—ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त श्री सेवकलाल कृष्णदास जी द्वारा सं० १९३१ (उत्तर भारतीय १९३२) चैत्र सुदी १ से १९४४ फाल्गुन अमावस्या तक की एक हिसाब आदि की रिपोर्ट छपी है[१] (आ० स० बम्बई में है)। उसमें निम्न लेख है—

"...अने अंते ज्यारे समाज स्थापन थतोज न थी, एवं केटलाक सुज्ञ गृहस्थोए जाण्युं त्यारे अमने अने रा० रा० पाचाचंद आणंदजी पारेख ते नियम घड़ी कहाड़वा ते ओए सोप्युं एटले तेना नियमो अमे तैयार करी

---

[१] यह रिपोर्ट 'सुबोधप्रकाश प्रेस' बम्बई में संवत् १९४५ सन् १८८९ में छप कर प्रकाशित हुई थी।

रा० रा० पाताचदजी ने बंवावी स्वर्गवासी रा० रा० गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी० ए० एल० एल० बी० जे ओ समाज स्थापन थई त्यारे लोकापवाद ना भय राख्याबगर मेदान पड़ी प्रमुख थया हता ते ओ पासे सोधावी तैयारकर्या अने संवत् १९३१ ना **चैत्र शुद्ध १ शनिवार ता० ७ नी मार्च अने (शके)** १८७५ ने दीने सांजना गिरगाममां डाक्टर माणेकजीनी बाड़ी मां आर्यसमाज स्थापन करवा सारु जे जाहेर सभा बोलाव्यामां आवी हती तेमा रजु कीधा अने ते सर्वानुमते बहाल रह्या अने तेज दहाड़े आर्यसमाज नी स्थापना थई, अने तेना अधिकारियो पण नेम्यामां आव्यां अने त्यार थी प्रति शनिवारे सायंकाले समाज थवा लागी परन्तु थोड़ा महिना बाद ते दिवस समाजस्थो ने अनुकूल न आव्या थी ते फेरवी रवीवार राख्यो जे हजी सुधी कायम छे।"

३—श्री सेवकलाल कृष्णदासजी द्वारा सं० १९५० (१८९४) की रिपोर्ट पृष्ठ २८ पर इस प्रकार लिखा है—

"अने एज धोरण थी प्रथम सं० १९३१ ना चैत्र सुदी १ ने दिने मुम्बई मां आर्यसमाज स्थापन थयो"

[उपर्युक्त तीनों लेखों (आर्यसमाज की डीड तथा रिपोर्टों) की प्रतिलिपि हमारे गुरुभाई श्री पद्मदत्त जी त्रिवेदी ने १६ मार्च १९५४ के पत्र के साथ भेजी थी।[1] श्री पं० पद्मदत्त जी त्रिवेदी उस समय आर्यसमाज बम्बई में कार्य करते थे।[2]]

समीक्षा—अब हम उपर्युक्त तीनों लेखों की क्रमशः समीक्षा करते हैं—

१—आर्यसमाज को रजिस्टर्ड डीड की जो अंग्रेजी प्रतिलिपि ऊपर

---

[1] यह पत्र और उसके साथ भेजी प्रतिलिपियां अभी हमारे पास सुरक्षित हैं। इन्होंने ही सन् १९५२ के श्री प्रताप जी शूरजी के यज्ञ के समय आ० स० मुम्बई की सं० १९३२ में छपी प्रारम्भिक ११ मासों की रिपोर्ट, जिसमें आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र शुद्ध ५ छपी है हमें देखने को दी थी।

[2] यहां यह ध्यातव्य है कि आ० स० बम्बई के अधिकारियों ने छपी रिपोर्टों के दिखाने वा अंश लिखकर भेजने के तथाकथित अपराध में उन्हें कार्य से मुक्त कर दिया था।

दी है, उस में आर्यसमाज की स्थापना तिथि ७ मार्च १८७५ दी गई है, इसमें महिने की सबसे बड़ी भूल है—**अप्रेल** के स्थान में **मार्च** लिखा है। इसमें वार और देशी तिथि का उल्लेख नहीं है।

२—सं० १९३१ (गुज०) से सं० १९४४ तक की जो रिपोर्ट उपर दी है उसकी भूलों की ओर ध्यान आकृष्ट करने से पूर्व पाठकों को यह जानना चाहिये कि ऊपर उद्धृत रिपोर्ट का गुजराती पाठ (स्थापना तिथि अंश को छोड़कर) पं० लेखराम जी के जीवन चरित के विवरण से प्रायः मिलता है। द्र०—जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ २६९-२७२, आ० स० के अट्ठाईस नियमों के पूर्व और पश्चात् का पाठ।

इस रिपोर्ट में **चैत्र शुद्ध १ सं० १९३१ (गुज०) शनिवार ता० ७ मार्च शक १८७५** के दिन आर्यसमाज की स्थापना का उल्लेख है। यह रिपोर्ट आर्यसमाज की रजिस्ट्री से कुछ मास पीछे सं० १९४५ की है (द्र० पृष्ठ ९५२, टि० १)। इस तिथि निर्देश में एक साथ कई भूलें हैं। यथा—

क—चैत्र शुद्ध १ सं० १९३१ (गुजराती, उ० भा० १९३२) शनिवार नहीं था, बुधवार था। शनिवार को चैत्र शुद्ध ५ थी, प्रतिपदा नहीं थी। प्रतीत होता है चैत्र शुक्ला ५ को चैत्र शुक्ला १ में बदलते हुए वार को बदलना रह गया। प्रमादवश ऐसी भूलें प्रायः पूर्व लेख में परिवर्तन करते समय हो जाती हैं। परन्तु कई बार ऐसी भूलें पुराने लुप्त हुए अथवा छिपे इतिहास को व्यक्त करने में बहुत सहायक होती हैं। इसका एक उदाहरण हम अपने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ पृष्ठ ५४ से संक्षिप्त करके देते हैं—

पञ्चमहायज्ञविधि के सं० १९३४ से लेकर सं० १९८३ तक के संस्करणों में सन्ध्याग्निहोत्र के प्रमाण में अथर्ववेद के २ मन्त्र **सायं सायं गृहपतिः और प्रातः प्रातर्गृहपतिः** भाष्य सहित उद्धृत हैं। परन्तु इन मन्त्रों के भाष्य पर क्रम संख्या १-२ न होकर ३-४ छपती रही है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के इस प्रकरण में निम्न चार मन्त्र भाष्य सहित उद्धृत हैं—

समिधाग्निं दुवस्यत.............. ॥१॥
अग्निं दूतं पुरोदधे.............. ॥२॥
सायं सायं गृहपतिर्नो............ ॥३॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो............ ॥४॥

मन्त्रों के ये ही क्रमाङ्क भाष्य के अन्त में भी दिये हैं ।

पञ्चमहायज्ञ विधि में केवल तृतीय चतुर्थ मन्त्र तथा उस के भाष्य को उद्धृत किया है अर्थात् प्रथम और द्वितीय मन्त्र तथा उस का भाष्य छोड़ दिया है। इस प्रकार पञ्चमहायज्ञ विधि में उद्धृत **सायंसायं** तथा **प्रातःप्रातः** मन्त्र की क्रम संख्या तो ३, ४ को बदलकर १, २ कर दी; परन्तु संस्कृत भाष्य में उनकी मन्त्र को क्रम संख्या ३,४ ही रह गई। यह लेखक प्रसाद जन्य अशुद्धि स्पष्ट करती है कि पञ्चमहायज्ञ विधि का यह प्रकरण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से उठा कर रखा गया है।

पञ्चमहायज्ञ विधि की अशुद्धि के समान आ० स० स्थापना तिथि के उपर्युक्त लेख में 'चैत्र शुद्ध ५' के स्थान पर 'चैत्रशुद्ध १' तो कर दिया गया परन्तु वार निर्देश जो पुराना शेष रह गया वह आज भी उच्चैःस्वर से उद्घोषित कर रहा है कि आ० स० की स्थापना के दिन शनिवार था।

ख—अंग्रेजी ता० ७ मार्च दी गई है। संशोधित तिथि के अनुसार ७ अप्रैल होनी चाहिये। यह ७ मार्च तिथि यह घोषित कर रही है कि इस रिपोर्ट का लेखन वा प्रकाशन डीड की रजिस्ट्री के पश्चात् हुआ था।

ग—अंग्रेजी तारीख के साथ शने (शके) १८७५ लिखा है। शके का प्रयोग सम्पूर्ण दक्षिण भारत में शालिवाहन शक (संवत्सर) के लिये प्रयुक्त होता है। यहां 'सन्' शब्द होना चाहिये।

उपर्युक्त आर्यसमाज की डीड और सं० १९४५ में प्रकाशित रिपोर्ट में दिन मास आदि की जो भूलें हैं उन से व्यक्त होता है कि सन् १८८८ तथा सं० १९४५ तक आर्यसमाज की स्थापना तिथि बोधक शिलालेख नहीं लगा था, अन्यथा उस में **'चैत्र सुदि १, ७ अप्रैल बुधवार सन् १८७५** ऐसा निर्देश होने पर डीड और रिपोर्ट में वार और मास की उक्त अशुद्धियां कदापि न होतीं।

३—सं० १९५०, सन् १८९४ की रिपोर्ट का जो अंश ऊपर छापा है, उसमें 'वार' तथा अंग्रेजी मास आदि का उल्लेख नहीं है। इस में जो गुजराती **'धोरण'** शब्द है, उसका अर्थ है—परम्परागत, क्रमागत। अतः उक्त रिपोर्ट का अभिप्राय होगा—और ऐसा परम्परागत विश्वास था कि प्रथम सं० १९३१ के चैत्र सुदी १ के दिन मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई।

इस रिपोर्ट में **'धोरण'** शब्द का उल्लेख भी यही दर्शाता है कि इस के

लिखे जाने तक स्थापना तिथि बोधक शिलालेख नहीं लगा था। अन्यथा 'धोरण' शब्द का उल्लेख नहीं किया जाता।

एक अन्य रिपोर्ट—आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ सिद्ध करने के लिये सन् १८७८ से १८८३ तक की साप्ताहिक सत्संगों की कार्यवाही के रजिस्टर का भी प्रमाण दिया जाता है। उस का अपेक्षित अंश इस प्रकार है—

"फाल्गुन कृष्णपक्ष ना वार रवि १९३८ ता १९ वी मार्च सने १८८२ अंग्रेजी ए रोज आर्यसमाज रा० रा० गोविन्दविष्णु की शाला मां सांज ना चार बजे मल्यो हतो। प्रथम वेदमन्त्रे ईश्वर स्तुति अने गवैया ए स्तुति गायन करवा बाद वर्तमान पत्र मा आपेली जाहेर खबर प्रमाणे राव कृष्ण राम इमाराय 'देशोन्नति' विषय पर सुरसभाषण आप्यु हथुं। ते पछी बीजे दिवसे अटले **चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदाने वार सोम सं० १९३८ ता० २० मार्च ने सने १८८२ ने रोजे आर्यसमाज नो जन्म दिवस होना नो महोत्सव करवामा आव्योहतो।**"

समीक्षा—इस विवरण में भी निम्न विचारणीय बातें हैं—

१- यह कार्यवाही आर्यसमाज स्थापना के सात वर्ष बाद की है। इसे पूर्व उद्धृत अन्य प्रमाणों, विशेषकर प्रारम्भिक ११ मास की कार्यवाही की तुलना में इसे प्रमाण नहीं मान सकते।

२—आर्य स्थान पर जो शिला लेख लगा है, तदनुसार यदि यह माना जाये कि आर्यसमाज का भवन फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८, १८ फैब्रुवरी १८८२ तैयार हो गया था।[1] उस अवस्था में उस के एक मास[2] पश्चात् आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन की रा० रा० गोविन्द विष्णु जी की

---

[1] हम पूर्व पृष्ठ ९५० की टि० १ में लिख चुके हैं कि बम्बई के समाज मन्दिर में आर्यस्थान सम्बन्धी शिलालेख में जो तिथि दी गई है वह भवन निर्माण की नहीं है (आजकल के आर्यसमाजी इसे भवन निर्माण की तिथि मानते हैं)। अपितु उक्त स्थान पर आधार शिला रखने की है। इसकी प्राप्ति सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुंबई आर्यसमाज नो इतिहास' के पृष्ठ ४० से होती है। इसमें श्री स्वामी जी महाराज के हाथ से नींव रखवाने का निर्देश है।

[2] दक्षिण भारत में कृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष के बाद गिना जाता है। अतः उत्तर भारतीयों का चैत्र कृष्ण पक्ष दक्षिणभारतीयों का फाल्गुन का कृष्ण पक्ष माना जाता है।

शाला में लगने का प्रसंग ही नहीं उठता। हां, उक्त तिथि आर्यसमाज के भवन की नींव रखने की हो तो और बात है। अन्यथा उसके लेख 'श्रीमद् पण्डित **"दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के सदुपदेश से सज्जन वैदिकजनों ने ....यह स्थान बना के आर्य समाज के अधिकार में रखा'** से तो समाजभवन बनने के पश्चात् उद्घाटन समय का शिलालेख होना चाहिये।

३—इस रिपोर्ट में चैत्र शुक्ला १ को **आर्यसमाज के जन्म दिवस के महोत्सव** करने का जो उल्लेख है, वह भी इस बात का प्रमाण नहीं है कि आर्यसमाज की स्थापना वा जन्म चैत्र सुदी १ को हुआ था। क्योंकि हम लोक में सर्वत्र देखते हैं कि जिन पर्वों की राजकीय सार्वजनिक छुट्टी नहीं होती है उन श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, लेखराम बलिदान दिवस आदि महत्त्वपूर्ण दिवस ठीक उसी तिथि और तारीख को न मना कर दो चार दिन आगे पीछे रविवार आदि सार्वजनिक छुट्टी के दिन मनाते हैं। क्या कालान्तर में उसके रखे गये रिकार्ड से प्रमाणित उचित होगा कि श्रद्धानन्द और लेखराम बलिदान दिवस वही था, जिस दिन समाजों ने मनाया?

बम्बई के गुजरातियों और महाराष्ट्रियों में चैत्र सुदी १ का पर्व अत्यन्त इस दिन सार्वजनिक छुट्टी भी होती है, अतः महत्त्वपूर्ण होता है। इस दिन की महत्ता और सार्वजनिक छुट्टी के कारण उत्तर काल में आर्यसमाज जन्मोत्सव चैत्र सुदी ५ के स्थान में चैत्र सुदी १ को मनाई जाने लगी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस उत्सव को मनाने का निर्देश ऋ० द० ने भी चैत्र सुदी १३ सं० १९३८ = ता० १७ मार्च १८८२ को कृपाराम स्वामी को लिखे पत्र में भी किया है। जो इस प्रकार है—

"तीन दिन पश्चात् वार्षिक उत्सव आर्यसमाज का ७ वां होगा। द्र० ऋ० द० के पत्र विज्ञापन संस्क० ३, पूर्ण संख्या ५०७ का पत्र, भाग २ पृष्ठ ५४२।

ऋषि ने **'वार्षिक उत्सव'** शब्द का प्रयोग किया है, **'जन्मोत्सव'** शब्द प्रयोग नहीं किया। वार्षिक उत्सव का आयोजन आगे पीछे भी किया जाता है, यह सर्वलोक विदित है।

कुछ लोग चैत्रसुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि में यह हेतु देते हैं कि चैत्र सुदी १ को **नववर्ष** का आरम्भ होता है अतः ऐसे महत्त्वपूर्ण दिन को छोड़कर ५ को आर्यसमाज स्थापना करने की कोई तुक नहीं है।

हम इस प्रकार का कथन करने वालों से कहना चाहते है कि बम्बई आर्यसमाज की स्थापना में प्रमुख हाथ गुजरातियों का था। गुजरातियों का नया संवत् कार्तिक सुदी प्रतिपद् (दिवाली के दूसरे दिन) से होता है। अतः नव वर्षारम्भ का हेतु भी अहेतु है।

इन सब और प्रमाणों और हेतुओं से स्पष्ट है कि आर्यसमाज बम्बई की स्थापना चैत्र सुदी ५ सं० १९३२ (गुज० १९३१) शनिवार १० अप्रैल १८७५ को हुई थी। चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि का बोधक शिलालेख न तो श्री पं० लेखराम और न श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी के ऋषि चरित्र-संकलन निमित्त बम्बई जाने तक लगा था, आर्यसमाज की रजिस्टर्डडीड और रिपोर्टों के लिखने वा प्रकाशन के समय तक यदि पं० लेखराम जी और देवेन्द्रनाथ जी की बम्बई यात्राओं से पूर्व उक्त चैत्र सुदी १ का आर्यसमाज स्थापना का उद्घोषक शिलालेख लगा हुआ होता तो उनकी दृष्टि में अवश्य आता अथवा जिन व्यक्तियों से ऋषि जीवन की घटनाओं का विवरण पूछा वे अवश्य चैत्र सुदी १ का निर्देश करते या शिलालेख की ओर ध्यान दिलाते। इसी प्रकार यदि आर्यसमाज को डीड को रजिस्ट्री और रिपोर्टों के प्रकाशन से पूर्व शिलालेख लगा हुआ होता तो इन में दर्शाई हुई तिथि वार और मास की अशुद्धियां कदापि न होतीं, क्योंकि शिलालेख में चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि मान कर वार और अंग्रेजी तारीख वा मास शुद्ध लिखे हुए हैं। हमारा विचार है कि चैत्र सुदी १ को उत्सव मनाने की परिपाटी के आधार पर ही पहले चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि का मनना प्रारम्भ हुआ, जैसा कि रिपोटों में वर्णित है। परन्तु कालान्तर में आर्यसमाज की डीड और रिपोर्टों में व्याप्त अशुद्धियों को परिमार्जन करने और चैत्रसुदी १ को स्थायीरूप देने के विचार से संवत् १९४५ के आस पास अथवा उसके भी पीछे यह शिलालेख लगाया गया।

झूठ की पराकाष्ठा

आर्यभवन पर लगे दोनों शिलालेख सं० १९४४ के बाद के

मैं कुछ दिनों से श्री स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा **'कल्याण मार्ग का पथिक'** पढ़ रहा हूं। आज ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० २०३८ तदनुसार ता० १० अप्रैल १९८१ मध्याह्नोत्तर उक्त आत्मकथा पढ़ते हुए लगभग ४ बजे 'सं० १९४४ बम्बई की पहली यात्रा' का श्री स्वामी श्रद्धानन्द का लिखा वर्णन पढ़ने पर मेरा मन एक क्षण के लिये स्तम्भित हो गया कि क्या आर्यजन

भी इतना झूठ लिख सकते हैं ? श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते हैं—

आर्यसमाज मन्दिर का उन दिनों केवल चबूतरा ही बना हुआ था जिस पर मैंने व्याख्यान भी दिया। कल्याण मार्ग का पथिक, पृष्ठ १४३, पं० ३३-३४, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय काशी, संवत् १९८१।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस लेख से स्पष्ट है कि सं० १९४४=सन् १८८७ तक आर्यसमाज मन्दिर बना भी नहीं था (हमें मालूम नहीं कब बना)। उस अवस्था में आर्यसमाज मन्दिर पर 'आर्यसमाज स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ सं० १९३१ (गुजराती) ७ अप्रैल १८७५ बुधवार' वाला शिलालेख भी निश्चित ही सं० १९४४ के बाद जब कभी आर्यसमाज का भवन बना होगा, तब लगाया गया होगा।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस लेख से स्पष्ट यह भी हो जाता है कि जब श्री पं० लेखराम जी (सन् १८९०-१८९३ के मध्य) और श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी ऋषि चरित की खोज में बम्बई गये थे, तब न आर्यसमाज का भवन था और न आर्यसमाज स्थापना तिथि का बोधक शिलालेख ही लगा हुआ था। अतः उनके देखने न देखने का वा ध्यान देने न देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस नवीन साक्ष्य से भी स्पष्ट है कि आर्यसमाज काकड़वाड़ी के भवन पर जो शिलालेख लगे हैं, वे सब सं० १९४४ के पश्चात् के तो अवश्य ही हैं।

अतः इस कल्पित जाली शिलालेख को प्रमाण मान कर आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत सुदी १ को मानना सर्वथा गलत है। **आर्यसमाज की स्थापना चैत सुदी ५ को शनिवार को ही हुई थी और यही प्रामाणिक तिथि है।** सन् १९३३ में प्रकाशित श्री दामोदरदास सुंदरदास कृत 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' ग्रन्थ के पृष्ठ ४१-४२ से यह भासित होता है कि आर्यसमाज का भवन सं० १९४९ या १९५० में बना था।

—:o:—

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library

पञ्चम परिशिष्ट

आर्यभाषा को राजकीय कार्यों में प्रचलित करने के लिए ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से भेजे गये मेमोरियलों के नमूने

पृष्ठ ६०२ पंक्ति १६, १७—इस समय (आर्यभाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना।

ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त कराने के लिये अनेक स्थानों से राज्याधिकारियों के पास २०० मेमोरियल भेजे गए थे[1]। उनमें से हम एक मेमोरियल और एक निवेदन पत्र की प्रतिलिपि नीचे देते हैं। जिससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि राजकार्य में आर्यभाषा हिन्दी को प्रवृत्त कराने में आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्तक ने (उस काल में जब कि इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था) कितना महान् कार्य किया था। आज हिन्दी के इतिहास में आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक के हिन्दी के प्रचार के कार्य का उल्लेख केवल ३।४ पङ्क्तियों में लिख कर समाप्त कर दिया जाता है। हमारे विचार में इसका प्रधान कारण आर्य विद्वानों का इस क्षेत्र (इतिहास लेखन) से उदासीन रहना ही है, अन्यथा किसी भी हिन्दी के इतिहास लेखक को ऐसी धृष्टता करने का साहस ही न होता। भारत सरकार द्वारा दी गई सहायता से कई भागों में काशी नागरी प्रचारणी से प्रकाशित 'हिन्दी के बृहद् इतिहास' में ऋषि दयानन्द के द्वारा किये गये हिन्दी भाषा के प्रचार के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया।

आर्यसमाज मेरठ द्वारा प्रेषित मेमोरियल[2]

(मुख पत्र)

---

[1] अगले कानपुर से भेजे गये निवेदन-पत्र के पैरा ३ से व्यक्त होता है कि दो सौ मेमोरियल शिक्षा कमीशन के पास भेजे गये थे।

[2] यह मेमोरियल २०×२६ अठपेजी आकार के १६ पृष्ठों पर लीथो में छपा

ओ३म्

मेमोरियल

* * *

अर्थात् श्रीयुत डाक्टर हंटर साहिब वहादुर की सेवा में
नागरी प्रचारक निवेदन पत्र
जिसको आर्यसमाज मेरठ की आज्ञानुसार एक सभासद ने लिखा

* * *

मिति माघ बदी १२ रविवार
सम्वत् १९३९
विद्या दर्पण यन्त्रालय में छपा

ओ३म्

मेमोरियल

अर्थात् नागरी प्रचारक निवेदन पत्र

श्रीयुत विज्ञातिविज्ञ महामान्यवर एज्यूकेशनल कमीशन के प्रधानाध्यक्ष श्रीमान् डाक्टर हंटर साहिब की सेवा में अति विनय पूर्वक प्रार्थना।।

यद्यपि आज तक जितने देवनागरी प्रचारक प्रार्थना पत्र अर्थात् (मेमोरियल) आपकी सेवा में भेजे गये हैं सम्भव है कि उनकी अपेक्षा यह निवेदन पत्र अति ही तुच्छ हो, परन्तु न्यायाधीश महाशयों के लिये संकेत मात्र ही बहुत होता है इस लिये आशा है कि इस छोटे से निवेदन पत्र पर अवश्य ध्यान होगा और विचारपूर्वक यथार्थ और प्रजाहित सम्मति दी जायेगी।

प्रश्न—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाती है क्या वह वहां के सब लोगों को शिक्षा देने के लिये उपयोगी है।।

है। यह हमें महाशय मामराज जी द्वारा प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

उत्तर—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा वहां के लोगों को शिक्षा दी जाये वह वहां के लोगों की प्राकृत और स्वाभाविक भाषा हो अर्थात् सब स्त्री पुरुष उसको बाहर भीतर बिना सोचे विचारे रात दिन बोलते चालते हों, क्योंकि उस भाषा के केवल अक्षराभ्यास हो जाने पर क्या बालक और युवा सब स्त्री पुरुष शीघ्र शब्द निकालने और पढ़ने लगेंगे। कारण इस का यह है कि बोली तो वही है जो माता पिता, भाई बन्धु और संगियों से सुनी सुनाई और बोली हुई है, केवल अक्षरों के सीखने और उनके जोड़ तोड़ में श्रम करना रह जायगा। परन्तु वह मातृभाषा आपस की बोल-चाल और लेख का निर्वाह मात्र ही न हो किन्तु उसमें आगे बढ़ने और विद्वान् बन्ने के लिये कविता और विद्या के विस्तृत मार्ग भी हों। अब रहे अक्षर उस मातृभाषा के ऐसे होने चाहिये जो सुलभ हों और उनमें सब प्रकार के शब्द लिखे जा सकें और पढ़ने में ज्यों के त्यों आवें और एक के लेख को दूसरा निर्भ्रम और शुद्ध पढ़ ले। रहा यह विचार करना कि इस देश की कौन सी प्राकृत भाषा है—यों तो इस आर्यावर्त में बंगाली, गुजराती, मरहटी आदि बहुतेरी भाषा जो क्रम से बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र आदि देशों में बोली जाती हैं, परन्तु हमारे पश्चिमोत्तर देश में मुख्य नागरी भाषा जिसे अब लोग हिन्दी कहने लगे हैं बोली चाली जाती और इसको छोड़ अवध, पंजाब और मारवाड़ आदि प्रदेशों में भी यही भाषा किसी किसी शब्द की उलट पुलट और ऊँचे-नीचे स्वरों के भेद से बोली जाती है और इसी लिये एक की बोल चाल को दूसरा भली भांति समझ लेता है। और यह मातृभाषा ऐसी सुगम है कि कहे प्रदेशों के अनन्तर और प्रदेशों के लोग भी बंगाली दक्षिणी आदि बिना पढ़े और सीखे समझ लेते हैं और केवल मेल मिलाप से ही स्पष्ट बोलने लगते हैं। यह तो इसकी सुगमता सरलता का थोड़ा सा वर्णन हुआ अब इसके पूरे होने का व्याख्यान सुनिये कि इसमें कैसी कैसी कविता सीधी सीधी बोल चाल में है कि बड़ी बड़ी प्रसिद्ध भाषाओं की कविता लगा नहीं खातीं। टुक सूर, तुलसी, केशव और बिहारी आदि कवियों की कविता पर ध्यान दीजिये कि कैसे कैसे अद्भुत अलंकार और गूढ़ आशय इस भाषा में बंधे और समाये है। गद्य भी इस ललित भाषा की बहुत रोचक है प्रेमसागर, राजनीति, शुकन्तला आदि ग्रन्थों के देखने से उसकी उत्तमता और उत्कृष्टता भलीभांति सिद्ध होती है।

गणित, भूगोल, इतिहास और वैद्यक आदि विद्याओं की अनगिनत

पुस्तकें बन गईं और प्रति दिन बनती जाती हैं निदान यह प्राकृत भाषा सर्वथा सबके पढ़ने और लिखने के योग्य है ।

अब रहे वह अक्षर कौन से हैं जिनमें इस भाषा और अन्य भाषा के शब्दों का पूरा पूरा निर्वाह हो सके और वह यथावत् लिखे पढ़े जायें और लिखने और पढ़ने वाला कहीं रुके और अटके नहीं ।

यह अनुपम और अपूर्व अक्षर संस्कृतभाषा के जो पृथिवी मात्र के सम्पूर्ण अक्षरों से उत्तम और सुन्दर हैं । सबसे बढ़कर उनमें यह बात है कि अक्षर अक्षर का रूप निराला है । पढ़ने लिखने में भ्रम कभी नाम को भी नहीं पड़ता और ऐसे सीधे और सुगम हैं कि दो चार दिन के अभ्यास से आ जाते हैं । यों तो संस्कृत भाषा के तेरसट अक्षर हैं जिनमें बाईस स्वर, तेंतीस व्यंजन, चार अयोगवाह और चार यम हैं[1] । परन्तु हमारी प्राकृत नागरी भाषा में बहुधा बारह स्वर, तेंतीस व्यंजन, दो अयोगवाह विसर्जनीय और अनुस्वार और एक यम सानुनासिक[1] अर्थात् सब अड़तालीस अक्षर काम आते हैं और इन्हीं से इस भाषा और अन्य शब्दों का यथोचित निर्वाह हो सकता है और इन मनोहर अक्षरों में सर्वोपरि यह गुण है कि इनमें घटा बढ़ा कर कुछ का कुछ नहीं बना सकते ।

मुसलमानों के इस देश में आने और हेल मेल से जो अरबी फारसी के शब्द नागरी भाषा में मिल गये हैं उसी को लोग उर्दू कहने लगे हैं, परन्तु यह उर्दू बहुधा दिल्ली लखनऊ आदि दो चार बड़े बड़े नगरों में जहां पहिले बादशाह लोग रहते थे बोली जाती है । सो उनमें भी फारसी पढ़े लिखे लोग, शेष सब स्त्री पुरुष वही अपनी मातृभाषा बोलते हैं । हमारी भाषा में आपस के मेल जोल से जो कोई अरबी फारसी का तथा अंगरेजी का कोई शब्द मिल गया और सब लोगों में प्रचार पा गया, उसका बोलना और लिखना कोई ऐसी बुराई की बात नहीं जिस से कुछ हानि हो । पर हां, बुराई और हानि की बात तो यह है कि लोगों के जी में जो यह बात समा रही है कि फारसी आरसी है उसके पढ़े लिखे विना मनुष्य को बोल चाल और शील ही नहीं सुधरता और सँवरता है इसलिये

---

[1] वर्णों का यह वर्णन वर्णोच्चारण-शिक्षा के अनुसार किया गया है । वस्तुतः सानुनासिक यम वर्ण नहीं है वह तो स्वरों का एक उच्चारण विशेष है । उसे द्योतित करने के लिये स्वर के ऊपर ँ ऐसा चिह्न किया जाता है । जो कि किसी स्वतन्त्र वर्ण का चिह्न नहीं है । यम स्वतंत्र वर्ण हैं ।

वह लोग फ़ारसी पढ़ पढ़ कर अपने लेख में निरे अरबी फारसी के शब्द कूट कूट कर भरते हैं और जहां तक हो सकता है अपनी भाषा के सीधे सीधे शब्दों की जगह ढूँडभाल कर अरबी फारसी के टेढ़े टेढ़े शब्द बोलते और लिखते हैं यहां तक कि इज़ाफ़त और तरकीब आदि भी अरबी फारसी ही की लाते हैं।

यह फारसी के नाम पर उधार खाने वाले अपनी बोल चाल में तो बड़े बड़े लुग़त ही अरबी फारसी के बोलते हैं जिनको साधारण लोग नहीं समझते और बहुधा कह देते हैं कि यह तेरी फारसी तो हमारी समझ में नहीं आती, ढ़बसिर कहें तो समझें। परन्तु उनका लेख जुलैखा बहार दानिश और माधोराम से कम नहीं होता जिसका समझना तो क्या और लोग मौज को भी नहीं पाते, फिर कहिये यह नाम की उर्दू जो सचमुच फारसी का घूंघट काढ़ रही है, लोग कैसे उसको सुगम सुलभ देख सकते हैं? कदापि नहीं॥

भला जब आदमी की सारी उमर अकेली उर्दू के लिए फारसी पढ़ते पढ़ते बीत गई तो आगे और क्या करेगा और वह फारसी भी कैसी जिसमें ऊपरी और मुंह देखी बात बनाना, लल्लो पत्तो, चापलूसी और रसिक बातों के सिवाय और कुछ न हो॥

इसका फल जो कुछ यहां के लोगों पर हुआ है उसको निश्चय चतुर मनुष्य जान्ते होंगे। कदाचित् यह उर्दू जिससे बहुत बड़ी हानि हुई और हो रही है सर्कारी दफ़्तरों में लिखी पढ़ी न जाती तो कभी प्रचार न पाती और जैसी अब लोग नौकरी के लालच से पढ़ते हैं, नाम भी न लेते। इस पर भी तो उर्दू जान्ने वाले नागरी जान्ने वालों का सर्वा करके सवां (सौवां) भाग भी नहीं। कारण इसका वही ठेठ बोल-चाल और अक्षरों की सुगमता का है। इस उर्दू भाषा का दफ्तरों में प्रचार होने से बड़ी भारी हानि तो यह है कि साधारण लोग अपने मुआमले और मुकद्दिमे के मध्ये की लिखत पढ़त सुनकर गूँगे बहरों के समान मुँह तकते रह जाते हैं बहुतेरा कान लगाते हैं, पर समझते नहीं, जो कहीं पढ़ने लिखने वाले ने किसी कारण और प्रयोजन से अपना और उसका सिर खपाया और सैकड़ों दृष्टान्त दिये तो जाकर कहीं औंधा सीधा मतलब समझे तो समझे, नहीं तो नहीं, हारकर जैसा कि किसी ने कहा वैसा मान लिया। जो पक्षपात को काम में न लावें तो वकील, मुख्तार इसकी साक्षी दे सकते हैं। साधारण लोगों के पास जब कोई सर्कारी काग़ज़ वा ख़त पत्र जाता है तो बेचारे उस

को लिये मारे मारे फिरते हैं। जो दैव मे फ़ारसी पढ़ा मिल गया तो मिल गया, नहीं तो दस दस पांच पांच कोस जाकर पढ़वाते हैं और वह भी खाली हाथ नहीं, किन्तु दे लेकर अपना काम साध लेते है। वह फ़रसी पढ़े जैसा रात दिन बोलते हैं वैसा भी नहीं लिखते। लिखने के समय निरी फारसी छौंकते हैं (मानो इनकी जन्म घुट्टी फ़ारसी ही है) और क्यों न फ़ारसी बघारें, इसी में तो उनकी बड़ी जीत है। बात बात में लोगों को मूँडते और ज़रा ज़रा से लिखने पढ़ने का बहुत कुछ मांग लेते हैं जो यहां की ठेठ बोल चाल में लिखें तो ओलट हो क्या रहे और किस मिष से लोगों को ठगें। निदान कहां तक लिखा जाय, इस उर्दू का दफ्तरी [में] प्रचार होने से बड़ी बड़ी बुराइयां और लोगों की हानि हुई और होती है। उदाहरण एक नहीं हजारों दे सकते हैं। इसलिये यह तीन काल में पढ़ने और दफ्तरों में प्रचार पाने योग्य नहीं।

और यह भाषा तो जो कुछ है सो है ही, परन्तु इसके अक्षर, जिनमें यह आजकल लिखी जाती है बहुत ही निषिद्ध है। उन्होंने रहा सहा लोगों का मठ मारा है।

इन फारसी अक्षरों की लिखत को पढ़ने वाले केवल अंधे की लाठी के समान टटोलते चलते हैं और जो कुछ पढ़ते हैं उसको प्रसंग से निकालते हैं और प्रसंग के विना कोई किसी के लेख को निर्भ्रम और ठीक नहीं पढ़ सकता। और दूसरी भाषा के शब्दों का लिखना पढ़ना तो मानो असम्भव ही है और किसी ने टूटा फूटा लिख भी लिया तो पढ़ने में कदापि शुद्ध नहीं आता, कुछ कुछ मुँह से निकल जाता है। बहुतेरे नागरी, संस्कृत और अंगरेजी के शब्द इनही अक्षरों के प्रताप से बिगड़ गये, जिसको सुनकर हँसी आती है। यह कुछ लिखने पढ़ने वालों का दोष नहीं है, किन्तु अक्षर ही ऐसे हैं कि फ़ारसी के अनन्तर और किसी भाषा के शब्द उनमें शुद्ध नहीं लिखे जा सक्ते। और जो सच पूछो तो फ़ारसी का भी निर्वाह यथावत् नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो साकिन्, मुतहर्रिक आदि का भेद और पढ़ने के समय और **अलिफ़, ऐन** और **ते, तोय** ا ع ط ت और से, **सीन स्वाद** ص ث س और हे,हे ہ ھ और **ज़ाल**, ज़े, **ज़्वाद, ज़ोय** ز ذ ض ظ का भेद लिखने के समय पूर्वस्मरण और लुग़त की क़िताब के विना स्पष्ट नहीं हो सकता॥

दूसरे इन अक्षरों में **अलिफ, ऐन, वाव, ये** ا ع و ی ये चार स्वर हैं, जिनमें से **ऐन** ع अरबी में हा आता है और **वाव ये** و ی, व्यञ्जन का भी

काम देते है और जेर, जबर, पेश ये ॣ ॢ ॣ चार स्वरों के संकेत और उन की मात्रा हैं जो बहुधा लगाई नहीं जाती। इनही स्वर और संकेतों से सारे स्वरों का खेंच तानकर उच्चारण करते हैं।

तीसरे इनकी बनावट और मिलावा भी बहुत भ्रमणीक है। जैसे **बे, पे, ते, से** ب پ ت ث और **जीम, चे,** हे, **खे,** ج چ ح خ और दाल, **जाल,** د ذ और रे, जे ر ز और सीन शीन س ش और स्वाद, ज्वाद ص ض और **तोय, जोय** ط ظ और **ऐन**, ग़ैन ع غ और **काफ़, गाफ़** ک گ बनावट और मिलावट में और फे, काफ़ ف ق और बे, पे, ते, से, **नून,** ये ثـ نـ یـ بـ پـ تـ की केवल बनावट में नुक्तों और शोशों के सिवाय कुछ अन्तर नहीं अर्थात् जब ये दूसरे अक्षरों से मिलाये जाते हैं तब सब का रूप एक सा दिखाई देता है, जो चाहो सो पढ़ लो। यदि पढ़ने वाले के भाग्य से नस्तालीक ख़त (जिसमें पूरे पूरे अक्षर और नुक्ते और शोशे लगे हुए होते हैं) हाथ का लिखा हुआ वा छपा हुआ तो उसने पढ़ लिया, नहीं तो माथा पकड़ कर रह गया, परंतु हरकात के बिना उच्चारण तब भी ठीक न होगा॥

इस नस्तालीक ख़त में प्रायः पुस्तकें लिखी जाती है और वह मनमानी घसीट जिसमें रात दिन लोग चिट्ठी, पत्री आदि निज के और सर्कारी काम करते हैं, उसका पढ़ना अलबत्तह कुछ काम रखता है। ऐसे वैसे का काम नहीं जो पढ़ सके, बैठा सिर धुना करता है। उसके बांचने में अभ्यास करने के लिये लोग पढ़ने पढ़ाने से भी अधिक श्रम करते हैं। तब भी यह लिखत बहुत सोच विचार और पूर्वापर के सम्बन्ध से जों तों कर पढ़ने में आती है और यथार्थ में वह अक्षर और लिखित तो ऐसी नहीं कि जिसको कोई पढ़ सके, केवल पढ़ने वाले के अभ्यास की बात है। ऐसी लिखत को पढ़ कर सुनाने के लिए लोग पहले से देखभाल रखते हैं और फिर भी जो शब्द पढ़ने में नहीं आते उनको जगह और का और सुना देते हैं। इन अक्षरों में जब फ़ारसी ही की यह दुर्दशा है तो और भाषा की तो क्या कथा, जो लिखने में ही नहीं आती। यद्यपि फारसी वालों ने यहां की बोल चाल के लिये **टे, डाल,** ड़े ٹ ڈ ڑ नये अक्षर घड़े तो भी यहां की भाषा का यथोचित निर्वाह नहीं हो सकता। इस लिये उन्होंने बहुतेरे यहां की बोली के शब्दों को अपने ढंग पर बना लिया। जैसे ब्राह्मण को बिरहमन और दक्षिण को दकन आदि। निदान इस शिकस्त ख़त में ही वही शब्द पढ़ने में आते हैं जो ज़बान पर चढ़े रहते हैं और उनमें भी जो बहुधा

एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं दुब्धा में डालते हैं और जहां इतर भाषा का शब्द आया और मुंह से कुछ का कुछ निकला. देखो जैसे नांव, गांव, ठांव कभी ठीक नहीं पढ़े जाते हैं ॥

निदान इन फारसी अक्षरों और उनकी लिखत की कहां तक बुराइयां लिखी जायं, उनसे इस देश के लोगों की बड़ी भारी हानि है। नित नये जाल बनते हैं, रात दिन लोग धोके खाते हैं। जरा जरा से लिखवाने पढ़वाने के लिये गिड़गिड़ाते फिरते हैं। सर नामह उठवाई और कलम पकड़वाई के लिये नित उठ लुटते हैं। पृथिवी भर के लोगों की यही परिपाटी है कि जहां बालक पांच सात वर्ष का हुआ और उन्होंने उसको पहिले मातृभाषा लिखानी पढ़ानी आरम्भ की और जब वह उसमें प्रवीण हो गया और गणित, भूगोल इतिहास आदि विद्या सीख चुका तब उस की रुचि के अनुसार इतर भाषा और विद्या सिखाते हैं। यहां कुछ काल से एक निराली ही चाल पड़ गई है अर्थात् जब तक मां बाप की गोद में खेलता और तुतलाता रहा तब तक तो मातृभाषा सीखता रहा और जब पढ़ने लिखने के योग्य हुआ तब ही मुल्ला और मियां जी को सौंप दिया गया और यह गीत कि

करीमा बबख्शाय बर हाल मा। कि हस्तम असीरे कमंद्रे हवा ॥

गाने लगा और यह राग केवल जीभ तोड़ने और गला फाड़ने के लिये होती है, क्योंकि वह अवस्था तो ऐसी है ही नहीं कि दूसरी भाषा सीख सकें और उसके भार को उठा सकें, परवश विचारे शिथिल और मन्द होकर अधम रह जाते हैं। न अपनी भाषा जैसी चाहिये आई, न दूसरी जो मारपीट करके। बहुत हुआ तो दोनों भाषा का सार यह याद रहा कि

अय अकरीम बख़शीश कर ऊपर हाल हमारे के।
कि हूं मैं कैदी हवा और हविस का ॥

बस यही मुंशी लोगों की सारी ऊमर की मेहनत का निचोड़ है, जिसको उन्होंने अदालतों और दफ्तरों में फैला रक्खा है और केवल इतनी ही करतूत पर आपे को बड़ा मान्ते हैं और जान्ते हैं कि इल्म है तो फारसी और सदा घमंड से यहपढ़ते हैं कि--

क़लम गोयद कि मन शाहे जहानम। कलम कश रा बदौलत मे रसानम ॥

और कौतुक यह कि जरा जरा से लड़के छातीपरहाथ रख रसिक शेर पढ़ते हैं और ठंडी सांसे लेते हैं और आपें को संवारने और वेश बनाने में वेश्या को मात करते हैं। विचार करने का स्थान है कि जिस भाषा

का ऐसा बुरा गुण हो, वह क्या शिक्षा देने और प्रचार पाने योग्य है ? कभी नहीं ।।

निस्संदेह यहां तक हो सकता है कि जो भाषा ऐसी क्लेश साध्य हो और उसमें निरे अवगुण भरे हों उसको लोग पढ़ते पढ़ाते ही क्यों हैं ? तो इसका समाधान यह है कि न उसमें सर्कारी काम काज होते, न लोग उसको अंगीकार करते । कदाचित् प्रतीत न हो तो देख लीजिए, जो लोग अपनी लड़कियों की शिक्षा चाहते हैं वह सब नागरी पढ़वाते हैं । और कोई उनसे कहे भी कि अजी आप तो उर्दू फारसी जानते हैं, लड़कियों को क्यों नहीं सिखाते तो तुरन्त उसके उत्तर में यही कहते हैं कि उनको कौन सी नौकरी चाकरी करनी रह गई । और जी में यह भी जान्ते हैं कि उर्दू, फारसी पढ़कर लड़कों की क्या दशा हुई जो लड़कियों की होगी । वास्तव में पेट ऐसा ही है जो कुछ नहीं करना है, उसके लिये करना पड़ता है । इससे स्पष्ट है कि उर्दू, फारसी वही लोग पढ़ते पढ़ाते हैं जो अदालतों से संबंध और प्रयोजन रखते हैं । शेष सब गुणग्राही पहले अपनी मातृभाषा सीखते हैं । देखिये इस देश में हजारों चटशाला और पाठशाला हैं जिनमें लाखों लड़के नागरी पढ़ते हैं । यदि अपनी मातृभाषा में रुचि न होती तो कौन पढ़ता ।।

इस लेख से हमारा यह प्रयोजन नहीं है कि अपनी मातृभाषा के सिवा कोई कुछ न पढ़े, किन्तु बड़ा मनोरथ यह है कि प्राथमिक शिक्षा हमारी मुख्य नागरी में हो, तदनन्तर जिसकी जो रूचि हो उसके अनुसार संस्कृत अंगरेजी और अरबी आदि पढ़े, और जब तक अपनी भाषा में निपुण न हो ले तब तक दूसरी भाषा में शिक्षा न दी जाय । इस नियम के बिना जो कुछ हानि हुई, उसकी साक्षी बहुधा फारसी और अंगरेजी वालों की बोल चाल और उनके अनुवाद दे रहे हैं । हां रहा, इसका वर्त्ताव, वह तबही हो सकता है जब सर्कारी दफ्तरों में नागरी का प्रचार हो । निदान कहां तक वर्णन किया जाय, नागरी भाषा और उसके अक्षरों से जो कुछ प्रजा का लाभ है उसको सब जान्ते हैं । यहां तक कि विदेशी लोग भी सराहते और उसके पढ़ने में उद्यत हैं । तथा च अभी इंगलिस्तान के कमिश्नरों ने सिविल सर्विस की परीक्षा में उर्दू की जगह नागरी को आवश्य[क] और प्रधान ठहराया है । इसलिये आशा है कि हमारी प्रार्थना भी अवश्य सफल होगी ।।

अलमिति

आर्यसमाज मेरठ के एक सभासद ने लिखा मिति माघ वदि १२ रविवार सम्वत् १९३९ विक्र०

—:०:—

कानपुर निवासियों द्वारा प्रेषित
निवेदन-पत्र[1]

अशेषगुण सम्पन्न महामान्य महामहिम श्रील श्रीयुक्त सरऐल्फ्रेड कामिन्स लायक के, सी, बी, सी, आई, ई पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध के लफ्टिनेण्टगवर्नर महाशय प्रबल प्रतापेषु।

सविनय निवेदनमिदम्।

हम रईस प्रार्थी जिला कानपुर के आप से विनय करते हैं कि हम लोगों की दीन दुर्दशा पर ध्यान दीजिये ! न्यायशीला सर्कार को यह इच्छा है कि प्रजा को कष्ट किसी प्रकार से न हो। हम लोगों को मूर्ख न रहने देना और हमारी साधारण भाषा में शिक्षा देना यही न्यायशीला सरकार अंग्रेज का मत चला आया है। हमलोगों को बहुत आनन्द हुवा कि जब सर्कार से शिक्षा कमीशन के बैठने की आज्ञा हुई। यह, सोचकर कि अब हमलोगों की दीन दशा पर शिक्षा कमीशन अपना मत आप तक यथोचित प्रकाश करेगी। पर बड़े शोक की बात है हमलोगों के विषय में अर्थात् जो जो हम आपके प्रार्थियों ने पुकारा था कुछ ध्यान न दिया गया। यहां पर हिन्दी उर्दू की जगह याने देवनागरी अक्षर फ़ारसी अक्षरों की जगह सब सरकार के दफ्तरों में हो जाते, यही हमलोगों की पुकार थी। जो जो बुराइयां उर्दू के जारी रहने से होती जाती है उनके वर्णन करने का आपके सामने जो खुद भली भांति जानते हैं, कुछ प्रयोजन न था। पर हमलोगों को उर्दू से बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। इससे आपसे, जो हमारे पिता सदृश हैं, संक्षेप में कहते हैं।

---

[1] यह निवेदनपत्र नीले रंग के फुलस्केप कागज पर ४ पृष्ठों में ग्रेट टाइप में छपा है। यह श्री महाशय मामराजजी द्वारा हमें प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

(१) १८५४ ई० के डिस्पैच में इस बात पर बड़ा जोर दिया गया था कि लोगों को साधारण शिक्षा उनकी अपनी बोली में देनी चाहियें। उर्दू कि जिसमें आज तक उत्तर हिन्दुस्तान में शिक्षा दी जाती है लोगों की बोली नहीं है। हमारी मातृभाषा और देशी बोली जो हमारे घरों में स्त्री पुरुष लड़के बाले नित्य प्रति बोलते चालते हैं, हिन्दी है, किन्तु उर्दू नहीं है। हम लोगों को हमारी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है। हमारी प्रथम शिक्षा हिन्दी ही के द्वारा उचित है और सर्व साधारण मनुष्यों में हिन्दी ही के द्वारा शिक्षा फैल सकती है।

(२) हिन्दी याने जो हम लोगों की बोली है और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है बंगाली गुजराती मरहटी की तरह संस्कृत की एक शाखा है। पर बेंगाल गुजरात और महाराष्ट्र देशों में उनकी प्रत्येक भाषा दफ्तरों में प्रचलित है और सर्वसाधारण को शिक्षा इन्हीं में दी जाती है। इस लिये हम आप से प्रार्थना करते हैं कि उसी तरह यहां पर भी दफ्तरों में लिखा पढ़ी होवे।

(३) शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट से यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि हिन्दी के द्वारा प्रथम शिक्षा चाहने वाले अधिक मनुष्य हैं, क्योंकि दो लाख मनुष्यों के अनुमान से **दो सौ मेमोरियल** इसी प्रयोजन से शिक्षा कमीशन की सेवा में पहुंचे। और उर्दू को केवल लाचार होकर इस कारण सीखते हैं कि देश के दफ्तरों में उर्दू लिखी पढ़ी जाती है और उर्दू का जो कुछ प्रचार हुआ वह तभी से हुआ है जब से यह दफ्तरों की बोली ठहराई गयी है।

(४) हिन्दी में बहुत सुगम शब्द जो सबको समझ पड़ते हैं, होते हैं और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है। उर्दू में आधे से अधिक फारसी और अरबी के शब्द बोले जाते हैं, जो सबकी समझ में नहीं आते। केवल फारसी और अरबी पढ़े मनुष्य समझते हैं और यह फारसी और अरबी अक्षरों में लिखी जाती है।

(५) मुसलमानों के राज्य के पहिले यहां पर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में काम होता था।

(६) यद्यपि मुसलमान और सर्कार अंग्रेजी ने उर्दू को दफ्तरों की भाषा बनाकर इसकी पाठशाला बिठा कर इसके फैलाने के बड़े बड़े उपाय किये तथापि सर्वसाधारण मनुष्यों ने इसको अङ्गीकार न किया और न करना चाहते हैं। केवल बड़े बड़े नगरों में कुछ लोग उर्दू, बोलते हैं शेष

सब हिन्दू मुसल्मान गावों और कसबों में हिन्दी ही बोलते चालते हैं। जब कभी कोई सर्कारी कागज उर्दू में लिखा हुआ उनके पास पहुंचता है तो उसके पढ़ाने को गांव गांव भटकते फिरते हैं। हिन्दी में यह कष्ट कभी नहीं देखने में आ सकता, क्योंकि हर एक गांव और कसबे में एक दो आदमी हिन्दी पढ़े लिखे होते ही हैं।

(७) शिक्षा विषयक डैरक्टर साहब की रिपोर्ट से और मर्दुमशुमारी की किताबों से यह साफ निश्चय हो जायेगा कि अब भी लाखों हिन्दू मुसल्मान सहस्रों ईसाई हिन्दी पढ़े हुए हैं। बड़े बड़े नगरों में उर्दू पढ़े केवल वही मनुष्य हैं जो कचहरियों में नौकरी चाहते हैं या जिनका काम कचहरी में पड़ता है।

(८) ईसाई लोगों की पुस्तकें इन्हीं देवनागरी अक्षरों में उपदेश के लिये बनी हैं। इससे साफ प्रकाश पाया जाता है कि हिन्दी जानने वाले लोग बहुत हैं।

(९) प्रेसिडेण्ट शिक्षा कमिशन श्रीमान् हण्टर साहब ने लाहौर में अपनी वक्तृता में कहा था कि मेमोरियल अधिकतर हिन्दी के लिये दिये गये हैं और विपक्ष में बहुत कम। और जिन्होंने हिन्दी के वास्ते दिया है वह सर्वसाधारण लोग हैं और जिन्होंने उर्दू के लिये दिया है वह सर्कारी नौकर हैं। और जिनको सर्कार अमला क्लास कहती है। इस से भी साफ जाहिर है कि हम सब लोग हिन्दी ही चाहते हैं।

(१०) मुफस्मिल में जो तहसीली और हलका बन्दी पाठशाला जारी हैं उनमें अधिकतर हिन्दी ही पढ़ाई और लिखाई जाती है। इस विषय में इंस्पेक्टरों और डैरेक्टर स्कूल से पूछ लिया जाय और नार्मल स्कूलों में भी ज्यादा हिन्दी में ही शिक्षा दी जाती है। इसलिये आप से प्रार्थना करते हैं कि सर्कार का बड़ा लाभ होगा यदि दफ्तरों में हिन्दी जारी करने की आज्ञा दी जावे, नहीं तो इतना रुपया जो इन मदर्सों में खर्च होता है व्यर्थ जाता है।

(११) जो सर्कार यह चाहती है कि सर्कार की शिक्षा सर्वसाधारण मनुष्यों में फैल जाय, सर्कार को प्रजा सभी लिखी पढ़ी हो जावे, गांव का गँवार कचहरी का कागज ऐसा ही पढ़ ले जैसा अब कचहरी का कागज कचहरी वाला पढ़ सकता है तो सर्कार का यह प्रयोजन हिन्दी को सर्वसाधारण के लिये प्रथम शिक्षा बनाकर अंग्रेजी के साथ इसको दूसरी भाषा

नियत करने में सिद्ध हो सकता है। साधारण शिक्षा का प्रचार उर्दू के द्वारा कभी नहीं हो सकता।

(१२) दफ्तरों में फारसी और अरबी अक्षरों के स्थान में देवनागरी अक्षर कर देने को जितनी आवश्यकता समझी गई है उसमें बड़ी आवश्यकता यह है कि जब दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार हो जायेगा, सर्वसाधारण में शिक्षा फैल जाने का आप ही एक कारण हो जायगा। और दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार बड़ो सुगमता के साथ हो सक्ता है। वहो नौकर, वही परवाना, वही रूबकार हिन्दी से लिखे हुए को छः महिने का समय पाकर सीख सक्ता है, क्योंकि देवनागरी अक्षर बड़े सुगम हैं और बड़ी जल्दी आ सक्ते हैं।

(१३) हम लोग आपसे प्रार्थना करते हैं कि सेण्ट्रल प्राविन्सेज अर्थात् मध्यप्रदेश में और बिहार में जहां कि अभी हाल ही में हिन्दी जारी हुई है और जिला तराई और राज्य रीवां वहां भो हिन्दी का प्रचार कर दिया गया है आप सब रिपोर्ट इस संक्षेप से देखें।

(१४) देवनागरो अक्षर ऐसे सुगम हैं कि हिन्दू मुसलमान ईसाई तीन दिन में ४८ अक्षर और १२ मात्रा सीख कर लिखने पढ़ने लगते हैं और ६ महिने में तो इतना अभ्यास हो सक्ता है जैसा अब कचहरी वालों को उर्दू अक्षरों के लिखने पढ़ने में छः वर्ष लगते हैं।

(१५) सब हिन्दू मुसलमान अपनी बही खाता देवनागरी व उसी के अदल-बदल के अक्षरों में लिखते हैं।

(१६) पटवारियों के कागज अधिकतर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में लिखे जाते हैं।

(१७) उर्दू अक्षरों में बड़े बड़े दोष हैं। अलग अलग अक्षरों का जो उच्चारण होता है वह उनको शब्द में मिलाने से और का और हो जाता है। लिखा कुछ जाता और पढ़ा कुछ जाता है। एक विंदु के छोड़ने वा जोड़ देने से इधर का जगत् उधर हो जाता है। अब उर्दू में जाल तो बड़ी सुगमता से होता है और सर्कार कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकती। इस लिये आप से प्रार्थना करते हैं कि जड़ ही काट डालिये ताकि फिर पेड़ अर्थात् उर्दू ही नहीं रहेगी तब जाल काहे को होगा और सर्कार का एक बड़ा भारी उपकार होगा। उर्दू अक्षरों में बहुतों का उच्चारण एकसा और सूरत भिन्न भिन्न होती है।

(१८) उर्दू अक्षरों में तीन मात्रा और ३३ व्यंजन हैं। देवनागरी अक्षरों में १२ मात्र और ३३ व्यंजन हैं, मात्राओं म तीन भेद ह्रस्व, दीर्घ,प्लुत। यही कारण है कि अरबी तुर्की अंग्रेजी किसी बोली का शब्द हो जैसा उच्चारण होता है वैसा ही देवनागरी में लिखा जाता है, तैसा ही पढ़ा जाता है। उर्दू में एक शब्द कई कई प्रकार पढ़ा जाता है। आप से प्रार्थना करते हैं कि नकशा देखिये, जिस्में यह थोड़ा सा प्रकाश किया गया है कि किस तरह उर्दू कई तरह से पढ़ी लिखी जाती है।

शब्द	उर्दू में कितने तरह से पढ़ा जा सकता है।
१–निरंजन	निरज्जन, बिरहमन
२–प्यारेलाल	प्यारेलाल, बिहारीलाल
३–वच्चन	थम्मन, भम्मन, वच्चन
४–साहेब दर्या पार होंगे किश्ती मौजूद रहे	कसबी मौजूद रहै।
५–नवात सुफेद	बनात सुफेद।
६–मुरैथा	मुड़ैना, मुरनिया, मुरंथा, मुरंतिया, मुरटा, मुड़ना, मरहटा।
७–आलू बुखारा	उल्लू विचारा
८–वेनी ने मारा	नवी ने मारा, तैंने मारा।
९–पारवती	नारायनी
१०–तमस्सुक	नमक, तमक।
११–होली फुकवा दो	होली फिकवा दो
१२–एक साहब 'छतमरा पट्टी दनका' को	'जमराही डंका' पढ़ते थे
१३–और 'खुगौर कुहनह' को	चुकर घंट

(१९) जब शिक्षा कमीशन इलाहबाद में मयोहाल में बैठी थी तब प्रेसीडेन्ट ओनेरेबिल डाक्टर हंटर साहेब को कहना पड़ा था कि हिन्दी को पश्चिमोत्तर प्रदेश में बड़ी चाह है।

(२०) उसी समय ओनेरेबिल जस्टिस् सय्यद महमूद ने भी कहा था कि यद्यपि मैं मुसल्मान हूं लेकिन यहां के लोगों की राय प्रकाश करता हूं वह सब लोग यही चाहते हैं कि हिन्दी सब जगह प्रचलित होवे और उर्दू जो टेढी-मेढी लिखी जाती है मेरी राय में न रहनी चाहिये।

(२१) आपसे प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी के जारी होने के लिये कमिशनर मेजिस्ट्रेट और सेशन्स जजों की राय ली जावे।

(२२) शिक्षा कमीशन के साम्हने लगभग ४० आदमियों ने पञ्जाब से शिक्षा विषय साक्षी दी थी और उसमें से आधे से ज्यादह पुरुषों ने उर्दू के स्थान में हिन्दी प्रचलित करने के लिये जोर दिया था, विशेष कर पञ्जाब के लार्ड पादरी ने भी इस पर अच्छी तरह साक्षी दी थी।

(२३) अब आप से हम लोगों की यही प्रार्थना है कि आप ऊपर की लिखी हुई बातों और शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करते समय हिन्दी पर पूरा पूरा ध्यान दीजिये और हिन्दी और देवनागरी अक्षरों को कचहरियों में वर्तने की आज्ञा दे दीजिये। और हम सब लोग आप की प्रजा आपके चिरंजीवी होने को विनय करते हैं।

—:o:—

षष्ठ परिशिष्ट

ऋषि दयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन

[श्री महाशय मामराज जी आर्य, (खतौली जि० मुजफ्फर नगर) द्वारा संकलित]

ऋषि दयानन्द के पत्र विज्ञापन के पृष्ठ ७०० तथा जीवन-चरितों से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द के चित्र (फोटो) कई स्थानों पर लिये गये थे। हमारे २० जुलाई सन १९२६ से फरवरी १९५३ तक के लगभग २७ वर्ष के अन्वेषण में ऋषि दयानन्द के जो वास्तविक (असली) चित्र हमारी दृष्टि में आये, उन का वर्णन नीचे किया जाता है[1]—

१—छाती के नीचे वस्त्र लपेटे हुए आसन से बैठे—ऋषि दयानन्द

---

[1] नीचे वर्णित चित्रों में से कुछ चित्र प्राप्त किये हैं, कुछ को प्राप्त करने के लिये यत्न हो रहा है। इन सब असली चित्रों को और कुछ मूलपत्र जिनके फोटो कापी हमारे पास है उनको तथा कुछ अन्य पत्रों को जिनके फोटो प्राप्त करने का यत्न हो रहा है एक पृथक् संग्रह में छापेंगे। सम्पा०।

संवत् १९२४ (=सन् १८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५–४० के मध्य की प्रतीत होती है, और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। मुझे यह चित्र सन् १९२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए मेरठ से मिला था।

इसकी प्रतिकृति 'आर्यगजट' (उर्दू लाहौर) सं० १९८३ के ऋष्यङ्क में प्रकाशित हुई थी। श्रावणी सं० २०१० के 'वेदप्रकाश' देहली के 'श्रीमद्दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह'[1] नामक विशेषाङ्क में भी मैंने ऋषि के अन्य ५ असली चित्रों के साथ छपवा दिया है।

२—सर्वस्व त्यागी दण्डधारी खड़े हुए—ऋषि दयानन्द का यह चित्र विक्रम सं० १९२४ (=सन् १८६७ ई०) में हरिद्वार के कुम्भ (जहां कुटिया पर पाखण्ड-खण्डनी पताका लगी हुई थी) के अन्तिम समय में लिया गया था, ऐसा पुराने आर्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ है। इसी चित्र के आधार पर चित्रशाला पूना द्वारा एक बड़ा चित्र छपा था। यह मैंने २५ दिसम्बर १९२६ को फर्रुखाबाद के महाशय भुन्नीलाल जी आर्य (वृद्ध) के पास देखा था। इसकी रंगीन बड़ी पूना की छपी हुई प्रति मेरे पास भी है। इसी प्रकार का चित्र बा० रामविलास शारदा ने "आर्य धर्मेन्द्र जीवन" में प्रकाशित किया था। आर्य समाज लखनऊ के इतिहास में भी ऐसा चित्र लगा हुआ है।

इसी प्रकार का छोटा सा पुराना असली प्लेट से उतारा गया चित्र २१ सितम्बर १९२६ को मैंने मेरठ सदर में बाबू आनन्दीलाल जी मास्टर (मन्त्री आर्यसमाज सन् १८८०) के पुत्र बाबू जीवनलाल ज के पास देखा

---

[1] इसी विशेषाङ्क में श्री० स्वामी विरजानन्द सरस्वती का भी एक चित्र प्रकाशित हुआ है। इसे मेरे जोधपुर निवासी मित्र प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ठाकुर जगदीशसिंह जी गहलोत (क्यूरेटर म्यूजियम जयपुर) ने अलवर राज्य के प्राचीन चित्र संग्रह से प्राप्त किया था। मूल चित्र पर श्री स्वा० विरजानन्द सरस्वती का नाम अङ्कित नहीं है। अलवर नरेश के वहां श्री विरजानन्द जी कुछ समय रहे थे, अतः उन्होंने इस चित्र को श्री स्वा० विरजानन्द जी का समझा है। वस्तुतः यह चित्र उनका नहीं है। इसमें 'यज्ञोपवीत' का चिह्न अत्यन्त स्पष्ट है। सन्यासी शिखा सूत्र से विहीन होते हैं। चित्र को गहराईसेदेखने पर विदित होता है कि यह जटा जूट लम्बी डाढ़ी वाले यज्ञोपवीतधारी किसी ब्रह्मचारी का है। सन्यासी का नहीं। सम्पा०

था। उसे वे वास्तविक बताते थे। मांगने पर उन्होंने वह चित्र नहीं दिया। तत्पश्चात् जीवनलाल जी के पुत्र से सन् १९४५ ई० में मैंने उसे प्राप्त किया[1]। इसी मेरठ वाले छोटे चित्र जैसा हो एक पुराना चित्र श्री पं० शीतलाप्रसाद जी पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास सुरक्षित था। उसे मैंने १३ जनवरी सन् १९२७ को देखा था।

३—**समाधि दशा में कौपीन मात्र धारण किये**—यह चित्र लगभग सं० १९२५ (= सन् १८६८) का है। इसमें ऋषि दयानन्द चौकी पर समाधि मुद्रा में कौपीनमात्रधारी नग्न बैठे हुए हैं, पास में दण्ड रक्खा हुआ है। छोटे बालों की डाढ़ी पर भस्म लगी हुई है। यह चित्र फर्रुखाबाद में गंगा के तट पर लाला श्यामलाल सिद्धगोपाल जगन्नाथ की बड़ी विश्रान्त पर लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। यह चित्र मुझे ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए ३१ जनवरी १९२७ को रायबहादुर लाला दुर्गाप्रसाद* के पुत्र बा० चन्द्रप्रकाश जी से (उनके चित्रों वाली पुरानी एलबम में से) मिला था।

४—**कुरसी पर वस्त्र पहन कर बैठे हुए**—यह चित्र आश्विन सं० १९३१ (=अक्टूबर सन् १८७४) में श्रीमान् कृष्णराव जी गोलबल्कर एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर जबलपुर ने ऋषि दयानन्द को अपने स्थान पर ले जाकर और अपने यहां से वस्त्र पहना तथा कुरसी पर बैठाकर खिंचवाया था।❀ इस चित्र में पास में ठेबुल के सहारे मुड़ी मूठ की बेंत रक्खी है। इस चित्र को श्री देवेन्द्र बाबू ने स्वयं वहां जाकर देखा था। देखो उनके द्वारा संकलित और आर्य साहित्यमण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित जीवन चरित पृष्ठ २८१। इस चित्र का वास्तविक कांच का प्लेट उनके पुत्र

---

[1] इस चित्र को मैंने 'मुरारी फाइन आर्टप्रेस दिल्ली को १५ मार्च १९५३ को अनेक चित्रों के साथ 'एलबम' बनाने के लिये दिया है। [यह 'एलबम' बनकर श्री मामराज जी को प्राप्त हुआ वा नहीं, हमें ज्ञात नहीं। सम्पा०]

* ये ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। ऋषि दयानन्द का इनके साथ बराबर पत्रव्यवहार रहता था। इस पत्र और विज्ञापन संग्रह में इनके नाम लिखे हुए ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र छपे हैं।

❀गोलवलकर जी के जिस स्थान पर यह चित्र खींचा गया था, उसे मैंने ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा चित्रों का अनुसंधान करते हुए सन् १९४५ में जबलपुर जाकर देखा था।

मनोहरकृष्ण गोलवल्कर ने आर्य समाज जबलपुर को सौंप दिया है। उसी प्लेट से उतारा हुआ चित्र मैंने ३० जनवरी १९४४ को बा० दीनानाथ चढ्ढा (इछरा–लाहौर निवासी) जबलपुर वालों से रतनपुर (महा कोशल की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी) जि० बिलासपुर सी. पी. से विष्णु महायज्ञ तथा हिन्दू महासभा के अधिवेशन के अवसर पर प्राप्त किया था। इसी चित्र से बना हुआ चित्र 'दयानन्द स्मृतिग्रन्थ' में वैदिक यन्त्रालय अजमेर ने लगाया है।

५—राजकोट (सौराष्ट्र) में उतारा गया—ऋषि दयानन्द का एक चित्र पौष शुक्ला ५ मंगलवार सं० १९३१ (=१२ जनवरी १८७५) को राजकोट (सौराष्ट्र) में लिया गया था। देखो श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३२१। यह हमारे देखने में नहीं आया।

६—कुरसी पर बैठे हुए सामने के भाग का—यह चित्र सं० १९३१ (=सन् १८७५) में गिरगांव बम्बई में उतारा गया था। इसमें ऋषि दयानन्द कपड़े पहने हुए कुरसी पर बैठे हैं, सिर पर साफा बंधा हुआ है और साथ में मुड़ी हुई बेंत भी है। इसे श्री स्वा० सत्यानन्द जी ने बम्बई से खोजा था। इस चित्र के फट जाने से पैर का कुछ भाग नष्ट हो गया है। इसी चित्र से श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने ब्लाक तैयार कराकर श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश के प्रथम संस्करण में लगवाया था। यह पुस्तक लाहौर के दयानन्द कालेज अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में थी। वहां से श्री प० भगवद्दत्तजी की कोठी सी ब्लाक नं० ९ माडल टाऊन में लाई गई और देश विभाजन कालमें वहीं नष्ट हो गई।

७—पगड़ी बांधे, वस्त्र पहने, कुरसी पर बैठे हुए—यह चित्र सं० १९३२ (सन् १८७५) में दूसरी वार बम्बई गमन के अवसर पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने तैयार किया था। इस का उल्लेख श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३३६ में मिलता है। हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य के प्रबन्धकर्त्ता थे (रकम उड़ा लेने के कारण स्वामी जी ने उन्हें हटा दिया तो वे विद्रोही बन गये)। इस चित्र में ऋषि दयानन्द एक ओर मुंह किये पगड़ी आदि वस्त्र धारण किये हुए कुरसी पर बैठे हैं। इस से दूसरा चित्र बनाकर श्री देवेन्द्र बाबू ने अपने 'दयानन्द चरित' (संक्षिप्त जी० च०) में जो जालन्धर से सन् १९१२ में छपा था, लगाया था। उसी बम्बई वाले

चित्र से अमरीका की "वाटर बरी कम्पनी' ने 'वस्ट' (छाती तक का) चित्र टीन पर छपवाया था। उस 'वस्ट' चित्र को डा० गोकुलचन्द्र नारङ्ग (लाहौर) ने सन् १९१० के लगभग अपनी छोटी अंग्रेजी पुस्तक 'लूथर आफ इण्डिया' [स्वामी जी का जी० च०] में लगाया था। इसी चित्र का 'वस्ट' चित्र बहुत सुन्दर छोटा गोल आकार का लन्दन का बना हुआ है। इसे मैंने बरेली के साहुकारे मोहल्ले वाले कुंवर जी गंगाचरण जी के पास २८ नवम्बर १९२६ को देखा था। उनका कहना था कि इसे हमारे पिता कुंवर हरचरण जी ने लन्दन से मंगवाया था। इनके यहां ऋषि दयानन्द के कुछ पत्र भी थे, परन्तु अभी तक मिल नहीं सके। इसी चित्र की प्रतिकृति लाला लाजपतराय जी ने अपना 'दि आर्य समाज' नामक अंग्रेजी पुस्तक [सन् १९१४] में लगाई थी। यह पुस्तक भी लन्दन में छपी थी। इसकी एक प्रति मेरे पास सुरक्षित है।

८—पगड़ी बांधे, बैठे हुए, सामने पुस्तक खुली हुई—इस चित्र में ऋषि दयानन्द फुन्दे वाली पगड़ी बांधे हुए बैठे हैं, सामने पुस्तक खुली हुई है और चांदी की मूठ वाला दण्डा पास में रक्खा है। अतिसार रोग के कारण शरीर कुछ दुर्बल हो रहा है यह सं० १९३६ (=सन् १८७९) में लिया गया था। इसका छोटा सा चित्र महात्मा हंसराज जी ने रा० ब० संसारचन्द्र जी से प्राप्त करके श्री पं० भगवद्दत्त जी को दिया था, उसी से उन्होंने बड़ा चित्र बनवा कर दयानन्द कालेज के लालचन्द्र पुस्तकालय में लगवाया था। इसी का बड़ा चित्र पूने का छपा हुआ पत्रों का अन्वेषण करते हुए ७ जनवरी १९२७ को बा० रामचन्द्र जी (पुत्र–बा० सूर्यप्रसाद जी) मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद वालों के यहां से मिला था। यह चित्र श्री पं० भगवद्दत्त के संग्रह के साथ लाहौर में नष्ट हो गया।

९—समाधि-मुद्रा में—यह चित्र सं० १९३६ (=१८७९) में मेरठ में खींचा गया था। इसकी प्रतिलिपि महात्मा मुंशीराम जी (पश्चात्–श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी) कृत कल्याण-मार्ग का पथिक पुस्तक में लगी है। इसकी एक प्रति मुझे पत्रों का अनुसंधान करते हुए ८ मार्च १९२७ को ऋषि भक्त रा० ब० बाबू छेदीलाल (पूर्व–ठेकेदार कमसरयट मेरठ) कानपुर वालों के भतीजे बा० जगतनारायण जी ने दूसरे चित्रों (रमा बाई, करनल आल्काट, मेडम ब्लेवेस्तकी) के साथ पुरानी एलबम में से निकाल कर दिया था।

इसकी एक छोटी सी प्रति ठाकुर नन्दकिशोरसिंह मैंबर कौंसिल राज्य जयपुर (जिनके पास ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र सुरक्षित थे) से वहां

जाने पर ता० ६ दिसम्बर १९३३ को प्राप्त हुई। इसी चित्र पर से सब बड़े छोटे समाधिवाले चित्र आगे बने।

सम्भवतः इसी चित्र का उल्लेख ऋषि दयानन्द ने १७ जनवरी १८७९ को श्याम जी कृष्ण वर्मा को मेरठ से लिखे पत्र-संख्या ९४२ में किया है। देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या १८३ की अन्तिम पङ्क्ति (पृष्ठ २३८)।

१०—**छतरी लगाये हुए**—मैडम ब्लेवेस्तकी ने अपनी 'केव्ज़ एण्ड जंगल्स्' नामक अंग्रेजी पुस्तक में इस चित्र की प्रतिलिपि दी है, ऐसा मुझे श्री स्वा० भूमानन्द जी एम० ए० ने लाहौर में बताया था। यह चित्र सम्भवतः मेरठ में मई सन् १८७९ में उस समय लिया गया होगा, जब कर्नल आलकाट और मैडम ब्लेवेस्तकी उनसे मिलने अमेरिका से आये थे।

११—**वस्त्र पहने कुरसी पर बैठे हुए, हाथ में चांदी की मूठ का दण्डा**—इस चित्र में ऋषि दयानन्द सारे वस्त्र पहने हुए हैं, हाथ में चांदी की मूठ का दण्ड लिये हुए हैं। यह देहरादून में कार्तिक या मार्गशीर्ष सं० १९३७ (=नवम्बर १८८०) में लिया गया था ऐसा कहा जाता है। श्री देवेन्द्र बाबू सं जी० च० पृष्ठ ६२४ से इतना तो स्पष्ट है कि सं० १९३७ (=सन् १८८०) में देहरादून में ऋषि दयानन्द का एक चित्र लिया गया था। यह चित्र 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' में भी लगा हुआ है। इसका 'बस्ट' (छाती तक का आधा) चित्र सादे कागज पर छपा हुआ मुझे १८ नवम्बर १९२६ को शाहजहांपुर में मुंशी बख्तावर सिंह आदि के यहां पत्रों का अन्वेषण करते हुए श्री बांकेलाल जी अख्तर से रसीद लिखकर मिला था। यह माडलटौन लाहौर में श्री पं० भगवद्दत्त जी की कोठी में अन्य बहुत सी बहुमूल्य सामग्री के साथ नष्ट हो गया।

१२—**कुरसी पर बैठे हुए, पास में गोलमेज पर वेद की पुस्तकें**—यह चित्र संख्या १२ के चित्र से बहुत साम्य रखता है। कुरसी और पास वाली मेज इसमें भिन्न है। इसमें मेज के ऊपर जो चारों वेदों की पुस्तकें दिखाई गई हैं वह अंश कल्पित है।[1] यह चित्र 'रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर' द्वारा प्रकाशित

---

[1] मेरे मित्र राजस्थान-इतिहास के विशेषज्ञ श्री ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत ने इस चित्र को देख कर कहा था कि इस चित्र में मेज पर पड़ी हुई वेदों की पुस्तक कल्पित हैं, परन्तु जिस कुरसी पर बैठे हुए ऋषि दयानन्द का यह चित्र लिया गया है, वह उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह की है। इसी कुरसी पर बैठे हुए महा-

यजुर्वेद भाष्य विवरण तथा वेदवाणी सं० २००९ के वेदाङ्क में भी लगा है।

१३—कुरसी पर बैठे हुए मेज पर पुस्तकें तथा गुलदस्ता—यह चित्र शाहपुरा में सं० १९४० के पूर्वार्ध में लिया था। श्री स्व० महाराजा नाहरसिंह जी ने मथुरा शताब्दी के अवसर पर आर्य चित्रावली में प्रकाशनार्थ महाशय गोविन्दराम हासानन्द को दिया था। यह चित्र 'वेदप्रकाश' देहली के सं० २०१० के 'दयानन्दग्रन्थ संग्रह' नामक विशेषाङ्क में छपा है।

१४—कुरसी पर बैठे हुए ब्र० रामानन्द के साथ—इस चित्र में ऋषि दयानन्द कुरसी पर बैठे हैं, पैर में खड़ाऊं पहने हुए हैं, पास में एक ओर ब्र० रामानन्द खड़ा है, तथा दूसरी ओर मेज पर तीन पुस्तकें रक्खी हैं। यह चित्र सम्भवतः शाहपुरे में सं० १९४० के प्रारम्भ में लिया गया होगा। इसी चित्र को रामानन्द के पास भेजने का उल्लेख ऋषि दयानन्द के वैशाख शु० ४ सं० १९४० [१० मई १८८३] के रामानन्द के नाम लिखे पत्र में मिलता है। देखो यही ग्रन्थ पूर्ण संख्या ६७४, ६७५ तथा पृष्ठ ७००। श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ६१३ पर इस पत्र की प्रतिकृति (फोटो) छपी है।

मैंने इस चित्र का वर्णन 'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्र के नवम्बर १८९० के अंक के अन्तिम पृष्ठ पर पढ़ तथा सन् १८८४ के 'सत्यार्थप्रकाश' जो दयानन्द कालेज लाहौर अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में सुरक्षित था में छोटा सा २२ अक्टूबर १९२६ में देखा था। उसी पर से इसका अन्वेषण आरम्भ किया। तदनन्तर फर्रुखाबाद समाज मन्दिर में उससे कुछ बड़ा अतिजीर्ण चित्र लगा देखा और ३ फरवरी १९२७ को रा० ब० राजा दुर्गादास जी की पुरानी चित्रों की एलबम से उनके पुत्र श्री चन्द्रप्रकाश जी रईस से असली छोटा सा चित्र प्राप्त किया और उसी चित्र के वर्णन वाला ऋषि दयानन्द का (पूर्वनिर्दिष्ट) ब्र० रामानन्द के नाम शाहपुरा से लिखा हुआ पत्र आर्यसमाज के संग्रह में से ढूंढ निकाला। इसी की लाहौर में प्लेट तैयार कराकर असली चित्र परोपकारिणी सभा अजमेर को सन् १९३३ में

राणा सज्जनसिंह का एक चित्र उदयपुर में वर्तमान है। इस कथन के अनुसार यह चित्र उदयपुर में सं० १९३९ के उत्तरार्ध में लिया गया होगा। वेदों की पुस्तकों वाला अंश तो निश्चित ही कल्पित है; क्योंकि इस चित्र में चारों वेदों की मोटाई बराबर दिखाई है जो कि ठीक नहीं है। सम्पा०

71336

ेजा था, वह वापस प्राप्त हो गया। इसका एक रंगीन बड़ा ब्लाक म० राजपाल लाहौर को उनके पुस्तकालय के लिये भी बनवा कर दिया था। यह कैलेण्डर में भी छपा था। इसी का एक बड़ा चित्र म० चिरञ्जीलाल प्रेम को बनवाकर दिया था। इस चित्र की प्रतिलिपि आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित ऋषि के जीवन चरित पृष्ठ ३७१ तथा इस ग्रन्थ में भी लगाई है। इस चित्र से बनवाई हुई एक प्रतिलिपि मेरठ शहर के सप्तम सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन (सन् १९५१) की दयानन्द प्रदर्शनी में रक्खे हुए अपने संग्रह में से ला० हरशरण जी रईस गाजियाबाद को ता० ३० दिसम्बर १९५१ को दी थी। इसी चित्र से ब्लाक बनवाकर आर्य सार्वदेशिक सभा ने स्वप्रकाशित महर्षि द० स० के जीवनचरित तथा सत्यार्थप्रकाश के सं० २०१० के संस्करण में छपवाया था।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द के मूल पत्रों का अन्वेषण करते हुए सन् १९२६ से आज तक जिन १४ वास्तविक चित्रों का उल्लेख या प्रतिलिपि मिली उनका वर्णन मैंने ऊपर संक्षेप से किया है। इनके अतिरिक्त भी ऋषि दयानन्द के अनेक स्थानों में चित्र लिखे गये होंगे, जो इस समय अप्राप्य तथा अज्ञात हैं। इनका अनुसन्धान परमावश्यक है। ऋषि दयानन्द की रुग्णावस्था के समय का जोधपुर में किसी ने हाथ से रंगीन चित्र बनाया था, इसकी प्रतिलिपि श्री पं० राजेन्द्र जी (देहली) के पास है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य–श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां
प्रप्रशिष्येण श्रीयोगिप्रवर–लक्ष्मणानन्दस्वामिनां प्रशिष्येण
इतिहासवित्पण्डित-भगवद्दत्तमहोदयानां शिष्येण
श्री शंकरलालात्मजेन मुजफ्फरनगरमण्डलान्तर्वर्तिखतौलीग्रामवासिना
मामराजार्येण संकलितं षष्ठं परिशिष्टं समाप्तम्

—:०:—

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

सप्तम परिशिष्ट

ऋषि दयानन्दसरस्वती के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय

[लेखक—राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री० ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत, अध्यक्ष पुरातत्त्व विभाग, जयपुर, राजस्थान]

ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन में स्मृत व्यक्ति[1]

१—राजा जयकृष्णदास
२—महात्मा कालूराम योगी
३—कर्नल आल्काट और मेडम-ब्लेवेस्तकी
४—पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा एम. ए. वैरिस्टर
५—मनीषी समर्थदान बारहट
६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द
७—पं० भीमसेन शर्मा (इटावा)
८—राय बहादुर मूलराज एम० ए०
९—कविराज श्यामलदास महामहोपाध्याय
१०—राजाधिराज नाहरसिंह, (शाहपुरा)
११—ठा० नन्दकिशोरसिंह मेंबर स्टेट कौंसिल जयपुर
१२—राव बहादुरसिंह (मसूदा-अजमेर)
१३—महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर)
१४—मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
१५—बारहट किशनसिंह
१६—फतेहकरण उज्ज्वल
१७—रावराजा तेजसिंह (जोधपुर)
१८—महाराजा सर प्रतापसिंह (जोधपुर)

---

[1] नीचे लिखे व्यक्तियों का ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन में कहां निर्देश है, इस के ज्ञान के नवम परिशिष्ट में नाम-सूची देखें। सम्पा०

१९—मुंशी दामोदरदास
२०—महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर)
२१—नन्हीं भगतन (जोधपुर)
२२—मेहता विजयसिंह
२३—गणेशपुरी
२४—कविवर अमरदान
२५—झालवाड़ा नरेश
२६—लोंग साहब

१—राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई.

ये मुरादाबाद के माथुर चतुर्वेदी (चोबे) ब्राह्मण थे। आपने बिजनौर और मुरादाबाद में डिप्टी कलेक्टर के पद पर काफी समय तक काम किया। ये ऋषि दयानन्द के परमभक्त थे। इन्होंने ही ऋषि के सिद्धान्तों को पुस्तक रूप "सत्यार्थप्रकाश" नाम से तैयार करा कर निज व्यय से सन् १८७५ ई० में प्रथमबार काशी में छपवाया था। ये बडे उदार व दानी सज्जन थे। आगरा कालेज और अलीगढ़ के महामेडन कालेज को टूटने से इन्होंने बचाया था। इनके पौत्र आनरेब्ल राजा सर जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी के० सी० एस० आई०, आई० सी० एस०, हैं जो पहले वाईसराय की कोंसिल के सदस्य थे॥

२—महात्मा कालूराम योगी

ये जयपुर राज्य के ठिकाने सीकर के रामगढ़ स्थान के गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १८९३ वि० ज्येष्ठ बदी ६ शुक्रवार (६ मई १९३६ ई०) को और देहांत सं० १९५७ ज्येष्ठ सु० १० (ता० ७-६-१९०० ई०) को हुआ। ऋषि दयानन्द से इनका पत्र व्यवहार वि० सं० १९३३ से था। इनके उपदेश से ही शेखावाटी में वैदिक धर्म का प्रचार हुआ तथा रामगढ़ में वार्षिक धर्म मेला इनके स्थान पर भरने लगा जो आज तक चालू है। ऋषि के समय में ही रामगढ़ में आर्य समाज स्थापित हो गया। ऐसे ही महात्मा कालूरामजी के उपदेश से ही वि० सं० १९३८ चैत्र सुदी २ गुरुवार (३१ मार्च १८८१ ई०) को जयपुर (राजपूताना) में "वेदधर्म सभा" (आर्य समाज) स्थापित हुई॥

३—कर्नल आल्काट तथा मेंडम ब्लेवेस्तकी

इनका जन्म अमेरिका के आरेंज नगर में ई० सन् १८३२ में हुआ।

आप वहां कृषि विभाग के अफसर थे। फिर वकालत शुरु की। उसी समय रूसी महिला काउन्टेस मेडम ब्लेवेटस्की से उनकी भेंट हो गई। दोनों ने मिलकर करामात को चर्चा फैलाई कि वे स्वर्ग से चीजें मँगा देते है और भूत प्रेत उनके हाथ में है। वहां न्यूयार्क शहर में इन्होंने ८ सितम्बर १८७५ ई० को अपने नये मत 'थियोसौफिकल सोसाईटी" की नींव डाली और आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध जोड़ने व ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ १६-२-१८७९ ई० को भारत में आये। इनकी संस्था को आर्य समाज की शाखा घोषित करने के कुछ दिन बाद जब दयानन्द को ज्ञात हुआ कि ये ईश्वर को नहीं मानते हैं, और झाड़े जपटे को बातें भी इनमें हैं, तब इनसे कोई सम्बन्ध न रक्खा। तब सन् १८८२ ई० में इस युगल जोड़ी ने मदरास के अडियार स्थान में थियोसौफिकल सोसाइटी की इमारत बनवाई। १८९१ ई० में मेडम ब्लेवेटस्की मर गई। कर्नल अल्काट भी १७ फरवरी १९०७ ई० को इस संसार से चल बसे। कर्नल के शव का अग्नि संस्कार हुआ। भस्मी आधी तो समुद्र में डाली व आधी काशी में गंगा में प्रवाहित हुई। यह बात हिन्दू धर्मानुकूल हुई। इन्होंने ३१ वर्ष में अपनी सभा की लगभग १ हजार शाखाएं खोलीं॥

४—पंडित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा

इनका जन्म सौराष्ट्र (काठियावाड़) के कच्छ भुज राज्य के मांडवी नामक गांव में वि० सं० १९१४ कार्तिक बदी २ सोमवार (५ अक्टूबर १८५७) को गुजरात की भंसाली जाति में हुआ था। यह भंसाली जाति अधिकांश में खेतीवाड़ी तथा मेहनत मजदूरी करती है और अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश से बताती है। सन् १८७४ ई० के अक्टूबर में श्याम जी का बम्बई की भाटिया धर्मशाला में ऋषि दयानन्द सरस्वती से प्रथमवार साक्षात्कार हुआ। ऋषि ऐसे कुशाग्र बुद्धि मेधावी बालक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी संस्कृत शिक्षा का विशेष प्रबन्ध कर दिया और सन् १८७५ ई० में ऋषि की कृपा से श्याम जो जैसे निर्धन अनाथ व्यक्ति का विवाह सेठ छबीलदास (लल्लुभाई) द्वारकादास भंसाली की पुत्री कुमारी भानुमती से हो गया। श्यामजी ऋषि के साथ काफी समय तक रहे। जिससे इनके राजनीतिक विचारों को नई प्रेरणा मिली और इन्होंने देश की आवाज को विदेशों तक पहुंचाने का दृढ़ निश्चय कर मार्च सन् १८७९ के अंतिम सप्ताह में ये विलायत को रवाना हो गये। बाद में ऋषि की कृपा से कच्छभुज राज्य से श्याम जी को छात्रवृत्ति भी मिल गई। श्याम जी

जैसे देशभक्त को लन्दन भेजना और भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन का नया रूप छेड़ना उनकी अपूर्व सूझ का परिचायक है। वहां से आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में संस्कृत प्रोफेसर हो गये और साथ ही अंग्रेजी की उच्च शिक्षा पाते रहे। जिससे ये आक्सफोर्ड के प्रथम भारतीय पोस्ट ग्रेजुवेट (एम० ए०) बने। सन् १८८५ ई० में ये बैरिस्टर होकर भारत लौटे। फिर रतलाम (मालवा), उदयपुर (मेवाड़) और जूनागढ़ (काठियावाड़) राज्यों में कई वर्ष तक प्रधान मंत्री (दीवान) रहे। सन् १८९७ में प्लेग कमिश्नर श्री रैण्ड की हत्या बालकृष्ण द्वारा पूना में हो गई। इस सम्बन्ध में श्याम जी को अपने पकड़े जाने का समाचार भी सम्भवतः मिला। पुलिस को इन पर संदेह था। इससे वे मय धर्मपत्नी के पुनः लण्डन को चले गये और वहां भारतीय स्वतंत्रता का कार्य शुरू कर दिया। ८ दिसम्बर १९०४ ई० को श्याम जी ने प्रसिद्ध भारत हितैषी फिलास्फर हर्बर्ट स्पेनसर व ऋषि दयानन्द की स्मृति में दो दो हजार की ६ छात्रवृत्तियें अपने निजी धन से तथा ऐसे ही तीन छात्र वृत्तियें अपने मित्र पेरिस प्रवासी देशभक्त श्री सरदार सिंह राणा (धर्मपुर राज्य) की ओर से "राणा प्रताप" छत्रपति शिवाजी और एक किसी मुसलमान नरेश[1] के नाम से योग्य भारतीयों को विदेश भ्रमण के लिये देने की घोषणा की। इन छात्रवृत्तियों के सहारे श्याम जी ने लन्दन में कुछ रंगरूट जमा कर लिये। उनमें विनायक सावरकर, लाला हंसराज, भाई परमानन्द, सेनापति बापट मुख्य थे। सन् १९०५ की १८ फरवरी को श्यामजी ने लण्डन में **"इण्डिया होमरूल सोसायटी"** (भारत स्वराज्य सभा) स्थापित की और सभा की मुख्य मासिक पत्रिका **"इण्डियन सोशियालीजिस्ट"** का जनवरी १९०५ ई० से प्रकाशन शुरू किया। और उसका मूल्य एक आना मासिक रखा। यही नहीं भारती विद्यार्थियों के रहने के लिये १ लाख रुपया से **"इण्डिया हाउस"** नामक भवन स्थापित किया। ये इण्डिया हाउस सन् १९०६-७ ई० में विद्रोहियों का नामी केन्द्र बन गया। सन् १९०८ की १० मई को प्रथम भारतीय स्व-

---

[1] इनका नाम **'बहादुरशाह'** था। यह बहादुरशाह के नाम की छात्रवृत्ति **'सिकन्दर हयातखां'** को दी गई थी। हमें यह सूचना **'हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय कसारहट्टा रोड़ हैदराबाद'** के मन्त्री श्री वेङ्कटलाल ओझा के १९-५-७५ के पत्र से मिली। सम्पा०

तन्त्रता युद्ध (सन् १८५७ ई०) को पूरे ५० वर्ष हो रहे थे। **गर्मागर्म खबर थी कि भारत में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय १ लाख आर्य समाजियों की सेना संगठित कर गदर (विद्रोह) की वर्षी मनायेंगे।** इन सब कारणों से लाला जी को तथा सरदार अजीतसिंह (अमर शहीद भगतसिंह के चाचा) को भारत सरकार ने माण्डले दुर्ग में बन्द कर दिया। इससे इंग्लैण्ड के नेता बौखला गये और सावरकर ने लण्डन के इण्डिया हाउस (भारत-भवन) में बड़ी धूमधाम से सत्तावन के गदर का पचास वर्षीय उत्सव मनाया। इन क्रान्तिकारियों के नेता श्री श्याम जी ने वहां बड़े बड़े कष्ट उठाये और आयु भर निर्वासित ही रहे। इनकी मृत्यु स्विटजरलैण्ड के जिनेवा नगर में ३१ मार्च १९३० को हुई।

याद रहे कि स्वराज्य शब्द का उच्चारण सर्व प्रथम कांग्रेस के रंगमंच से दादाभाई नौरोजी ने दिसम्बर १९०६ में कलकत्ता में किया था और लोकमान्य तिलक ने २२ जुलाई १९०८ को "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" की घोषणा की थी। **परन्तु ऋषि दयादन्द के शिष्य श्यामजी ने "स्वराज्य" का बिगुल इनसे पहले ही बजा दिया था।**

५—मनीषी समर्थदान

ये सिढायच गोत्र के चारण थे और जयपुर राज्य के ठिकाने (जागीर) सीकर के नेठवा गांव में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मंगलदान था। ये उर्दू, फारसी, हिन्दी, संस्कृत और कुछ अंग्रेजी भी जानते थे। लगभग वि० सं० १९३५ में ये ऋषि दयानन्द सरस्वती के संसर्ग में आये। ऋषि के साथ ये अनेक वैदिक यंत्रालय (प्रेस) के प्रबन्धकर्त्ता होकर काशी, प्रयाग, बम्बई और अजमेर में रहे। ऋषि ने इन्हें धार्मिक, निष्कपटी, सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील और चाल चलन का बहुत अच्छा और श्रेष्ठ लिखा है। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् ये अजमेर में बस गये। और दौलतबाग के पास एक सुन्दर स्थान में भवन बनाकर इन्होंने "राजस्थान यंत्रालय" (प्रेस) और सं० १९४५ वि० के फागुण में "राजस्थान समाचार" नामक साप्ताहिक पत्र सफेद चिकने चौपेज रायल साइज के १२ पृष्ठों में हिन्दी में शुरू किया जो हर गुरुवार को छपता था। और उसका वार्षिक मूल्य रक्खा था केवल ३॥) रु०। राजपूताना प्रांत में उच्चभावों का यह प्रथम ही पत्र था। वह कई बातों में अपने ढंग का एक ही था। इससे धीरे-धीरे इनका मान और प्रभाव खूब बढ़ा।

जोधपुर के प्रधानमंत्री लेफ्टिनेन्ट जेनरल महाराजा सर प्रतापसिंह, उदयपुर व बीकानेर के नरेश तथा अनेक जागीरदार इनका आदर करते और इनकी सम्मतियों पर ध्यान देते थे। चीफ कमिश्नर व ए० जी० जी० आदि उच्च अधिकारी मिलते और इनसे परामर्श लेते। सं० १९५९ वि० में महाराजा काश्मीर ने इन्हें अपना पोलपात (प्रतोलीपात्र=प्रधान दान-अधिकारी चारण) बनाया और कविराज उपाधि व पैर में पहनने को सोने का कड़ा (देशी राज्य में ताजीम का चिह्न) दिया। बाद में ये पत्र अर्द्ध साप्ताहिक हो गया। ८ फरवरी १९०४ को जब रूस जापान युद्ध छिड़ा तब यह "दैनिक" हो गया। सच कहा जाय तो हिन्दी का पहला व्यवसाय यही दैनिक था। १९ मास के युद्ध के बाद घाटे के कारण यह साप्ताहिक होकर सिस्का और सन् १९०७ में सदा के लिये बुझ गया।

इन्होंने कई पुस्तकें स्वयं लिखीं और बहुत सी प्रकाशित कीं। उन्हें लाख रुपये के व्यय से कई भागों में भारतवर्ष का विस्तृत इतिहास निकालने का बड़ा उत्साह था। संवत् १९४० के बाद में इन्होंने मुंशी के स्थान में अपनी उपाधि "मनीषी" कर ली थी। इनके अंतिम दिन बड़े निराशात्मक थे। माता और पत्नी मर चुकी थी। साथ ही तंदरुस्ती भी गिर गई। घर में केवल ८ वर्ष की एक अबोध कन्या थी। मुकदमे और ऋण के बादल शिर पर मंडरा रहे थे। पचास वर्ष की आयु में तीस वर्ष के कार्यभार से थके दिमाग को संस्कृत के द्वारा शास्त्रीय वैद्यक के पढ़ने में लगाना इन्हीं की प्रतिभा का काम था। इन्होंने चरक, सुश्रुत पढ़ा और वैद्यक से जीवन निर्वाह का उपाय निकाला। चतुर वैद्य बन गये पर दशा न सुधरी। अन्त में खटिया पर पड़ गये और १७ जून १९१४ ई० को अजमेर में कोई ५६ वर्ष की आयु में इनका जीवन समाप्त हुआ। राजनीति, समाजनीति के ये बड़े ज्ञाता और बड़े अच्छे सलाहकार थे॥

९—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी थे। नादिरशाह के समय वे मुर्शिदाबाद (बंगाल) में जा बसे। परन्तु बाद में काशी में आ गये। राजा साहब का जन्म मारवाड़ी ओसवाल वैश्य जाति के गोखरू गोत्र में वि० सं० १८८० की माघ सुदी २ को हुआ। शिक्षा समाप्त कर चुकने पर ये मामा की सहायता से भरतपुर (राजपूताना) राज्य में नौकर हो गये। वहां जाते ही आपने सर्वप्रथम स्टेट के दीवान जानी वैजनाथ को, जो कि महाराजा बलवंतसिंह को अपने हाथ को कठपुतली बनाकर राज्यपर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाए

हुए था, अंग्रेज सरकार की राय से ८० कायस्थों सहित जेल भिजवाया और राजा को स्वतन्त्र किया। इससे महाराज ने इन्हें अपना राज-वकील नियुक्त किया। सं० १९०२ वि० में इन्होंने काशी से "बनारस अखबार" नाम से हिन्दी साप्ताहिक भी निकलवाया। इसी वर्ष इन्होंने अंग्रेज सरकार की फौजी सेवा स्वीकार की। बाद में काशी में ही कमिश्नर के मीरमुंशी हो गये। परन्तु विद्यारसिक होने से सरकार ने इन्हें स्कूलों का इन्स्पेक्टर नियत कर दिया। इन्होंने कोई ३५ पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में लिखीं। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के विद्यागुरु थे। सर् १८७२ में उन्हें व्यक्तिगत रूप से सी० एस० आई० (सितारे हिन्द) की और सन् १८८७ ई० में वंशपरम्परा के लिये "राजा" की उपाधि मिली। इनका देहान्त २३ मई सन् १८९५ ई० को काशी में हुआ॥

७—पण्डित भीमसेन शर्मा

इनका जन्म सं० १९११ कार्तिक सुदी ५ को हुआ। इनकी शिक्षा १७ वर्ष की आयु में सं० १९२९ वि० से ऋषि दयानन्द की स्थापित पाठशाला फर्रुखाबाद में हुई। बाद में ऋषि ने इन्हें २५) रु० मासिक पर अपने लेखन कार्य में लगा दिया। ऋषि की मृत्यु पश्चात् सं० १९४२ वि० में इन्होंने प्रयाग से "आर्य्य सिद्धान्त" नामक मासिक पत्र निकाला और वि० सं० १९५२ में अपना प्रेस अपने घर इटावा ले आये। इन्होंने आर्यसमाज की वि० सं० १९५५ तक बड़ी सेवा की। परन्तु बाद में चुरू (बीकानेर) के सेठ माधवप्रसाद खेमका (कलकत्ता) ने पांच हजार रुपये के संकल्प से इनसे बृहद् यज्ञ कराना चाहा। यहां यज्ञ विषयक मतभेद होकर आर्यसमाज ने इनका बहिष्कार कर दिया तब ये सनातन-धर्म-सभा में जुट गये। सं० १९०२ ई० (वि० सं० १९५९) से ये "ब्राह्मण सर्वस्व" नाम का मासिक पत्र प्रकाशित करने लगे। जुलाई १९१२ ई० से सन् १९१७ ई० तक इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में २५०) रु० मासिक पर "वेद व्याख्याता" पद पर कार्य किया। सं० १९७४ चैत्र बदि १२ को ६४ वर्ष की आयु में इनका देहान्त हुआ।

८—रायबहादुर लाला मूलराज एम. ए.

इनका देहान्त १ जून १९४५ ई० की रात को लाहौर में ९२ वर्ष की आयु में हुआ। आर्यसमाज के संगठन और उसके प्रारम्भिक विकास में इनका योग बड़े महत्त्व का और अत्यधिक साहसपूर्ण था। ऋषि दयानन्द इनका जैसे जैसे अधिक आदर करते गये मूलराज की प्रतिष्ठा लाहौर के

आर्यसमाज में वैसे-वैसे बढ़ती गई। ये पंजाब में एसिस्टेन्ट कमिश्नर आदि कई उच्च पदों पर रहे। ऋषि की मृत्यु के बाद ये लाहौर समाज के प्रधान हो गये। इस मानवृद्धि ने उनके अनेक विरोधी भी उत्पन्न कर दिये। उन के द्वेषियों ने उनके विरुद्ध जो अफवाहें उड़ाई और जैसी जैसी झूठी कहानियां गढ़ीं उनका ज्यादा उल्लेख करना व्यर्थ है, लेकिन यह कहना काफी होगा कि उन पर "पंजाब सरकार के हाथ का औजार" आदि होने तक का दोष लगाया गया था। "बंगभग" (सन् १६०४ ई०) की घटना के १०–१५ साल पूर्व ही जो कोई उनसे मिलने जाता था उसे वे पंजाब के ही बुने स्वदेशी वस्त्र पहनने का उपदेश देते थे ।।

६—कविराज श्यामलदास

इनका जन्म वि० सं० १८६३ द्वि० आषाढ़ बदि ७ को चारण जाति के दधवाडिया गोत्र में हुआ। ये संस्कृत, हिन्दी व राजस्थानी भाषा के बड़े विद्वान् थे। इन्हें उदयपुर महाराणा साहब से सं० १६३५ पौष सुदि २ को "कविराज" तथा अंग्रेज सरकार से "महामहोपाध्याय" की पदवी १ जनवरी १८८८ वि० सं० १६४५) को मिली। इन्होंने "वीर विनोद" नाम से उदयपुर राज्य का बृहद् इतिहास कोई ३ हजार पृष्ठों में सं० १६४३ वि० में सम्पादन किया। इनका देहान्त वि० सं० १६५१ ज्येष्ठ बदि ३० को उदयपुर (मेवाड़) में हुआ ।।

१०—राजाधिराज सर नाहरसिंह के० सी० आई० ई०

इनका जन्म सं० १६१२ वि० कार्तिक बदि १३ को ठिकाना धनोप के ठाकुर धीरतसिंह के यहां हुआ। शाहपुरा राज्य की गद्दी पर गोद आकर ये सं० १६२६ ज्येष्ठ सुदि १३ शनिवार को बैठे। इन्होंने ३ मास तक ऋषि दयानन्द से राजनीति व धर्म का उपदेश लिया था। इनका देहान्त ७८ वर्ष की आयु में सं० १६८६ आषाढ़ बदि ६ शुक्रवार के सुबह हुआ। इन्होंने ६२ वर्ष तक योग्यता से राज किया। इन्हें ६ तोप की सलामी वंशपरम्परागत और फांसी व आजन्म कैद करने के अधिकार थे ।।

११—ठाकुर नन्दकिशोरसिंह

आपका शुभजन्म ३१ अगस्त सन् १८५६ तदनुसार वि० सं० १६१३ भादों सुदी १ रविवार को कासगंज (जिला एटा) यू० पी० के मोहन मौहल्ला के एक प्रतिष्ठित गौड़ राजपूत कुल में हुआ था। आपके पिता को जयपुर दरबार ने भारत गवर्नमेण्ट से मांग लिया था। इससे आपकी

शिक्षा महाराजा कालेज जयपुर में हुई और सन् १८७६ ई० में इन्हें लार्ड नार्थब्रुक मेडल भी मिला। सन् १८८१ ई० में ये महाराजा पबलिक लाइब्रेरी जयपुर (राजस्थान) के लाइब्रेरियन (पुस्तकाध्यक्ष) नियुक्त हुए और इन्हीं के उद्योग से ३१ मार्च १८८१ ई० (चैत्र सुदि २ सं० १६३८ वि०) को जयपुर में आर्यसमाज (वैदिक धम सभा) की स्थापना हुई। सन् १८८६ ई० में ये जयपुर रेजिडेन्सी में राजवकील, सन् १८८६ में स्टेटकोंसिल के सेक्रेटरी और सन् १६०५ ई० में स्टेट कोंसिल के न्यायमंत्री (जुडिशियल मेम्बर) नियुक्त हुए। इस प्रकार सन् १६२२ ई० तक वे कोंसिल के मेम्बर रहे। पश्चात् पेंशन ले ली। इनका देहांत २५ नवम्बर १६३४ ई० (मगसर बदि ४ सं० १६६१ वि०) रविवार को ७८ वर्ष की आयु में हो गया॥

१२—राव बहादुरसिंह, मसूदा

ये अजमेर जिला के ठिकाने मसूदा के २६ गांवों के इस्तमरारदार थे। इनके पूर्वज ठाकुर हनवंतसिंह राठोड़ मेड़तिया को यह जागीर सम्राट् अकबर से वीरता के सम्मान में मिली थी। ये आनरेरी मेजिस्ट्रेट व मुंसिफ थे और इन्हें सरकार की ओर से "राव" (१८७७ ई०) तथा सी० आई० ई० (१८६३ ई०) की उपाधियां मिली थी। इनका देहान्त १० जुलाई १६०३ ई० को हुआ॥

१३—महाराणा सज्जनसिंह जी० सी० एस० आई०

इनका जन्म वि० सं० १६१६ आषाढ़ सुदि ६ को हुआ और उदयपुर मेवाड़ के राजसिंहासन पर सं० १६३१ आसोज बदि १३ को बैठे। इनका देहांत २५ वर्ष की आयु में सं० १६४१ पौष सुदि ६ को हुआ। यह महाराणा बड़े ही सुधारक, विद्यारसिक, मिलनसार और शान्तिप्रिय थे॥

१४—पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या

इनके पूर्वज गुजरात से आकर दिल्ली में बसे और फिर मुथरा में। इनका जन्म सं० १६०७ अगहन बदि ३ मंगलवार को और देहांत ४ दिसम्बर १६१२ ई० को ६२ वर्ष की आयु में मथुरा में हुआ। सन् १८८१ ई० में इन्होंने उदयपुर-मेवाड़ राज्य में नौकरी कर ली। यहां कुछ समय तक सदर अदालत की दीवानी का काम किया और बाद में इन्हें स्टेट कोंसिल के मेम्बर और सेक्रेटरी का पद मिला। सन् १६०० ई० में ये प्रतापगढ़ (देवलिया) के दीवान हुए। वहां से पेन्शन लेकर मथुरा में जा रहे। इन्होंने १२ पुस्तकें रची। इन्हें इतिहास व पुरातत्व से बड़ा प्रेम था॥

१५—बारहट किशनसिंह

ये शाहपुरा (राजस्थान) के बारहट सोदा अनाड़जी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०६ फाल्गुन सुदि १ को चारण जाति में हुआ। ये उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास के सगे भानजे थे। ये बड़े राजनीतिज्ञ थे और राजा महाराजाओं में इनका बड़ा प्रभाव था। इन किसनजी बारहट के सुपुत्र राजस्थान केसरी श्री केसरीसिंह बारहट व जोरावरसिंह तथा पौत्र प्रतापसिंह राजपूताने के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने देश के लिये नानाप्रकार की यातनाएें सही व बलि हुए॥

१६—फतेहकर्ण उज्जवल उर्फ विजयकरण (जयकर्ण)

ये जोधपुर जिला के उजला गांव के चारण नाथूराम सींढायच (उज्ज्वल) के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०९ भादों बदि ८ को तथा निधन वि० सं० १९७८ वैशाख बदि २ को हुआ। यह बड़े कवि थे। ऋषि ने इनका नाम फतेहकर्ण के बजाय "विजयकर्ण" ("जयकर्ण") रक्खा था। ये महाराणा सज्जनसिंह के समय उदयपुर चले गये थे।

१७—रावराजा तेजसिंह

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह राठोड़ के अनौरस पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९१३ फाल्गुण बदि ७ (ता० १६-२-१८५७ ई०) को और देहांत १६ नवम्बर सन् १९२५ ई० को ६९ वर्ष की आयु में जोधपुर में हार्टफेल से हुआ। आप ऋषि दयानन्द व आर्य समाज के बड़े भक्त थे। जोधपुर राज्य में इन्होंने कई उच्च पदों पर कार्य किया था। इस समय इनके पौत्र रावराजा मोहनसिंह बी० ए०, एल० एल० बी० न्यायधीश हैं।

१८—लेफ्टिनेन्ट जेनरल हिजहाईनेस महाराजा सर प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई०

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह बहादुर राठोड़ के तीसरे राजकुमार थे। इनका जन्म सं० १९०२ कार्तिक बदि ६ मंगलवार (२१-१०-१८४५ ई०) को हुआ। ये बड़े होनहार व वीर थे। सन् १८७६ से १९०२ तक ये जोधपुर के प्रधानमत्री (मुसाहिब आला) रहे। पश्चात् ईडर (गुजरात) राज्य के हिजहाईनेस महाराजा हो गये। आपने अपनी आत्मकथा में ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज की बड़ी प्रशंसा की और यह भी कहा करते थे कि यदि मैं ऋषि के सत्संग के प्रभाव में सं० १९४० वि०

में न आता तो मैं ईसाई हो जाता। आपके ही प्रयत्न से सं० १९४० की श्रावण बदि १० को जोधपुर नरेश की संरक्षकता में जोधपुर में आर्यसमाज की शाखा स्थापित हुई। और १२ अगस्त १८८३ ई० को भारत के देशी राज्यों में सबसे प्रथम हिन्दी (देवनागरी लिपि) को राजभाषा का स्थान दिया गया। ऐसे ही सं० १९४१ वि० ज्येष्ट बदि ४ को आपने आर्डर जारी कर दिया कि सर्व राज कर्मचारी खादी ही पहना करें। इस आज्ञा का पालन उस समय प्रजा ने भी, किया। फरवरी १८८८ ई० में जोधपुर राज्य के खर्च से आर्यसमाज का प्रचार करने के लिये आपने स्वामी भास्करानन्द (संयुक्तप्रान्त) को विलायत व अमेरिका भेजा। २३ अप्रेल सन् १९०५ ई० को सरप्रताप ने ही लाहौर के डो० ए० वी० कालेज के विशाल भवन की नींव रक्खी। ता० ४ सितम्बर १९२२ ई० को इनका देहांत ७७ वर्ष की आयु में जोधपुर में हो गया॥

१९—मुंशी दामोदरदास जोधपुर

ये नारनोलीये सांघी गोत्र के अग्रवाल वैश्य थे। ये राज्य में कानून मास्टर थे। इनके बड़े भाई बाबू घनश्यामदास जोधपुर रेलवे के प्रसिद्ध ट्रेन-गार्ड थे। घनश्यामजी के पुत्र व पौत्र आज राजस्थान के प्रसिद्ध मोटर व्योपारी व धनीमानो सेठ हैं। दामोदर जी का देहांत लगभग ७० वर्ष की आयु में सन् १९३२ ई० के करीब हुआ था।

२०—महाराजा सर जसवंतसिंह जी० सी० एस० आई०

आप जोधपुर राज्य के हिजहाईनेस महाराजा थे और इनका जन्म वि० सं० १८९४ आश्विन सुदि ८ को हुआ तथा सं० १९२९ फाल्गुन सुदि ३ को जोधपुर के राजसिंहासन पर बैठे। ये बड़े उदारचित, मिलनसार और बुद्धिमान् नरेश थे। इन्होंने ही ऋषि दयानन्द को निमन्त्रित कर अपने यहां वैदिक धर्म का प्रचार कराया। यही नहीं वि० सं० १९४४ में राज्य के खर्चे से स्वामी भास्करानन्द सरस्वती को वेदप्रचारार्थ लंदन व अमेरिका भेजा। सं० १९५२ कार्तिक बदि ८ को इस नरेश का देहांत हुआ॥

२१—नन्ही भगतन

ऋषि दयानन्द के चरित्र सम्बन्धी अब तक की खोज करने वाले प्रत्येक चरित लेखक का यही विचार है कि इसी नन्ही भगतन (नन्हीजी) के षडयंत्र से ऋषि का परलोकवास हुआ। यह जोधपुर नरेश हिजहाईनेस

महाराजा जसवंतसिंह बहादुर की रखेली थी। राजपूताने में "भगतन" एक जाति का नाम है। इनकी उत्पत्ति रामावत साधुओं (वैष्णव) से कही जाती है। सं० १८२२ वि० में कई गृहस्थ रामावत साधुओं की कन्याओं ने गाना बजाना सीख कर वेश्या का धंधा शुरु किया था। कहावत है–"जाई कसब कमावें और आई नहीं कमावे।" भगतनों की गणना भारत के अन्य प्रान्तों की तवायफों में है। जिस प्रकार पातुरों के पिता भाई "जागरो" कहलाते हैं और उनके विवाह सम्बन्ध दरोगा (विदुर) जाति में होते हैं उसी प्रकार भगतनों के भाई 'भगत" कहलाते हैं और गृहस्थ रामावत व निम्बावत साधु जाति में विवाह करते हैं। ये भगत लोग उन के साथ तबला, सारंगी बजाया करते हैं। ये मुसलमानों से भी सम्बन्ध रखती हैं किन्तु पातुरें मुसलमानों से संसर्ग नहीं करती। भगतनें मांस, मदिरा, शलगम, गाजर, कांदा (प्याज) और लहसुन से परहेज करती हैं।

नन्ही की मां का नाम था "छोटी भगतन"। कहते हैं कि जब नन्ही २०-२१ वर्ष की थी तब उसको एक पुत्री हुई थी वह उस समय जुनागढ़ (काठियावाड़) राज्य के किसी मुसलमान शाहजादे के पास थी। जब ये २२-२३ वर्ष की थी तब जोधपुर नरेश ने इसे अपने पास रख लिया। और अपनी मृत्यु पर्यन्त (सं० १९५२ वि०) तक रक्खा। वह पर्दा नहीं करती थी। उसके हुक्म नूरजहां की तरह जोधपुर में चलते थे। उसके शिर के बाल धोने में प्रतिबार १५००) रु० खर्च होते थे। कस्तूरी का भी काफी उपयोग होता था। इसकी मृत्यु के बाद में इसकी सब जायदाद राज्य में जब्त की गई तो ६०० जोड़े तो रेशमी जूतों के ही मिले। ८०० के करीब रेशमी घाघरे थे। और भी कई लाख का मूल्यवान् सामान था। जो इधर उधर हो गया। पब्लिक नीलाम में राज्य में केवल १,०४,१३८।।)।।। रु० जमा हुए। उसमें से १ लाख रु० तो नई दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज को दान में दिया और बाकी ओसवाल जाति के सरदार हाई स्कूल को दे दिया। नन्ही ने जोधपुर शहर में एक विशाल देव मंदिर भी मेड़ती दरवाजा के बाहर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा सं० १९४२ पौष बदि ५ को हुई। इसका देहान्त २३ अगस्त सन् १९०९ ई० को ६०-६१ वर्ष की आयु में हुआ।।

२२—रायबहादुर मेहता विजयसिंह

इनका जन्म वि० सं० १८७३ पौष बदि ५ सोमवार को ओसवाल वैश्य जाति के मोहणोत गोत्र में हुआ और देहांत वि० सं० १९४९ भादों बदि १२ की रात को २ बजे जोधपुर में हुआ। आप किशनगढ़ राज्य से आकर सं० १८८७ वि० में जोधपुर राज्य की सेवा में नियुक्त हुए। आप कई पदों पर रहकर अंत में राज्य के अर्थमंत्री (देश दीवान) रहे। आप वैष्णव रामानुज सम्प्रदाय के थे।

२३—स्वामी गणेश पुरी

ये राजपूताने के प्रसिद्ध चारण कवि थे। और गांव चारणवास (जि० मेड़ता मारवाड़) के बारहठ पातावत पदमजी जगरामोत के पुत्र थे। इनका नाम गुलाबदान (गुप्तजी) था परन्तु दसनामी (गुंसाई) सन्यासी होने पर "गणेशपुरी" नाम रख लिया। इसका देहांत वि० सं० १९६६ के लगभग ७० वर्ष की आयु में हुआ॥

२४—कविवर ऊमरदान (अमरदान)

ये जोधपुर राज्य के परगना फलोधो के ग्राम ढाढरवाड़ा में वि० सं० १९०८ वैशाख सुदि २ शनिवार को जन्मे और सं० १९६० फालगुन सुदि १३ बुधवार को जोधपुर में परलोक बसे। इनकी राजस्थानी भाषा की कविता, सरस, सरल एवं चित्ताकर्षक थी। उनके "ऊमर काव्य" का राजपूताने में बड़ा आदर है और लोग उसे बड़े चाव व उत्साह के साथ पढ़ते हैं। ये बड़े निर्भीक सुधारवादी कवि थे॥

२५—झालावाड़ नरेश महाराज राणा जालिमसिंह

इनका जन्म ई० सन् १८६४ ता० १ जून को हुआ ये ११ वर्ष की आयु में दत्तकरुण झालावाड़ राज्य (राजपूताना) के उत्तराधिकारी नियत हुए। और २५ मार्च १८७६ ई० को मेयो कालेज अजमेर में भरती हुए। १९ वर्ष की आयु में मार्च १८८३ ई० में कालेज छोड़ा और ई० सन् १९१२ की ८ अक्टूबर को काशी में इनका देहांत हुआ। मेयो कालेज में इनके गार्डियन व शिक्षक श्री लेंग साहब व कंप्टेन रंडल थे॥

२६—श्री जे० डब्लू० लेंग

ये १३ मास तक मेयोकालेज अजमेर के हेडमास्टर रह कर २० जुलाई १८७७ ई० को झालावाड़ नरेश हिजहाईनेस महाराणा श्री जालिम सिंह

झाला के मेयो कालेज ही में टयूटर व गार्डियन (अतालिक) नियुक्त हो गये। साढ़े तीन वर्ष तक उन्होंने यह कार्य किया और अप्रेल सन् १८८० ई० को ये हिजहाईनेस झालावाड़ के १७,०००) रु० नकद व २ हजार का गहना और १२०००) सेठ मूलचन्द सोनी व गणेशदास आदि साहूकारों का कर्ज लेकर अकेला रात को रेल में अजमेर से भाग गया। गोरे अफसरों ने उसका कोई पता नहीं बताया ।।

—:०:—

अष्टम परिशिष्ट

[प्रथम परिशिष्ट का शेष]

अम्बहटा निवासी मुंशी चण्डी प्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्दजी के उत्तर[1]

[श्री पं० लेखरामजी जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ३०३ पर लिखते हैं सहारनपुर में निवास के समय कई लोगों से धर्मसम्बन्धी बातचीत करते रहे और "भूमिका" भी बनाते रहे। इस समय स्वामीजी के साथ ग्राम अम्बहटा, जिला सहारनपुर निवासी मुंशी चंडीप्रसाद के प्रश्नोत्तर हुए। उन्हें हम सियालकोट से प्रकाशित "**धर्मसंवाद**" पत्रिका के अंक सं० ५ **पृष्ठ २,३,४ से यहां उद्धृत कर रहे है—**

प्रश्नः—वेद शास्त्र के अनुसार हिन्दुओं को किस-किस की उपासना करनी चाहिये और जन्मदिवस से लेकर मृत्युपर्य्यन्त क्या-क्या काम करने चाहियें ?

उत्तरः—नारायण (परमेश्वर) के अतिरिक्त और किसी की उपासना न करनी चाहिये। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिये और सत्य व्यवहारपूर्वक आजीविकार्थ तथा अन्य सांसारिक कार्य करने उचित हैं।

---

१. ये प्रश्नोत्तर प्रथम परिशिष्ट में छपने से रह गया। अतः हम इसे यहां दे रहे हैं। इन्हें प्रथम परिशिष्ट पृष्ठ ८२० पं० ३ से आगे जोड़ें।

प्रश्नः—प्रायः हिन्दू, उदाहरणार्थ कायस्थ, क्षत्रिय आदि, मद्य और शिकार (मांस) खाते-पीते हैं, सो यह काम भी करने उचित हैं या नहीं ?

उत्तरः—मद्य और शिकार (मांस) का खाना पीना न चाहिये और बुद्धि के अनुसार भी प्राणधारी का खाना अत्याचार में सम्मिलित है और वेद तथा शास्त्र की दृष्टि से निषिद्ध है।

प्रश्नः—भूत और चुड़ैल और जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ है या नहीं ? क्योंकि प्रायः लोग ऐसी घटना होने पर मुल्लाओं, स्यानों और कब्रों आदि से उनको भगाने की इच्छा करते हैं।

उत्तरः—भूत और चुड़ैल तथा जिन्न व परी की छाया कहीं कुछ नहीं हैं; यह लोगों का भ्रममात्र है। यदि ये कुछ होते तो फिरंगियों पर उनकी छाया अवश्य होती !

प्रश्नः—शरीर के नष्ट हो जाने पर यह आत्मा कहां जाती है ?

उत्तरः—मृत्यु के पश्चात् आत्मा शरीर से पृथक् होकर 'यमराज' अर्थात् 'वायु' के यहां चली जाती है।

प्रश्नः—मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म भी होता है या नहीं और स्वग और नरक का क्या वर्णन है ? कोई ऐसो बुद्धिगम्य युक्ति नहीं हैं कि जिससे आवागमन, तथा स्वर्ग और नरक का वृत्तान्त भलीभांति विदित हो जाय; कारण यह है कि जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त किसी को (कभी) विदित ही नहीं हुआ।

उत्तरः—पुनर्जन्म भी अवश्य होता है और स्वर्ग नरक भी सर्वत्र विद्यमान हैं। जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि के द्वारा पहचान सकता है कि पृथिवी और आकाश तथा मनुष्यों और पशुओं का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है; इसी प्रकार विद्याप्राप्ति के द्वारा वह स्वर्ग और नरक की परिस्थिति को यहां जान सकता है। दिल्ली दरबार के अवसर पर मुंशी कन्हैय्यालाल साहब अलखधारी से भेंट हुई थी और ज्ञात हुआ था कि वह भी आवागमन और स्वर्ग और नरक को नहीं मानते हैं। वह मुझसे एक ग्रन्थ ले गये हैं। मुझे विश्वास है कि जिस समय उक्त मुंशी महोदय उस ग्रन्थको भली भांति देख चुकेंगे तो उनका सन्देह निवृत्त हो जावेगा।

प्रश्नः—ईश्वर ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ? और उत्पन्न करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

उत्तरः—जैसे आंख का काम होता है देखना और कान का काम है

सुनता और देखने या सुनने में आंख या कान का कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु (वह तो उसका) प्राकृतिक स्वभाव ही है; इसी प्रकार सृष्टि को रचना करना नारायण का भी काम ही हैं और (सृष्टि को) उत्पन्न करने अथवा उसके संहार करने में उसका उद्देश्य कोई नहीं है।

प्रश्न.—आवागमन कबतक होता रहेगा ?

उत्तरः—इस विषय में तुम्हारा सन्तोष 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा वेद-भाष्य के एक-दो ग्रन्थ पढ़ने पर ही हो सकेगा; मौखिक रूप से बतलाने से तुम्हारा सन्तोष नहीं हो सकता।

प्रश्नः—ईश्वर ने सृष्टि कब उत्पन्न की थी ? और चारों युगों—अर्थात् सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग—में से प्रत्येक की कितनी-कितनी आयु (अवधि) है ?

उत्तरः—ऐसी बातें वेदों से भली प्रकार सिद्ध हो सकती हैं। प्रत्येक युग की अवधि भिन्न-भिन्न है, वेदशास्त्र के भाष्य से तुम स्वयं देख लोगे।

प्रश्नः—स्त्री और पुरुष का विवाह कितनी कितनी आयु में करना चाहिये और उनकी क्या विधि होनी चाहिये ?

उत्तरः—विवाह के समय पुरुष की आयु (कम से कम) २४ वर्ष और स्त्री की आयु (कम से कम) १६ वर्ष होनी चाहिये। विवाह के समय स्त्री-पुरुष इससे कम वय.-परिणाम के कदापि न हों और विवाह स्त्री (तथा-पुरुष) को अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिये क्योंकि पुरुष को स्त्री से और स्त्री को पुरुष से सारे जीवन भर निभाव करना पड़ता है। जब वे अपनी रुचि के अनुसार एक दूसरे के रूप, आकार, प्रकार और चाल-चलन तथा अन्य विषयों को देख लेंगे तो फिर सम्भव नहीं कि स्त्री और पुरुष में परस्पर झगड़े की कोई अवस्था उत्पन्न हो। नहीं तो (केवल) माता और पिता का पसन्द किया हुआ सम्बन्ध स्त्री (तथा पुरुष ?) को कब पसन्द हो सकता है ?

प्रश्नः—वेद के दृष्टिकोण से (बताइये कि) विधवा स्त्री अथवा विधुर पुरुष का (पुनः) विवाह होना उचित है या नहीं ? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता ?

उत्तरः—**विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिये** और पुरुष अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है; परन्तु उसकी मृत्यु

के पश्चात् उसको अधिकार है कि वह पुनः विवाह चाहे करे या न करे। ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिये।

प्रश्नः—गुरु किसको बनाना चाहिये और वह गुरु कितने गुणों से युक्त हो ?

उत्तरः—गुरु पिता आदि (माता पिता आदि) को बनाना चाहिये और जीवनपर्य्यन्त उनकी आज्ञा का पालन करे और उनकी प्रसन्नता का अभिलाषी रहे।

प्रश्नः—यदि कोई ब्राह्मण या वैश्य या कोई अन्य (जात-पांत का) व्यक्ति हिन्दूओं के धर्म में से, हानि और लाभ को समझे बिना, अथवा किसी मनुष्य के कहने-सुनने से मुसलमान या ईसाई हो जावे और उनके विवाह या मृत्यु आदि रीति-रिवाज में अथवा खानपान में कुछ दिन तक सम्मिलित रहा हो और उसके पश्चात् यदि वह व्यक्ति अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो उसको अपनी जात (बिरादरी) में सम्मिलित कर लेना चाहिये या नहीं ?

उत्तरः—निस्सन्देह; यदि वह अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो समाज को चाहिये कि उसको अपनी बिरादरी (जात) में सम्मिलित कर ले।

प्रश्नः—ईश्वर किस स्थान पर रहता है क्योंकि प्रकटरूप में तो उसका कोई रंग-रूप किसी की दृष्टि में आता नहीं!

उत्तरः—नारायण सर्वव्यापक है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान तथा (सबका) द्रष्टा है। जो कोई मनुष्य ज्ञान से अपने हृदय-दर्पण को शुद्ध रखता है, वह उसे देख सकता है। वस्तुतः तो अज्ञानियों की दृष्टि से वह दूर है।

प्रश्नः—ब्रह्मा के चार मुँह थे या नहीं ? और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या उसको वे पूरे के पूरे चारों वेद कण्ठस्थ थे ?

उत्तरः—ब्रह्मा के चार मुँह नहीं थे, प्रत्युत् चारों वेद उसके मुख में थे (कण्ठस्थ थे)। यदि उसके चारों ओर चार मुँह होते तो मूसको सोना और विश्राम करना तक भी अत्यन्त कठिन हो जाता! मूर्खों ने 'चारों' वेद कण्ठस्थ थे, इसके स्थान पर उसके चार मुंह कल्पित कर लिये!

प्रश्नः—ईश्वर ने जो पृथिवी तथा आकाश, सूर्य तथा नक्षत्र, दिन तथा रात, मनुष्य तथा पशु और भिन्न-भिन्न प्रकार की, भिन्न-भिन्न वर्णों और

आकृतियों को वस्तुएं बनायी हैं वे किसी सामग्री अथवा मसाले से बनायी हैं ? या और किसी प्रकार से बनायी है ?

उत्तरः—नारायण को किसी मसाले की आवश्यता नहीं है, वह तो स्वयं निर्विवाद रचयिता है और यै सारी वस्तुएं उसने माया अर्थात् प्रकृति से बनायी हैं ।

प्रश्नः—आपके कथन से विदित हुआ कि ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे और न किसी का कोई वर्ण था; परन्तु कर्म (व्यवसाय) के अनुसार वर्ण निश्चित हुए अर्थात् जो वेदशास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उपदेश करता था वह ब्राह्मण; और जो बाहुबल में वीर और प्रजा का पालन करता था वह क्षत्रिय और जो व्यापार अथवा कृषि करता था वह वैश्य और जो मजदूरी चाकरी आदि करता था वह शूद्र कहलाता था। इस लेख के अनुसार यह बात अवश्य माननीय हो जाती है कि यदि किसी चमार या भंगी या कसाई ने विद्या प्राप्त कर ली हो तो वह भी पंडित के तुल्य है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि वह चमार या भंगी या कसाई, जिसने विद्या प्राप्त की है, यह चाहे कि मैं किसी ब्राह्मण के घर में अपना विवाह करूं तो ब्राह्मण को भी यह उचित है या नहीं कि अपनी कन्या उसको विवाह दे ?

उत्तरः—यदि इन छोटे (अवर) व्यवसाय करने वालों में से किसी ने विद्या प्राप्त की हो तो वह वस्तुतः पंडित के तुल्य है परन्तु इस कारण कि बहुत समय तक अवर व्यवसायी मनुष्यों में उसका पालन हुआ है, आवश्यक है कि नीचता की गन्ध उसके मस्तिष्क से न जावे तो उसका ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध होना उचित नहीं।

प्रश्नः—हिन्दुओं में विवाह के पश्चात् जो मुकलावे अर्थात् गौने की प्रथा प्रचलित है; वह भी होनी चाहिये या नहीं; क्योंकि और जातियों में यह प्रथा बिल्कुल नहीं है; अर्थात् मुसलमान और ईसाई इस प्रथा को नहीं मानते ।

उत्तरः—यह निरा व्यर्थ है, यदि वेद में युक्ति-युक्त कारणों से इस प्रथा का उल्लेख होता तो उसका करना आवश्यक हो सकता था। जिन जातियों में यह प्रथा नहीं है उनमें (इसके अभाव में) क्या बुराई है ?

प्रश्नः—दशहरा, होली, दिवाली आदि हिन्दुओं के त्यौहारों में जो प्रथायें अब प्रचलित हैं, वे भी ठीक हैं या नहीं ?

उत्तरः—होली और दीवाली आदि उचित रूप से (मनाने) चाहिये।

प्रश्नः—स्त्रियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिये या नहीं ?

उत्तरः—स्त्रियों को विद्या अवश्य पढ़ानी चाहिये क्योंकि बिना विद्या के मनुष्य की बुद्धि पशु की बुद्धि के तुल्य है।

प्रश्नः—हिन्दू लोग जो पंडितों से जन्मपत्र लिखवाते हैं और पंडित लोग मीन, तुला, कुंभ, धन, मकर की राशियों का वृत्तान्त शास्त्रीय पत्रे से जानकर मंगल, सूर्य और शनि को खोटी दशा और हानि-लाभ बतलाते हैं; जिनमें से प्रायः बातें तो ठीक निकलती हैं और बहुत सी अशुद्ध भी होती हैं—इसका क्या कारण है ?

उत्तरः—यह जन्मपत्र नहीं प्रत्युत रोगपात्र है। पंडित सब-किसी को खोटी दशा के जप करने के लिये अवश्य कुछ न कुछ बतलाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं माना करते।

प्रश्नः—भारत के लोग स्त्रियों को, इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों परदे में रखते है और ईसाई अपनो स्त्रियों को परदे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखायी देती हैं; (इसका क्या कारण है ?)

उत्तरः—स्त्रियों को परदे में रखना आजन्म कारागार में डालना हैं। जब उनको विद्या होगो वह स्वयं अपनी विद्या के द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं। परदे में रहने से सतीत्वरक्षा नहीं कर सकतीं और न बिना विद्याप्राप्ति के बुद्धिमती हो सकती हैं। और परदे में रखने को यह प्रथा इस प्रकार प्रचलित हुई कि जब इस देश के शासक मुसलमान हुए तो उन्होंने शासन की शक्ति से जिस किसी की बहू-बेटी को अच्छी रूपवती देखा उसको अपने शासनाधिकार से बलात् छीन लिया और दासी बना लिया। उस समय हिन्दू विवश थे; इस कारण उनमें सामना करने की सामर्थ्य न थी। इसलिये अपने सम्मान की रक्षा के लिये उन्होने अपनी स्त्रियों और बहू-बेटियों को घर से बाहर जाने का निषेध कर दिया। सो मूर्खों ने उसको पूर्वजों का आचार समझ लिया। देखो, मेमों अर्थात् अंग्रेजों की स्त्रियों को वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी होती हैं !

—:०:—

नवम परिशिष्ट

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत वचनों की सूची

विशेष—(१) उद्धरणों के आगे जो संख्याएं दी हैं उनमें प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी पंक्ति की।

(२) यदि एक उद्धरण एक ही पृष्ठ में एक से अधिक बार उद्धृत हुआ है तो उसका एक बार ही निर्देश किया है।

अग्निमीळे० २५,३।८६५,३।८९५,३
अग्निरुष्णो जलं शीतम् ४३०, १६
अग्निर्देवता २५,१
अग्निर्द्रविणोदा अश्वो वायुः ८९६,१९
अग्निवायुरविभ्यस्तु ४९०,१५
अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्ग० ८९७,४
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रि० ४३०,१४
अग्नेर्नूनं कतमस्यामृता० ५९३,४
अग्नेर्वै ऋग्वेदो जायते ४९०,१५
अग्नेर्वै देवानामवमः ८१८,५
अतिथि देवो भव ५२०,९
अथ स यदा पितॄनाह्वयति १५,१५
अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः ३९१,६
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति ८९५,१५
अद्रिरित्यादिषु मेघस्य ७५,१
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः २५,७
अनाम्नातेष्वमन्त्र० ८६९,१।८७०,१५
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽस० ८८६,८
अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे २७,८
अपि वा प्रयोगसामर्थ्यात् ८९८,३१
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं० ८९५,२६
अविज्ञातेऽर्थं तत्त्वे कारणोप० १९,१
अविमुक्ते कृतं पापम् २७,१२
अविमुक्ते तव क्षेत्रे ८७५,२१।
अश्वस्यात्र शिश्नं तु ४३१,६
अस्नात्वा नैव भुञ्जीत ८७५,३१
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणम् ७४,२८
आचार्य देवो भव ५२०,८
आत्मा वा अग्निः ८९६,३२
आत्मेत्येवोपासीत। स यो० ८८६,२७
आत्मैव देवताः सर्वाः २४,७
आम्रान् पृष्ठः कोविदारान् ५९७,२
आवृक्णेन रजसा ५०,६
आसमुद्रात् तु वै०; १६१,२७।१७२,१

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदु:ख० १६३,१०
इदं तीर्थमिद तीर्थं भ्रमन्ति ८९५.८
इन्द्रशत्रुरिन्द्रोऽस्य शमयिता ७५,४
इन्द्रागच्छेति गौरावस्कन्दिन् ७४,१
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति ८२१,९
उत त्वं सख्ये स्थिर पीतमाहु: ८४०,१७
उत न: सुभगां अरि० ९९,२१
उतब्रुवन्तु नो निदोनिरन्यत: ९९,२१
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यत: ८७४,२१
एक: प्रजायते जन्तुरेक० ८९२,१५
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये २४,११
एताश्चान्याश्च सेवेत०८६६।९।८७३,१
एतिजीवन्तमानन्द: ६६२,८।६७९,१७
एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणि० २८,१
एष एवेन्द्रो य एष तपति ७४,७
कारकं चेद् विजानीयात् ३९०,२४
काश्यां मरणान्मुक्ति: २७,२४
कुर्वन्नेवेह कर्मा० १६२,२२।१७२,२३
खननाद् दहनाद्० ८७७,१७,८८३,१२
गीतिषु समाख्या० ८६९,२।८७१,१९
गुरो: प्रेतस्य शिष्य० १६५,१।१७४,२९
गौणमुख्ययोर्मध्ये मुख्ये ५९५,४
गौरी वा गौरीपति० ८७६,४।८८२,३
चक्रवर्ति शब्दस्य क: पदार्थ: ३९१,१
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ३०,१२
चित्तस्य आलम्बने स्थूल: १३,६
चेष्टेन्द्रियार्थाश्रय: शरीरम् ३९०,९
जर्फ़री तुर्फरीत्यादि पण्डित० ४३१,९
जामयो यानि गेहानि ७४,२७
जार आ भगम् ७४, ५
ज्योतिर्मार्ग आदित्य: ७३, १
तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ८६८, १५
तज्जपस्तदर्थभावनम् २९,२०
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणै: ४३१,४
ततो यदुत्तरे तद्रूप० ८८६,१५
तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति ७२,२०
तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् २९,२७
तदा द्रष्टु:स्वरूपेऽवस्थानम् ३०,२४
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशू० ३०,५
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति० ८८६,१२
तमिदं निगतं स० १५८,१५।१६९,२०
तमेव विदित्वा इति मृत्यु० ८८६,१९
तव श्रियै मरुतो मा० ८७५,९।८८०,१३
तस्मिन् देशे ध्येयालम्बन० २९,२८
तस्य वाचक: प्रणव: २९,२३
तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता: ७५,१६
तुलामानं प्रतीमानं सर्वम् २०,२२
तेन पितृलोकेन महीयते १५,२२
तेषामृग्यत्रार्थवशेन० ८७१,७।८६९,२
त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्य: ३०,८
त्रयो वेदस्य कर्त्तार: ४३१,८
दृष्टान्ते सर्वविषयाणां साम्य: १७,८
देवो देवानामसि मित्र: ३२१,६
देशबन्धश्चित्तस्य धारणा २९,१३
द्यौर्न पिता जनिता नाभिरत्र ७२,२१
द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति ८९०,२१
ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ३०,१३
न तस्य प्रतिमा अस्ति ८८६,१
न द्वितीयो न तृतीय०१५८,१२।१६९,१९
न निवर्तयति य: श्राद्धम् ८७८,२९
न पञ्चमो न षष्ठ:०१५८,१३।१६९,१९
नमस्ते रुद्र मन्यवे० ५९६,१५
नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठा० ५९६,१५
नमो ब्रह्मणे नमस्ते० ४३।९।५९६,१६

न स्वर्गो नापवर्गो वा ४३०,१८
नात्यन्तोच्छेदः ५९३,१०
नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ३०,१४
नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके २९,१४
नामुत्र हि सहायार्थं पिता ८९२,१३
नाष्टमो न नवमो न१५८,१४।१६९,२०
नासिकाग्रे धारयतः १३,१४
नासिकाग्रे धारयतो[ऽस्य]या २९,८
नास्तिको वेदनिन्दकः ५९५,२२
नास्ति सत्यात् परो धमः ७५०,१४
नित्यं स्नात्वा शु० ८७५,२९।८९१,१०
निन्दन्तु० ५५४।२०।५६९,१०।५९८,४
निवीतं मनुष्याणां० ८७५,१५।८८९,५
पञ्चक्रोश्यां कृतं पापम् २७,१०
पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे ३९०,१०
परमर्षिभ्यो नमः ५९६,१६
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गम् ४३०,२२
पितृदेवो भव ५२०,८
पितृयज्ञं तु निर्व० ८७८,२६।८९१,२३
पुरुषाः सुलभा राजन् सततम् ७४४,६
प्रजापतिः सविता ७२,१९
प्रजापतिर्वै स्वां दुहितमभ्य० ७२,१६
प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरम् १४,५
प्रधानाप्रधानयोः प्रधानेकार्ये ७४५,१४
प्रवृत्तिरुत्पन्न मनसः स्थिति० २८,११
प्रातिभाद् वा सर्वम् ३०,१६
प्राणापाननिमेषोन्मेष० १६३,१२
प्रशासितारं सर्वेषा० २४,९।८६६,६
बुद्धेः फलमनाग्रहः २६६,२१।८६२,१
ब्रह्म ह्यग्निः ८९६,३१
भास्करं गणपञ्चगस्मिशंखं० ८७६,१
भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ३०,११
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ८९६,१२
मन्त्रस्तु विरोधे स्यात्० ८७२,२३
महादेवं महापुरुषं वार्चयेत् ८७६,६
मातृ देवो भव ५२०,८
मानसोऽग्निर्जीवः १६३,२१
मा नस्तोके तनये मा १५९,११।१७०,१०
मानो महान्तमुत० १५९,८।१७०,८
मानोवधीरिन्द्र मा परा १५९,५।१७०,४
मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ३०,१५
मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्तौ ८८७,१३
मृतंशरीरमुत्सृज्य ८९२,१७
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धम् ४३०,२४
मृताहं समतिक्रम्य चाण्डाल ८७८,२३
य आत्मनि तिष्ठन् ५९१,१४
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः २३,१६
यत्किञ्चिन्मनु० ८६५,२०।८६६,२५
यत्तदग्रे विषमिव० ७४६,२१
यत्र देवतोच्यते तत्रलिङ्गो० २४,२१
यथभिमतध्यानाद्वा २९,५
यथा योधृषु वर्तमानो जयः० ७४४,१२
यथा राजा तथा प्रजाः ७४५,२१
यथोवतोपपन्नश्छलणाति० १४,१७
यदि गच्छेत् परंलोकम् ४३१,२
यदि विप्रः सनत्सभ्ये हे व चा०८७६,१०
यदेवामितं तदेव ध्यायेत् २९,६
यद्यदाचरति श्रे० ७०७,२३।७४५,१७
यद्वित्तं यज्ञशीलानां देवस्वं २५,१९
यमो वैवस्वतो दे० ७७९ ९।८९४,११
यवं वृकेणाश्विना० १६१,१४।१७१.२३
यस्तित्याज सचिविदं स २४०,२०

यस्यात्मबुद्धिःकुणपे ८८७ १८
यां मेधां देवगणाः० १५८,२३।१६६,२८
यावज्जीवं सुखं जीवेत् ४३०,११
यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ४३०,२८
यावान् जागरितावस्थावि० १४,११
या वेदबाह्याःस्मृतयो याश्च ८७४,१९
युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलि० ५९२,६
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ३०,२६
योवै ब्रह्माणं विदधातिपूर्वम् ५९० २२
रथो रंहतेर्गतिकमणः ५४,३०
रात्रिरादित्यस्य, आदित्यस्यो० ७४,३
रेतः सोमः ७४,३
लुम्मनुष्ये ५१८,१०
वक्ष्यमाणाद्भुतवामाधकारो ८७७,१६
वचनाद् रथकारस्य ८७७,३३
वर्षासुरथकारोऽग्निमादधीत ८७८,१
विजानीह्यार्यान्० १६१,१।१७१,१५
विद्वांसो हि देवाः ५२७,७
विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यम् ८६८,३१
विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपम् ३०,२८
विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ३९०,१९
विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति ८७४,९
विशोका वा ज्योतिष्मतो २८,१०
विश्वानि देव स० २४०,१५।६२४,१३
विश्वारूपाणि ७५३,६
विश्वे देवास आगत ५२७,६
विषयवतीवाप्रवृत्ति० १३,१३।२७,२८
विषयेन्द्रियसंयोगाद् ७४४,१६
वृत्रो ह वा इदं सर्वम् ७५,९
वेदाहमेतं पुरुषम् १६३,६
वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ८७३,२४
शन्नोमित्रः शं वरुणः ४३,७
शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञः ५९५,१४
शालिग्राम शिलातीर्थं पिबेद् ८७६,२
शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यङ्० ७२,२३
शिवलिङ्गसिसन्ध्यमभ्यर्च्य ८७५,२८
शेषे ब्राह्मण शब्दः ८६८,१६।८६९,१
शेषे यजुःशब्दः ८६९,३।८७१,२०
श्रुतिस्मृतिपुराणनांविरोधो० ८७४,२९
श्रेयांसि बहुविघ्नानि ५९८,१४
सक्तुमिव तितउना पुनन्तः २४०,२३
संक्रमध्वजयष्टीनाम् २१,५
सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव ८९०,२२
सत्यमेव जयति० ७५०,१४।७६२,१५
सत्येन पन्थां विततो देवयानः ७५०,१४
सत्ये नास्तिभयं क्वचित् ७५०,१५
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता ७४७,१
स परन्दिवमन्वाव० ८७७,२।८८२,१५
सपर्यगाच्छु० १५७,२६।१६९,४।८८६,४
स पृथिवीम् अन्वावर्तते ८७७,२१
स प्रतिपक्षस्थापना हीनः १४,१८
स ब्रह्मा सविष्णुः स रुद्रः ८७६,२६
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मर० ६६८,११
सर्वमात्मन्यवस्थितम् २४,१६
सरस्वतीदृषद्वत्यो० १६१,२५।१७१,२९
सर्वेनन्दन्ति यशसागतेन २४०,२१
सहनाववतु सहनौ भुनक्तु २४०,२६
सहवासी विजानीयाच्चरितं ६४०,९
साधर्म्य वैधर्म्योत्कर्षापकर्ष० १४,१४
सापेक्षमसमर्थं भवति ३९१,१०
सितासिते सरितौ० ८७९,४।८९२,२३
सीमासन्धिषु का० ८७७,२५।८८३,१६
सुमित्रिया न आप० १६३,१।१७२,२४
सूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः ७४,४

स्मृतिः प्रत्यक्षमै० ८६६,१३।८७३,१४
स्वप्नज्ञानावलम्बनं निद्रा० २८,३१
स्वनिद्राज्ञानावलम्बनं वा २८,३०
स्वरूपेसाक्षाद्वती प्रज्ञा १३,१९
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिम् ४३०,२६
स्वाध्यायेनार्चयेद् ऋषीन् २५,९
हनिकुषिनीरमिकाशिम्यः ५४,९
होमैर्देवान् अर्चयेत् २५,१३

—:०:—

दशम परिशिष्ट

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम

विशेष— (१) इस नाम सूची में पत्र और विज्ञापनों के मध्य उल्लिखित व्यक्तियों के नाम दिये गये हैं। जिन व्यक्तियों को पत्र लिखे गये उन की सूची द्वितीय भाग के आरम्भ में दी है।

(२) इस सूची में जिस व्यक्ति का नाम एक पृष्ठ में एक से अधिक बार आया है उनका एक ही बार उल्लेख किया है।

(३) सूची में प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी संख्या पंक्ति की। दोनों भागों की पृष्ठ संख्या क्रमिक होने से भाग का निर्देश नहीं किया है।

(४) जिन अंग्रेजी पत्रों का भाषार्थ दिया है उनमें नामसूची में मूल अंग्रेजी पाठ की पृष्ठ पंक्ति संख्या दी है।

अनुभूति सरूप आचार्य १०८,४
अभयराम चुन्नीलाल ३३८,१२।५१०,१२
अमरचन्द ५७२,२०
अमरदान[1] ८०१,१
अमरनाथ ३३७,८
अमृतलाल ५३२,२५
अम्बाप्रसाद वकील २४,१५
अम्बाशंकर ४१०,६

---

[1] इसका शुद्ध नाम उमरदान था। इनका 'उमर' काव्य राजस्थान में प्रसिद्ध है।

अर्जुनसिंह ६५४,७।६५५,१२

अलकाट[1], अल्काट साहब—देखो एच० एस० आल्काट।

अविनाशीलाल ३३५,१८

अहमद अली १८६,१७

अहसन उल्ला १९५,२८।१९६,२

आत्मानन्द सरस्वती ५२१,९।५८८,१।७९४,१६

आत्माराम (जैन साधु) ४०५,४।४३०,२।४३१,२३।४३२,५।४५३,१९।४६७,५

आनन्दीलाल ३७९,२०।४०७,७।४८६,११।७७७,१५।७९०,३

आर० ग्रिफिथ १०४,४।१०५,५

आलकाट साहब देखो—एच० एस० आलकाट।

इ. एफ. सिनेट साहब ३००,६

इन्द्रनारायण (पण्डित) ३३३,५

इन्द्रमणि (मुंशी) १३३,१९।१८७,१७।१९१,१६।१९२,१६।२७५,५।२८९;५।२९६,१।३००,१।३३६,१७।३६९,११।३७४,१।३७८,११।३७९,१८।३८०,४।३८३,१।४०१,१०।४०३,९।४०७,१४।४१६,२३ ४२७,३।४२९,२४।४६४,७।४८०,१४।४८८,१।५०४,५।५७५,१३।५८९,३।५९०;२७।५९१,२०।५९५,२३।५९७,१३।६४०,८।६४२,३।६४९,३।६६०,७।६६७,२१।६६८,९।६७८,३।६७९,१९।६८१,२।६८२,१५।६८३,१५।७०४,४।७०५,१४।७६३,११।७९३,१४।८२०,१०।८४३,९

इन्द्रमन—देखो इन्द्रमणि।

ईश्वरदास ४८१।२

ईश्वरानन्द ६८३,३।६८५,२२।६८६,१८।६८७।१८

उदयलाल (पुरोहित) ६३९,११।७३४,३।७३६,१४

उदयसिंह ६५४,१०

उमरावसिंह १८०,१८।२२५,२०।२५६,१६।२५७,१८।२७४,८

उव्वट ९७,२७

एच० ओ० ह्यूम ७३८,२५।७३९,१५।७४३,१२

एच० एस० आलकाट—२५०,१९।२६३,४।२६४,३।२६७,५।३११,५।३६५,२७।३६७,८।३८३,१८।४०१,७।४१७,१७।४५०,१७।४८९,२५।४९०,४।५४९,१६ ५५०,२२।५५२,१।६६०,६।७३९,२७।७४७,२१।८५३,१

---

[1] यह नाम अनेक प्रकार से लिखा गया है।

एच० पी० ब्लेवत्सिकी[1] २५४,१९।२६३,५।२६४।२३।२६७,५।२७८,६।३११,५।३६५,२७।३६७,९।३७१,१।३८३,२०।४५३,१६।४९९,११।५४९,१६।६६०,७।८७२,३।८५३।१
एच० चिन्तामणि—देखो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ।
एच० टी० कोलब्रुक १०५,१०
ओंकारमल २५८,२
ओलकाट—देखो एच० एस० आलकाट।
कञ्चनसिंह (ठाकुर) २७१,१५
कन्हैयालाल (मुंशी) १९१,१६
कबीर २७,३।८८२,२९
कमरदान[2] ८०८,५
कमलनयन आचार्य ५९,६
कमलनयन (बाबू) १५२,१७।१८०,१६
कर्नल ओलकाट—देखो एच० एस० आलकाट।
कल्याणराव ६१,७
कल्लू ७८९.१
कविराज (श्यामलदास) देखो श्यामलदास (कविराज)
कान्तचन्द ४०९,१७
कारी (carey) ९८,५
कालोचरण, कालोचरण रामचरण ३३४,४।३४२,१८।३५४,७।३५७,२०।३८३,६।४८४,८।५६७,१८।५७०,१।६१५,५।६५५,२२।७४२,१२।७९०,१
कालूराम (पण्डित) ५५८,६
कालूराम खजान्ची १५०,७
कालूराम सेवाराम ३३६,१५
काशीनाथ गाडगिल ६१,५
काशीराज ९,८।२०,३।३३८,२८
किशनलाल ४५२,२
किशन सहाय ३८६,११।८२४,९
किशन जी बारहट ७०८,१३
कुक साहब ५५२,२४

---

[1] यह नाम अनेक प्रकार से लिखा गया है।

[2] क्या यह अमरदान नाम का भ्रष्ट पाठ है ?

कुतुहुबीलाल सिंह[1] ७२९,२४
कुन्दन ७८९,१
कृपाराम स्वामी ३९९,४।४३२,१४
कृष्णराव बिट्ठल ६१,८
कृश्नाराम इच्छाराम ५७२,१७
केवलकृष्ण ६८०,१७।६८२,१
केशरीलाल २३६,७
केशवचन्द्र ३५०,१७
केशवराम गोडबोले ६१,४
केशवलाल, केशवलाल निर्भयराम ६३,९।१४,४।२७६,११
केसरीसिंह ६९८,११
कैयट १००,४
कोटहूमीलाल ५५३,२४
कोटहूमी सिंह ५५३,२६
कोलब्रुक ९८,५
क्षयानन्द (बाबा) ४८५,१३
गंगाराम भाऊ ५९,१३।६१,६
गंगाराम साहब (पण्डित) ८२४,९
गंगेश स्वामी ६५,१८
गजसिंह (महाराज) ६०८,३।६५४,८।६६५,१३
गणपतराव (डाक्टर) ७८३,१२
गणेशदास ७९७,९
गणेशदास एण्ड कम्पनी ६७७,२०
गणेश पुरी ७५४,५।७८२,१
गणेशराम (रईस) ३५८,१
गणेश श्रोत्रिय ३४,९
गणेशी लाल ३६९,१९
गणेशी लाल (साहब) ८२४,१२
गनेश दास (पु० विक्रेता) ६८५,१७
गिरजा शंकर दुबे ४७४,७।४७५,४

---

[1] द्र० कोट हूमीलाल, कोटहूमीसिंह।

गिरधरलाल गिरधारीलाल, गिरिधरलाल,(वकील) ४६३,१२।४७९,७।४५१, ३।४८६ १२।४८७,९
गुरुमुख राय (रईस) ३५८,२
गुरुप्रसाद (पण्डित) १०७,११।१०९,१
गुलाम हैदरखां साहब (सबरजिस्ट्रार) २७३,३
गेंदनलाल(पण्डित) ८२१,१
गैरेट (पादरी) १०६।२
गोकुले बाबा ६१,५
गोतममुनि २१,२४
गोपाल ३३।११
गोपाल······३५१,२०
गोपालदत्त ३३।१५
गोपालराव हरि (फर्रुखाबाद) ४२९,१३
गोपालराव हरि देशमुख १८७,१८।२२१,१३।२३०,१६।२३४,९।२३५,४।२७६, १९।२८३,१५।५५१,२६।६५५,२६
गोपालसिंह (ठाकुर) ५८७,६।७०६,११
गोपीनाथ (चौबे) ३७९,७
गोविन्दराम (पण्डित) २७२,२२
गोविन्द सिंह ६७७,८
गौरीशंकर (वकील) ४८४,१५
गौरीशंकर (पण्डित) ७७२,७।७७३,२।७९४,२७
ग्रिफिथ—देखो आर० ग्रिफिथ
चतुर्भुज ८७२,२
चार्ल्स कोलमैन १०६,१
चूड़ामणि ४८१,३
छगनलाल (मन्त्री मसूदा) ५१५,१०
छबिलदास, छबिलदास लल्लूभाई (से०) ६०,९।८५,१४।५२३,२४
छीतरदत्त ७२७,१।७३२,८।७७८,१६
छेदीलाल (गुमास्ता) २६९,२०।३४०,१९।३८३।१०।४१०,८।४८६,९।४८७,१७। ५४९,१४।५५१,८।६५५,२३।८२४,१५

जगदम्बाप्रसाद ३५१।१५
जगन्नाथ साहब (पण्डित) ८२५।३
जगन्नाथप्रसाद (लाला) ३४२,१५।३८३।४।३५७;२१।४८५,२
जगन्नाथदास (मुरादाबादी) ५७४,८।५७५,७।५८७,१४।५८८,८।५८९,३।५९०,३।५९१,१५।५९५,२३।५९७,१२।६०४,२०।६४०,७।६४५,१७।६४६,२६।७०४,४।७०५,१४
जगन्नाथप्रसाद (रईस) ६५५,२०।७८९,२७
जमनादास (हिसाबदां) ४७९,६
जयकिशनदास (राजा) देखो जयकृष्णदास (राजा)
जयकृष्णदास (राजा) ६०,१३।७९,१।३२६,३।३८२,१७।४०६,१२।४५५,३।४८१,१।५७७,४।६५५,१६
जयकरण (जयकर्ण) ७४३,११।७५०,८।७८२,१६
जवाहरसिंह (कुंवर) ६१६,७।६२१,५
जवाहरसिंह (लाहौरी) ७१९,५।७७८,६
जसवन्तराय (डाक्टर) १३८,१५
जालमसिंह, जालिमसिंह (ठाकुर) ३५३,१३।४८१,४।५७२,१९
जीवनदास (लाहौरी) १०३,१४।१४१,६
जीवाराम टीकाराम ३५१,१५।३५३,१९
जुगलकिशोर ३१३,१
जुगलबिहारी शर्मा २२६,१०
जैकर्ण—देखो जयकरण।
जैमिनी ८२५,२२।८७२,१३
जैसराज (जैसोराम) गोटेराम ३०१,४।३१३,२।३२६,११।३३८,१०
जोन्स ९८,५
ज्ञानसिंह १५५,१६
ज्योतीन्द्र मोहन ठाकुर ११,३
ज्वालादत्त (पण्डित) ४३३,३।४३८,१९।४३९,२३।४५८,१४।४७६,९।४८२,४।५२९,५।५६६,३।६१२,११।६१४,२६।६३८,१५।६६९,७।६८६,१९।६९७,१४।७२६,१८।७६०,४।७६३,१५।७६६,६।७६८,६
ज्वाला प्रसाद (कुंवर) ४४,९।४५५,४
ज्वाला प्रसाद भार्गव ४८७,५
ठाकरदास (जैनी) ४३१,२८।४३४,८।४३५,४।४६७,२०

तख़्तसिंह (राव बेदले) ६५४,६।६५५,१०
ताराचरण तर्करत्न ६.६।११,१७।१२,४।१३,३।१५,२५।१६,२७।३१४,१५
ताराचरण शर्मा—देखो ताराचरण तर्करत्न
तारानाथ वाचस्पति ८७६।१४
तुलसीधर (लाला) ८२५।१
तुलसीराम यादवजी १४६,१३
तेजसिंह (रावराजा) ६६४,५।७०३,६।७१४,१३।७३०,१६।७३२,१४।७४३,१२
७५ ,१४
तोताराम ४२५,४।४२६,११।४२७,१२।४२६.४।४३३,६
त्रिलोचन ५४२,१३
दयाराम ५४६,१३।५६४,२१।५७१,३।५७२,१०।५७६,१५
दामोदर शास्त्री ६७६,१४।७२२,३।७२५,३
दामोदर (मुंशी) ७०७,६।८०८,८
दाराशिकोह २००,३।
दिनेश राम ३३,६
दुर्गाप्रसाद (मिश्र काशी) ३४,५
दुर्गापरशाद (हरप्रसाद का पिता) २७२,२४
दुर्गाप्रसाद (रईस) ३५७,१६।३७८,२।३८३,२।४०८,१२।६५५,१६
देवीदत्त ४०४,२
देवीप्रसाद (पण्डित) ६१०,२१।७०१ १२
देवीसिंह (चौधरी) ३६६,१५
धावाई हरलाल ७६७,११
नन्दकिशोर (पण्डित) ७६३,८
नन्नी, नन्ही (वेश्या) ७८०,२३।७८१,७
नरसिंह थापा ३३३,२३
नरायनसिंह (ठाकुर) देखो नारायणसिंह (ठाकुर)।
नवलसाहब (पादरी) १६२,८
नवीनचन्द्रराय ५६२,६
नागेश (भट्ट) १०८,४
नाथूराम ७५०,८
नानक (सिख गुरु) २७,३।८८२,२५
नारायण जी (टाकुर) ५०,३।२७१,१४

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
Library

नारायणदास (पण्डित) २७२,२२
नारायणदास (इन्द्रमणि का पुत्र) ३०५.३
नारायनदास (लाला)—देखो नारायणदास (लाला)
नारायणदास (लाला-रईस) ३४२,१७।३५८,३
नारायणदास (मुख्तार) ४६३,८।४८३,१० ४८४,११।४८७,११
नारायणसिंह (बाबा) ११४,१३
नाहरसिंह (शाहपुराधीश) ५८३,५।६००,१३।६५५.९।७१३,१
निर्भयराम, निर्भैराम (सेठ) ३३८,८।३४२,१६।३५१,१३।३५२,२।३५७,१९।३८३,५।४५७,८।४७३,१०।४८१,९।४९२,७।५००,१४।५७८,२२।६०६,७।६५५,२१।७२१,४।७८९,१२
निर्भयराम (मुम्बई) ६१७,१०
नेकराम २७२।२६
पद्मनाथ (पुरोहित) १५०,१७।६५४,९
पन्नालाल (बाबू) ४७९,६
पन्नालाल (दा० रा०) ६५४,८
पन्नीलाल (साहूकार) ८१७,३
पीटर डैविडसन (स्काटलैण्ड) २८२,३
पुण्डरीक ७२७।१
पुरुषोत्तमदास (पण्डित) ३७८,१५
पूर्णानन्द (स्वामी) ४७,१९
प्यारेलाल (मुंशी) १८८,११।१९२,२३
प्रतापसिंह (महाराजा) ६९३,१२।६९४,५।६९८,११।७०९,१०।७०७,१०।७०८,६।७१४,१३।७२५,१९।७३०,१८।७३२,१४।७४३,१२।७५०,२०।७५३,१४।७८०,९।८०१,१।८०८,६
प्रसादीलाल (लाला) ४७३,११
प्रागदत्त (पण्डित) ४८२,३
प्राणजीवनलाल कानदास ६२१,२
फतहकरण (विजयकरण) ६७५,६
फतहसिंह (राज्यराणा) ६५५,११
फतेसिंह (ठाकुर) २३६,१।३४५,१७।३५७,१२
फतेसिंह (जोधपुर) ७०७,११
फैजुल्लाखां ७१२,६।७१४,१४।७१६,२।७२८,३।७३०,२३

बख्तावरसिंह २१२,९।२९६,२।३००,१२।३१०,८।३१२,९।३१९;९।३२२,१६।३७८,७।४२५,१५।४२९,६।४३९,२६।४४१,१।४५१,७।४५५,८।४५९,९।४६२,१२।४६७,८।४७४,१०।४७९,४।४८०,२४।४८२,८।४८३,७।४८४,९।४८५;१।४८७,१६।४९७,१९।५०६,९।५०८,८।५१०,१४।५११,१९।५२७,१८।६११,६।६५४,१०।६६८,१।७६१,८।७७३,१३।७७४,५
बदरी (भृत्य) ७७७,१४
बद्री प्रसाद ४०९,५
बर्नफ श्लेगल ९८,७
बलदास (लाहौर) १४१,६
बलदेव (श्री कृष्ण ज्येष्ठ भ्राता) ११२,१
बलदेवदत्त ४८,७।५२,२१
बलदेवदास (लाला) ३००,१४।७२१,१
बलदेवसिंह ३९९,८
बलदेवसिंह (हकीम) ८२४,१३
बल्लभदास, बल्लभदास बिहारीलाल १५५,१५।२११,७
बल्लभदास लाला खजानची (गुरुदासपुर) २९६,५।५६६,६
बल्लभदास (लाला गोरखपुर) ४७२,१६
बहादुरसिंह वर्मा (राव मसूदा) ६५५,१४
बाप्प ९८,७
बाबा गोकुले ६१,५
बाल (मजिस्ट्रेट, काशी) ३१७,७
बालकराम वाजपेई ७५३,१
बालमुकुन्द केसरीचन्द (लाला) २१४,१४
बालमुकुन्द (पडित) ७०१,१२
बालशास्त्री (काशी) ३१४,५।३३९।१
बालादत्त शर्मा ७५२,७
बिट्ठलभाणा ७२०,५।७७१,१४
बिहारी ३८१,६
बिहारी चौबे ३५३,११
बिहारीलाल (पण्डित) ४६३,१८
बिहारीलाल (डाक्टर) ३००,१४।३८३,१२।६६०,८
बिहारी लाल (साह) ७२१,१
बिहारीलाल बाबू (मेरठ) ३६६,१६

बेचरभाई ५२,३
बेचरदास अम्बाईदास ६१,२१
बैनफी (प्रोफेसर) १००,२७।१०१,११
बोल्लेनसन (प्रोफेसर) १०१,९
ब्रह्माजी ४९० २५
ब्लवत्सकी ब्लेवेटस्की—देखो एच० पी० ब्लेवत्सिकी
भगवानदास (पण्डित) १०९,८
भवानीराम (सेठ) ४७३,९
भवानीसिंह (डाक्टर) ६७६,११।७८३,१२
भागराम (पण्डित, जज) ४७३,११
भीमसेन शर्मा (पण्डित) २७२,२६।३०९,६।३३३,२३।३२५.१६।३३६,२६।३३७, १६।३४४,१८।३४५,५।३५२,१।३५७,१३।३८१;१२।४०४,३।४२६,७।४२९, ७।४७८,८।४८१,११।४९५,६।५१४,६।५१७,२।५२२,२१।५४६,१०।५६४,८। ५७२,११।५८४,८।५८६,६।६०९,७।६१२,१५।६१४,२९।६१६,७।६२१,६। ६५०,१।६६९,५।६७३,५।६७६,१५।६७७,१४
भूदेव मुकुर्ज्या १२,१४
भूपालसिंह (ठाकुर) २७१,१५।.९५,७।४७९,१७।७६४,१
भैरव (कहार) ३३३,२३
भोलानाथ, भोलानाथ साराभाई ५२,३ ५७,१६।६१,२०
मज्कूर मास्टर ४२९,३
मण्डनराव–मण्डनराम ५२,२१।४८,७
मथुरादास लौजी ६०।८
मनसुखराय ११२,२
मनोहरसिंह (ठाकुर) १५०,१७।६५४,१२
मन्नासिंह (ठाकुर) २७१;१४।३०३,९
मन्नीलाल (पुरोहित) ३४२,१७
मलूकदास ३२,६
महादेव (पण्डित) ६८३,७
महादेव गोविन्द रानाडे ५९,१२।६०,८।६१,४।३८३,१७।६५५,२८
महावीर प्रसाद ३११।१
महीधर (वेदभाष्यकार) ९७,२७
महीपतिराम शर्मा ५२,३ ५७,१८।६१,२१

महेशचन्द्र न्यायरत्न ८६५,१५।८७५,४।८७६,१६।८९५,२६।८९७,२

माणिक (डाक्टर) ५७,८

माधवदास—देखो माधोलाल।

माधवराव मोरेश्वर कुण्टे ५६,१३

माधवप्रसाद—देखो माधोलाल

माधोलाल (दानापुर) २१०, १।२९६,१०।३०१,२।३८३,१४।६५५,२४

मानसल (कर्नल) १८६,१४

मानसिंह २१०,१७

मुकुन्दलाल (सब रजिस्ट्रार) ३८६,२१

मुकुन्दलाल (जागीरदार) ६५४,६

मुकुन्दसिंह (ठाकुर) ७६,१।१७६,११।२०६,१६।२७१,१४।२७३,२।२७४,१।२९५, ७।३००,६।४०७,११।४७६,१६

मुन्नालाल (मेरठ) ३८६।११

मुन्नालाल (अजमेर) ६०२,११।६०५,१२।६०६,१४

मुन्नासिंह (ठाकुर) २७४,१।२९५,७।२९७,३।३००,६।३०३,६

मुन्शीसिंह ३८६,१३

मुरलीधर ६८०,१६।६८२,५

मुरारिदान (कविराज) ७०६,३

मुहम्मद कासिम (मौलवी) २०२,१।२०४,६

मुहम्मदजान (रईस) ९५,२

मूलचन्द्र (सेठ) ७९७,६

मूलजो ठाकरशी १४६,१३।२६३,५।४८६,६

मूलराज एम. ए. १५२,१६।३८२,१३।४६७,७।६६०,११।६६५,१

मेहरसिंह (सर्दार) ७२७,२

मैक्समूलर ९८,८।९८,२५।१०१,१५।१०६,३।२७७,८

मोनियर विलियम्स २७७,८।२४७,२३।४१३,७।४१६,१०

मोरेश्वर कुण्टे ११६,२२

मोहनलाल, मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या १५०,१०।१५३,१८।२२७,१०। ३८८,८।५७८,१६।६५४,११।६५५,५।६६६,१२

यउहन साहब २१४,१८

यदुनाथमित्र ४९९,१६

यदुनाथ बनर्जी ६१७,५

यशपाल (दिल्लीश्वर) ७७०,६
युगलकिशोर मेहता (पण्डित) ३२,७।३३,१५
युधिष्ठिर (महाराजा) ७७०,६
रकुनराय (लाला) ६८०,१८।६८२,४
रघुनाथसिंह (ठाकुर) ६७७,८
रणजीतसिंह (ठाकुर) १७९,१०
रतनसो श्यामजो ४७४,७।४७५,३
रत्नसिंह (राव पारसोली) ६५४,७
रमाबाई ३७९,१०।३८९,२।४०१,१३।४०९,१२
रहीमुल्लासाहब (हाफिज़) १८६,१८
राजबल्लभ (रामानन्द का पूर्व नाम) ५२५,४
राजाराम शास्त्री ३४५,१०
राथ (प्रोफेसर) १०१,३
राधा कृष्ण ४८२,७
रामचरण (लाला) ३४२,१६।५७४,२१
रामचन्द्र ७७४,१८
रामचन्द्र (मर्यादा पुरुषोत्तम) ८७५,२४
रामदीन (पण्डित) ६८०,२१।६८२,१०
रामनाथ ४०७,११।४०२,१८।४०८,१२।६५२,१६।६६२,१६।६८६,१
रामनारायण ५७९,६
रामप्रताप ३५२,१
रामरखा १४१,८
रामरतन ३०१,१२
रामसुखदास ३८३,१४
राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ८६५,१९।८७५,८।८९५,३१।८९७,४
रामसरन(ण) दास (रईस) २५९,२९।२९६,३।३००,१२।३४४,९।३८३;८।४०१, ११।४०२,१७।४०७,१६।४१०,७।४११,६।४२६,५।४२९,२४।४८०,१४। ४८७,१८।५०७,२६।५३७,११।५६३,६।५६४,२२।६४०,१२।६४२,८।६४३, ९।६४४,८।६४५,४।६४६,१।६५५,४।६७८,१५।६७०,१३।८२४,१०
रामाधार वाजपेई २१८,२१।२९६,७।३००,१५।३३६,१९
रामानन्द (ब्रह्मचारी) ५२५,५।५४२,८।६६१,८।६६३;११।६६५,४।६६७,१३। ६६८,२५।७००,१३।७२०,१७

रामाश्रम भट्टाचार्य १०८,४
रायसिंह (महाराज) ६५४,९
रावण (वेदभाष्यकार) ९७,२८
रूपसिंह (ट्रेजरी क्लर्क) ३५८,४
रोहिणी (बलदेव की माता) २१२,१
लल्लूभाई ६०,९
लक्षीराम (पण्डित) ११७,१०
लक्ष्मणदास (चौधरी) २९६,६।३००,१४
लक्ष्मणप्रसाद (मास्टर) ४७९,८
लक्ष्मण शास्त्री (बम्बई) ६३,१२
लक्ष्मीदत्त (पण्डित) ६३५,१३।६४१,८।६८३,१९
लक्ष्मीनारायण (लाला) ७९,२
लक्ष्मीनारायण (ब्रह्मचारी) ३३,१२
लाजरस साहब (काशी) ३०४,९
लालजी (शर्मा, बम्बई) ६३,६
लालजी (जोधपुर) ७२४, १-१४
लीलाधर हरिदास २३०,१२।२३१,१।६८६,८
लेंगलाएस १००,१८
लोंग साहब (लेफ्टिनेण्ट) ७१५,८।७९७,५
वंशीधर (मेरठ) ३८६,१३
वसुदेव (श्रीकृष्ण के पिता) २१२,१
वाल्टर साहब ७८३,१४
विक्टोरिया (महारानी) ५३९,२१
विक्रमसिंह (कपूरथला) ७९,१।१११,२।११२,१०
विजयकरण (फतह करण) ६७५,७
विजयसिंह (महता) ७८६,११
विरजानन्द स्वामी दण्डी ३६,८
विलसन ९८,७।१००,१०
विलियम साहब (हेडमास्टर) ८३३,५
विशुद्धानन्द (छात्र) ३२,४
विशुद्धानन्द, विशुद्धानन्द सरस्वती ३१४,५।३३९,१

विश्वेश्वरसिंह (बाबू) ५३४,१४।५७६,१२।६१०,२०।७१२,१५।७२७,१७।७६६,
२०।७६६,११
विष्णुकुमार ४३६,१५
विष्णुसहाय ४०८,६
विष्णुसिंह (सरदार) ६३६,४
वृद्धिचन्द (मसूदा) ७६५,१२
वृन्दावन, वृन्दावन चन्द्र मण्डल ११,८।१६,२६
वेबर ६८,७
व्रजनाथ (पण्डित) ७६८,२२
व्रजभूषणदास (पुस्तक विक्रेता काशी) ३५३,१३।४१०,२२
शंकटा प्रसादराय ३३६,१
शंकरलाल (रुड़की) १८०,१८
शंकरलाल ४०४,२
शंकरानन्द (रामानन्द ब्र० के पिता) ७२१,२
शादीराम, सांदीराम (मास्टर) ४२६,१।४४१,६।४३८,१६।४६८,३।५०६,२४।
५११,६।६८०,६
शामजी के वर्मा, शामजी कृष्णवर्मा—द्र० श्यामजी कृष्णवर्मा
शामलाल खन्ना २५०,२०
शालिग्राम (पण्डित) ७२२,१
शिवकुमार शास्त्री (काशी) ७६५,७
शिवदयाल (बाबू) ४६३,१७
शिवदयाल (लाला) ४६७,१६।४८६,७
शिवदयाल (पण्डित) ७२६,२३।७६०,१।७७४,१७
शिवनारायण (गुमास्ता) २६६,२०।५४६,१४
शिवप्रसाद (राजा सितारे हिन्द) ३३७,१५।३३८,२२।३३६,१।३४३;६।३४४,१३।
३४५,३।४२६,१८।४६६,७।८६८,१।८७२,४
शिवशर्मा (पण्डित, ७२७,१
शिवसहाय (बाबू) ८१८,१
शेरसिंह (ठाकुर) ३६६,१८।५८६,२०
शौरिन्द्र मोहन ठाकुर ११,४
श्यामजी कृष्णवर्मा ६०,१६।१३४,११।२०६,१३।२०७,१।२०६,६।२२०,११।२२४,
१७।२४८,३।३८३,२२।४०८,२६।४१२,३।६५५,२६।८३१,१४।८३४,७

श्यामलदास (कविराज) ६५४,६।६५५,३।६६०,११।७५७,६।७५९,६।७८३,२०।७९९,३
श्यामलाल (लाला) ३९२,११
श्यामसुन्दर (लाला) ३१६,१४।४५४,१९।६६४,१५;६७९,२७
श्रवणनाथ (हरद्वार) २३९,१४
श्रीकृष्ण खत्री ७४८,६।७७०,२१
श्री गोपाल (पण्डित) ८२५,१९
श्री निवास (जज) ५२७,१०
श्री प्रसाद (बाबू) २३६,१
श्रीमाली द्विवेदी (मसूदा) ५१५,१०
श्रीराम ४५०,२२।४६३,१९
श्लेगल—देखो बर्नफ श्लेगल
सज्जनसिंह (महाराणा) ६५४,३;२१
सन्नूलाल ४२७,१२।४२९,५
सबलसिंह (काकासाब) ७३३,११।७३६,१२।७५०,२७
समर्थदान (मुन्शी) १३१,३।२५६,१६।२५७,१७।२७६,२४।२९५,१२।२९६,११।३००,१०।३०१,५।३२०,२।३८६,८।४९८,१७।६७४,४।७०१,१३।७०२,१।७१८,३।७२२,९।७२९,४।७४२,९।७६१,५।७७४,१३।७८६,१०।७९६,१२
सहजानन्द (स्वामी) ६६४,३।६७१,१५।७९४,१६
साईंदास (लाला) १४१,६।२९६,४।३००,१३।३८३,११।५४६,८।६५५,२४।७४३,७
सायण (वेदभाष्यकार) ९७,२७
साहबराम (पोजदार) ७८८,१७
सिनेट साहब ३७१,७
सी० एच० टानी १०६,६
सीता (ईसाई स्त्री) ७८५,३
सुखदेव (पण्डित) ७२२,३
सुचेतसिंह (सरदार) १०,१९
सुजानसिंह (सरावगी) ३८६,१४
सुनन्दराज २५८,२
सुन्दरलाल, सुन्दरलाल रामनारायण (पण्डित) ६४,२।१५५,१३।२९६,८।३०१,१।३८२,१५।४७३,१०।४८१,५।४८२,७।४९८,४।५७१,४।५७९,६।६१४,१५।

६५५,१५।७००,६।७०२,५।७२२,१२,७४२,१०।७७३,२२।७७४,२४।७८६,६।
७९०,२
सूबेराव (पण्डित) ३३७,७।३३९,२
सेवकलाल कृष्णदास ६६,२।४९१,३।५२३,२४।६१७,९।६१९,६।६२०,१७।६२१,
१।६६८,६।६७४,३।७१३,१०
सयद अब्दुल मन्सूर साहब १९३,१
स्काट साहब (पादरी) २८९,१९
स्टीवन्सन १००,१९
स्टुअर्ट (कप्तान) १८९, १४
हनुमतराम (पित्ती) ६४,६
हरनारायण (लाला) ३४२,१७।४०८,१२
हरप्रसाद दुर्गाप्रसाद २७२,२४
हरप्रसाद (कापी नबीस) २८९,६
हरबंशसहाय (बाबू) २२३,१५
हलायुध भट्ट १०८,१८
हरि पण्डित (कामदार) ३३७,७।३५०,२०।३५२,१८
हरिप्रसाद (लाला) ४७९,८
हरिश्चन्द्र चिन्तामणि (बाबू) ६३,९।१२२,१०।१४०,५।१४६,१३।१५५,११।१५७,
६।१६५,१५।१८७,१७।२०६,१३।२०७,४।२१३,१५।२१५,१४।२२७,५।
२२९,४।२३०,५।२३१,२।२३२,२०।२३३,१८।२३४,८।२३७,१७।२४६,१९।
२५६,१५।२५७,३।२७४,२१।३६५,२५।३६६,१७।५४९,१२।६६८,९।७७४,
५।८२४,१७।८३१,१४
हरिहर (तर्कसिद्धान्त) १२,१४
हुलकर महाराज ७६८,९
हुलासराय (लाला) ८२५,३
हृषीकेश भट्टाचार्य १०८,१८
हेबतराम (पण्डित) १८७,१८

—:o:—

एकादश परिशिष्ट

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत ग्रन्थों के नाम

टिप्पणी—(१) प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी पंक्ति की।

(२) एक पृष्ठ में एक से अधिक बार ग्रन्थ का उल्लेख होने पर एक ही बार निर्देश किया है।

अथर्ववेद १,४।७१,३।७९७,१३
अथर्ववेद-टीका-ऋषि-छन्द ६४८,१५
अनुभ्रमोच्छेदन ६०९,२०
अर्थवेद (उपवेद) १,१२।७०,२४
अष्टाध्यायी २,४।८,१४।३५,२।१४२,१०।३५९,१७।४५५,१६
आख्यातिक (वेदाङ्गप्रकाश) ६११,१४।६३८,७
आयुर्वेद (उपवेद) १,८।७०,२४
आर्यदर्पण (पत्र) ४२४,१९।४४१,२५
आर्यप्रकाश (पत्र) ३५,८
आर्याभिविनय ५८,१।६३,१२।६४,१।८७,१३।१४५,१६।१६२,१५।२००,२३
आर्योद्देश्यरत्नमाला ११०,५।१११,१२।१४५,१४।१६२,१६।१६५,१५।२३३;११।
    ४६१,११।६०९,२१
आशुबोध १४२,६
इतिहासतिमिरनाशक ४६८,११
इन्दुप्रकाश (पत्र) ५३,२२
ईश (उप०) ३,२।३४,११
उणादिपाठ ८,१५
उणादिगण ३५,२।७१८,१३
उणादि [कोश] ६३८,१०
उत्तर मीमांसा ४५,२०
उपनिषद्भाष्य (शंकरकृत) २१,२७
ऋक् (ऋग्वेद) ७१,२।१२१,६
ऋग्वेद १,४।४९,१।९९,२५।१०६,५।१३७,१५।१३८,३।१४०,१२।१४३,६।१५६,३।

२१८,११।२१९,६।२२२,१४।३५३,५।३५७,८।३५९,१२।३६०,१०।३६१,२।
७६७,१०।७६९,१३
ऋग्वेदभाष्य ६०८,१०।७६२,१२।७७१,१०
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ९५,८।२८४,१०।४६१,१
ऐतरेय (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
ऐतरेय (ब्राह्मण) ६८,१४।७०,२१
ओरियण्ट एण्ड ओक्सिडेण्ड १०१,९
कठ (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
कल्प (वेदाङ्ग) २,२
कल्पभाष्य (जैन ग्रन्थ) ४३६,३२
कात्यायन [गृह्य] ३४,१२
कात्यायनादि सूत्र ४,१
कारकीय ६१०,२
काव्यप्रकाश ४२३,११
काव्यालङ्कार ३५,४।४०२,१
काशीखण्डादिक २७,१४
केन (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
कैवल्योपनिषद् ३,३
कौमुदी (सिद्धान्त कौमुदी) १४२,४
गणपाठ ९,१।३५,३
गणपाठ (वेदाङ्गप्रकाश) ७६९,५
गान्धर्ववेद (उपवेद) १,११।७०,२४
गृह्यसूत्र ३४,१३
गोकरुणानिधि ४८२,७।६०९,१८
गोतम अहल्या की कथा ६१०,२
गोपथ (ब्राह्मण) ६८,१४।७०,२२
चन्द्रालोक ४२०,६
चन्द्रिका (सारस्वत चन्द्रिका) १४२,६
चरक १,८
चरणव्यूह ४५,२०
चांदापुर (सत्यधर्म विचार मेला चांदापुर) ६०९,१७
छन्दः (वेदाङ्ग) २,६
छान्दोग्य (उप०) ३,२।३४,१२।७०,२६

जाबालोपनिषद २७,१६
ज्योतिष (वेदाङ्ग) २,७
ज्ञान प्रकाश (पत्र) ६०,१
तैत्तिरीय (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
दी वेदाज़ १०५,१०
धनुर्वेद (उपवेद) १,१०।७०,२४
धातुपाठ-धातुपाठगण ८,१५।३५,२।७१८,१३।७२६,१३
नामिक (वेदाङ्ग प्रकाश) ४५४,११।४५८,३।६१०,१
निघण्टु ७०,२०।३०८,१३।३६०,१।६३८,१२।७१८,१३।७६७,१५
निरुक्त २,५।३४,४।७०,२०।३०८,१४।३६०,१।६३८,१३।७६७,१७
न्याय (दर्शन) ३४,१०।७०,२३।३६०,१
पञ्चदशी १८,६
पञ्चमहायज्ञविधि २००,२२।२७७,२।३२६,६
परिभाषा पाठ ८,१५
पाणिनीयाष्टाध्यायी-भाष्य १५६,९
पातञ्जल, पातञ्जलसूत्र १३,६।३४,१०
पारस्कर गृह्य ३४,१२
पारस्कर गृह्यसूत्र-भाष्य ७४३,२०
पारिभाषिक (वेदाङ्ग प्रकाश) ६३८,७
पूर्वमीमांसा ३४,१०।४५,२०।६८,१५।७०,२२।३६०,१
प्रश्न (उप०) ३,२।३४,१।७०,२६
प्रश्नोत्तर हलधर १४५,१६
बाइबिल ७३१,२
बृहदारण्यक (उप०) ३,२।३४,१२।७०,२६
ब्रह्मवैवर्तादिक २२,११
भगवद्गीता १०६,२
भूमिका (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) १५६,२।६०९,१९
भूमिका (सत्यार्थप्रकाश) ६०९,१६
भृगुसंहिता २,८
भृगुसिद्धान्त ८३९,३०
भ्रान्तिनिवारण ३३३,१०
भ्रमोच्छेदन ३३८,२७।३३९,८
मनुस्मृति ४,५।२०,२०।२४,५।३४,१२।४६,४।६४१,४।६८९,१६।६९०,१

महाभारत ४,७।४५,२६
महाभाष्य २,४।८,१४।१४२,१०।३६०,१०
माइथोलोजी आफ हिन्दूज १०६,१
माण्डूक्य (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
मुग्धबोध १४२,६
मुण्डक (उप०) ३,२।३४,११।७०,२६
मैत्रेयी (उप०,) ७०,२७
यजुः (यजुर्वेद) ७१,२।१२१,६।१२२,२४
यजुर्वेद १,४।८९,१३।१३७,१७।१३८,३।१४०,१३।१४२,७।१५६,३।२१८,११।
    ३५३,५।३५७,८।३५९,११।३६०,९।३६१,२।४०८,४।४२०,३।४२९,१९।
    ६०८,१०
योग (दर्शन) ७०,२३
योग भाष्य ४,३
रत्नसार (जैन ग्रन्थ) ४३६,२०
रामायण ४५,२७ (देखो वाल्मीकिरामायण)
लघु कौमुदी ४५६,७
वर्णोच्चारणशिक्षा (वेदाङ्ग प्रकाश) ३३७,८।४६१,८।६०९,१७
वाकोवाक्यम् ४,४
वार्त्तिक पाठ ८,१५
वाल्मीकिरामायण ४०२,१
विवेकसार (जैन ग्रन्थ) ४३६,१३।४७१,२५
वेदभाष्य (स्वा० द० स०) १६२,१५
वेदभाष्यभूमिका (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) ७२,१३।११३,६
वेदविरुद्धमतखण्डन ५२,२२।१६२,१५
वेदाङ्गप्रकाश ७६७,१७
वेदान्त, वेदान्तदर्शन ३४,१०।७०,२३।३६०,१
वेदान्तिध्वान्तनिवारण १६२,१५।४६१,५
वैशेषिक (दर्शन) ३४,१०।७०,२२
व्यवहारभानु ३३५,१२।४६१,९।६०९,१९
शतपथ (ब्राह्मण) ६८,१४।७०,२१
शारीरकभाष्य (शंकरकृत) २१,२७
शारीरक सूत्र (वेदान्तदर्शन) ४,१

शास्त्रा० (शास्त्राथ जालन्घर ?) ६१०,१
शिक्षा (वेदाङ्ग) २,१।३५,२
शिक्षात्री-खण्डन (शिक्षापत्री ध्वान्त निव:रण) ५८,१३
शिक्षापत्री ध्वान्तनिवारण २११,१०
श्रीमद्भागवत ७३,५
श्वेताश्वतर (उप०) ३,३
संस्कारविधि (सं० १९३२) ६४,२०।८१,१२।८४,५।९२,६।१२२,२४।१४४,१५।१६२,१६।३२८,३।३३३,७।३८४,२७।४६१,३
संस्कारविधि (सं० १९४०) ७६७,१३।७९२,४।८०७,२
संस्कृतवाक्यप्रबोध ३३३,९।३८७,८।३८९,१५।४६१,१०।६०९,२०
सत्यधर्म विचार ४७,१
सत्यधर्म विचार [मेला चांदपुर] ४६१,६
सत्यार्थप्रकाश (सं० १९३२) ४३,११।४९,८।५३,१।५८,१।८७,१३।९२,६।१३१,८।१४५.१४।१६२,१६।२००,२१।२११,१४।३३३,६।३८७,४।३९८,११।४०६,११।४२८,२।४३०,५।४३१,११।४६१,५
सत्यार्थप्रकाश (सं० १९३९) ६०९,१।६११,८।७१८,१३।७२६,१२।७२७,५.७६४,३।७६७,१३।७६९,१५।७७१,९।७८७,१।८०७,१
सत्यासत्य विवेक (शास्त्रार्थ बरेली) ४६१,७
सन्धिविषय (वेदाङ्गप्रकाश) ३३६,२४।३३८,२१।३४३,८।३४५,४।३४६,९।४५५,१९।६०९,२१
सन्ध्या (पञ्चमहायज्ञविधि—सं० १९३४) ४६१,४।६०९ १८
सन्ध्या-अंग्रेजी अनुवाद ८०१,१३
सन्ध्याभाष्य(सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि, सं० १९३१) ५२,१९
सन्ध्योपासनपञ्चमहायज्ञविधि (पञ्चमहायज्ञविधि, सं० १९३४) १२८,१९
सन्ध्योपासना भाषा टीका (पं० म० य० विधि. सं० १९३४) १३१,५
सन्ध्योपासन (पं० म० य० वि० सं० १९३४) १४४,१७।१६२ १७
सर्वदर्शन संग्रह ४२३,११
सांख्य (दर्शन) ३४,३०।७०,२३
साम, सामवेद १,४।६८,१४।७०,२१।७१,२
सामासिक ६१०,३
सारस्वत (व्याकरण) १४२,६
सुश्रुत १,८
हिस्ट्री आफ एन्शण्ट संस्कृत लिटरेचर १०६.२

द्वादश परिशिष्ट

ऋ० द० के मूल पत्र वा विज्ञापन जहां सुरक्षित थे अथवा जहां से लिये गये

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापनों के संग्रह का प्रमुख कार्य स्व० श्री पं० भगवद्दत्त जी और श्री मामराज जी ने किया था। यह कार्य सन् १९१७ से सन् १९४४ के मध्य हुआ था। श्री पं० भगवद्दत्त जी ने प्रत्येक पत्र के नीचे टिप्पणी मे लिखा है कि कौनसा पत्र कहां किस के पास सुरक्षित है अथवा कहां से उद्धृत किया गया है। श्री पं० भगवद्दत्त जी का महत्त्वपूर्ण संग्रह देश विभाजन के समय नष्ट हो गया। जिन समाजों में थे, वहां भी चूहे और दीमकों से प्रायः नष्ट हो गये। इस प्रकार जिन व्यक्तियों के पास थे वे भी काल कवलित हो चुके हैं। इस दृष्टि से अब उक्त टिप्पणियां अनावश्यक सी हो गई हैं पुनरपि उन का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही। हम कौनसा पत्र वा विज्ञापन संग्रह काल में किस व्यक्ति के पास सुरक्षित था अथवा किस पत्र वा ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है इस के सरलता से परिज्ञान के लिये यह परिशिष्ट दे रहे हैं। अनेक पत्र और विज्ञापन इस संस्करण में बढ़े हैं उन्हें हमने कहां से प्राप्त किया है इस का निर्देश भी पूर्ववत् टिप्पणी में कर दिया है और इस सूची में संगृहीत कर दिया है।

अज्ञात मूल स्थान २२१,३२१,३२५,४२१,४२२,४२३,४७०,५००,६३८,७४९।
अमरनाथ वैद्यशास्त्री (देहरादून)–४४८।
आर्यदर्पण (मासिक)–२३२,३१६,३१८।
आर्यसमाज दानापुर–९२,९४,१०३,११६,१२२,१३८,१४४,१५०,१६२,१९२,
२०३,२०७,२११,२४४,२४८,२५३,४९७।
आर्यसमाज फर्रुखाबाद–३६४,३८९,४०८,४१३,४३१,४३२,४३५,४३६,४४६,
४५२,४६०,४९२,५३०,५३४,५३८,५४२,५४३,५४६,५६०,५६४,५६७,
५६९,५७०,५९२,६००,६३०,६५६,६७४,६७९,७०२।
आर्यसमाज मुरादाबाद–६०२,६०८,६९७।

आर्यसमाज लखनऊ–३४,३८,३९,४०,४१,४४,४८,५७,७१,७२,७३,७४;७७,१३३ १५१,१५५,१५९,१६०,२३१,२४९,४९४,४९९ ।
ऋग्वेदभाष्य तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—४३,४५,४७,५३,५५,५८,६१,६२, ६३,७६,८१,८२,८५,८६,८९,९०,१०१,१०२,१४२,१४३,२०४,२१८,२३५, २६८,३०४,५१६,५३६ ।
क़िशोरसिंह ठाकुर का संग्रह–५९८,६४७,६६७,६७७,७२३,७३६,७३९,७४५, ७७५,७७६,७९६,७९७,७९८ ।
गणेशप्रसाद पण्डित (फर्रुखाबाद)–३९४,३९७ ।
गुरुकुल मैगजीन–२७२।
घासीराम एम. ए. (मेरठ)–१९,२०,२२,२५,२६ ।[1]
घासीराम पण्डित (एम. ए.) द्वारा सम्पादित जीवन चरित–२५७,२६३, २७४,५१२ ।
चमूपति सम्पादित ऋ० द० का पत्र व्यवहार–६८३,७१९ ।
तेजसिंह रावराजा (जोधपुर)–६६६,६७२,६८१,७०१.८००,८०४ ।
थियोसोफिस्ट (पत्रिका)–२०८,२७६,२७९ ।
दयानन्ददिग्विजयार्क–३७३,५७१,६६८ ।
दयानन्द (सरस्वती) मुखचपेटिका–५३७,५४५ ।
देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित–९१७,११०,१४५,१७९,२१५,२५८,२८१ ।
देशहितैषी पत्र (अजमेर) तथा उसका रजिस्टर–४३५,६११,६५४,७४३,७७९।
द्वारकादास (इटावा)–४०४ ।
धीरेन्द्र वर्मा प्रोफेसर (प्रयाग)–४२,४६,६६,६८,७०,७८।१००,१४७,१४९,१५८ १६४,१६७ १६९,१७०,१७४,१७७,१७८,१८२,१८३,१८८,१८९,१९०, ३५१ ।
नारायणसिंह बिम्भराओ (रोपड़)–१६८ ।
नारायण स्वामी–३०३,६७६,६९८,७०५,७१४,७५०,७६८,७८० ।
परोपकारिणी सभा (अजमेर)–२६९,३०१,३९२,३९८,३९९ ४१७,४२५,४२९, ४४४,४८३,५१४,५३१,५३३,५४०,५४८,५५९,५७७,५७८ ५७९ ५८१, ५८५,५९०,६०५.६०६,६१६,६२८,६५९,६७०,६८८,७१०,७५४,७५७, ७६३,७८२,७९१,७९५,८० ।
परोपकारी (पत्र, अजमेर) तृतीय खण्ड २९५,३०८ ।

---

१. इन के लिये पृष्ठ ५१ की टिप्पणी ३ देखें ।

पितृयज्ञ-समीक्षा (भूमित्र शर्माकृत)–२७७।
फर्रुखाबाद का इतिहास[1]–२९०।
बुद्धदेव विद्यालंकार की भगिनी (हरिद्वार)–१८७,३३७,५०७,५९९।
भगवद्दत्त पण्डित (लाहौर)–४,३१,३३,३६,३७,४९,५२,६०,६५,७५,११४,१८५, २५०,२५१,२५२,२५७,२५९,२६२,२६५,२७५,२७८,२८२,२८८,२८९, २९१,२९२,२९३,२९७,२९९,३००,३०६,३०७,३११,३१३,३१४,३१९, ३२२,३२७,३२९,३३४,३३८,३३९,३४१,३४३,३४४,३४६,३५२,३५६, ३६०,३६१,३६५,३७२,३७४,४१५,४२०,४३८,४४१,४४२,४५०,४५५, ४५८,४५९,४६१,४६७,४७६,४७७,४८०,४८१,४८४,४८८,४९६,४९८, ५०१,५०८,५१५,५२२,५२७,५३२,५३५,५५१,५५२,५६३,५८७,५९५, ६०९,६२२,६२५,६४४,६५२,६६४,७०९,७१३,७१५,७२७,७३३,७५२, ७६७,७८६,७९३।
भगवान् सहाय लाला (मुरादाबाद)—२६१।
भारतसुदशा-प्रवर्तक (फर्रुखाबाद)—१५६,१७२,६३२।
भीमसेनशर्मा का जीवनचरित (इटावा)–३२।
महावीरसिंह गहलोत (जोधपुर)–६९४।
महेशप्रसाद मौलवी आलमफाजिल–२९६।
मामराज (खतौली)–२६६,२६७,४५७,६३३,६७५,८०१।
मुंशीराम (स्वा० श्रद्धानन्द) सम्पादित पत्रव्यवहार–३२०,४७३,४८५,५२८, ६६०,७३७,७४२।
मूलराज एम० ए० रायबहादुर (लाहौर)-१३०,१३१।
राजकार्यालय शाहपुरा—५१०,५४९,५६८,६६१,६८४,६८६,६९०,६९९,७१७, ७७३।
राजस्थान-विद्यापीठ उदयपुर—९६।
रामशरणदास रईस (मेरठ) ३२२,४५१,६७८।
लक्ष्मण जी मास्टरकृत जीवन चरित (उर्दू)—६२३।
लेखराम पण्डित कृत जीवन चरित—१,३,५,६,७,८,१०,१२,१३,१४,१५,१६, २४,२७,३५,५१,५४,५६,५९,६४,७९,८०,८३,८४,८७,८८,९५,९८,९९, १०६,१०९,११२,११५,११७,११८,११९,१२०,१२१,१२४,१२५,१२६, १२७,१२९,१३२,१३४,१३९,१४८,१६६,१७१,१८०,१८६,१९२,१९४, १९५,१९६,१९७, २००,२०१,२०२,२०५,२०६,२०९,२१०,२१२,२१४,

---

[1] इस में वे सभी पत्र छपे हैं जो आर्यसमाज फर्रुखाबाद के नाम पर लिखे हैं।

२१६,२१९,२२०,२२४,२२६'२२८,२२९,२३३,२३६,२३७,२३८,२३९,
२४०,२४१,२४३,२४५,२४६,२४७,२५४,२५५,२६०,२७१,३१७,३४२,
३७७,४१६,४५४,४६३,४६४,५११,५१७,५१८,५५३,५८६,८४५,८४६
विदुरदत्त पण्डित (मथुरा)—२।
विद्याप्रकाश(उर्दू मासिक पत्र)—२१३ ।
विष्णुलाल एम. ए. (बरेली) ४४५,४४९,६५५,७७२,७८[illegible] ।
वैदिक मैगजीन—३२६,३५३,३८४,३९ ,४०९।
शंकरसिंह भूपजी (मुरादाबाद)—२२२।
सत्यायप्रकाश (प्र० सं० सन् १८७५)—११ ।
सभाष्यसन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधि (संवत् १९३१)—२२।
हमारे संग्रह में—(द्र० भगवद्दत्त नाम)

—:o:—

संशोधन-पत्र दोनों भागों का

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
घ (आ० सूचना)	२३	२२१	२११
१	३	इस विज्ञापन का भाषा अनुवाद परिशिष्ट १ में ८५६-८५८ पर देखें ।	
५	१५	परमेश्वरषिरचि०	परमेश्वरर्षिरचि०
७	२	इस पत्र का भाषानुवाद प्रथम परिशिष्ट ८५८ पर देखें।	
८	७,८	जीविका	ऽऽजीविका
२१	२७	शरीरिक भाष्य	शारीरक भाष्य
३२	११	१९३०	१९३० वृन्दावन]
३३	१०	वपने पास	अपने पास
३८	२८	और न जब	और जब
४३	१८	उसका कुछ…छाप दिया है यह पंक्ति निकाल देवें	
४८	२२	२८ विज्ञापन में	३१ के पत्र में
५५	४–२१	छपे विज्ञापन का शुद्ध पाठ तथा भाषानुवाद प्रथम परिशिष्ट पृष्ठ ८५८-८५९ पर देखें ।	
,,	२०-२२	[टि० सं० का सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार शोधें— २. यह मराठी भाषा में मुद्रित विज्ञापन ऋ० द० के द्वारा आश्विन सुदि १ सं० १९३१ लिखित तथा शकाब्द १७९६ (=सं० १९३१, सन् १८७४) में बम्बई से प्रकाशित **सभाष्य सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि** के अन्त में छपा है। सं० १९३१ का यह संस्करण रा० ला० कपूर ट्रस्ट के संग्रह में विद्यमान है ।	
५५	२४	टि० ४ के निर्दिष्ट आर्यसमाज स्थापना तिथि के विषय में ग्रन्थ में चतुर्थ परिशिष्ट (पृष्ठ ९४३-९५९) में विस्तार से लिखा है ।	
७१	२८	दश	द्वादश

८०	३०	कुतार्थं	कृतार्थं
९४	२०	पत्र के विषय में…… अंग्रेजी में	पत्र को भेजते समय —… बंगला में
९८	१४	सायाण	सायण
१०१	३	'अत्यन्त:'	'अन्यत:'
१०७	३२	३५ पर छपा है।	३५(पृष्ठ ६७-७७)पर छपा है।
१३६	१५	[माधोलाल] इसके नीचे की पंक्ति के आरम्भ में जोड़ें — [लाजरस प्रेस में वेदभाष्य छपने की चर्चा करके लिखा]	
१३६	२२	[माधोलाल] इसके नीचे बढ़ावें — [पुस्तक भेजने का वर्णन करके लिखा]	
१३७	८	२८ जनवरी १८७८[1]	२८ जनवरी १८७८ पत्र वजीराबाद में लिखे पोस्ट मास्टर के द्वारा ।[1]
१४३	१२	२ पैकट छपे	२ पत्र छपे
,,	२१	अध्याय ही शोधे थे।	अध्याय ही लिखे थे।
,,	२४	पूर्ण संख्या ५३	पूर्ण संख्या ९२ के
१४४	२	३१ मार्च	३१ मार्च[2]
,,	,,	दो छपे हुए आर्यसमाज	दो छपे हुए पत्र आर्यसमाज
१४५	१	धर्मों पर और	धर्मों पर [चलना] और
१५६	११	१७००	१०००
१६७	१८	न्यायधीशाय	न्यायाधीशाय
१७५	७	विद्या अपार है--	पाठ निकाल देवें।
१७६	१४	चयासागर…न्यायकारी	दयासागर…न्यायाधीश
,,	२४	श्रावण वदी…	यह पंक्ति श्लोक के पश्चात् छपनी चाहिये।

---

[1] १. यह अंश हमारे पूर्व संस्करण में नहीं था। पं० लेखराम जी कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ३९७ पर छपा है।

[2] २. यहां 'दानापुर में ऋ० द० का पदार्पण और प्रभाव' पुस्तकें पृष्ठ १८, १९ पर छपे पत्र में '२१ मार्च' छपा है। वह अशुद्ध है। यह पत्र १ अप्रैल का है। अतः 'कल की तारीख' रूप में ३१ मार्च पाठ ही शुद्ध हो सकता है।

१७६-१७७		पृष्ठ पर छपे पूर्ण संख्या १०७ और १०८ के पत्र-सारांश पूर्ण संख्या १०२ के अन्त में पृष्ठ १५६ पं० ४ के आगे छपने चाहियें। यहां अस्थान में जुड़ गये हैं।	
१८१	१	[पूर्ण संख्या ११६]	[पूर्ण संख्या ११६] २७०[1]
१८४	२४–२५	अगले पत्र में विज्ञापन	अगले पत्र में पृष्ठ १८७ पं० २५–२९ में विज्ञापन
१८९	३०	हि० सं० ६५५-७६६	हि० सं० पृष्ठ७६५–७६६
१९१	२५	पृष्ठ पर १८४	पृष्ठ १८४ पर
२००	१७	३७३	३०३
२१२	१२	[पूर्ण संख्या १४४]	[पूर्ण संख्या १४४] नं० ४९८[2]
२११	१९–२०	[ऊपर की·········आ रहा है]—इसके स्थान में इस प्रकार पाठ होना चाहिये—यह टिप्पणी ऋ० द० के पत्र-विज्ञापन के द्वितीय संस्करण में पूर्ण संख्या १४६, पृष्ठ १३२ पर छपे **श्याम** जी कृष्ण वर्मा के पत्र के नीचे पूर्ण संख्या १४७ पर छपी थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा का उक्त पत्र इस संस्करण में पूर्ण संख्या १९० पृष्ठ २४६-२४७ पर छपा है। हमने इस संस्करण में इस टिप्पणी को तिथि क्रम के अनुसार यहां जोड़ा है।	
२१३	१	पत्र-सूचना (६)	पत्र-सूचना (८)
,,	५	पत्र-सूचना (७)	पत्र-सूचना (९)
,,	२३	स्थापना २९ सितम्बर १८७८	स्थापना पूर्ण संख्या १४४ पृष्ठ २१२ पं० १९ के अनुसार

---

[1] १. यह पत्र संख्या भूल से छपनी रह गई। 'दानापुर में ऋ० द० का पदार्पण और प्रभाव' पुस्तक में पृष्ठ २७ पर छपे इस पत्र पर पत्र संख्या १० छपी है। यह अशुद्ध है। ९ अगस्त को लिखे गये पूर्ण संख्या ११५ के पत्र में ५ अगस्त को लिखे गये पत्र की संख्या २५५ लिखी है (द्र० पृष्ठ १८०, पं० १२)। अतः यहां २७० संख्या ही शुद्ध है।

[2] २. यह पत्र की संख्या 'दानापुर में ऋ० द० का पदार्पण और प्रभाव' पुस्तक में पृष्ठ २९ पर छपे पत्र में मिलती है।

२३ सितम्बर (या उससे पूर्व)
१८७८

२१७	२४	टि० ३ अशुद्ध है। पूर्ण संख्या १४४ पृष्ठ २१२ पर छपा पत्र माधोलाल के नाम है, न कि रामाधार वाजपेई के नाम। अत: इस टिप्पणी के स्थान में 'यह पत्र हमें नहीं मिला। इसी पत्र के आधार पर पूर्ण संख्या १४६ (पृष्ठ २१३) पर 'पत्र-सूचना' बना कर छापी है' ऐसी टिप्पणी होनी चाहिये)।	
२१८	१	पत्र-सूचना (८)	पत्र-सूचना (१०)
२३५	२३	मेरठ	रुड़की
२४७	३०	कल्लभदास	बल्लभदास
२४९	६.२५	'दानापुर में ऋ० द० का पदार्पण और प्रभाव' पुस्तक में १० तारीख का उल्लेख है। शुद्ध पाठ अनुसन्धानीय है।	
,,	२६	सं० १९३६	सं० १९३५
२६३	३	मुम्बई जाकर……… लिखना।	यह पंक्ति मूलपाठ की नहीं है।

विशेष—पृष्ठ २६४–२६६ पूर्ण संख्या २११ के पत्र का प्रतिलिप्यन्तर के साहाय्य से शुद्ध पाठ प्रथम परिशिष्ट (भाग २) में पृष्ठ ८६०–८६२ पर छापा है।

२६६	३१	७।५।१८७९	९।५।१८७९

विशेष—यहां शुद्ध पाठ के रूप में दर्शाये मूल पाठ में सन् अशुद्ध है १८७९ चाहिये। शुद्ध तारीख ९ अप्रेल होने से इस पत्र की पूर्ण संख्या २१२ के स्थान में और २१२ के पत्र को इस स्थान (२११ संख्या) पर पूर्वापर जानना चाहिये।

२७१	२२	नहीं निर्दिष्ट है	वहीं निर्दिष्ट है।
३०२	४	'दानापुर में ऋ० द० का पदार्पण' पुस्तक में छपे पत्र के अन्त में 'मिर्जापुर' का निर्देश नहीं है। हस्ताक्षर के नीचे कोष्ठक में [२३-१०-१८७९] तारीख छपी है। वह पत्र का अंग नहीं है।	
३०४	६–८	यहां 'बहुत अच्छा है मकान भी' के आगे 'इस बाग में	

		ठहरे हैं' से लेकर बहुत अच्छा है मकान भी' इतना लगभग २ पंक्तियों का पाठ निकाल देवें। भूल से दो बार छप गया है।	
३४२	२७	३. जून १८८०	३. ३० जून १८८०
३८९	१५	नवमावेद भाष्य	नवमा वेदभाष्य
४६३	१२	बेलन ज	बेलनगंज
४६७	२१	वैश्यक न्यायामम्बष्ठ नाम	वैश्य कन्यायामम्बष्ठो नाम
५१२	२०–२८	इन पंक्तियों में जो टिप्पणियां छपी है उन टिप्पणी संख्या अशुद्ध पड़ गई है। पं० २६ पर टि० सं० ४ के स्थान में १ चाहिये और सब से प्रथम छपनी चाहिये। इसी कारण टि० संख्या १-२-३ को संख्या २-३-४ होनी चाहिये।	
५२३	२४	नल बाजर	नल बाजार
५३०	४,७	काशी]	प्रयाग]
५३४	८	,,	,,
५३५	२	,,	,,
५५६	२	[1882]^7	[1882]^1
,,	४	SINGH^8	SINGH^2
५७७	१५	१२ जून	१९ जून
५९५	२९	२. महाभाष्य	१. महाभाष्य
,,	३०	१- मनुस्मृति	२. मनुस्मृति
६२०	९	पृष्ठ से सत्यार्थप्रकाश के	पृष्ठ से ५७ पृष्ठ सत्यार्थप्रकाश के
७६५	६	पं० शुकदेव जी	पं० शुकदेव प्रसाद जी
८८८	५	कमरदान	(उमरदान ?)
,,	१९	बनाने की	तैयार करने की
८३२	१६	८३०	८३१
८६५	२६	स्मृति	स्मृत
८७०	१४	अम्नातेष्व	अनाम्नातेष्व०

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित वा प्रसारित ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य**—(संस्कृत वा हिन्दी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५ ००।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग अप्राप्य है। (द्वितीय भाग) मूल्य २०·००

३. **अथर्ववेदभाष्य** -श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्यायकृत। १८-१९ वां काण्ड १६-००। बीसवां काण्ड अजिल्द १२-००, सजिल्द १५-००।

४. **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-परिशिष्ट**—भूमिका पर किये गये आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये गए उत्तर। मूल्य १-५०

५. **माध्यन्दिन**— (यजुर्वेद) **पदपाठ**—शुद्ध संस्करण। मूल्य २०·००

६. **गोपथब्राह्मण** (मूल) सम्पादक पं० विजयपाल विद्यावारिधि। मूल्य ४०-००

७. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेदविषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। विशिष्ट संस्करण। मूल्य ३०-००

८. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कटमाधवकृत। व्याख्याकार—श्री पं० विजयपाल जी विद्यावारिधि। उत्तम संस्करण ३०-००, साधारण २० ००।

९. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या**—युधिष्ठिर मीमांसक १-००

१०. **वेदसंज्ञा-मीमांसा** - ,, ,, ०·७५

११. **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक। नया संस्करण १२·००

१२. **वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय; वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा**—(संस्कृत-हिन्दी) यु० मी० ४-००

१३. **देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। मूल्य ०-७५

१४. **निरुक्तकार और वेद में इतिहास**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ०-७५

१५. **त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिक कथा का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य। ०·७५

१६. **वेद में आर्य-दास-युद्ध-सम्बन्धी पाश्चात्त्य मत का खण्डन**—लेखक श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री। ०-७५

१७. **दर्शपौर्णमासपद्धति**—पं० भीमसेनकृत व्याख्या २५-००

१८. **शिवशङ्करीय लघुग्रन्थ पञ्चक**—पं० शिवशङ्कर काव्यतीर्थ। मूल्य ५-००

१९. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ-समीक्षा**—लेखक पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय। बढ़िया जिल्द १५-००, साधारण १२-५०।

२०. **संस्कार-विधि**—शताब्दी-संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १०-००, राज-संस्करण १२-०० ।

२१. **संस्कार-विधि-मण्डनम्** – संस्कारविधि की व्याख्या । लेखक—वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री । ३-००

२२. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन मन्त्रों के पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित। यु० मी । ३-०० सजिल्द ४-००

२३. **वैदिकनित्यकर्म-विधि**—(मूलमात्र) मूल्य ०-६०

२४. **सन्ध्योपासनविधि**—भावार्थ तथा दैनिक यज्ञ सहित । ०-५०

२५. **वर्णोच्चारण शिक्षा** - ऋषि दयानन्द कृत हिन्दी व्याख्या । ०-५०

२६. **शिक्षासूत्राणि**—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षा-सूत्र १-५०

२७. **अष्टाध्यायी**—(मूल) शुद्ध-संस्करण । (यन्त्रस्थ)

२८. **धातुपाठ**—धात्वादिसूची सहित, सुन्दर शुद्ध संस्करण । २-००

२९. **वामनीय लिङ्गानुशासनम्**—स्वोपज्ञ-व्याख्या सहितम् । ६-००

३०. **अष्टाध्यायी-भाष्य**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासुकृत । प्रथम भाग २४ ००, द्वितीय भाग २०-००, तृतीय भाग २०-०० ।

३१. **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु । प्रथम भाग ७-००, द्वितीय भाग ८-०० ।

३२. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या यु० मी० । प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग ३४-००, तृतीय भाग २५०० ।

३३. **उणादिकोश**—ऋ० द० स० कृत व्याख्या, तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित । अजिल्द ७-००, सजिल्द १०-०० ।

३४. **दैवम्**–पुरुषकारवार्तिकोपेतम्—लीलाशुकमुनि कृत । ८ ००

३५. **लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरल विधि** २-००

३६. **भागवृत्तिसंकलनम्**—अष्टाध्यायी की प्राचीन वृत्ति ४-००

३७. **काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर । यु० मी० १०-००

३८. **काशकृत्स्न व्याकरणम्** – सम्पादक-यु० मी० ४-००

३९. **शब्दरूपावली**—विना रटे रूपों का ज्ञान करानेवाली । १-५०

४०. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार-पं० युधिष्ठिर मीमांसक । प्रथम भाग मूल्य ४०-००, द्वितीय भाग ३०-००, राजसंस्क० ४०-००, तृतीय भाग ५०-००, चौथा भाग यन्त्रस्थ ।

४१. **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत नया संस्करण (सन् १९७३) तीन भाग । पूरा सैट ६०-००

पुस्तक-प्राप्ति स्थान

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला सोनीपत (हरयाणा)

71336

Entered in Database

Signature with Date

Acc
Cl
Checked
Any Other